जीवन-व्यवस्थामें विश्व-समन्वय

मेरी गुजराती पुस्तक 'जीवन-व्यवस्था' को अखिल भारतीय साहित्य अकादमीने सन् १९६६ का प्रथम पुरस्कार न दिया होता, तो अुसकी ओर हिन्दीके प्रकाशकोका ध्यान शायद ही जाता, हालाकि मुझे यह कबूल करना चाहिये कि हिन्दी प्रकाशकोकी दृष्टि दिन-पर-दिन काफी अखिल भारतीय होती जा रही है। अनेकोने 'जीवन-व्यवस्था' का हिन्दी अनुवाद करा कर प्रकाशित करना चाहा, किन्तु मैं हमारे नवजीवन प्रकाशन मदिरके साथ आत्मीयतासे बधा हू। अुमीने यह हिन्दी सस्करण प्रकाशित करनेकी तत्परता बताअी।

भारतीय मस्कृति आज तक प्रधानतया धर्म-प्रधान ही रही है। और भारत-भाग्य-विधाताने भी भारतको दुनियाके प्रधान धर्मोंका धाम बना रखा है। चीनके कॉनफ्युशियस और लाओत्सेकी धार्मिक परपराओको यदि हम बाजू पर रख दे, तो हम कह सकते हैं कि दुनियाके सबके सब धर्म भारतीय जनताको प्रेरित कर रहे हैं और भारतीय चिन्तनसे पोपण भी प्राप्त कर रहे हैं।

आज हम वैज्ञानिक दृष्टिसे समाज-व्यवस्थाका और मानवीय सस्कृतियोका स्वतत्र चिन्तन भले ही करे, मनुष्य-जातिने आज तक धार्मिक प्रेरणासे ही सामाजिक जीवनका विकास किया है। और मनुष्य-जातिकी सब सस्कृतिया अभी अभी तक धर्म-प्रधान ही रही हैं। अथवा हम अैसा भी कह सकते हैं कि मानवी सस्कृतिको जिन जिन सार्वभौम विचारोने और जीवन-दृष्टियोने प्रेरणा दी है, अुन विचारो और दृष्टियोको धर्मके नामसे ही पहचानना चाहिये। हमारे मत्त पश्चिमके विज्ञानके अुपासकोने जो जीवन-दृष्टि समस्त जगतको दी है, वह अेक नया धर्म ही है, और अर्थ-व्यवस्थाको तथा राजनैतिक सत्ताको प्रधानता देकर दुनियामें जो साम्यवाद प्रचलित हुआ है, अुसे भी अेक आधुनिक अथवा अद्यतन जडवादी धर्म ही कहना चाहिये। भारतकी गाधी-प्रणीत सर्वोदय-दृष्टि भी दुनियाका अेक सतोपप्रद नया धर्म बन जाय, तो तनिक भी आश्चर्य नही। भले ही धर्मोंने आज तक आत्मा, परमात्मा, अिहलोक और परलोक अेवम् पूर्व-जन्म तथा पुनर्जन्म और मोक्षका ही प्रधानतया चिन्तन किया हो और अीश्वरके अवतारोको धर्म-सस्थापक माना हो, सब धर्मोंका मूल अुद्देश्य मानवी जीवनको सुव्यवस्थित, अुन्नत और कृतार्थ करना ही है। अिसीलिअे हम आस्तिक, नास्तिक, वैज्ञानिक तथा गूढवादी सब धर्मोंको जीवन-व्यवस्थाके रूपमें ही पहचानते हैं, फिर वह जीवन व्यक्तिगत हो, पारिवारिक हो या विशाल रूपमे

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

पहला सस्करण २०००

रु० ७.००

अगस्त, १९६७

जीवन-व्यवस्थामें विश्व-समन्वय

मेरी गुजराती पुस्तक 'जीवन-व्यवस्था' को अखिल भारतीय साहित्य अकादमीने सन् १९६६ का प्रथम पुरस्कार न दिया होता, तो अुसकी ओर हिन्दीके प्रकाशकोका ध्यान शायद ही जाता, हालाकि मुझे यह कबूल करना चाहिये कि हिन्दी प्रकाशकोकी दृष्टि दिन-पर-दिन काफी अखिल भारतीय होती जा रही है। अनेकोने 'जीवन-व्यवस्था' का हिन्दी अनुवाद करा कर प्रकाशित करना चाहा, किन्तु मै हमारे नवजीवन प्रकाशन मदिरके साथ आत्मीयतासे बधा हू। अुमीने यह हिन्दी सस्करण प्रकाशित करनेकी तत्परता बताअी।

भारतीय मस्कृति आज तक प्रधानतया धर्म-प्रधान ही रही है। और भारत-भाग्य-विधाताने भी भारतको दुनियाके प्रधान धर्मोका धाम बना रखा है। चीनके कॉनफ्युशियस और लाओत्सेकी धार्मिक परपराओको यदि हम बाजू पर रख दे, तो हम कह सकते है कि दुनियाके सबके सब धर्म भारतीय जनताको प्रेरित कर रहे है और भारतीय चिन्तनसे पोपण भी प्राप्त कर रहे है।

आज हम वैज्ञानिक दृष्टिसे समाज-व्यवस्थाका और मानवीय सस्कृतियोका स्वतत्र चिन्तन भले ही करे, मनुष्य-जातिने आज तक धार्मिक प्रेरणासे ही सामाजिक जीवनका विकास किया है। और मनुष्य-जातिकी सब सस्कृतिया अभी अभी तक धर्म-प्रधान ही रही हैं। अथवा हम अैसा भी कह सकते हैं कि मानवी सस्कृतिको जिन जिन सार्वभौम विचारोने और जीवन-दृष्टियोने प्रेरणा दी है, अुन विचारो और दृष्टियोको धर्मके नामसे ही पहचानना चाहिये। हमारे मन पश्चिमके विज्ञानके अुपासकोने जो जीवन-दृष्टि समस्त जगतको दी है, वह अेक नया धर्म ही है, और अर्थ-व्यवस्थाको तथा राजनैतिक सत्ताको प्रधानता देकर दुनियामें जो साम्यवाद प्रचलित हुआ है, अुसे भी अेक आधुनिक अथवा अद्यतन जडवादी धर्म ही कहना चाहिये। भारतकी गाधी-प्रणीत सर्वोदय-दृष्टि भी दुनियाका अेक सतोषप्रद नया धर्म बन जाय, तो तनिक भी आश्चर्य नही। भले ही धर्मोंने आज तक आत्मा, परमात्मा, अिहलोक और परलोक अेवम् पूर्व-जन्म तथा पुनर्जन्म और मोक्षका ही प्रधानतया चिन्तन किया हो और अीश्वरके अवतारोको धर्म-सस्थापक माना हो, सब धर्मोका मूल अुद्देश्य मानवी जीवनको सुव्यवस्थित, अुन्नत और कृतार्थ करना ही है। अिसीलिअे हम आस्तिक, नास्तिक, वैज्ञानिक तथा गूढवादी सब धर्मोको जीवन-व्यवस्थाके रूपमें ही पहचानते है, फिर वह जीवन व्यक्तिगत हो, पारिवारिक हो या विशाल रूपमें

सामाजिक हो। और यदि हम गहराअीसे सोचे, तो परलोक और मोक्ष भी जीवनके क्षेत्रका ही काल्पनिक अथवा सच्चा गूढ विस्तार है।

मनुष्यके लिअे चिन्तनका और पुरुषार्थकी सावनाका अेकमात्र विषय अथवा क्षेत्र जीवन ही है। केवल मनुष्यगत जीवन नही, जीवमात्रके जीवनका चिन्तन करके ही हम अपनी सारी प्रवृत्ति, निवृत्ति और अुसकी साधना चलाते आये है।

सकुचित दृष्टिके कारण जिसे हम जड सृष्टि कहते है, अुसकी अुत्पत्ति, स्थिति, लय और पुनरुत्पत्तिका विचार किये बिना हमारा जीवन-चिन्तन पूर्ण और सतोषप्रद हो ही नही सकता। अिसीलिअे जीवनको अुद्दीपित करनेवाले और जीवनके किसी भी अगकी अुपेक्षा न करनेवाले हमारे पुराण-साहित्यने 'सर्ग और प्रतिसर्ग' के अितिहाससे ही प्रारभ किया है। अिसलिअे प्राचीन, मध्य-कालीन और अद्यतन सब धर्मोंको जीवन-व्यवस्थाके नामसे ही पहचानना हमने अुचित माना है।

इस व्यापक व्याख्या और दृष्टिसे अगर हम कोअी अेक ग्रथ लिखनेकी हिम्मत करते, तो वह हमारी हिमाकत ही हो जाती। हमने भारतीय जीवनके विकासका अध्ययन और चिन्तन करते हुए समय-समय पर जो जीवन-व्यवस्था-मूलक कुछ निवध लिखे, अुन्हीका यह अेक छोटासा सग्रह है। यहा किया हुआ चिन्तन और प्रस्तुत की हुअी जीवन-दृष्टि है तो पारमार्थिक, किन्तु हमारा यह दावा नही हो सकता कि हमने जीवनके सब पहलुओ पर प्रकाश डाला है। ये सारे निबध किसी अेक योजनाको लेकर भी लिखे हुअे नही है। शिक्षण-क्षेत्रमे और सामाजिक सुधार तथा विकासमें, यथाशक्ति सेवा करते हुअे प्रसगवशात् जो कुछ हमने लिखा था अुसीका सग्रह यहा किया गया है। अिन निबधोके वर्गी-करणकी तरफ पाठक ध्यान न दें। अेक अेक निवधको वे अेक स्वतत्र विचारके विवरणके रूपमे ही मान लें और सारे सग्रहको देशके मनीषियोका अेक नम्र अनुनय ही समझ लें।

हमारे यहा धर्मका नाम लेकर झगडे वहुत हुअे है। यहा तक कि आजके वहुतसे लोग अव धर्मका नाम सुनते ही नाराज हो जाते है और सारी चर्चाको दकियानूसी कहकर बाजू पर रखना चाहते है।

लेकिन कोअी अैसा न माने कि धर्मके झगडे केवल भारतमे ही हुअे है। दुनियामे अेक भी देश अैसा नही है, जिसने धर्मके नाम पर मनुष्यका रक्त न वहाया हो। शायद अधिकसे अधिक धर्मचर्चा करनेवाले भारतने ही मनुष्यका रक्त धर्मके कारण कमसे कम वहाया होगा। भारतमे झगडा टालनेकी वृत्ति है ही। यानी झगडे खडे हो तो मार-काट चलाकर हिंसाके द्वारा झगडा मिटानेका प्रयत्न भारतमें कमसे कम होता है। झगडे न तो मिटेंगे, न मारामारी तक

पहुचेंगे। 'जैसा भी चले वैसा चलानेको' भारतीय मानस तैयार होता है। जबरदस्तके सामने झुक जाना किन्तु अुसकी भी पूरी चलने नही देना और जो भी नतीजे आयें अुनको मजूर रखना — यह है भारतीय स्वभावकी नीति।

हिन्दू शब्दकी निरुक्ति भी अिसी मनोवृत्तिको स्पष्ट करती है।

हिंदू शब्द अिदू परसे आया होगा, अथवा सिंधू नदी परसे आया होगा, अथवा किसी औरानी शब्दके रूपातरसे बना होगा। निरुक्ति कभी भी व्युत्पत्तिके बारेमे सोचनेके लिअे बधी हुअी नही है। निरुक्ति कहती है हिंदू शब्दमें दो अक्षर है — 'हिं' और 'दू'। अिन अक्षरोमे से हम कोअी अैसा अर्थ निकालेंगे, जिससे हिदू शब्दका सास्कृतिक भाव सिद्ध हो सके। निरुक्तिने तय किया 'हिं' माने हिंसा, 'दू' माने दु ख, और हिंदू शब्दका अर्थ किया हिंसासे, हिंसाको देखकर जिसके चित्तको दु ख होता है वह है हिंदू। (हिंसया दूयते चित्त यस्याऽसौ हिंदुरीरित ।) हम लोग जहा तक हो सकेगा हिंसाको टालेंगे। जबरदस्तकी बात कुछ हद तक मान जायेगे और जैसा भी हो सकेगा निभायेगे।

अिस मनोवृत्तिसे भारतका पुरुषार्थ क्षीण हुआ ही है। किसी भी बातमे अुत्तम स्थिति तक हम कभी पहुचेंगे ही नही। जैसा चलता है अुसीसे सतोष मानेंगे। फलत न तो हमारे जीवनमें प्रसन्नता रहती है, न दूसरे लोगोके प्रति पूरी पूरी आत्मीयता। और दु खकी बात तो यह है कि अैसी निष्प्राण शातिको ही हम चलाते है और अुसी हालतको नीरोग स्थिति मानते हैं। जब रोगको रोगके तौर पर आदमी पहचाने तब अुसका अिलाज करनेका अुसे सूझेगा। रोगी हालतको ही मनुष्य जब स्वाभाविक स्थिति मान लेता है तब तो सुधारकी कोअी आशा ही नही रहती।

भारतमें अनेक-धर्मी लोग अेकसाथ रहते हैं। अिसी देशके चद लोगोने बाहरके धर्मोंका स्वीकार किया। क्यो किया, कैसे किया, अिसके अितिहासमें जाना व्यर्थ है। आज अुन लोगोको अपने अपने धर्ममें सतोष है अथवा कहिये कि अुन अुन धर्मोंका अुन्हे अभिमान है। अैसी हालतमें अुन लोगोको हम विदेशी नही कह सकते। बुद्धिमानी अिसमें है कि अपने ही स्वदेशी लोगोने जब बाहरके धर्मोंका स्वीकार किया तब वे धर्म हमारे लिअे विदेशी धर्म नही रहे। जिस तरह हम वैष्णव, शैव, शाक्त, लिगायत आदि लोगोको अपने ही देशके और अपनी ही सस्कृतिके लोग कहते है और जिस तरह हम जैनोको, सिक्खोको, ब्राह्मोको और बौद्धोको अपने ही धर्मके और सस्कृतिके स्वजन कहते हैं, अुसी तरह हमे अीसाअियोको, यहूदियोको, पारसियोको और मुसलमानोको भी अपने ही देशके और अपनी ही सस्कृतिके स्वजन मानना चाहिये।

और हिन्दू धर्मका तो यह सिद्धान्त ही है (और स्वभाव भी है) कि किसी भी धर्मके प्रति अनादर और अनास्था नही रखनी चाहिये। चद लोग अपनेको

आग्रहपूर्वक अलग मानते है अिसलिअे हम भी अुन्हे पराये मानें, यह स्वाभाविक होते हुअे भी अिष्ट नही है, हितकर नही है।

जब भारतमें विदेशी लोगोका राज्य था तब अुनके धर्मका स्वीकार करनेवाले हमारे लोग अपनेको श्रेष्ठ मानने लगे। सरकार दरबारमें अुनकी प्रतिष्ठा विशेष थी। लेकिन अब तो स्वराज्य और प्रजाराज्य हो चुका है। अैसी हालतमें किसी भी वर्गके अलग रहनेसे किसीको कोअी खास लाभ नही रहा। खास अधिकार तो सहानुभूतिके कारण पिछडे लोगोको ही दिये जाते है, और वे भी थोडे ही समयके लिअे हैं।

अब तो हमें भेदभावको न बढाते हुअे, अुसे मजबूत न करते हुअे राष्ट्रीय अेकताको ही मजबूत करना चाहिये। यह काम राजनैतिक ढगसे नही हो सकेगा। राजनीति किसीको धमकायेगी, दबायेगी अथवा घूस देकर खुशामद करेगी। अिससे राष्ट्रीय अेकता मजबूत नही होती। हमें तो वशभेद, भाषाभेद, धर्मभेद आदि समस्त भेदोको गौण बनाकर सब भेदोको हजम करनेवाली और सबसे अूची अुठनेवाली भारतीय सस्कृति ही राष्ट्रीय अेकताको मजबूत करेगी अैसा मानना है और हमारी सस्कृतिकी सर्वव्यापी, सर्वोदयी मानवताको परिपुष्ट करना है।

कहते है कि जब कोअी सकट आता है तब अुसका अिलाज न ढूढकर शुतुरमुर्ग पक्षी अपनी आखें मूद लेता है और मानता है कि सकट या कठिनाअी कही है ही नही। हम भी अैसा कहने लगे है धर्मभेदको ही भूल जाओ, फिर धर्मका अिलाज करना रहता ही नही। असल बात यह है कि धर्मके अच्छे अच्छे तत्त्व आजके जमानेमें गौण या गायब हो गये हैं, किन्तु धर्मोकी बुराअिया कही भी गायब नही हुअी हैं। मनुष्य अपने अपने धर्मका अभिमान और दूसरोके धर्मके प्रति अनादर, अविश्वास और परायापन छोडता ही नही। धर्मनिष्ठाके कारण अखिल भारतीय राष्ट्रनिष्ठा, भारत-निष्ठा (सब भारतीयोके प्रति अेकसी आत्मीयता) खतरेमें आ जाती है।

ये सब दोष और यह कमजोरी दूर करनी हो तो रशियाके ढगसे सब धर्मोके प्रति अेकसा तिरस्कार रखकर हमें अिसमें सफलता नही मिलेगी। केवल सख्याका बल आजमा कर अथवा परदेशी सहायताके आधार पर घरके लोगोको दबाकर हम भारतको मजबूत नही बना सकेंगे।

अिसका अेक ही अिलाज है। भारतमे जो भी धर्म आज प्रचलित है अुनका सहानुभूति और आदरके साथ हम अध्ययन करे। हरअेक धर्ममें जो अच्छाअिया है अुनको हम बढावा दें। सब धर्मोके लोगोके प्रति हम अपनी आत्मीयता बढाये।

अैसे सारे शुभ प्रयत्न प्रारभमें अिकतरफा ही हो सकते हैं। 'अगर तुम प्रेम करोगे तो मैं भी करूगा' अैसे बाजारू प्रतियोगी सहकारसे अिसका प्रारभ

भी नही हो सकेगा। जिस किसीके हृदयमें प्रेमधर्मकी आवश्यकता और महत्ता जुगे, वह स्वय अेकतरफा प्रयत्न करेगा ही। अिसका जवाब न मिला तो भी मायूस या निराश न होते हुअे वह अपने प्रेमका प्रवाह बहता ही रखेगा। प्रेमका सामर्थ्य, आत्मीयताका सामर्थ्य अवश्य जीतेगा। वह अमोघ होता है, अितना विश्वास जो रखेगा वही आस्तिक है।

केवल भारतके लिअे ही नही, परन्तु सारी दुनियाके लिअे आजका युगधर्म यही कहता है।

धर्म, समाज-रचना, सस्कृति और अध्यात्मके क्षेत्रमें भारतकी जीवन-व्यवस्थाका अितिहास कैसा है, आजकी हालत क्या है और भविष्यका स्थान किस दिशामें होना चाहिये — यह अेक विराट् और गभीर विषय है। अिसका व्यापक विवेचन तो यहा है नही, लेकिन अिस गभीर विषयका चिन्तन करनेमे कुछ न कुछ सहायक हो सके अैसा थोडा चिन्तन यहा प्रस्तुत किया गया है। आध्यात्मिक साधना, समाज-सेवा और विश्वहित-चिन्तनके परिपाक-रूप मेरी यह विचार-प्रणाली बनी हुअी है। भारतके हितके लिअे मुझे जो आवश्यक और हितकर लगा वही यहा देनेका मेरा प्रयास है। अिसलिअे पूर्ण भक्तिभावसे और नम्रतासे मैं देशवासियोके कर-कमलोमें यह अर्पण करता हू और आशा रखता हू कि पाठक अिसी पारमार्थिकतासे अिसका स्वीकार करेंगे।

काका कालेलकर

समन्वय-दिन
१०–७–’६७

जीवन-निष्ठ व्यवस्थाका स्वरूप

[मूल गुजराती पुस्तककी प्रस्तावनासे]

जिस मनुष्यको सच्चे अर्थमें जीवन जीना है, अुसे अपने और अपने आस-पासके लोगोके जीवनका तथा अुन्नतिका विचार करना ही चाहिये। हमारी भक्ति-का मुख्य विषय ही जीवन है। पुरुषार्थके लिअे हमारी पूजी भी हमारा अपना जीवन ही है। जिसे हम सेवा कहते है वह भी अपने जीवन द्वारा स्वजनोके जीवनको सुखी और समृद्ध बनानेका प्रयत्न ही होता है। जीवन-शुद्धि, जीवन-वृद्धि, जीवन-समृद्धि, जीवन-विकास तथा जीवनकी कृतार्थता ही हमारे चिन्तन और पुरुषार्थका विषय होता है। हमारे युगके महान कविने जो जो गाया है वह सब अुनके द्वारा की गअी जीवन-देवताकी अुपासना ही है, अैसा अुन्होने स्वय अनेक बार कहा है।

प्राचीन सस्कृतिकी भक्ति करनेवाले भारतके जीवन पर चढे हुअे जगको दूर करके अुसमें फिरसे जीवनका सचार करनेके लिअे गाधीजीने जो कुछ लिखा, अुसके लिअे भी अुन्होंने नवजीवन जैसा व्यापक नाम ही अपनाया था। वे भी अुन्नत जीवनके ही अुपासक थे। धर्म, राजनीति, समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था, स्वास्थ्य, साहित्य, सगीत, कला — ये सब जीवनके सस्कारके लिअे है। जब हम जीवन पूरा करके भगवानके सामने खडे रहेंगे अुस समय भी हमें अिसी प्रश्नका अुत्तर देना पडेगा "अपने जीवनका हमने क्या अुपयोग किया?"

अिस प्रकारके जीवन-परायण वातावरणमे रहकर समय समय पर लिखे गये मेरे लेखोको प्रकाशित करनेका निर्णय जब नवजीवन ट्रस्टने किया तब मुझे यह बात सुझाअी गअी कि यह अेक जीवन-माला है, अिसलिअे लेखोके प्रत्येक सग्रहके नामका जीवनके साथ कोअी सम्बन्ध होना चाहिये। यह बात मुझे पसन्द आअी और अिसीलिअे मैंने 'जीवन-व्यवस्था', 'जीवन-भारती', 'जीवनका आनन्द', 'जीवन-चिन्तन', 'जीवन-प्रदीप' आदि नाम अिन सग्रहोके स्वीकार किये। अैसे नामोमें अेकसेपनका दोष होता है, यह जानते हुअे भी मै मूल सकल्प पर दृढ रहा हू और धर्म-चिन्तन, धर्म-रहस्य, विविध धर्मों और अुनके लिअे स्थापित मदिरो तथा हमारे धर्मग्रन्थोके बारेमें लिखे गये अिन लेखोको 'जीवन-व्यवस्था' का व्यापक नाम देकर अिस सग्रहको जनताके समक्ष रखता हू।

अिस लेख-सग्रहमे मैंने जो धर्म-चिन्तन किया है वह हमारे ॠषि-मुनियो तथा सत-महात्माओके साहित्यके भक्तिनम्र किन्तु स्वतत्र अध्ययनसे ही अुत्पन्न हुआ है। वह प्राचीन साहित्य पढते पढते और अुसमे अेक पीढीसे दूसरी पीढीमे सस्कृतिका जो परम्परागत विकास होता गया अुसका चिन्तन करते करते

मुझे वर्तमान कालके हमारे पुरुषार्थकी दिशा प्राप्त हुअी और भविष्यकी भी थोडी-बहुत झाकी मिली।

परम्पराका अर्थ यह नही है कि केवल पुरानेकी ही रक्षा की जाय, अुसीसे चिपट कर रहा जाय और अुसीको बार-बार दोहराया जाय, परम्पराका अर्थ है पुरानी अिमारत पर नयी नयी मजिलें खडी करना और अुन नयी अूचाअियोसे दूर दूर तक देखनेकी सुविधा प्राप्त करना। परम्पराका अर्थ है सशोधन और परिवर्धनको स्वीकार करनेवाला अखड प्रवाह। मुझे जो शरीर मिला है और जो सस्कार मैंने विरासतमें प्राप्त किये है, अुनके लिअे मैं अपनी कुल-परम्पराका आभारी हू। यह कुल-परम्परा क्या है? मेरे कुलके जितने पूर्वजोने विवाह किया वे सब दूसरे ही अलग अलग कुलोकी लडकिया अुनके सस्कारोके साथ अपने घरमे लाये। अिस प्रकार अुन्होने भिन्न भिन्न कुलोके सस्कारोका समन्वय सिद्ध किया। अिस समन्वयमे नवीनताकी मात्रा काफी होती थी, अिसलिअे पूर्वजोने यह नियम बना लिया था कि विवाह करना हो तो अपने कुलमें न किया जाय, अपने गोत्रमे भी न किया जाय, अमुक अत्यन्त निकटके सम्बन्धोसे बचकर ही विवाह किया जाय। अिसमे अितना ही ध्यान रखा जाय कि (१) अपना रहन-सहन अर्थात् अपने सस्कार, (२) अपना आचरण अर्थात् अपने धन्धेसे सम्बन्धित समस्त पुरुषार्थ, और (३) अपनी विचारसरणी अर्थात् अपनी सस्कृतिकी जीवन-दृष्टि — अिन सबके अनुकूल किसी ढगसे ही पुरुषको स्त्रीका और स्त्रीको पुरुषका चुनाव करना चाहिये। (भोजनमे हम तरह तरहके अनाजो, दालो, साग-भाजियो, मसालो तथा अनेक अचार-मुरब्बोको अेकसाथ खाते हैं। परन्तु आयुर्वेद कहता है कि अिस मिश्रणमें 'विरुद्ध अशन' न होनेका खास ध्यान रखना चाहिये, वर्ना हिचकिया आती है, पेटमे वायु पैदा होती है और स्वास्थ्य बिगडता है।)

कुल-परम्परामे जिस प्रकार हम प्रत्येक विवाहके साथ दूसरे कुलके सस्कार आग्रहपूर्वक दाखिल करते है, अुसी प्रकार तीर्थयात्रा द्वारा हम विशाल सामाजिक जीवनकी विविधताको देखते है और अुसमें जो कुछ भी अच्छा मिलता है अुसे ग्रहण करते हैं तथा आत्मसात् कर लेते है। अिसके सिवा, पीढी दर पीढी अिन सस्कारोमें सशोधन और परिवर्धन तो होते ही रहते है।

हमारे पूर्वजोने मानव-स्वभावकी विशेषताओको देखा और रुचियोकी विचित्रताको स्वीकार करके अनेक प्रकारकी अुपासनायें बताअी। अिस प्रकार शैव, वैष्णव और शाक्त अुपासनाके तीन प्रकार जीवन-सस्कृतिके ही तीन प्रकार है। ज्ञान, कर्म और भक्ति ये जीवन-साधनाके अलग अलग प्रस्थान हैं। चार वर्ण जीवन-सिद्धि तथा समाज-सेवाके चार अग हैं। चार आश्रम जीवन-विकासकी चार मजिलें ह। अिन सबको मिलाकर विराट् जीवनका विकास होता है।

अैसी विविध व्यवस्थाके कारण जब जीवनमें अेकागिता आने लगी, तब हमारे सस्कृति-धुरीणोने हमें अिन सबका समन्वय करना सिखाया। पचायतन पूजामें सभी देवोकी पूजा अेकसाथ करनी होती है। अिसी परम्पराको यदि आगे बढाना हो तो हम कहेंगे कि हमारी प्रार्थना तभी पूरी होगी जब अुसमें हिन्दू सस्कृतिके सब अगोका समावेश तो हो ही, परन्तु अुनके साथ पारसी, यहूदी, अीसाअी और अिस्लामी अुपासनाको भी स्थान दिया जाय। परम्परामें पुराना जो कुछ टिकने योग्य हो अुसकी रक्षा करना और अुसे नया रूप देना होता है तथा अुसमें जो कुछ नया नया मिलाया जा सके अुसे जोडना और अेकरूप बनाना होता है। जिस प्रकार पौधा अुगकर वृक्ष बनता है, छोटे बालकका पुरुषार्थी योद्धाके रूपमें विकास होता है, अुसी प्रकार प्रत्येक समाज और प्रत्येक देशकी सस्कृति पुरानेमें परिवर्तन करके तथा नयेको आत्मसात् करके नवजीवन सिद्ध करती है।

साप जब अपनी केंचुली अुतारता है तब वह अपने शरीरके प्रति बेवफा नही होता। परन्तु जो कुछ जीर्ण हो गया है, जो कुछ प्रगतिमें बाधक सिद्ध हुआ है, अुतनेको ही पीछे छोडकर वह तेजीसे आगे बढ जाता है। अभी अभी केंचुली अुतार कर जवान बने हुअे सापको आपने कभी देखा है? कैसी अुसकी काति! कैसी अुसकी दीप्ति! और कैसी अुसकी स्फूर्ति होती है! कुछ देर पहले जिसकी आखें निस्तेज दिखाअी देती थी और बुढापेके कारण जो जैसे तैसे शरीरको घसीटता चलता था, वही साप अितने वेगसे दौडने लगता है मानो हवाका स्पर्श भी अुसे असह्य मालूम होता हो! अैसा दृश्य जब मैंने अपनी आखोसे देखा तब मैंने यह समझ लिया कि सस्कृति-निष्ठाका अर्थ केंचुली-निष्ठा नही है।

शैव, वैष्णव, शाक्त आदि अुपासनाओकी विविधताका विकास होनेके बाद हमारे देशमें बौद्ध और जैन जीवन-दृष्टियोका विकास हुआ। अिस पुरुषार्थने कुछ सदियो तक मानो सारे राष्ट्रको व्याप्त कर लिया। अिसमें भी बौद्ध धर्मके महायान सम्प्रदायने शाक्त और बौद्ध दृष्टियोको मिलाकर तरह तरहकी मिश्र अुपासनाओको जन्म दिया। अिससे जैनोको भी शक्ति-अुपासनाके साथ सम-झौता करनेकी जरूरत मालूम हुअी। हिन्दू समाजने निगम, आगम और तत्रोका मिश्रण कर दिया। लोकरुचिको सतुष्ट करनेके लिअे पागल बनकर हमने तरह तरहके न जाने कितने व्रतो, अुत्सवो और त्योहारोको जन्म दे डाला। हमारे देव-देवियोकी सख्या भारतकी लोकसख्यासे कम तो नही ही होगी!

विविधता हमें अितनी प्रिय है कि हम नया नया तो जोडते ही जाते है और पुराना कुछ छोडते नही। सापकी केंचुली तो क्या, मरा हुआ साप भी कामका है, अैसा मानकर अुसका सग्रह करनेमें हम विश्वास रखते है!

अुपासनाका यह सारा विस्तार आखिरमें सहन तो करना पडता था बेचारे भगवानको ही। अिसलिअे भगवानने घबरा कर हमारे यहा अिस्लामको भेजा — वह अिस्लाम जिसकी स्थापना ही तीन सौ साठ ताकोंमें से तीन सौ साठ देवी-देवताओंको नीचे गिराकर हुअी थी। अिस्लामकी मूर्ति-भजक अेकेश्वरी पूजासे प्रभावित होकर हमने सिक्ख पथ, ब्राह्म-समाज, प्रार्थना-समाज और आर्य-समाज जैसे समाजोंकी स्थापना की और अपने घरकी अेकेश्वरी पूजाको आगे बढाया। परन्तु भारतीय मानस अैसा है कि सुधारक हो या अुद्धारक — जो भी आये अुसे वह नमस्कार करता है और अुसके लिअे अेक नया ताक तैयार कर देता है। वह कहता है, "आपके लिअे भी हमारे यहा आदरका स्थान होगा। लेकिन आपको 'सबमें से अेक' बनकर रहना होगा।" 'सबके स्थान पर अेक' यह सूत्र हमारे यहा कभी चला ही नही, और आगे भी कभी चलेगा अैसा नही लगता। हमारी सस्कृति वृक्षरूपी सस्कृति है। अुसमें शाखाओं, प्रशाखाओं, डालियों और पत्तोंका विस्तार बढता ही रहेगा। अिसलिअे यदि हम समझदार हों तो सबको पोषण देनेवाले वृक्षके तनेका भी समय समय पर विचार करेंगे और यह तना बडा और विशाल बने अिसके लिअे हर बार कुदरती तौर पर फट जानेवाली अुसकी छालका भी विचार करेंगे; और जितनी शाखायें नअी फूटे और बढें अुन सबका हम स्वागत भी करेंगे।

हमारे मदिरोंका अर्थ है हमारे धार्मिक जीवनके विकासके लिअे तथा अुससे आनद प्राप्त करनेके लिअे खडी की गअी अेक समयकी जीवत सस्थायें। अुत्साह और अुत्सवको बढानेके लिअे स्थापित किये गये अिन मदिरोंमें भी दम घोटनेवाली रूढिनिष्ठाके कारण हमारा अुत्साह समा न सका। वह मदिरोंकी चारदीवारीसे बाहर निकल गया और अुसने नये नये रूप खोज निकाले। हमारे मदिरोंसे प्राप्त होनेवाला मुख्य बोध यही है कि धर्म, धर्म-विकास और धर्मानन्द मदिरोंकी चारदीवारीके भीतर समा नही सकता, कैद नही रह सकता। जीवनकी व्यवस्थाके साथ हमें अपने मदिरोंकी व्यवस्था भी बदलनी चाहिये। अेक ही मदिरमें अथवा अुसके प्रागणमें अनेक देवी-देवताओंको बैठानेकी हद तक तो हम गये ही है।

अभी अभी हमने अपनी प्रार्थनामें सब धर्मोंकी अुपासनाको स्थान दिया है। अुसके बादका कदम तो यही हो सकता है कि अपने अुत्सवोंमें हम सब धर्मके लोगोंको बुलायें और अुनके अुत्सवोंमें हम परायोंकी तरह नही परन्तु अुनके स्वजन बनकर सम्मिलित हों। हम अैसा कर सकेंगे, और भारतमें यह चीज खूब जमेगी।

जैसे जैसे जीवनका विकास होता जाय वैसे वैसे अुसकी व्यवस्था भी बदलनी चाहिये, विशाल और अुदार बननी चाहिये। अिस आदर्शको मनमें रखकर

ही मैं आरंभसे आज तक धर्मोंका चिन्तन करता आया हू। गाधीजीकी प्रवृत्ति मेरी अिस वृत्तिके अनुकूल थी, अिसीलिअे मैंने अुनका आमंत्रण स्वीकार कर लिया। आश्रम-जीवनमे मुझे अपने विकासके लिअे पूरा पूरा मौका मिला। वहा रहते हुअे मैंने देखा कि गाधीजी अेक अैसे पुरुष है, जो जरूरत पडने पर आश्रमको व्यापक बनानेके लिअे अुसकी दीवाले भी तोड सकते है। गाधीजीकी जीवन-निष्ठाने किसी भी समय व्यक्तिके या समाजके विकासको रोका नही। वे सदा भविष्यके अुपासक रहे। अुनकी अभिलाषा यह थी 'भूतकालकी विरासतको वर्तमान कालके पुरुषार्थमे अिस प्रकार बोया जाय कि भविष्य कालको समृद्धसे समृद्ध फसल मिले।' गाधीजीका धर्म भारतका भविष्य निर्माण करनेवाला धर्म है। वह धर्म नित्य वर्धमान धर्म है। अुसे प्रसगके अनुसार नअी नअी व्यवस्था सूझती है। वह जानता है कि व्यवस्थाको यदि समय समय पर बदला न जाय, तो जीवनमे अव्यवस्था ही बढेगी, और फिर तो सारा जीवन-विकास रुक जायगा। यह सच है कि व्यवस्थाके बिना जीवन टिक नही सकता, अुसका विकास नही हो सकता। किन्तु व्यवस्थाको सदा जीवनके प्रति वफादार रहकर समयोचित परिवर्तन स्वीकार करने चाहिये।

*

धर्म स्वभावत आदरणीय वस्तु है, अिसलिअे अुसके चिन्तनके प्रति भी लेखकके मनमे आदरका भाव होना चाहिये। अत आदर और नम्रता दोनोके मिश्रणके साथ अिस अवसर पर मैं 'जीवन-व्यवस्था' को पाठकोके हाथमें रखना चाहता हू।

आजके नये लोगोमे कभी कभी धर्मके प्रति अनास्था दिखाअी पडती है। परन्तु मैंने देखा है कि अुनकी जीवन-निष्ठा अिस अनास्थाको टिकने नही देती। अिसीलिअे मेरा यह विश्वास है कि नया जमाना भी अिस चिन्तनमें हाथ बटानेको तैयार होगा।

काका कालेलकर

गाधी सन्निधि, नअी दिल्ली,
गाधी जयती, १९६३

अनुक्रमणिका

तीसरा खण्ड : आस्तिक्य

चौथा खण्ड मन्दिर-भावना

पांचवां खण्ड हृदय-धर्म

जीवन-व्यवस्था

पहला खण्ड

धर्म और संस्कृति

१

भारतवर्षके धर्म*

कौन जाने किस तरह, किन्तु दुनियाके सभी धर्म हमारे देशमें आ पहुचे हैं और वे किसीको सुखसे रहने नही देते। अब अिन धर्मोका हम करेंगे क्या? — यह प्रश्न अनेक लोगोके मनमें समय समय पर अुठता रहता है। कुछ लोग कहते है कि जिस प्रकार अरबस्तानमें सिर्फ अिस्लामके अनुयायी ही रह सकते हैं, अमेरिकामें अग्रेजी भाषा ही चल सकती है, अुसी प्रकार यदि भारतमें धर्मके बारेमें हो सका होता तो कितना अच्छा होता? भारतमें अेकमात्र हिन्दू धर्म ही होता और दूसरे सब धर्मोको यहा रहनेकी मनाही कर दी गअी होती, तो कितना अच्छा होता? दूसरे कुछ लोग पूछते है कि धर्मकी बला ही क्यो रहनी चाहिये? सभी धर्म समान रूपसे फेक देने जैसे है। अिनमें से अेकको रखने और बाकी सबको निकाल देनेका क्या अर्थ है?

यह भी पूछा जा सकता है कि भिन्नधर्मी लोगोके बाहरसे आने पर आप शायद रोक लगा सकें, किन्तु सनातन कालसे अिसी देशमें रहनेवाले लोगोमे से कुछ यदि अपनी धार्मिक मान्यताको बदल डालें या बाहरके किसी धर्मको स्वीकार करें, तो आप अुन्हें कैसे रोक सकेंगे? मनुष्य पर जबरन् सत्ता भोगनेका अधिकार किसी धर्मको हो ही कैसे सकता है? अिस प्रकार हमारे देशमें धर्म-विषयक चर्चा चलती रहती है। कुछ अूघते रहनेवाले धर्मोके कान तक अभी यह चर्चा पहुची ही नही है। कुछ भाग्यवादी धर्म 'जो होना होगा वह होगा, हमारे हाथमें क्या है? हम तो पडे रहेंगे और जो होगा अुसे सहन करेंगे' अैसा कहकर जमुहाअी लेते रहते हैं। कुछ धर्म हक्के-बक्के होकर अपनी योग्यता और अपना अधिकार सिद्ध करनेके लिअे प्रमाण और दलीलें अेकत्र करते हैं, और कुछ धर्मोको लगता है कि 'राज्यसत्ताके बिना धर्म टिक ही नही सकता, अिसलिअे राज्यसत्ताकी शरण हमें लेनी ही पडेगी।'

अेक जमाना अैसा था जब धर्म सर्वोच्च सत्ता भोगते थे। राजाको गद्दीसे अुतार देनेकी सत्ता भी धर्माचार्योके हाथमें रहती थी। राज्याभिषेकके समय धर्मगुरु ही राजाको राजत्व प्रदान करता था। अिग्लैण्डके अेक राजाको अपना मुकुट पोपके चरणोमें रखकर अुसे साष्टाग प्रणाम करना पडा था। और रोमका पोप अपने शिष्य-राजाओके बीच सारी दुनियाका बटवारा कर सकता था।

---

* सवत् १९९३ के पर्युषण-पर्व पर बम्बअीमें दिया हुआ भाषण।

परन्तु आगे चलकर धर्मसस्थाकी यह प्रतिष्ठा नही रही। राजा सर्वोपरि बन गया और धर्म अतमे राजाका आश्रित हो गया। व्यक्तियोके जीवनमे भी धर्मकी सर्वोपरिता घट गओी और सत्ता तथा सपत्तिकी प्रतिष्ठा बढी।

धर्मका यह अध पतन किसलिओे हुआ ? कारण स्पष्ट है। धर्मोंने राज्य-व्यवस्थाका अनुसरण और अनुकरण किया, राज्यसस्थाको आदर्श मानकर धर्म-सस्थाका तत्र रचा और सत्ता तथा अधिकारकी परम्परा खडी की। यूरोपमे पोपकी जो सत्ता थी, अिस्लामी दुनियामे खलीफाकी जो सत्ता थी, वैसी सत्ता हमारे देशमे धर्माचार्यो, शकराचार्यो तथा राज-पुरोहितोकी कभी नही रही। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि हमारे यहा धर्मसस्थाने राज्यसस्थाका अनुकरण नही किया। जातियोका सगठन, गुरु-शिष्य-सम्बन्ध विषयक नियम, मदिरोकी व्यवस्था — अिन सबके पीछे राज्यतत्रके जैसी ही योजना है। नतीजा यह हुआ कि धर्मकी जडमें ही सडन पैठ गओी। लेकिन जिस समय राज्यसत्ताका अनुकरण शुरू हुआ अुस समय तो लोगोको यही लगता था कि अब धर्मकी विजय हुओी है, अब धर्मकी सच्ची स्थापना हुओी है।

परन्तु धर्माचार्योकी सत्ता बढी अुसी समयसे सच्चा धर्म क्षीण होने लगा और सच्ची धार्मिक प्रेरणा आचार्योके हाथसे निकल कर सतोके हाथमे चली गओी। भारतके सत अधिकतर तत्र-विमुख ही रहे, और जहा अुन्होने तंत्र खडा किया वहा राज्यतत्रके नमूने पर नही, परन्तु लोक-जीवनके अनुकूल ही तत्र रचा। यूरोपमें क्या और हमारे देशमे क्या, तत्र-विमुख सतोकी वजहसे जितना धर्म टिक सका अुतना ही टिका है।

अेक पुरानी कहावत है. 'अेक कबल पर बारह फकीर सो सकते हैं, लेकिन अेक बडे साम्राज्यमें दो बादशाहोका निर्वाह नही हो सकता।' जहा राज्यतत्रका अनुकरण किया जायगा वहा अेक स्थान पर अेक ही धर्म निभ सकता है। भारतमे सारी दुनियाके धर्म अिकट्ठे हो गये है, क्योकि भारत वास्तवमें बारह फकीरोका कबल है — आज अैसा न हो तो भी वह फकीरोका कबल बननेके लिओे ही पैदा किया गया है।

जो मनुष्य बाहरसे भारतको देखने आता है, अुसका पहला ही अुद्गार यह होता है 'भारत अेक विशाल धर्म-परिवार है।' यह बात सच है, परन्तु यह परिवार मिल-जुलकर रहनेवाला नही है। अधिकतर हिन्दू परिवारोमें जिस प्रकार भाओी-भाओी अेक-दूसरेसे अलग भी नही रहते और मिल-जुलकर भी नही रह पाते, हमेशा परस्पर झगडते रहते है, अुसी प्रकार भारतके धर्मोका है। शायद अैसा हो कि हिन्दू परिवारको जब हम सुधार सकेंगे और आपसमें प्रेम तथा आदरकी भावना रखकर मेल-जोलसे रहना सीखेंगे तभी धर्मोका प्रश्न भी हल

होगा, और आज जहा धर्मके क्षेत्रमें केवल कोलाहल ही सुनाअी पडता है वहा समन्वयका विश्व-समृद्ध सगीत गगन-मण्डलको भर देगा।

वात यह है कि राजा और अुनकी सरकारें मनुष्यके बाहरी जीवन पर ही अधिकार भोग सकते हैं, और अिसीलिअे वे दुनियावी तत्र खडा करके अुसके द्वारा अपना ध्येय सिद्ध कर सकते हैं, जब कि धर्मका प्रभाव मूलत आतरिक होता है। धर्म जानता है कि भीतरका प्रभाव अपने आप बाहर आये यही शुभ और वाछनीय है। राज्यसत्ताके वातावरणमें धर्मोंने जीवनकी अपेक्षा मान्यता पर अधिक भार दिया। मनुष्यका धार्मिक जीवन कैसा भी हो, यदि वह धार्मिक मान्यतासे सहमत हो तो अितना काफी है — अैसा वातावरण खडा करके हमने धार्मिकताका गला घोट दिया है। धर्मका रहस्य अुसके पालनमें, अुसके आचारमें और धर्म-परायण चित्तवृत्तिमे है। अिसके विपरीत, धार्मिक मान्यता धर्माभिमान और परमत-असहिष्णुताको जन्म देती है। धार्मिक जीवनसे धर्म-परायणता अुत्पन्न होती है और धर्म-परायणतासे ही सर्व-धर्म-समभावका विकास होता है।

धार्मिक मान्यताओमे सर्व-समानता वनाये रखनेके लिअे यूरोपमें जी-तोड प्रयत्न किये गये और भारी झगडे खडे किये गये। हमारे देशमें मान्यताओके विषयमें तो छूट थी, परन्तु आचार-धर्मके विषयमें सारे समाजको यात्रिक शिकजेमें पकड कर रखा जाता था। अिसके फलस्वरूप यहा बौद्धिक स्वतत्रताका तो विकास हुआ, किन्तु बुद्धिके अनुसार कर्म करनेकी छूट न होनेसे — विचारोके अनुसार आचरणका विकास न होनेसे — बुद्धिका तेज क्षीण हो गया और धर्माधर्म तथा द्वैताद्वैतकी चर्चा केवल 'डिवेटिंग क्लब' जैसी हो गअी। धर्म हमेशा पारमार्थिक (Serious) वस्तु होना चाहिये । जैसी मान्यता हो वैसा जीवन बन जाय तभी मनुष्यकी वुद्धि शुद्ध और शुभ रहती है और अुसका आचार मानवतापूर्ण, अविकृत और सस्कार-सपन्न बनता है।

'Live what you believe' — यही बडेसे बडा धर्मसूत्र और जीवन-सूत्र है। जैसा विश्वास हो वैसा ही आचरण रखो।

परन्तु धार्मिक आदर्श सर्वोच्च कोटि तक पहुचा हुआ होनेके कारण अुसके आचरणमें ढीले और दृढ लोगोके वर्ग तो पडेंगे ही — श्रावक और साधु, सन्यासी और गृहस्थ, श्रमण और श्रमणेतरके भेद अुत्पन्न होनेके बाद 'मान्यताओसे पूरी तरह चिपटे रहो और आचरणकी शिथिलताकी अुपेक्षा करो' का वातावरण पैदा हुअे बिना रह ही नही सकता। और अिसमें — अितनेमें — दोष नही पैदा होते। परतु अिग्लैंडमें प्रोटेस्टेन्ट व्यापारियोने अेक दूसरा सूत्र खोज निकाला । धर्म जीवनका केवल अेक अग है। धर्मके स्थान पर ही धर्म शोभा देता है। व्यवहारमें हर जगह हम धर्मको ले आयेंगे, तो व्यवहार भी विगडेगा और धर्म भी बिगडेगा, अैसा कहकर अिन लोगोने धर्मको जीवनकी सामान्य चीज बना डाला है।

अब लोग अितने गभीर भी नही रह गये है और धर्मकी कल्पना भी अितनी छिछली नही रही है। 'धर्मका अर्थ है जीवनका परिष्करण, जीवनका परिवर्तन'—अितनी बात लोगोने समझ ली है। अब यदि धार्मिकताकी रक्षा करनी हो तो धर्मोके बीचके झगडोको भूल जाना चाहिये और सारे धर्मोमे जो लोग सच्चे धर्मनिष्ठ है अुन्हें निरे सैद्धान्तिक भेदोको भूलकर तथा धर्मोमें रही हार्दिक अेकताको पहचानकर आपसमें सगठित होना चाहिये। हर धर्ममें धर्म-परायण लोग भी होते है और धर्माभिमानी लोग भी होते है। धर्म-परायण लोग धार्मिक जीवनमें गहरे अुतरते है, अपने आपको सुधारनेका सतत प्रयत्न करते हैं और अिस प्रकार अपनी धार्मिकताकी सुगध चारो तरफ फैलाते हैं। लेकिन आजके जमानेमें समाजका नेतृत्व करते हैं धर्माभिमानी लोग ही। अुन्हे धार्मिक आचरणकी बिलकुल परवाह नही होती। अुन्हे तो धर्मके नाम पर अेक दुनियावी सगठन ही खडा करना होता है। अैसे लोग ही अपने धर्मके अनुयायियोको अुत्तेजित करके धार्मिक झगडे शुरू करते है अथवा अुन्हें चलाते है।

और जब धर्म-धर्मके बीच अैसे झगड़े चलते है अुस समय धर्मशुद्धिका काम शिथिल पड ही जाता है। धर्म-सुधारक यदि आत्मशुद्धिके लिअे अपने समाजके दोषोको प्रकट करते है, तो 'शत्रुओके सामने हमारी पोल खुल जायगी' अिस भयसे अैसे सुधारकोकी आवाजको दबा दिया जाता है। जनताको यह बात समझानी चाहिये कि भिन्न-भिन्न धर्मोके लोग अेक-दूसरेके शत्रु नही हैं, सच्चे शत्रु तो अधर्मी अर्थात् धर्म-विरोधी लोग ही हैं।

अेक बात हमे स्पष्ट रूपसे समझ लेनी चाहिये कि आजके सामाजिक जीवनके लिअे प्रत्येक मनुष्यको सब धर्मोका ज्ञान—समभावपूर्वक प्राप्त किया हुआ थोडा-बहुत ज्ञान—अवश्य होना चाहिये। प्रत्येक मानवको अिस बातका ज्ञान होना चाहिये कि हरअेक धर्मकी मान्यतायें क्या है, अुसका समाजशास्त्र क्या है तथा अुसे कितनी जीवन-सिद्धि मिली है और किस ढगसे मिली है।

मैं अपना सब कुछ सभाल कर बैठा रहूगा, दूसरोसे मेरा क्या सबब? अैसा कहनेसे अब काम नही चलेगा। मैं सबकी बातको समझूगा, सबको अपनी बात समझाअूगा, सबकी बात सहन करूगा, सबको सहन करूगा और सबके साथ ओतप्रोत हो जाअूगा—यही अब धर्मका युगधर्म है। अब आगे सब मनुष्योको अेक-दूसरेका रग लगेगा और फिर भी प्रत्येक मनुष्य अपनी स्वतत्रताकी रक्षा करेगा।

अब हमें अेक अत्यत महत्त्वकी बात प्रचलित करनी होगी। आज तक हम यह मानते और कहते आये है कि 'प्रत्येक मनुष्यके लिअे अुसका अपना धर्म अच्छा है। सभी धर्म अच्छे है, अिसलिअे न तो कोअी अपने धर्मका त्याग करे और न दूसरोके धर्मकी निन्दा करे।' यहा तक तो सब ठीक ही है। लेकिन

अितनेसे ही अब हमारा काम नही चलेगा। स्वधर्मका सूत्र अब अेकागी लगता है। 'सब धर्मोके साथ परिचय वढाकर, अुन्हें पहचान कर, अुस व्यवस्थामें दिखाअी पडनेवाले अपने स्वधर्मका मैं पालन करूगा'—यही आजका पूर्ण धर्म है। सब धर्मोका अध्ययन करनेके वाद ही स्वधर्मका रहस्य पूर्णतया हमारी समझमें आयेगा और अैसा करके ही हम सबके साथ शाति और मेलजोलसे रह सकेंगे।

श्री शकराचार्यने अिस तत्वको समझ लिया था। अुन्होने देखा कि भारतमें असख्य देवी-देवताओकी पूजा होती है। भारतके लोगोकी शायद गिनती हो सकती है, लेकिन भारतके देवी-देवताओकी नही हो सकती। अिसलिअे अुन्होने पाच देवोको मुख्य मानकर वाकी सबको अिन पाच देवोके ही अवतार बना दिया। महादेव, विष्णु, गणपति, देवी और सूर्य अिन पाच देवोको अुन्होने हिन्दू धर्मके मुख्य देवोके रूपमे प्रस्तुत किया और कहा कि अिनमें से जो देव तुम्हारा अिष्ट हो अुसीकी पूजा करो, परन्तु अुसके आसपास बाकी चार देवोको अनिवार्य रूपसे रखना चाहिये, क्योकि अिनके साथ ही अिष्ट देवकी पूजा हो सकती है। पूजा जब भी की जाय तब पचायतनकी ही करनी चाहिये। अैसा करके श्री शकराचार्यने सब देवी-देवताओके सवधमें भक्तोके बीच चलनेवाले झगड़ोको खतम कर दिया। सभी धर्म अच्छे हैं, सब धर्मोके प्रति हमारा सद्भाव होना चाहिये, सब धर्मोकी अुपासना हमें समझ लेनी चाहिये—अुसमें किसी हद तक हम भाग भी ले सकते हैं, परन्तु दृढ तो हमें अपने धर्म पर ही रहना चाहिये। जब सभी धर्म सच्चे है तो धर्म-परिवर्तनके लिअे गुजाअिश ही नही रह जाती। सभी धर्म सच्चे है और सभी धर्म किसी हद तक अेकागी और अपूर्ण हैं, यह वात स्याद्वाद और सप्तभगी न्यायको समझनेवाले जैनोकी समझमें तुरन्त आ जानी चाहिये। सब धर्मोका ज्ञान होने पर ही स्वधर्मका रहस्य समझमें आता है। वास्तवमें जितने धर्म हैं अुतनी ही जीवन-पद्धतिया हैं। अिन सब पद्धतियो द्वारा मनुष्यको जीवनका दर्शन होना चाहिये। अिसीलिअे अिन सब धर्मोकी आवश्यकता है। कहा जाता है कि रामकृष्ण परमहसने अलग अलग समय पर अिन सब धर्मोकी साधना करके देख लिया और अुसके वाद वे अिसी निर्णय पर पहुचे कि ये सब मार्ग अेक ही प्राप्तव्य—लक्ष्य—की ओर ले जाते हैं।

अैसे साक्षात्कार, प्रत्यक्ष अनुभव, के लिअे वौद्धिक अहिसा यानी स्याद्वाद और तपकी आवश्यकता है।

प्रत्येक धर्मका आधार है आत्मा पर विश्वास। जिन लोगोका आत्मामें विश्वास नही है, अुन्हें गीताने आसुरी सपत्तिवाले कहा है। अिसलिअे सच पूछा जाय तो मनुष्य-जातिके दो ही विभाग किये जा सकते हैं. (१) दैवी सपत्तिवाले, और (२) आसुरी सपत्तिवाले। और अिन दोनोके वीच कोअी सम-

झौता हो ही नही सकता। प्रत्येक मनुष्यके हृदयमे कम या अधिक मात्रामें दैवी और आसुरी वृत्तिया होती है, अिसलिअे अिन दोनोके वीच सनातन सघर्ष चलता ही रहता है। अिस युद्धमे यदि हमारी जीत हुअी, तो समाजमे धर्मोके वीच चलनेवाला झगडा अपने आप शात हो जायगा।

प्रत्येक हृदयमें जव दैवी और आसुरी सपत्तिके वीच झगडा चलता है तव अनेक वार परवश वनी हुअी दैवी वृत्ति वाहरसे मददकी आशा रखती है। अिसीमे से औश्वर-शरणकी वृत्ति अुत्पन्न हुअी है। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज' अैसा जव भगवान श्रीकृष्णने कहा तव अुनकी नजरके सामने आर्य-धर्म, अिस्लाम, वौद्ध अथवा जैन धर्म, सिक्ख या औसाअी धर्म जैसे धर्म नहीं थे, ज्ञान, भक्ति, कर्म और अुपासना जैसे मार्गभेदोका भी अुन्होने कोअी सकेत नही किया था, किन्तु देशधर्म और कुलधर्म, जातिधर्म और वयोधर्म, गुणधर्म और शरीर-धर्म, कलाधर्म और आपद्-धर्म—अैसे अैसे अुस समयके चर्चित सकुचित और अेकागी धर्मोका विचार करके ही भगवानने अर्जुनसे कहा था कि अिन सव धर्मोको तू छोड दे, पूरी तरह छोड़ दे और अेकमात्र आत्मतत्त्वकी ही शरणमे जा। अुसके वाद ही स्वधर्म और स्वधर्मका रहस्य खुलेगा और अुसका मार्ग मिलेगा।

२

भारतीय संस्कृति

भारतीय सस्कृति केवल आर्य सस्कृति या केवल हिन्दू सस्कृति ही नही है। भारतीय सस्कृति केवल प्राचीन कालका ही खयाल नही करती। भारतीय सस्कृतिका केन्द्र है हिन्दुस्तान, किन्तु अुसका वर्तुल अथवा परिधि हिन्दुस्तानसे सीमित नही है।

भारतीय सस्कृति हिन्दुस्तानके अितिहाससे भी वडी है, क्योकि अितिहास केवल भूतकालका ही खयाल रखता है। सस्कृतिका सवध भूत, वर्तमान और भविष्यसे है। अितिहास अपना भविष्य नही जानता। सस्कृति अपने भविष्यके ध्रुवतारे पर निगाह रखकर चलती है।

हिन्दुस्तानमें अनेक धर्म हैं, अनेक भापाये हैं, अनेक देशोसे आकर वसे हुअे लोग हैं। सम्पत्ति, वुद्धिशक्ति, कौशल, अुदारता और शालीनता, हरअेक दृष्टिसे भिन्न-भिन्न कोटिके लोग यहा पर वसते है। तो भी हम कहते हैं कि हिन्दुस्तानकी संस्कृति अेक है, अखण्ड है और अविभाज्य है। वहुतसे लोग अिस चीजको नही समझ सकते कि भिन्न धर्मावलम्वी लोग भी अेक सस्कृतिमें कैसे आ सकते हैं।

अेक अुदाहरण लेकर हम अिस बातको स्पष्ट करेंगे। अीसा मसीह यहूदी थे। अुन्होने यहूदी मतमे कुछ दोष और अपूर्णता देखी। अुसे दूर करनेके लिअे अुन्होने अपना अुपदेश अपने शिष्योको दिया। अीसाके शिष्य अीसाअी हो गये, पर अुनका यहूदीपन मिट नही गया। अुसके बाद सेंट पॉल अीसाअी बन गये। वे यहूदी न थे, वे ग्रीक यवन थे। अुन्होने अीसाके अुपदेशको तो ग्रहण किया, किन्तु अुनकी सस्कृति ग्रीक थी। अुसमें अीसाका अुपदेश मिलाकर अुन्होने अपनी ग्रीक सस्कृति परिपुष्ट की। बादमे जो रोमन लोग अीसाअी हुअे वे धर्मसे तो अीसाअी हो गये, रोमन धर्म अुन्होने छोड दिया, किन्तु रोमन सस्कृतिसे वे परे न हो सके।

हिन्दुस्तानमें शक, हूण आदि बाहरके कितने ही लोग आ गये। अुन्होने न केवल यहाका धर्म ही अपनाया, किन्तु वे सस्कृतिसे भी अिसी देशके हो गये। हिन्दुस्तानके बाहर अुनके लिअे कोअी स्वदेश नही रहा। अगर वे वहासे कुछ सस्कृति लेकर आये तो अुसे पूरी तरह यहाके लोगोने अपनाया और यहाकी भली-बुरी सब बाते अुन लोगोने अपनायी और वे पूरे-पूरे यहाके हो गये।

जब मुसलमान अिस देशमें आये तो यहाके लोगोसे वे तुरन्त घुलमिल नही गये। अुनके गोमासाहारको यहाके लोग सहन न कर सके और यहाकी मूर्ति-पूजाको वे भी सहन न कर सके। जब और प्राणियोका मास खाया जाता है तब गायका मास खानेमें क्या हर्ज हो सकता है, यह अुनके ध्यानमें नही आ सका। भारतकी कृषि-प्रधान सस्कृतिमें गायका क्या महत्त्व है, यह किसीने भी अुन्हे नही बताया, और न कलाप्रिय भारतवासी मुसलमानोके मूर्ति-विरोधको समझ सके। अन्य देशोके जड लोगोने मूर्तिके नाम पर क्या क्या अनाचार चलाये थे, अिसका खयाल तक हमारे लोगोको न था।

किन्तु भारतीय सस्कृतिमे अेक बहुत बडी चीज थी, जो अन्य देशोमे बहुत कम पाअी जाती है। भारतके लोग पहलेसे यह मानते आये हैं कि अीश्वरके पास पहुचनेके मार्ग अनेक हैं। मनुष्य अज्ञानी है, यह कोअी अुसका गुनाह नही है। अीश्वर सर्वज्ञ है। वह हर मनुष्यके हृदयकी बात जानता हैं। अगर मनुष्यमें दुष्टता न हो तो अुसके अज्ञानको क्षमा तो अीश्वर पहलेसे ही कर देता है। अीश्वरके सामने छोटे और बडे, पडित और मुल्ला, विद्वान और जगली — सबके सब अज्ञानी ही हैं। अेकका अज्ञान काजलके जैसा होगा, तो दूसरेका अज्ञान कोयलेके समान होगा। अुनमें से किसे सजा करे और किसे माफी दे?

जो मुसलमान बाहरसे हिन्दुस्तानमे आये अुन्होने अिसी देशको अपना स्वदेश बनाया, अपनी स्वभाषा छोडकर यहाकी भाषाको ही स्वभाषा बनाया। बुल-बुलोके साथ कोयलका गाना सुनकर भी अुनका हृदय अुछलने लगा। तरबूजके प्रति जो भक्ति थी वह अुन्होने यहाके आमको अर्पण की। और वे हिन्दुस्तानी

वन गये। यह बात हुअी वाहरसे आये हुअे मुसलमानोकी। किन्तु आज हिन्दुस्तानमे जो मुसलमान है, अुनमें वाहरसे आये हुअे कितने हैं? फी सदी वीस भी नही होगे। बाकीके सब अनादि कालसे अिसी देशके रहनेवाले है। अुनके लिअे हिन्दुस्तानी वननेका सवाल ही नही था। वे कभी गैर-हिन्दुस्तानी थे ही नहीं। वे तो व्यास, वाल्मीकि, वुद्ध और शकराचार्यके ही वशज हैं। जिन भारतवासियोने किसी भी कारणसे अिस्लामका स्वीकार किया, अुन्होने कालिदास और भवभूति, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य, वाग्भट्ट और तानसेनकी अपनी विरासत छोडी नही है। मुसलमान होनेसे अुन्होने फारसी और अरबीको अपनाया जरूर, किन्तु वगाली और मराठी, तामिल और तेलगू आदि अपनी मातृभाषाओको अुन्होने छोड नही दिया। मातृभाषाका द्रोह करके किसीने अपना सामर्थ्य वढाया नही है, अपना अुद्धार नही किया है। सस्कृत भाषा जितनी ब्राह्मणोकी है अुतनी ही दूसरे सव वर्णोकी है। अितना ही नही, सस्कृत भाषा जितनी हिन्दुओकी है अुतनी ही हिन्दुस्तानके मुसलमान और अीसाअियोकी है। सस्कृतमें लिखे हुअे भव्य साहित्यका सत्कार हिन्दू, मुसलमान और अीसाअी तीनो समान भावसे कर सकते है। अगर कोअी अिस विरासतसे मुह मोड़ेंगे, तो वे अपनेको सस्कारकी दृष्टिसे दरिद्री ही वनायेंगे।

जिन लोगोने अिस्लाम या अीसाअी धर्मको स्वीकार किया है वे हिन्दू धर्मग्रथोको हिन्दुओकी तरह प्रमाण नही मान सकते, तो भी अुनके प्रति अुनके मनमें आदर-भाव अवश्य रहेगा। नया धर्म ग्रहण करनेसे वे अपनी विरासतको छोड नही देंगे। किन्तु अुसे अपनी नअी दृष्टिसे शुद्ध करके अपने नये धर्मके द्वारा समृद्ध ही करेंगे। भारतीय सस्कृतिकी चमक मिलनेसे अुनका धर्म अधिक तेजस्वी वन जायगा।

और जो लोग हिन्दू हैं वे भी अीसाअी और अिस्लामी धर्मग्रथोका प्रामाण्य न स्वीकारते हुअे भी अुनकी अिज्जत तो अवश्य करेंगे और अुनसे अुतना ही लाभ अुठायेंगे जितना वे अपने धर्मग्रथोसे अुठाते है।

ससारमें जितने सारे धर्म हैं, किन्तु अुन सव धर्मोका अेक विशाल धर्म-कुटुम्ब वनानेकी शक्ति भारतीय सस्कृतिमें ही है। भारतीय सस्कृतिने कवका कह दिया है कि मानव-कुलमें प्रचलित सव प्रधान धर्म सच्चे हैं। सभीकी प्रेरणा अीश्वरसे मिली है। और सवके सव मनुष्योके वीच प्रचलित होनेके कारण मनुष्योकी अपूर्णता भी अुनमे आ गअी है। गगा गगोत्रीसे निकली है, लेकिन वही ठहरी नही है। जव तक वह विशाल सागरमे विलीन न हो जाय तव तक अुसे आगे वढना ही है। अुसमें यमुना आकर मिलेगी, चर्मण्वती और शोण आकर मिलेगी, सरयू और गडकी भी आकर मिलेगी, और सागरमें पहुचते पहुचते हिमालयके अुस पारसे आनेवाली ब्रह्मपुत्राके साथ भी अुसका सगम हो जायगा। भारतीय

सस्कृतिकी भी अैसी ही बात है। वैदिक सस्कृतिसे अुसका अुद्गम हुआ होगा। अुसके पहलेकी बात हम नही जानते, किन्तु अुसमे दुनिया भरकी सस्कृतियोने अपना-अपना कर-भार डाल दिया है। भारतीय सस्कृतिमें अिस्लामी और अीसाअी सस्कृति मिल गअी है। अिसलिअे हिन्दुस्तानके अिस्लामकी खूबी अरबस्तान, अीरान या मिस्रके अिस्लामसे कुछ अलग होगी, कुछ अधिक होगी। भारतका अीसाअी धर्म अिटली, फ्रास, जर्मनी, अिंग्लैंड और रूसके अीसाअी धर्मसे कुछ अलग सुगध बतायेगा। अीसाअी धर्मकी खूबी जब हिन्दुस्तानके अीसाअी लोग बताने लगेंगे, तो अीसाअी धर्ममें अेक नअी ही समृद्धि आ जायगी।

और, अिस्लाम तथा अीसाअी धर्मके हिन्दुस्तानमे आनेसे हिन्दू धर्मकी खूबी भी अधिक अच्छी तरहसे स्पष्ट होने लगी है। सूफी मत और कबीर मत, ब्राह्म-समाज और आगाखानी सम्प्रदाय, सबमे हम भारतीय सस्कृतिकी समन्वय-कारी शक्ति देख सकते हैं।

और जो लोग अीश्वरको नही मानते, किसी भी धर्मके प्रति आदर रखना पसन्द नही करते, किसी शास्त्रको नही मानते, बुद्धिसे श्रेष्ठ किसी भी चीजको स्वीकार नही करते, वे भी भारतीय सस्कृतिसे बहिष्कृत नही हैं। अुनकी भी परम्परा अिस देशमें प्राचीन कालसे चली आअी है।

नदीमें रोज नया पानी आता रहता है। अेक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें वह बहती है, तो भी अुसका रग, रूप, व्यक्तित्व और सौदर्य अक्षुण्ण रहता है। सस्कृतिकी भी यही बात है। भारतीय सस्कृतिमें दुनिया भरकी सब सस्कृतियोका असर दीख पडता है, लेकिन वह भारतीय ही रही है। भारतीय शब्दमें आर्य प्रारभका सूचन अवश्य है, किन्तु वैदिक या महाभारत कालसे वह सीमित नही हो सकती। कअी लोग भारतीय शब्द पर आपत्ति अुठाते हैं। वे भारतीय सस्कृतिका स्वभाव ही नही जानते। भारतीय सस्कृति एक जीवित चैतन्यमय और वर्द्धमान सस्कृति है। मानवताका अन्तिम कल्याण ही अुसका आदर्श है। भारत-वर्ष अुसका केन्द्र है, मध्यबिन्दु है, और अुसका कार्यक्षेत्र अखिल विश्व है।

मअी, १९३९

३

धर्मोका धर्म*

[सर्व-धर्म-परिषद्]

सर्व-धर्म-परिपद्के विचारको भारतमें प्रस्तुत करनेका श्रेय स्वामी विवेकानन्दको मिलना चाहिये। अुन्हींने जगतको यह समझाया कि जिस सर्व-धर्म-परिषद्में हिन्दू धर्मका समान साझेदारके रूपमें प्रतिनिधित्व न हो, वह परिषद् अधूरी ही मानी जायगी। सन् १८९३ में भारतके शिक्षित वर्गको यह लगा कि जगतमें हिन्दू धर्मकी श्रेष्ठता सिद्ध हुअी है। और अुस दिनसे स्वामी विवेकानन्दका नाम हमारे लिअे अेक घरेलू शब्द बन गया। मैं अुस समय छोटा था, परन्तु अिस समाचारकी चर्चा करनेवाले अपने बडे भाअियोके ज्वलत अुत्साह और हिन्दू धर्मके भविष्यके विषयमे अुनकी असख्य आशाओका आज भी मुझे पूरा स्मरण है। कुछ ही समयमें स्वामी विवेकानन्दके भापणोका अनुवाद मेरी मातृभापा मराठीमे हो गया और लोग अुन भापणोको बडी अुत्सुकतासे पढने लगे। केवल विषयकी दृष्टिसे तो वेदातका ज्ञान रखनेवाले वर्गके लिअे अुन भाषणोमे नया कुछ नही था, परन्तु अुनका अेक अेक शब्द प्राणसे परिपूर्ण और आशा तथा आत्म-विश्वाससे भरा हुआ था। अुन भाषणोमें स्वामीजीने हिन्दू धर्मको जिस तरह प्रस्तुत किया था अुसकी अपूर्वता अुनके अर्वाचीन दृष्टिकोणमे तथा आधुनिक युगके सामाजिक और शैक्षणिक प्रश्न हल करनेके लिअे अुनके द्वारा किये गये वेदान्तके सिद्धान्तोके अुपयोगमें निहित थी। जैसे जैसे मै अुमरमे वढता गया वैसे वैसे मेरी दृष्टिमे अुनके अुपदेशोका महत्त्व वढता गया और मैं स्वामीजीको भारतीय सस्कृतिके चरमोत्कर्पके रूपमें मानने लगा।

कुछ वर्ष वाद स्वामीजी द्वारा 'मेरे गुरु' के नामसे गुरु महाराज रामकृष्ण परमहसको अर्पित श्रद्धाजलि मेरे हाथमें अचानक आअी। अुसका मुझ पर अद्भुत प्रभाव पडा। अुस छोटेसे जीवन-चरित्रके द्वारा स्वामीजीने मुझे आध्यात्मिक जीवनकी वास्तविकता और महत्तामे श्रद्धा रखनेवाला वना दिया। मै समझ ही नही पाया कि अग्रेजी और सस्कृत भापाके ज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ अेक निरक्षर व्यक्ति स्वामी विवेकानद जैसे दार्शनिक और तेजस्वी प्रज्ञावाले मनुष्यमें शिष्यभाव कैसे प्रेरित कर सका होगा। लेकिन मुझे तो पहलेसे ही स्वामीजीने मत्र-

---

* ता० ३–३–'३७ को कलकत्तेमें हुअी सर्व-धर्म-परिपद् (पार्लमेन्ट ऑफ रिलीजन्स) के अवसर पर दिये गये अग्रेजी भापण 'The task before religions' का अनुवाद।

मुग्ध कर लिया था, वे जो कुछ लिखते अुस पर मैं आतरिक श्रद्धा रखता था। अुस सक्षिप्त जीवन-चरित्रने मेरे मानसिक दृष्टिकोणमे क्राति अुत्पन्न कर दी। कॉलेज-जीवनके आरभके फलस्वरूप मुझे जो सशय-वृत्ति और तर्कवृत्ति प्राप्त हुअी थी, अुसमें भारी खलबली मच गअी, और आध्यात्मिक जीवनके जिस दर्शनको मै बहुत दिनोसे खो बैठा था वह मुझे फिरसे प्राप्त हो गया। मैं यह कहू तो अतिशयोक्ति नही होगी कि अिस जीवन-चरित्रका पठन मेरे लिअे नया जन्म सिद्ध हुआ।

मैंने यह समझा कि भारतकी सच्ची आवश्यकता तो अेक अैसे शिक्षा-शास्त्री और समाजशास्त्रीकी थी, जो वेदातके मूर्तिमत प्राचीन ध्येयके समान अेक सच्चे धार्मिक पुरुषके जीवत अनुभवोका लोगोको नये सिरेसे अर्थ कर दिखाये। विवेकानन्दको लगा कि यदि मुझे भारतके लोगोको अपनी बात सुनानी हो, तो पहले सुदूर अमेरिकाकी अुच्च भूमि पर मुझे पहुचना चाहिये। अिसलिअे जगतके धर्मोंकी परिषद्में हिन्दू धर्मका स्वय-नियुक्त प्रतिनिधि बनकर अुन्होंने अपना यह अधिकार प्राप्त किया।

आज मै अिस सर्व-धर्म-परिषद्मे रामकृष्ण और विवेकानदकी अभिन्न मूर्तिको अपनी भक्ति अर्पण करने आया हू, और यह लिखते लिखते ही त्रिमूर्तिके अेक तीसरे अगके रूपमें मुझे भगिनी निवेदिताका स्मरण होता है। अुनकी 'Web of Indian life' नामक पुस्तकने, 'The Master as I saw him' नामक काव्यचित्रमें अुनके द्वारा चित्रित अद्भुत जीवन-रेखाने, 'The Footfalls of Indian History' नामक निबन्धने तथा अन्य विविध निबन्धोने मेरे लिअे युनिवर्सिटी शिक्षणका काम किया है, नही, मुझे कहना चाहिये कि भगिनी निवेदिताकी पुस्तकें और निबन्ध मेरे युनिवर्सिटी शिक्षणके दोषोको सुधारनेवाले सिद्ध हुअे हैं। रामकृष्ण, विवेकानन्द और निवेदिताको मिलाकर अेक अखण्ड प्रवाह बनता है। वे पृथ्वी पर आध्यात्मिकताके अवतार जैसे हैं, विशाल वटवृक्ष-के रूपमें अेक ही बीजके अुद्भव और विस्तार हैं।

यहा मेरी स्मृति रामकृष्ण-परिवारके दूसरे सदस्योकी ओर पीछे लौटती है। सन् १९११ में जब मैं अिस परिवारकी यात्राके लिअे कलकत्ता आया था तब मै श्री श्रीमा, मास्टर महाशय, स्वामी ब्रह्मानद तथा रामकृष्ण-मिशनका सचालन करनेवाले स्वामीजी महाराजके अन्य गुरुबन्धुओके भाग्यशाली मण्डलसे मिला था। वहा सबसे पहले जिन सन्यासीसे मेरी भेंट हुअी वे थे स्वामी प्रेमानन्द। अुस समय वे बेलूर मठके अध्यक्ष थे। वे सच्चे भक्त और मूक सेवक थे। वे अग्रेजी बहुत कम जानते थे, हिन्दी शायद बिलकुल नही जानते थे। अुनसे किसी प्रश्नका अुत्तर पाना बहुत कठिन था। जब मैंने गुरु महाराजके बारेमें अुनसे पूछा तो वे केवल ध्यानकी दशामें पहुच गये और मूक बन गये। किन्तु

अुनकी सजल आखोंने ही वाणीसे कही अधिक असरकारक अुत्तर मुझे अपने प्रश्नका दे दिया। अेक दूसरे मौके पर मैंने वनारसमें अुन्हें वगलामें भाषण करते सुना था। निष्ठा और भक्ति पर यह अुनका अेक तेजस्वी, प्राणवान भापण था।

अुस समय और अुसके वाद मैंने ब्रह्मानन्द, तुरीयानन्द, शिवानन्द, कल्याणानन्द और निश्चयानन्द स्वामियोसे जो ज्ञान प्राप्त किया, अुसका विस्तृत वर्णन करनेका यह स्थान नही है। स्वामी शारदानन्दके तो मैंने केवल दर्शन ही किये थे। रामकृष्ण-मिशन अपनी अुपयोगिता और सेवामें प्रगति करे, अिसके लिअे ये सव लगन और निष्ठावाले सन्यासी प्राणपणसे प्रयत्न करते रहते थे। परन्तु मेरा सवसे अधिक परिचय तो मास्टर महाशयके साथ था। अुन्होने मुझ पर गुरुकी विवेक-दृष्टिसे युक्त पिताका वात्सल्य खूव वरसाया था।

वादकी जवान पीढीमे से स्वामी पूर्णानद और माधवानद तो हिमालयकी तलहटीके निवास-कालमें मेरे पडोसी ही थे। अिसलिअे आज मैं अिस सस्थामें अेक वाहरी व्यक्तिकी तरह नही आया हूं। गृहस्थ दशामें रहे हुअे आपके अेक वन्धुके नाते मुझमे अधूरापन जरूर है, फिर भी आप मुझे यह कहनेकी अिजाजत दीजिये कि मैं आपके अपने ही आदमीके रूपमें यहा आया हू।

*

आज किस चीजने यहा अेक स्थान पर हमें अेकत्र किया है? मुझे लगता है कि वह चीज है विश्वके पीछे रही हुअी सव कुछ सहन करनेवाली प्रेम-शक्तिकी वास्तविकताका अनुभव करनेके लिअे यथासभव सव प्रकारकी साधनाओमें निर्भयतासे विचरनेवाले अेक आध्यात्मिक कोलवसके अनुभवकी सत्यता, तीव्रता और सर्व-सग्राहिता। आध्यात्मिक क्षेत्रमे प्रयोग करनेवाले रामकृष्ण जैसे महान प्रयोग-वीरके सामने न्यूटन, फेराडे, अेडिंग्टन, जीन्स और रमण अित्यादि तो केवल वालकोकी तरह हैं। आध्यात्मिक प्रयोग-वीरोको स्वय अपने पर प्रयोग करने पडते हैं, सशय और निराशाका समय विताना पडता है, और अपने लक्ष्य पर पहुचनेके वाद भी अुन्हें अपने प्राप्त परिणामोकी यथार्थताका वार-वार निश्चय करते रहना पडता है। रामकृष्ण अुन ब्रह्मज्ञानियोकी अखण्ड पक्तिमें प्रथम कोटिके तारे थे, जिन्होने भारतको अुसकी आजकी प्रतिष्ठाके अुच्च स्थान पर स्थापित किया है। रामकृष्ण परमहसकी साधनाकी विशेषता अिस वातमें थी कि अुन्होने विभिन्न धर्मों द्वारा वताअी हुअी साधनाअें अपने जीवनमें की थी, जिससे प्रत्येक मार्गके अतिम रहस्यको वे स्वय अनुभवसे पा सकें। अिसी कारणसे वे दृढ विश्वासके साथ कह सकते थे कि सव धर्म हमें अेक ही स्थान पर पहुचाते हैं। यह वस्तु अुनके लिअे तर्कका विपय नही थी, अुन्होने अिसका प्रत्यक्ष अनुभव किया था। अिसीलिअे रामकृष्ण अिस युगके मार्गदर्शक वन गये हैं। अुनके अुस

अनुभवको बौद्धिक भूमिका पर यत्किंचित् अभिव्यक्ति देनेका प्रयत्न आज हम यहा कर रहे हैं।

रामकृष्ण परमहसने भारतके सब मुख्य धर्मोंका सच्चा अध्ययन करनेकी आवश्यकताको प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाया है। ससारकी विविध प्रजायें यदि आपसकी गलतफहमियोको दूर करनेका और सुमेल साधकर जीनेका कोअी मार्ग नही निकालेंगी, तो अुनके बीचका झगडा लगभग अनिवार्य बनता जायगा। अिस तरहकी परिषदें केवल बौद्धिक क्षेत्रमें ही कार्य करना छोड दे, तो वे यह काम पूरा कर सकती है। धर्म अनुभवकी चीज है। अुसे प्रेम और श्रद्धासे ही प्राप्त किया जा सकता है। व्यावहारिक आदर्शवाद ही सारी प्रजाओके बीच तथा अुनके द्वारा विकसित किये हुअे जीवन-मार्गोंके बीच मेल साधनेका मार्ग दिखा सकता है।

सब धर्मोंका तथा अुनके बताये हुअे जागतिक प्रश्नोका अध्ययन अब केवल सस्कृतिके विद्वान अभ्यासियोका विलास ही नही रहा है। वह अब अधिकाधिक सुसगठित सामाजिक जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताका रूप लेता जा रहा है। अितनी सावधानी अवश्य रखी जानी चाहिये कि यह अध्ययन मानसिक गगन-विहार न बन जाय। अुसे जीवन-स्पर्शी बनना चाहिये और प्रश्नोके अुचित हल प्राप्त करनेके लिअे प्रयोग भी करने चाहिये। लोग सेवाकी ही भावनासे अेक स्थान पर अेकत्र हो सकते है और हृदयका मेल साध सकते है। बुद्धि अधिकसे अधिक आपसमें अुनकी समझको बढा सकती है अथवा पहलेसे ही अुनके बीच यदि सद्‌भाव हो तो किसी हद तक अुसे सहारा दे सकती है। परन्तु हृदयोको अेकसाथ बाधनेवाली और हम सबको अेक मानव-जातिमे अेकत्र करनेवाली शक्ति तो सेवा ही हो सकती है। स्वार्थत्याग तथा स्वार्पणकी सीमा तक जा सकनेवाली सेवा ही वह शक्ति है, जो सर्वत्र सुमेल स्थापित कर सकती है और हम सबका अेक परिवार बना सकती है। अलग अलग सगठन अिस क्रियामे किसी हद तक सहायक तो हो सकते है, परन्तु सगठन आत्माका साधन नही है। पृथ्वीके सभी सगठन पार्थिव है, और इस तरह वे आध्यात्मिक विकासमें अनेक बार विघ्न-कारक सिद्ध होते है। बहुत बार तो जो परिणाम सिद्ध करना अुन सगठनोके स्वभावमे ही नही होता अुन परिणामोकी आशा अुनसे रखकर हम अुनकी अुपयोगिताको नष्ट कर देते है। सच्चे सेवक अेक-दूसरेको स्वभावत ही पहचान सकते है और स्वय स्वतत्र रहकर ही अेक-दूसरेकी मदद करते है। हमें सब धर्मोका अेक व्यवस्थित फेडरेशन (सघ) नही बनाना है, परन्तु अेक ही क्षेत्रमें काम करती आत्माओका सहज और स्वतत्र सहयोग प्राप्त करना है। जगतके महान धर्म आज जो अेक-दूसरेके प्रतिस्पर्धी बन गये हैं अुसका कारण अुनके सिद्धान्तोमें रहनेवाले भेद नही है, परन्तु वह बडा सगठन है जो प्रत्येक धर्मके

पीछे रहकर अुसका नियत्रण करता है। अिस दु खद स्थितिसे हम सव भली-भाति परिचित है।

आज सगठन और स्वोत्कर्षका सिद्धान्त कानून और जवरदस्तीके सिद्धान्तका वफादार मित्र वन गया है। अुससे केवल अधी और दु खपूर्ण मानव-प्रवृत्तिका क्षेत्र वढानेमें ही मदद मिलती है। सख्यावल, सगठनकी विशालता और सत्ताके केन्द्रीकरणने न्याय और भलाअीके स्वाभाविक सामर्थ्यमें रही मनुष्योकी श्रद्धाको नष्ट कर दिया है। आज मानव-जाति सख्या, सगठन और केन्द्रित सत्ताके तीन जीवत देवताओको ही अपनी भक्ति अर्पण कर रही है। अेक ओर प्रचलित धर्म आपसमें लडते रहते है, जव कि दूसरी ओर वे लज्जाजनक ढगसे अिस युगकी अुपरोक्त त्रिमूर्तिके ही वश होते जा रहे है।

हमारे जीवनमें देखी जानेवाली अेक छोटीसी घटना मैं आपके सामने रखू तो आप मुझे क्षमा करेंगे। लकामे केन्डीना विहारके अेक वौद्ध साधुके साथ मै वौद्ध धर्मके सिद्धान्तोकी चर्चा कर रहा था। वह साधु अपनी विद्वत्ता और धर्मनिष्ठाके लिअे प्रसिद्ध था। वौद्ध धर्मके प्रति मेरा पक्षपात अुसे वहुत अच्छा लगा। अुसने मुझसे सीधा प्रश्न किया "तो फिर तुम वौद्ध क्यो नही वने?" अुसकी सरलताको देखकर मुझे खुशी हुअी। अिसलिअे मैंने विनोदमें अुससे पूछा: "मै यदि 'वुद्ध' और 'धर्म' को स्वीकार करू और 'सघ' को स्वीकार करनेसे अिनकार कर दू, तो आप मुझे वौद्ध दीक्षा देगे?"

साधुने कहा "यह असभव है।" मेरे प्रस्तावको मान ले अैसा शास्त्र-विमुख, लोभी और नास्तिक वह नही था। अुसने तुरन्त अनेक शास्त्र-वचन अुद्धृत करके कहा कि यदि तीनो रत्नोको अेकसाथ स्वीकार न किया जाय, तो निर्वाण सभव नही हो सकता।

मैं सम्प्रदाय जैसे सगठनकी अुपयोगिताकी अुपेक्षा नही करता। सम्प्रदाय लोगोमे अैसा अनुशासन स्थापित कर सकता है, जिसके द्वारा कोअी भी सिद्धान्त जीवत धर्मका रूप ले लेता है। परन्तु सम्प्रदायको वृक्षकी छालकी तरह रहना चाहिये, जो वृक्षके भीतरके गर्भकी रक्षा करती है। अितना ही नही, वृक्षका पूरा विकास हो अिसके लिअे छाल प्रत्येक शीतऋतुमे स्वय फट जाती है, लेकिन वृक्षके विकासको नही रोकती। परन्तु दुर्भाग्यसे मनुष्यके सगठन कुछ समय वाद अुसीकी आत्माको रूधनेवाले वन जाते है, जीवन-रसके स्वतत्र अुन्मुक्त प्रवाहको रोकनेवाले वन जाते है।

*

मुझे हमेशा यह लगा है कि सत्का विरोधी असत् नही, किन्तु सत्ता है। असत्को हमेशा सत्के सामने झुकते रहना पडता है, क्योकि अुसका सारा वल सत्के ही ढगसे प्राप्त होता है। सत्का सच्चा विरोधी तत्त्व सत्ता है, जो सत्की

रक्षा करने अथवा अुसका आचरण करनेमे प्रवृत्त होते समय भी सत्का गला घोटने, अुसे लज्जित करने या निर्वल बनानेका ही काम करती है। ससारके धर्मोंने मध्ययुगकी राज्यसत्ताओके नमूने पर अपना सगठन जमानेका प्रयत्न किया और अैसा मान लिया कि सत्यके पीछे यदि सत्ताका वल हो तो अुसका जल्दी प्रचार हो सकता है। मैं नही मानता कि नास्तिकता भी अिससे अधिक वुराअी अथवा अधिक हानि कर सकती है। जिस प्रकार अीश्वरकी और धन-दौलतकी अेकसाथ पूजा नही की जा सकती, अुसी प्रकार सत्य और सत्ताकी भी अेकसाथ पूजा नही की जा सकती। हा, सत्ताका वल सत्यका ही आतरिक वल हो तो बात अलग है। अिसलिअे धर्मोंने अपने आसपास सत्ताकी जो दृष्टि और विचारसरणी खडी कर दी है, अुससे बाहर निकलनेका प्रयत्न अुन्हें करना ही चाहिये। अहिंसा सत्यका ही अेक विशिष्ट पहलू है। खूब गहराअीमें अुतर कर हम जाच करें तो पता चलेगा कि सब धर्मोंका रहस्य सत्य तथा अहिंसाके प्रति अनन्य भक्तिमें ही निहित है। जैसा कि आयरिश कवि 'अे० अी०'ने अुपयुक्त शव्दोमें कहा है, सत्य स्वय ही अपना अुचित बल है।

सव धर्मोंके बीच चलनेवाले तमाम झगडोकी जडमें अिस महान सत्यका अस्वीकार ही है। सारे धर्म अपने सत्यसे विमुख होकर अैसा मानने लगे हैं कि अुनका सगठन, अुनका सख्यावल, थोडेमें कहा जाय तो अुनकी सत्ता ही वास्तवमें अुनका सत्य है। वर्ना अपने सम्प्रदायके लोगोकी सख्या वढानेके लिअे अितनी अुत्सुकता कैसे हो सकती है? अथवा बडे बडे समुदायोमें लोगोका धर्म-परिवर्तन करनेका अहकारपूर्ण दावा कैसे सभव हो सकता है? सच्चेसे सच्चा अेकमात्र धर्म-परिवर्तन तो असत्यसे सत्यमें, अधकारसे प्रकाशमें, बुराअीसे भलाअीमें और अन्यायसे न्यायमें ही हो सकता है। और अैसा धर्म-परिवर्तन जगतके सभी धर्मोंके अनुयायियोमें होना अभी बाकी है।

प्रत्येक धर्मके दो अग होते हैं अेक, अुसके सिद्धान्त अर्थात् सत्य, दूसरा, अुसकी आचार-विधि अर्थात् साधना। और हिन्दू धर्मकी यह बलिहारी है कि अुसने अिस वातको पहलेसे ही समझ लिया था। अुसने यह भी समझ लिया था कि अिन दो अगोमें से केवल आचार-विधिको ही तत्रवद्ध किया जा सकता है, सिद्धान्तोसे सम्बन्धित भागको नही। अिसलिअे हिन्दू धर्मने मनुष्यके विचारो, कल्पनाओ और ध्येयोको पूर्णतया मुक्त रहने दिया। अिसी कारणसे हमें हिन्दू धर्ममें अूचेसे अूचा वेदान्त-दर्शन तथा विविध दर्शनोकी समृद्धि देखनेको मिलती है। किन्तु केवल वौद्धिक शोध हमें कभी सन्तुष्ट नही कर सकती। अिसलिअे हमने जीवनके प्रयोग किये और अिसके फलस्वरूप अपने अपने निश्चित जीवन-मार्ग तथा अचल आचार-विधियोवाले असख्य सप्रदाय खडे हुअे। ये आचार-विधियां ही मनुष्यकी साम्प्रदायिक मान्यताओको वास्तविक रूप प्रदान करती हैं। परंतु

वादमें हमारे लोगोकी बुद्धिशक्ति और प्राणशक्ति पर कोअी विचित्र निष्क्रियता छा गअी और अुन्होने धर्मके सिद्धान्तोमें परिवर्तन हो जाने पर भी अपनी आचार-विधियोमे परिवर्तन करना छोड़ दिया। कदाचित् सत्ताने सत्यको पद-भ्रष्ट कर दिया और साथ ही धर्मको भी सत्त्वभ्रष्ट कर दिया।

परम तत्त्वकी कल्पनाके विषयमें अद्वैती और द्वैतीमें अुत्तर और दक्षिण ध्रुवोके जितना अतर है। परन्तु आप यदि अुनके जीवनकी जाच करें, तो अुनके आचारमे आपको कोअी अतर नही मालूम होगा। द्वैती कदाचित् अद्वैती बन जाय तो भी अुसके अनुसार जीवनके प्रति अुसके दृष्टिबिन्दुमें अथवा अुसकी आचार-विचारकी विधियोमें कोअी परिवर्तन नही होगा। हमारे तत्त्वज्ञानियोने जीवनमें व्यावहारिक और पारमार्थिक पक्षका सुविधापूर्ण भेद खोज निकाला है। अिसलिअे जब स्वामी विवेकानन्दके समक्ष पडित लोग अपनी अकर्तव्यशीलताके बचावमें यह भेद रखते, तो स्वामीजी अपना धीरज खो बैठते थे और खूब चिढ़ जाते थे।

प्रत्येक दर्शनकी अपने अनुरूप अेक स्मृति होनी चाहिये। परन्तु जैनोके पास अुनकी अहिंसा और अनेकान्त-वादके अनुरूप कोअी स्मृति नही मिलती। अुनकी 'अर्हन्नीति' अेक साधारण कोटिकी पुस्तक है। वेदान्तियोने निष्ठुरतासे अेक तर्क-शुद्ध स्मृतिकी रचना कर डाली, किन्तु अुसके अनुसार जीवन जीनेकी जिम्मेदारी यतियो अथवा सन्यासियोके लिअे सुरक्षित कर दी। अद्वैतवादको स्वीकार करने-वाले गृहस्थी वेदान्तीने अपनी जीवन-पद्धतिमें जरा भी परिवर्तन नही किया। अिस कारणसे दर्शनोकी सपूर्ण चर्चा चर्चा-परिषद्के निरे वाद-विवादका रूप ले लेती है।

प्राचीन कालके भाष्यकारोने विभिन्न दर्शनोकी तर्कशुद्धता तथा अुनमें निहित सैद्धान्तिक मान्यताओकी अेकवाक्यता प्रकट कर दिखाअी है। परन्तु अब विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तो तथा विविध साम्प्रदायिक मान्यताओंसे फलित होनेवाले सामाजिक आचार बतानेका समय अर्वाचीन विचारकोके लिअे कभीका पक चुका है। अिस नूतन दृष्टिसे यदि हमारे आस्तिक और नास्तिक दर्शनोका अभ्यास किया जाय, तो अुनमें से अेक नया और अुपयोगी अर्थ प्रकट होगा और हमारा समाज पुनर्जीवन प्राप्त करेगा।

जैन और सिक्ख धर्मके साथ हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, जरतुश्ती धर्म, यहूदी धर्म, अीसाअी धर्म तथा अिस्लामका और दूसरे सब धर्मोका यदि सामाजिक दृष्टि-कोणसे अध्ययन किया जाय, तो आज जो प्रश्न मानव-समाजको परेशान कर रहे हैं अुनका हल जरूर मिल सकता है।

ये प्रश्न कौनसे हैं?

मैं धर्म-परिवर्तनके प्रश्नका अिससे पहले अुल्लेख कर ही चुका हू; परन्तु वह धर्म-परिवर्तन अेक धर्मसे दूसरे धर्मका नही बल्कि असत्से सत्का, अन्यायसे न्यायका है। अैसा धर्म-परिवर्तन क्या हमने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक

क्षेत्रमें किया है? अिन सब क्षेत्रोमें आज जो बखेडा मचा हुआ है, अुसका कारण अिन क्षेत्रोमे न्यायवृत्तिका सर्वथा अभाव है। यह वचन औसा मसीहका कहा माना जाता है कि 'राजाका जो है वह राजाको दो, और औश्वरका जो है वह औश्वरको दो।' अेक हिन्दू शास्त्र-वचन तो सीधा ही कह देता है कि राज्य चलानेके बाद राजाको नरकमें ही जाना पडता है। जो मनुष्य राजा बनकर दूसरोके जीवनको नियन्त्रित करनेका प्रयत्न करता है, वह नरकमे जाता है, सत्ताके बल पर भरी गअी राजाकी तिजोरीमे से दानके रूपमें प्राप्त किया हुआ सारा धन अपवित्र है। कोअी भी धर्मातमा पुरुष अुसे स्वीकार करने पर भ्रष्ट हुअे विना नही रहता।

तो फिर जगतकी आर्थिक परिस्थितिके विषयमें अिस सर्व-धर्म-परिषद्का क्या निर्णय है?

जगतके महान शातिस्थापक आन्दोलन सब प्रकारके युद्धोका आज भी विरोध कर रहे हैं, लेकिन अुसका कोअी असर नही होता। दूसरी ओर सब देशोमें विनाशक शस्त्रास्त्र और साधन-सामग्री तेजीसे बढाअी जा रही है। यह सर्व-धर्म-परिषद् अपनी आवाजको असरकारक भले ही न बना सके, परन्तु अिसे अितना तो घोषित करना ही चाहिये कि युद्ध आजकी शोषण-पद्धतिके रूपमें सारे ससारमें फैले हुअे रोगका ही समय समय पर होनेवाला आक्रमण है, और यह रोग स्वय नैतिक जीवन-स्तरको हानि पहुचा कर सिद्ध किये जानेवाले महगे भौतिक जीवनका परिणाम है। हमें यह घोषणा करनी चाहिये कि औश्वर और मनुष्यमें श्रद्धा रखनेवाले लोग अिन दोनो जीवन-स्तरोकी नये सिरेसे जाच करे। आज समाज-में सर्वत्र रूढ बने हुअे शील-सदाचार, अव्यभिचार तथा समाज-हितके आदर्शोंको चुनौती दी जाती हैं। प्राचीन व्यवस्थाका बचाव यदि हम आप्त-वचनोसे या शास्त्रोके तदनुकूल अर्थ निकाल कर करने जायेंगे, तो आज अिससे हमारा काम नही चल सकेगा। आज हमें सामाजिक आदर्शोंकी नअी व्याख्या करके धार्मिक आदर्शोंको लोगोके मनमें सजीव करना होगा। अिस कार्यमें भी सगठित विचार और सगठित सकल्प अवश्य हमारी सहायता कर सकते हैं। काम-वासना, जो विवाहका और अिसलिअे सामाजिक जीवनका मुख्य आधार है, भावनाओके चक्रका अेक बलवान अग है, साथ ही वह आध्यात्मिक शक्ति अुत्पन्न करनेका विशेष साधन भी बन सकती है। अिसका आजकी तरह भौतिक दृष्टिविन्दुसे नही किन्तु आध्यात्मिक दृष्टिबिन्दुसे अध्ययन करना चाहिये और अुसके विपयमें जिम्मेदारीसे प्रयोग किये जाने चाहिये। आजके भौतिक और गैर-जिम्मेदार रवैयेके प्रति हम अुदासीन नही रह सकते।

जगतके विविध धर्मोंके अिस प्रकार अेक स्थान पर अेकत्र होनेका दूसरा परिणाम यह आना चाहिये कि लगभग सभी धर्मोमें — यहा तक कि गूढता-

रहित होनेका दावा करनेवाले विज्ञानके धर्ममे भी — अतिमता तथा सत्यके ठेकेदार होनेकी जो भावना बनी हुअी है अुसमें परिवर्तन हो। अिस परिषद्के प्रयत्नोके फलस्वरूप सभी धर्मोंमें अुदारताकी भावना व्याप्त होनी चाहिये — जिस प्रकार धर्मशास्त्रके कारण कानूनकी पद्धतिया अुदार बनी है। यह कार्य अीसाअी पादरियो पर अथवा बुद्धिवादी मडलो पर ही न छोड दिया जाय।

धार्मिक जीवनकी कल्पनाके विषयमें भी हमारी परिषद् यदि अेक कदम आगे बढा सके, तो कितना अच्छा हो? धीरजसे मनुष्य-जातिकी सेवा करने-वाले लाखो पालित पशु भी अिस महान परिषद्के निर्णयोकी ओर आशासे कान लगाये बैठे है, अैसी मैं कल्पना कर सकता हू। यदि धर्मका अर्थ प्रेम, दयालुता और कृतज्ञता, बधुभाव तथा सब प्राणियोके प्रति — जिनके अन्यो-न्याश्रयसे समग्र जीवन बनता है — कुटुम्ब-भाव होता हो, तो जिन पालित पशुओने हमारे जीवनको अितना सुरक्षित और सरल बनाया है अुनके प्रति हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिये, यह घोषित करनेका समय भी क्या आ नही गया है? गायका, जिसे महात्मा गाधीने करुणाका काव्य कहा है, सब देशोके धार्मिक मनुष्योसे सहानुभूति मागनेका विशेष अधिकार है। वह मानव-जातिकी दूसरी माता है। अुसे सरक्षण देना और अुमर पूरी हो जाने पर अुसे शातिसे मरने देना — यह मनुष्यके लिअे क्या बहुत कठिन है? यह निर्विवाद है कि अन्नका प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण है। जमीन तथा पानीकी अुपजका अुपयोग प्रतिदिन बढनेवाली मानवकी भूखको शात करनेमें किया जाता है। रासायनिक खाद्य-पदार्थोंकी खोज भी की जा रही है। धरतीकी सतह परसे भुखमरीको दूर करनेमें मानव-जाति लगभग सफल हो गअी है। अैसी स्थितिमें क्या अब हमें मानव-परिवारका अेक अग बने हुअे प्राणीको — गायको — सुरक्षित बनानेका काम हाथमें नही लेना चाहिये? गाय माता न्याय और दयाकी अपनी अरजी यदि सब देशोके धार्मिक पुरुषोकी अिस परिषद्के सामने पेश न करे तो और कहा करे?

लेकिन केवल बेचारी गायकी ही बात क्यो की जाय? हम गुलामोकी मुक्तिकी बातें करते हैं, किन्तु क्या गुलामोको सचमुच मुक्त किया गया है? गुलामीकी प्रथाके रूपमें शायद गुलामीका अत हुआ होगा, लेकिन सामाजिक और आर्थिक शोषण तो सर्वत्र चल ही रहा है। और शोषित मनुष्य यदि गुलाम नही है तो और क्या है? अेक तथाकथित अीसाअी राष्ट्रने दूसरे अीसाअी राष्ट्र पर स्वार्थ, शोषण और साम्राज्यके लिअे सीधा आक्रमण किया, लेकिन राष्ट्र-सघ अुसे रोक नही सका। क्या धर्मका सघ अैसे युद्धोको रोक सकेगा?

धर्मवीरोके लिअे, जो स्वार्थत्याग और स्वार्पणमें ही आनद मानते हैं, तो अुनका अन्तर-नाद ही मार्गदर्शक होता है।

अिन सब प्रश्नोका अेकमात्र हल समाजवाद है। आज समाजवाद भविष्यका धर्म बन जानेकी तैयारी कर रहा है। जगतके प्रचलित धर्मोंका रुख अिस नयी शक्ति और नये आदर्शके प्रति कैसा होगा? मुझे तो लगता है कि हम अवश्य ही समाजवादको अपना सकते है और समाजवादको धार्मिक पद्धतिसे प्रस्थापित करनेका अपना स्वतत्र मार्ग विकसित कर सकते है। जिसे वैज्ञानिक समाजवाद कहा जाता है अुसने अैसी अपरिपक्व विचार-पद्धति और वर्ग-विग्रहकी अैसी निष्ठुर कार्य-पद्धति खडी कर ली है, जो अतमें भयकर सिद्ध हो सकती है। वह सब धर्मोंके लिअे अेक बडी चुनौती है। यदि सभी धर्म समाजवादको साहसके साथ स्वीकार करके जीवनको नया मार्ग नही दिखायेंगे, तो अुन सबको सग्रह-स्थानके सामाजिक विभागमे प्राचीन अवशेषोकी दशासे ही सतोष मानना पडेगा। प्राचीन आदर्श तो विद्यमान है, अितना ही नही, आजकी आवश्यकताओके लिअे जितना आवश्यक है अुससे अधिक वह पर्याप्त है। परन्तु अुसके पीछेका प्राचीन अुत्साह — अगर वह कभी था — अब नही रह गया है, और धार्मिक पुरुषोने गरीबोकी असहाय और निराशापूर्ण स्थितिकी परवाह करना भी छोड दिया है। सद्भावनाकी निरी बातें, अन्योन्य प्रशसा तथा धर्म-विषयक सैद्धान्तिक या दार्शनिक चर्चायें अपने आपमें चाहे जितनी अच्छी हो, परन्तु धर्मोंकी परिषद्के लिअे अितना कार्यक्रम कभी पर्याप्त नही कहा जा सकता।

प्रत्येक धर्ममें प्राचीन शास्त्रोका नये ढगसे अर्थ करनेका प्रयत्न किया जाता है। अिस कारण प्रत्येक धर्म धीरे-धीरे अर्थ और व्याख्याकी अपनी नअी पद्धतिया विकसित करता जाता है। परन्तु शास्त्रवाक्योकी व्याख्या पर तथा शास्त्र-वाक्योके अर्थ पर ही आधार रखनेके बदले हमें मानवशास्त्र, समाजविद्या, कला तथा विकासवादकी और अिन सबसे अधिक आध्यात्मिक अनुभवकी सहायता स्वीकार करनी चाहिये और आजके धर्मोंके सिद्धान्तो तथा आचार-विधियो पर प्रकाश डालना चाहिये।

*

जब हम 'धर्मों' जैसे बहुवचनका प्रयोग करते हैं तब हिन्दू धर्म, अिस्लाम, अीसाअी धर्म आदि प्रचलित धर्मोंका ही विचार करते है। परन्तु अिन प्रचलित धर्मोंके आवरणके नीचे बिलकुल अलग बुनियादो पर सर्वथा नये धर्मोंका विकास होता जा रहा है। मानवताका धर्म जीवनके सभी प्रश्नोका सतोषकारक हल प्रस्तुत करनेका दावा करनेवाली अेक सपूर्ण योजना है। कला अेक दूसरा धर्म है, जो जीवनमें सगति — सुमेल स्थापित करने तथा मानव-विकासके प्रश्नोका निराकरण प्रस्तुत करनेका दावा करती है। कानून शायद आधुनिक युगका सबसे अधिक लोकप्रिय और शक्तिशाली धर्म है। मनुष्यको विरासतमें जो दुख मिले हैं और जो दुख अुसने स्वय अपने लिअे अुत्पन्न किये है, अुन सबका अिलाज

अुचित कानूनो द्वारा करनेकी वात सोची जाती है। रोज नये वननेवाले कानूनो द्वारा मनुष्यके सपूर्ण जीवनको नियत्रित करनेकी अिच्छा रखी जाती है। मनुष्यसे सम्वन्धित किसी भी वात या हरअेक वातके लिअे धारासभा ही प्रत्येक देशमें अेक वडी सत्ता वन वैठी है। हम प्रतिदिन कानूनोकी निष्फलताका अनुभव करते हैं, फिर भी अपनी सर्वोत्तम शक्ति हम कानूनकी पद्धतिका विकास करने और अुसे नियत्रणमें लानेमे खर्च करते हैं।

हममें यह मान्यता दृढ होती जाती है कि अधविश्वास अव शीघ्रतासे नष्ट होते जा रहे हैं। परन्तु हम नये अधविश्वासोको स्थान देनेके लिअे ही पुराने अधविश्वासोको दूर करनेमें सफल होते हैं और अधविश्वासोका साम्राज्य हमेशाकी तरह विजयी ही सिद्ध होता है।

मेरी अपनी अेकमात्र आशा तो शिक्षा-धर्मके क्रमिक प्रचार और प्रसारमें निहित है। परन्तु यह शिक्षा कोअी शिक्षा-विभागके मत्रियोके हाथमें रहनेवाली शिक्षा नही है, मेरा आशय अुस शिक्षासे है जिसे अधिक अच्छे जीवनका — आध्यात्मिक जीवनका — सदेश देनेवाले थोडेसे पैगम्वरोने फैलाया है। यह शिक्षा वैयक्तिक और सामाजिक तथा राष्ट्रीय और आतर-राष्ट्रीय — अिस प्रकार समग्र मनुष्यको शिक्षित करनेका अिरादा रखती है।

अिस दृष्टिकोणसे यदि देखें तो ज्ञान, भक्ति और कर्म ये आत्मोन्नतिके वैकल्पिक मार्ग नही हैं, परन्तु आत्म-विकासके हमारे साधनारूपी रत्नके अलग अलग पहलू ही हैं।

'सत्य और अहिंसामें निष्ठा' ये कोअी वौद्धिक सिद्धान्त नही हैं। ये तो मनुष्य-जातिके जाने हुअे अमोघ आचार हैं। ये सब प्रकारके धार्मिक जीवन और आचारोकी कसौटी करनेवाले हैं। और व्यक्ति तथा समुदायके जीवनमें अिन आचारोको अुतारनेका अेकमात्र साधन शिक्षा ही है।

अैसा लगता है कि मनुष्य-जाति धर्म-भावनाको पुनरुज्जीवित करनेके लिअे नअी शिक्षा और नअी अिन्द्रियकी प्रतीक्षा कर रही है। प्राचीन लोग वलशाली साहजिक वृत्तियो तथा विजलीकी तरह चमक अुठनेवाले स्फुरणोके युगकी छायामें रहते थे। वे तीव्र ध्यानके द्वारा अनतके रहस्यमें गोते लगानेका प्रयत्न करते थे। अैसी ध्यानशक्ति अुत्साहपूर्ण प्रारभिक कालका लक्षण होती है। अुन लोगोने किसी गूढ रीतिसे अत स्फुरणकी अिन्द्रिय प्राप्त कर ली थी, जिसे हम लोग खो वैठे हैं। सॉक्रेटीस, जरतुश्त, वुद्ध और अुपनिषद्-कालके वादके ऋषियोके समयसे मनुष्य-जातिने तर्क-प्रधान युगमें प्रवेश किया है। अैसा कहा जा सकता है कि अिस युगके पीछे पीछे अेक ओर सगठनका जमाना आया और दूसरी ओर कलात्मक आविष्कारका जमाना आया। अुसके वाद विकासवादके सिद्धान्तका प्रचार हुआ और अुसने हमें अैतिहासिक दृष्टिकोण प्रदान किया, जिससे प्राचीन लोग वहुत

परिचित नही थे। कलात्मक दृष्टि और आतर-राष्ट्रीय दृष्टिकोण — ये आजकी मानव-जातिके मुख्य लक्षण हैं। धर्मोंको यदि फूलना-फलना हो और मानव-जातिको नया जीवन प्रदान करना हो, तो अुन्हें अिस जमानेके रुझान और प्रवाहको समझकर जीवनका नया मार्ग दिखाना चाहिये। अिस बातको अस्वीकार नही किया जा सकता कि आजके अधिकाश मानव-समुदायमें, और मुख्यत. अुसका मार्गदर्शन करनेकी अिच्छा रखनेवाले शिक्षितोमें, धर्मका महत्त्व बहुत घट गया है। ससारके धर्म बहुत लम्बे समय तक अपनी नाव चलाना बद करके निष्क्रिय बैठे रहे हैं, अिसीलिअे आज अुन्हें मालूम होता जा रहा है कि अुनके पास कीमती माल होने पर भी प्रवाहमें आगे बढनेके बजाय वे पीछे हटते जा रहे हैं। अिस बीच मनुष्य-जातिने विज्ञान, राजनीति और प्रचुर धन-दौलतको ही अपनी प्रवृत्तिका मुख्य क्षेत्र बना लिया है। अिसलिअे अब तो धर्म मनुष्य-जातिकी अिन मुख्य प्रवृत्तियोको अर्थ प्रदान करे, अिनके बीच सुमेल स्थापित करें और अिन्हें अपने नियत्रणमें ला सकें, तो ही अुन्हें अपना मुख्य स्थान फिरसे प्राप्त हो सकता है।

४

सार्वभौम जीवन-दर्शन*

१

दर्शन-परिषद्के अध्यक्ष-पद पर अपने आपको देखकर मुझे जितना आश्चर्य होता है अुतना आप लोगोको भी शायद नही होता होगा। कॉलेज छोडनेके बाद न तो मैंने अिस विषयका अधिक अभ्यास किया है, न मैंने अिस विषयमे कोअी साहित्य लिखा है। जो मनुष्य जीवनके अलग अलग अगोका महत्त्व समझता है, अुसके अभ्यास और चिंतनमें दर्शनशास्त्र भी आ ही जाता है। अिस तरह मेरा भी दर्शनशास्त्रसे सबध रहा है। परतु यहा मै अपनी योग्यता या अयोग्यताकी चर्चा करना जरूरी नही मानता। अध्यक्ष दो प्रकारके होते हैं कुछ अग्रमान्य होते हैं, तो कुछ भीड-भजक होते है। मैं मानता हू कि यहा मैं दूसरे प्रकारका अध्यक्ष हू। और अिसलिअे मैं अपना कर्तव्य अितना ही मानता हू कि परिस्थिति-प्राप्त कर्तव्यको अपना धर्म समझ कर अुसके सामने सिर झुकाअू और यथाशक्ति अुसे पूरा करू।

---

* सितम्बर १९३८ में शिमलामें हुअे हिन्दी साहित्य सम्मेलनके दर्शन-विभागके अध्यक्ष-पदसे दिया गया भाषण।

अभी अभी मेरा सबध तीन साहित्य-परिषदोसे जुडा है. हिन्दी, मराठी और गुजराती साहित्य-परिषद् । प्रत्येक मुख्य परिषद्‌के साथ अैसी विभागीय परिषद्‌का भी आयोजन किया जाता है। अिन परिषदोके लिअे सामान्य लोगोमें जितना अुत्साह होता है अुसे देखकर मैंने अिन परिषदोका नाम अभागी परिषद् रख दिया है। कुछ स्थानोसे तो अैसी परिषदें बद कर देनेका सुझाव भी आया है। परतु मैं अिस सुझावको पसन्द नही करता।

अिस सम्बन्धमें मेरा आदर्श यह है कि प्रत्येक विभागकी परिषद् हो जानेके बाद अुसका अेक अलग मत्री नियुक्त किया जाय। वह मत्री हिन्दी भाषामें अुस विषयके साहित्यकी पूरे वर्षमें कैसी और कितनी प्रगति हुअी है, अुस विषयमें क्या क्या लिखा गया है तथा अुस विषय पर अन्य प्रान्तोमें और विदेशोमें कैसी मौलिक कृतिया प्रकाशित हुअी हैं, अिसकी अेक ब्योरेवार सूची तैयार करे और अुसे दूसरे वर्षकी परिषद्‌के समक्ष रखे।

विज्ञान, दर्शन, अितिहास, साहित्य, समाजशास्त्र, नृवशशास्त्र (Anthropology), राजनीति आदि विषयोमें जिन लोगोकी दिलचस्पी है अुन पुराने और नये साहित्यसेवकोका अलग अलग सगठन करनेके लिअे विभिन्न परिषदोके अैसे कुछ विशेष सदस्य बनाये जाय, जिनसे कोअी फीस न ली जाय — अुन्हें सदस्य बनानेके लिअे किसी गण्य-मान्य व्यक्तिकी सिफारिश ही पर्याप्त मानी जाय। मत्री अैसे सदस्योके साथ सम्बन्ध स्थापित करे और यदि अुन सदस्योसे वह कुछ लिखवा सके तो लिखवा कर समेलन-पत्रिकामें प्रकाशित करे।

अिन सब विभागोके मत्रियोका मडल समेलन-पत्रिकाका सपादक-मडल बने।

अिस प्रकार यदि कार्य किया जाय तो राष्ट्रभाषा हिन्दीके सभी अगोकी अुन्नति होगी, परीक्षा-विभागका काम भी परिपुष्ट होगा और 'प्रचारको अधिक महत्त्व दिया जाय या साहित्यको?' जैसे आत्मघाती प्रश्न भी अपने आप शात हो जायगे। जो विभाग मद गतिसे चलता हो अुसे विशेष प्रोत्साहन देकर आगे बढाया जाय।

जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन अिस प्रकार हिन्दी साहित्यके अग-प्रत्यगकी रक्षा करेगा, तब वह 'लिटररी ऑर्गेनाअिज़र' अथवा इजीनियर बन जायगा। ('ऑर्गेनाअिज़र को हम हिन्दी या गुजरातीमें क्या कहेगे — व्यास या पूषा?)

२

मेरे आदर्शके अनुसार यदि अिस परिषद्‌का आयोजन किया गया होता, तो भीडसे बचनेकी दृष्टिसे भी मैं अिस स्थानको कभी स्वीकार न करता। परतु हमारे समेलनकी अभी आरभिक दशा है, अिसलिअे मेरे कुछ विचार और सुझाव हिन्दी-भाषी जनताके समक्ष रखनेका मुझे जो अवसर मिला है, अुसका लाभ अुठानेकी दृष्टिसे ही मैं अिस स्थान पर खडा रहनेकी धृष्टता करता हू।

दर्शनशास्त्रका गहरा अभ्यास न करनेके कारण ही शायद दर्शन-सबधी मेरी कल्पना कुछ अलग हो गअी है। मै नही जानता कि विद्वान दार्शनिक अुसे कहा तक स्वीकार करेंगे। परतु अिस विषयमें यदि थोडी भी चर्चा होगी, तो अुससे मुझे सतोष होगा, यह भी सभव है कि अुससे मेरे दर्शन-सबधी ज्ञानमें थोडा सुधार अथवा वृद्धि हो।

दर्शन शब्द आया कहासे ? अिसके स्थान पर तत्त्वज्ञान-शास्त्र अथवा तत्त्व-विज्ञान क्यो नही कहा गया ? आर्ष वचन है कि 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य. श्रोतव्य मन्तव्य निदिध्यासितव्य ।'

अुपनिषद्के अिस वचनमें आत्मज्ञानकी जो साधना बताअी गअी है, अुसके आरभिक विभागको (द्रष्टव्य विभागको) ही दर्शन कहा जाता है।

आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिअे जो तत्त्व-चिन्तन किया जाता है, अुसीको दर्शन कहा जाता है। तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिअे जो शास्त्र-विचार होता है, वही दर्शन है। नैयायिकोके मतानुसार बारह तत्त्व अथवा प्रमेय है, जिनका तात्त्विक ज्ञान होना आवश्यक माना जाता है। वह ज्ञान अुन्नतिकारक और समस्त ग्रथियोका छेदन करनेवाला है। हम अिन बारह तत्त्वोको ही दर्शनशास्त्रके मुख्य विषय मानें — आत्मा, शरीर, अिन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दु ख और अपवर्ग । अिनमें से द्रव्य-गुण-कर्मरूपी 'अर्थ' बाह्य सृष्टिसे सबध रखता है। बाकी शरीरसे आत्मा तथा अपवर्ग तकके सभी तत्त्व मनुष्य-जीवनसे सम्बन्ध रखते है।

प्राचीन कालमें दर्शनके दो मुख्य भाग किये गये थे आस्तिक और नास्तिक। अिस भेदको समझ लेना ठीक होगा। आज तो जो लोग अीश्वर और धर्म पर (और शायद रूढि पर) श्रद्धा रखते है अथवा श्रद्धा होनेकी बात कहते है, वे आस्तिक कहे जाते है। और जो लोग अीश्वर तथा धर्मके प्रति अविश्वास प्रकट करते है, वे नास्तिक कहे जाते है। लेकिन अिन शब्दोका मूल अर्थ अैसा नही था। वेदो तथा वैदिक शास्त्रो पर विश्वास न होना ही नास्तिकताका लक्षण माना जाता था । जो मनुष्य अीश्वरमें तो विश्वास रखता था, परन्तु वेदोमें विश्वास नही रखता था, अुसे भी नास्तिक ही कहा जाता था। अिसके विपरीत, जिस मनुष्यका वेदोमें विश्वास होता वह यदि अीश्वरके अस्तित्वका अिनकार करता, तो भी अुसे शुद्ध आस्तिक माना जाता था। 'नास्तिको वेदनिन्दक ।' जो मनुष्य वेदोकी समस्त आज्ञाओके अुत्तम और ग्राह्य होनेकी बात स्वीकार करता, परन्तु वेदोके अपौरुषेयत्वको स्वीकार नही करता था, अुसे भी नास्तिककी ही अुपाधि मिलती थी।

आस्तिक और नास्तिककी व्याख्यायें सदा अेकसी नही थी, नही हो सकती। अेक अैसी व्याख्या भी प्राचीन कालसे चली आअी है कि परलोकमें जिस

मनुष्यका विश्वास हो वह आस्तिक है और परलोकमें जिसका विश्वास न हो वह नास्तिक है। मेरे विचारमे अिस व्याख्यामे वहुत तथ्य है। परलोककी रूढ कल्पनाका त्याग करके यदि हम अुसकी तर्कशुद्ध और युक्तिमान्य व्याख्या करे, तो जो मनुष्य आत्माके अमरत्वको स्वीकार करता है अुसे मरणोत्तर जीवन, साम्पराय अथवा परलोकको भी स्वीकार करना पडता है। परन्तु अिस सवधमें हम आगे विचार करेंगे।

मेरी दृष्टिसे तो जिसका आत्मामें विश्वास है वह आस्तिक ही है और जो जडवादी होनेके कारण आत्मामें विश्वास नहीं करता वही नास्तिक है।

पहले हम शास्त्र-प्रामाण्यसे सवध रखनेवाली व्याख्याकी चर्चा करेंगे। मैं शास्त्र-प्रामाण्य और ग्रन्थ-प्रामाण्यमे भेद करता हू। आज रूढ अर्थमे जिसे ग्रन्थ-प्रामाण्य कहा जाता है, अुसे तो सच्चे दार्शनिकोमे से विरले ही स्वीकार करेंगे। जितने भी ग्रथ हैं वे सव मनुष्यके वनाये हुअे हैं। जिस ग्रथके कर्ताको हम नही जानते अुसे हम 'अेनॉनिमस' अथवा अपौरुपेय कह सकते है, परन्तु अिसमे कोअी शका नही कि प्रत्येक ग्रथ मनुष्य-कृत है। अैसे ग्रथोमें जो अुच्च कोटिके पुरुषो द्वारा रचे गये ग्रथ हैं, अुनमें अीश्वर-प्रणीत तत्त्वज्ञान अवश्य भरा हो सकता है। परन्तु अीश्वरका दिया हुआ ज्ञान मनुष्यने ग्रहण किया तभीसे अुसमें दोष, अज्ञान और अपूर्णता मिल गये हैं। वर्षाके शुद्ध जलकणोके हवामें आते ही अुनमे हवाके रजकण मिल जाते हैं और जव वे जलकण जमीन पर गिरते हैं तव तो जमीनके गुण-धर्म भी अुनमें प्रवेश करते हैं। फिर अुस पानीको हम पूर्णतया शुद्ध नही कह सकते। अिसी प्रकार अीश्वर-दत्त ज्ञान भी जव मनुष्यकी वाणीमें व्यक्त हुआ तव मनुष्यकी वुद्धि और श्रद्धाके साथ अुसका सवध वधा। तव अुसमें अपूर्णता आ ही गअी समझिये। अीश्वर-प्रणीत वेदोको और शास्त्रोको भी मनुष्य धीरे-धीरे विकसित होनेवाली अपनी श्रद्धा और वुद्धिके द्वारा ही तो ग्रहण कर सकता है न? अिसलिअे दर्शनशास्त्रके अध्ययनमें ग्रथका प्रामाण्य हमारी कोअी सहायता नही कर सकता।

प्रस्थानत्रयीके आदर्शमे तो अुपनिषदो, ब्रह्मसूत्रो और गीताको ही वेदान्त-दर्शनके लिअे प्रमाण माना गया है। मैं अिसका यह अर्थ करता हू कि अुपनिषदोके अृषियोके धर्मानुभवको ही हम प्रमाण मानते हैं। वे सीधी-सादी आर्ष भाषामें अपना अनुभव कह देते हैं। और कभी-कभी तो वे यह भी कहते हैं कि हमने अनुभवसे जो कुछ कहा है वही अमुक वैदिक अृचामें भी कहा गया है— 'तच्च अेतत् अृचा अभ्युक्तम्।'

अुपनिषदोमें जो कुछ कहा गया है वह अनुभव-सिद्ध है, और अिसीलिअे वह प्रमाण है' ...वान वादरायणने अुपनिषदोके अर्थको अच्छी तरह समझ लिया था। अुपनिषदोके तत्त्वज्ञानको अुन्होने ब्रह्मसूत्रोमें शास्त्रीय पद्धतिसे सकलित

किया है, अिसलिअे अुन्हे भी हम प्रमाण मानते हैं। और अिन्ही अुपनिषदोके दोहनके रूपमे तथा ब्रह्मसूत्रो द्वारा निश्चित किये हुअे निर्णयके आधार पर श्रीकृष्णके समान जगद्-गुरुने गीता द्वारा जिस जीवन-कला अथवा योगशास्त्रकी रचना की, अुसे भी प्रमाण माना जाता है। अिन तीनोके अनुकूल जो ज्ञान दिया जायगा वह अनुभव-मूलक ज्ञान होगा, अिसलिअे यह मर्यादा बाध दी गअी कि जो पुरुष प्रस्थानत्रयीका समन्वय करेगा वही आचार्य हो सकेगा। आचार्यका केवल बुद्धिशाली होना ही पर्याप्त नही माना जाता था।

आचिनोति हि शास्त्रार्थं आचारे स्थापयत्युत।
स्वयमाचरते यस्तु स आचार्यं प्रचक्षते।।

अिसका अर्थ यह हुआ कि जो पुरुष धर्मानुभवी लोगोके वचनोको बादरायण तथा श्रीकृष्ण जैसे सर्वमान्य आचार्योके कथनानुसार समझता है, अुन सिद्धान्तोके अनुसार जन-समाजका जीवन-क्रम बना देता है और स्वय भी अुसका अनुसरण करता है, वह तत्त्वज्ञ, धर्मकार, समाजशास्त्री लोकगुरु ही आचार्य-पद प्राप्त कर सकता है।

ग्रथ कभी आगे नही बढ सकता। शास्त्र सदा ही प्रगतिशील होता है। मनुष्यकी बुद्धि, अनुभव, कल्पना, तुलना तथा श्रद्धाके विकासके साथ शास्त्रका भी दिन-प्रतिदिन विकास होता जाता है। मनुष्यकी ये सब शक्तिया अीश्वर-दत्त होती हैं। अिस कारण प्रत्येक शास्त्र मनुष्य-कृत होते हुअे भी अीश्वर-प्रणीत कहा जा सकता है। अिस सिद्धान्तके अनुसार यदि देखा जाय तो जो साहित्य अथवा धर्मग्रन्थ विभूतिमत्, श्रीमत् और भव्य दिखाअी दे, अुसे अीश्वर-सभूत ही समझना चाहिये। परन्तु कोअी ग्रन्थ-विशेष अीश्वरका नि श्वासरूप है अिसलिअे वह भ्रातिरहित ही होना चाहिये, अिस भूमिकाको सनातनी होते हुअे भी मैं स्वीकार नही कर सकता। जितने भी धर्मग्रन्थ और शास्त्रग्रन्थ हैं, अुनके प्रति मेरे मनमें बडा सम्मान है। मैं शिष्यभावसे ही अुन्हे देखता हू। अुनसे मैं जो कुछ ग्रहण कर सकता हू, सीख सकता हू, अुसे मै कृतज्ञतापूर्वक ले लेता हू। और जो कुछ मेरी समझमें नही आता अुसके बारेमें मैं अपना निर्णय स्थगित रखता हू——अर्थात् न तो मै अुसे स्वीकार करता हू, न अुसका विरोध करता हू। मैं तो यह मानता हू कि प्रत्येक दार्शनिककी यही दृष्टि और यही भूमिका होनी चाहिये।

परमात्मा पर विश्वास रखना या न रखना यह प्रत्येक मनुष्यकी अपनी निष्ठा, वृत्ति और अभिरुचि पर आधार रखता है। परमात्माको केवल 'माननेसे' न तो विशेष सात्त्विकता प्रकट होती है और न अुसे न माननेसे कोअी खास बहादुरी प्रकट होती है। जो जिज्ञासु 'हृदि सस्फुरद् आत्मतत्त्व' को मानता है और पूर्ण प्रयत्न करने पर भी 'परमात्म-तत्त्व' पर विश्वास नही कर सकता, अुसे

मैं तो नास्तिक नही कहूगा। जिस आत्मतत्त्वका कम या अधिक, स्पष्ट या अस्पष्ट अनुभव प्रत्येक मनुष्यको होता है, अुससे जो अिनकार करता है अुसे मै अवश्य नास्तिक कहूगा। अैसे मनुष्यकी प्रतिष्ठा, अुसकी श्रद्धा और जीवनके प्रति अुसकी दृष्टि ही अलग होती है। मेरी व्याख्याके अनुसार जैनोको नास्तिक नही कहा जा सकता। स्वयको अनात्मवादी कहनेवाले बौद्धोको भी मै नास्तिक नही मानता। मै तो यह मानता हू कि जब वे आत्मासे अिनकार करते है तब वे केवल अह-प्रत्ययसे ही अिनकार करते है। अुनकी शून्यकी अुपासना वस्तुत अचिन्त्य, अतर्क्य और अव्याख्येय आत्मतत्त्वकी ही अुपासना है। मेरी यह भूमिका भदन्त आनन्द कोशल्यायनको मान्य नही है, परन्तु मै अभी तक अुसे छोड नही सका हू।

आत्मा और परलोकका मै जैसा सबध मानता हू अुसकी दृष्टिसे, जो मनुष्य परलोकमे विश्वास नही करता वह नास्तिक ही है। 'अय लोक नास्ति पर' अैसा जिसका विश्वास है और साम्परायके बारेमे, 'लाइफ आफ्टर डेथ' के बारेमें, मृत्युके बादके अस्तित्वमें जिसकी श्रद्धा नही है, वह मनुष्य नास्तिक है। जिस मनुष्यका अिस बातमे विश्वास नही कि मृत्युका अतराय होते हुअे भी अेक प्रकारका अखण्ड, अनुस्यूत, धारावाहिक जीवन चलता है, वह धर्म और अधर्मका विवेक नही कर सकता। अुसके आचरणमे और जीवनमें दुराचार आसानीसे प्रवेश कर सकता है, क्योकि अुसकी नास्तिकता अुसे हर प्रकारके मोहसे घेर लेती है, और अुसकी बुद्धि क्षीण हो सकती है।

प्रज्ञा और आस्तिकताका अविच्छिन्न सबध है।

> प्रज्ञानाशात्मको मोह तथा धर्मार्थनाशक ।
> तस्मान्नास्तिकता चैव दुराचारश्च जायते ।।

हमारी सर्वमान्य और रूढ कल्पना यह है कि मनुष्यकी मृत्युके पश्चात् जो भी अवशेष रहता है — फिर वह जीव हो, सस्कार-पुज हो, वासना-ग्रथि हो या कर्म-समुच्चय हो — वह नया शरीर धारण करके अपना कर्तृत्व, ज्ञातृत्व तथा भोक्तृत्व बढानेके लिअे अिस दुनियामें फिरसे आता है। अिसीको हम पुनर्जन्म कहते है और हमारा यह विश्वास है कि पुनर्जन्मकी यह परपरा अपवर्ग अथवा मोक्ष तक वैसी ही चला करती है। यह कल्पना अशास्त्रीय अथवा अवैज्ञानिक नही है। बुद्धिसे भी अिसे समझा जा सकता है। लेकिन कोअी मनुष्य अिसका अनुभव नही करा सकता। अत अिसे अेक 'हाअिपोथेसिस' — वाद अथवा अभ्युपगम ही कहना चाहिये।

मनुष्य अपनी मृत्युके पश्चात् अपनी सततिमें जीता है और अपने कार्यका विस्तार करता है — अिसे भी अुसका अेक प्रकारका साम्पराय कहा जा सकता है। वृक्ष जिस प्रकार अपने बीज द्वारा अपनी सतति-परपराको बनाये रखता

है और अपनी जातिको नित्यजीवी बनाता है, अुसी प्रकार मनुष्य भी अपनी सततिके द्वारा अजर-अमर होकर अपने साम्परायको सिद्ध करता है।

हमारी जिज्ञासाका विषय यह नही है कि शरीरके छूटनेके बाद अुसके श्वासोच्छ्‌वासका क्या होता है। "शरीरके निश्चेष्ट हो जानेके बाद अुसके भीतरकी प्राणशक्ति कहा जाती है?" यह विज्ञानका विषय माना जा सकता है। दर्शनको अिस विषयमें शोध नही करनी है। मृत्युके बाद मनुष्यके शरीरका क्या होता है अथवा हम अुसका क्या करते हैं, यह हम सब जानते हैं। "वायु. अनिलम्, भस्मान्तम् शरीरम्" — अितना तो स्पष्ट ही है। अिसके सिवा जो भी स्वभाव, अध्यात्म अथवा 'पर्सनेलिटी' बाकी रहती है अुसका क्या होता है, यही मुख्य प्रश्न है। मुख्य विषय यही है कि मनुष्यने अपने समस्त जीवनमें जो जो सस्कार प्राप्त किये हो, जिन जिन धर्मोंका अनुशीलन किया हो, अुन सबके समूह अथवा ग्रन्थिका क्या होता है। आत्मा विभु है। अुसके आने-जानेका, होने अथवा न होनेका प्रश्न ही नही अुठता। परमात्मा भी — यदि वह हो तो — विभु है। अुसके विषयमें प्रश्न ही क्या हो सकता है? परतु मनुष्य-जातिके लिअे सबसे महत्त्व-पूर्ण प्रश्न यही है कि मृत्युके बाद जो व्यक्तित्व (पर्सनेलिटी) रहता है और जो सारे सस्कार-समूहका आधार है, अुसका मनुष्यके मरनेके बाद क्या होता है।

मनुष्य यदि यह समझ ले कि अुसके व्यक्तित्वका केन्द्र भले ही अुसका शरीर हो, परन्तु वह शरीरसे मर्यादित नही है, अुसके व्यक्तित्वका बडा भाग अुसके साथियोमें, अुसके समाज और अुसकी परिस्थितियोमें तथा जिन जिन तत्त्वोके साथ अुसका सबध रहता है अुन तत्त्वोमे होता है, तो वह अिस बातको भी समझने लगेगा कि मृत्युसे अुसका बहुत ही थोडा अश नष्ट होता है। शरीरके छूटने पर अुसका कर्म-स्वातत्र्य शायद नष्ट होता होगा — कदाचित् अुसके सूक्ष्म बन जानेके कारण यह स्वातत्र्य बढ भी जाता हो — परतु मृत्युसे अुसके व्यक्तित्वका नाश तो नही ही होता।

राजाका राजत्व अुसके राज्य, अुसके प्रजाजनो और राज्यके कानून-कायदो तथा अुनके तत्र तक विस्तृत होता है। अितना ही नही, सधि-विग्रहके द्वारा राजा जिन पडोसी राज्योके सपर्कमें आता है अुनमें भी अुसका राजत्व अवश्य व्यक्त होता है। अिस राजत्वको अेक प्रकारका प्रवाह ही मानना चाहिये। अिसका अुद्‌गम अनादि अितिहाससे हुआ होगा और न जाने कौनसे शक्ति-सागरमे — पुरुषार्थ-सागरमें — वह विलीन होनेवाला है! राजाकी मृत्युसे राजत्वका नाश नही होता। अुसे केवल अपना केंद्र बदलना पडता है। अिसीलिअे अिग्लैंडमें लोग राजाकी मृत्युके अवसर पर कहते हैं "The king is dead, long live the king!"

प्रत्येक व्यक्तिके व्यक्तित्वकी सच्ची स्थिति अैसी ही है। हम जितने अपने शरीरमें रहते हैं अुससे कही अधिक अपनी परिस्थितियोमें, समाजमें, कार्योमें,

सहयोगोमें, वासनाओमें, साथियोमें, विरोधियोमे, अपनी सततिमे तथा धारा-वाही सनातन और अनत कालमें रहते है। अतमे जव हम कृतार्थ होकर अनन्तमे विलीन हो जाते हैं, स्मृतिशेष वन जाते है, तभी हम निर्वाण अथवा मोक्ष प्राप्त करते है। हरएक मनुष्यके जीवनकी समृद्धि या विस्तार अेकसा नही होता। कितने ही लोग अपने अदम्य सकल्पके कारण अपने जीवनका कल्पना-तीत विस्तार कर लेते है। यदि अेक कल्पना अेक कल्प तक विकसित होती रहे, तो कोअी आश्चर्य नही। परन्तु अुसके कृतार्थ हो जाने पर, ज्ञानमे अुसकी परिसमाप्ति हो जाने पर, मनुष्यको मोक्ष मिलना ही चाहिये।

मेरी दृष्टिसे साम्परायका यही सच्चा अर्थ है। मनुष्यका शारीरिक, मान-सिक तथा सकल्पात्मक कार्य ही अुसके व्यक्तित्वका सच्चा रहस्य है। 'यथाकर्म यथाश्रुतम्' अिस व्यक्तित्वका प्रवाह चलता रहता है। जरत्कारव आर्तभागने याज्ञवल्क्यसे पूछा कि शरीर, आत्मा आदि समस्त तत्त्व जव विलीन हो जाते है तव पुरुपका क्या होता है? तव याज्ञवल्क्यने अुसे अेक ओर ले जाकर जो गूढ रहस्य वताया अुसमे भी अिसी कर्मतत्त्वका अुल्लेख था, अैसा अुपनिपद्-कालके अृपिने कहा है।

जिस मनुष्यका अिस साम्परायके वारेमें विश्वास है, वही मेरी रायमें ज्ञान-पूर्वक त्रिकालावाधित रह सकता है। अुसकी दृष्टि भी व्यापक और दीर्घ वनती है। अुसकी सत्ता सार्वभौम होती है। वही अजर-अमर होता है। अिस सृष्टिमें जो विराट् तत्त्व सर्वत्र व्याप्त (अनुस्यूत) है वही आत्मा है। अुससे भिन्न कोअी पदार्थ आत्मा नही है। जिस प्रकार अेकका गुणक सव सख्याओमें सदैव रहता है, अुसी प्रकार आत्माका भी सर्वत्र और सवमें अस्तित्व है। अुसके अभावकी कल्पना भी नही की जा सकती। अुसके आसपास ही हमारा व्यक्तित्व और हमारा जगत प्रकट होता है और हम अपने व्यक्तित्वका अनुभव कर सकते हैं।

जो लोग आत्मामे विश्वास नही करते, अुन्हें भी आत्मा छोड तो नही ही देती। अिसलिअे अुनका भी अश्रेय, अकल्याण नही होगा। जिनका आत्मामें विश्वास नही है, वे आत्माकी अेक विशिष्ट व्याख्या करके ही अुससे अिनकार करते है। अुन्हे शायद अिसकी कल्पना नही होगी कि अपने अिस अिनकारसे ही वे आत्माको स्वीकार करते है, भले ही वे अिसे समझ न पाये।

और, हम किसीसे आत्मामें विश्वास करवानेका प्रयत्न भी किसलिअे करें? अीश्वर और आत्माके 'चैम्पियन'—त्राता—वननेका व्यर्थ प्रयत्न हम क्यो करें? क्या यौवनका ज्ञान और भान समय आने पर भीतरसे ही मनुष्यमें अपने आप अुत्पन्न नही होता? यह आत्मा सव कुछ ग्रहण करती है, प्राप्त करती है, सवका अुपभोग करती है तथा अखड और अनत रूपमें निरतर रहती है। अिसीलिअे वह आत्मा है। श्री शकराचार्यने आत्माकी व्युत्पत्ति आप्, आ+दा,

आ + अद् और आ + अत् धातुओसे की है। आप् का अर्थ है प्राप्त करना, आ + दा का अर्थ है ग्रहण करना, आ + अद् का अर्थ है अुपभोग करना और आ + अत् का अर्थ है निरन्तर चलते रहना।

यह कहना कठिन है कि आत्माके साक्षात्कारमे सुख है या नही। परन्तु आत्माकी प्राप्तिमें हमें अपना केन्द्र मिल जाता है। अुसके बाद ही सारा विश्व हमें यथास्थित प्रतीत होने लगता है। हमारे जीवनके समस्त मूल्य (Values) यथार्थ बन जाते है। अैसे मूल्य-परिवर्तनमे ही जीवनका परिवर्तन — जीवनकी सिद्धि निहित है। अिसके बाद कोअी ग्रन्थि नही रहती, किसी तरहकी शका नही रह जाती। आत्म-साक्षात्कार ही अेक अद्‌भुत सामर्थ्य है, परम शाति है। अेक बार प्राप्त हो जाने पर अिसका कभी ह्रास नही होता। अिसीलिअे हमें अन्य सारी बातोका त्याग करके आत्मप्राप्तिके लिअे अखड और अथक प्रयत्न करना चाहिये। 'तमेवैकम् जानीथ आत्मानम् अन्या वाचो विमुञ्चथ, अमृतस्यैष सेतु।'

अिस आत्माको ही अन्तरात्मा कहते है, परमात्मा कहते हैं, परब्रह्म कहते हैं, आत्माराम कहते है और पुरुषोत्तम भी कहते है, मनुष्य-मात्रके हृदयमे अुसका निवास होनेंसे अुसे नारायण भी कहते है। वर्तमान, भूत और भविष्यके नर-नारी समूहको नार या 'Humanity' कहा जाता है। यह नार ही जिसका अयन है, प्रतिष्ठाका स्थान है, वही नारायण है — 'God of Humanity' है। मनुष्य-जीवनके सर्वोत्कृष्ट सामाजिक आदर्शके विचारसे अुसे पुरुषोत्तम कहा जाता है और अुसकी व्यापकताके कारण अुसे नारायण कहा जाता है। सपूर्ण समाजके साथ, समष्टिके साथ, अपने 'नार' के साथ अेकरूप हो जाने पर हमारा मर्यादित व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है, हमारी 'पर्सनेलिटी' विलीन हो जाती है और नारायणके साथ हमारा सायुज्य — तादात्म्य — हो जाता है। यही सब व्यक्तियोका चिर साम्पराय है। जो लोग अिसमें विश्वास नही करते, अुनके जीवनमें भव्यता, दृढता और पूर्णता नही आ सकती। वे सर्वव्यापी वैष्णवी शक्तिसे वचित रहते हैं। मेरे आगेके विवेचनकी दृष्टिसे आस्तिक-नास्तिकका यह भेद स्पष्ट करना आवश्यक था, क्योकि आगे चलकर मुझे यह सिद्ध करना है कि 'जैसा हमारा दर्शन होगा वैसा ही हमारा धर्म होगा, और हमारा समाजशास्त्र भी अुसके अनुकूल ही रहेगा।'

मै तो यह मानता हू कि हमने अभी तक अपने दर्शनोका पूरा लाभ नही अुठाया है। प्रत्येक दर्शन जीवनकी अेक पृथक् दृष्टि (View of life) है। और जैसी दृष्टि हो वैसा ही जीवन-क्रम (Scheme of life) भी होना चाहिये। अपनी सामाजिक रचना (Social structure) भी हमें अुसके अनुकूल ही खडी करनी होगी।

जैसा कि मैं अूपर कह चुका हूं, हमारे अुपनिषदोंमें आत्मवीर अृषियोंकी तात्त्विक शोधें और धर्मानुभव दिये गये हैं। मनुष्यने सोचा कि सारे अनुभव अेकरूप होने ही चाहिये — फिर वे चाहे जैसे शब्दोंमें व्यक्त किये गये हों, अुनकी अभिव्यक्ति चाहे जितनी भिन्न हो। अिस अेक ही विचारसे भगवान बादरायणने ब्रह्मसूत्रोंमें अुपनिषदोंके आधार पर अेक अखण्ड तत्त्वविद्याको ग्रथित किया है।

अब प्रत्येक अनुभवका विज्ञान अथवा शास्त्र — Science — बनना चाहिये और प्रत्येक विज्ञान या शास्त्रके साथ अुसकी जीवन-प्रेरक और जीवन-व्यापक कला, 'Art of life' भी होनी चाहिये। अुपनिषदोंमें जो अनुभव और विचार पाये जाते हैं, अुन्हींका ब्रह्मसूत्रोंने विज्ञान या शास्त्र बनाया और अिन दोनोंके आधार पर भगवान श्रीकृष्णने अेक सर्वांग-परिपूर्ण जीवन-कला अर्थात् योगशास्त्र अद्‌भुत रूपमें रचकर हमें दिया। अुसे हम भगवद्‌गीता कहते हैं।

परन्तु यदि हमारे समाज-व्यवस्थापकोंने अपने अपने दर्शनके साथ अुसके अनुकूल स्मृति भी दी होती, तो हमारा व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक जीवन कृतार्थ हो जाता।

हमारे प्रत्येक दर्शनके साथ अुसकी अपनी कोअी न कोअी साधना भी होती ही है। परन्तु प्रत्येक दर्शनके साथ अुसके आधार पर विकसित तर्कशुद्ध तथा ध्येयसिद्धिके लिअे शक्तिशाली समाज-व्यवस्था अथवा स्मृति हमारे पास नहीं है।

जैनोंकी 'अर्हन्नीति' मैंने देखी है। अुसमें मुझे जैन-दर्शनका तर्कशुद्ध विनियोग कहीं भी दिखाअी नहीं दिया। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि भिन्न भिन्न दृष्टिवाले वेदान्तियोंने अपनी अपनी स्वतंत्र स्मृतियां निर्माण करनेका कहीं भी प्रयत्न किया हो अैसा दिखाअी नहीं देता। जो अद्वैतवादी है वह समाजमें प्रचलित अूंच-नीच-भावको कैसे बरदाश्त कर सकता है? जो अद्वैतवादी है वह वर्ण-व्यवस्थाको स्वीकार कर सकता है या नहीं? अैसे प्रश्न न तो किसीने किये और न किसीने अिन प्रश्नोंके अुत्तर दिये। अद्वैतके साथ अधिकार-भेदके सिद्धान्तका मेल सधता है या नहीं, अिसका भी किसीने निर्णय नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि हमारी दर्शन-चर्चा कभी भी जीवन-चर्चा नहीं बन सकी, और हमारी स्मृतियां भी दर्शन-शुद्ध नहीं बनीं।

प्राचीन कालमें अैसे ही पुरुषको दर्शनाचार्य माना जाता था, जो प्रस्थान-त्रयीकी अेकवाक्यता सिद्ध कर दिखाये। यह आदर्श अवश्य ही सच्चा था। परन्तु आज तो हम अुसीको आचार्य कहेंगे जो हमारे सभी दर्शनोंका महत् समन्वय करे, अुन समन्वित दर्शनोंका अनुसरण करके अेक श्रेणीबद्ध साधना-क्रम तैयार करे और अुसके साथ अेक सार्वभौम स्मृतिका भी सूचन करे। अैसे व्यक्तिको हम दर्शनाचार्य न कहकर जीवनाचार्य कहेंगे।

दूसरी दृष्टिसे सोचें तो जो पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अिन चारो पुरुषार्थोकी व्यवस्था बताये, अिन चारोका तारतम्य और अधिकार निश्चित करके जीवन-समन्वयका मार्ग दिखाये, वही जीवनाचार्य बन सकता है। हमारी दर्शन-विद्या और जीवन-कला अिसीमें सार्थक होगी। आत्मविद्याका, ब्रह्मविद्याका, अनुसरण करनेवाला योगशास्त्र, जीवन-साधना और सामाजिक स्मृति प्राप्त होनेसे व्यक्तिगत तथा सामाजिक मनुष्य-जीवन सुसस्कारी और सशास्त्र बनेगा।

हमारे तत्त्वज्ञानने समाजको शायद मायारूप माना होगा। परन्तु समाज और जाति तत्त्वके रूपमें तो अेक ही है। यदि जाति नित्य है, तो व्यावहारिक दृष्टिसे समाज भी नित्य है। अुसे भी तत्त्वज्ञानका प्रमेय बनाना होगा। अुसकी अुपेक्षा करना सर्वथा आत्मघाती माना जाना चाहिये।

जब कार्ल मार्क्सने अपना साम्यवादी समाजशास्त्र दुनियाको दिया तब अुसे सपूर्ण बनानेके लिअे अुन्होने यह भी बताया कि अुसकी नीव किस दर्शन पर आधार रखती है। यदि वे आत्माको स्वीकार कर सके होते, तो वर्ग-विग्रह पर वे अितना अधिक भार नही ही दे पाते। अुनका दर्शन सच्चा हो या झूठा, परन्तु अुन्होने दर्शनशास्त्रको सैद्धान्तिक चर्चाकी मरुभूमिसे बाहर निकाल कर अुसे सामाजिक जीवनका आधार बनानेका जो मार्ग दिखाया, वह अुनकी बडीसे बडी सेवा है। गाधीजीने सत्य अथवा आत्माको अपनी जीवन-व्यवस्थाका केन्द्र मान लिया और अिस सिद्धान्तके फलस्वरूप अहिसाको जीवन-साधनाके रूपमें स्वीकार किया, अिसलिअे अुनके जीवन-दर्शनमे सर्व-सद्भाव, सर्व-समन्वय और सर्वोदयकी ही बात आ सकती थी। अुन्होने जगतको यह बताया कि सर्वत्र विविधता होते हुअे भी अुसमे अेकता कैसे स्थापित की जा सकती है।

अब हमे अपने दर्शनशास्त्रको भी सामाजिक रूप देना पडेगा। अैसी कोअी भी विचार-व्यवस्था और तत्त्वज्ञान सच्चा दर्शन है, जो सार्वभौम होनेके कारण व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनके सब अग-प्रत्यगो पर और अुनके प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाल सकता है, जो सबकी सन्तोषजनक अुपपत्ति और समन्वय करता है तथा राजनीति, धर्मनीति और अर्थनीतिको शास्त्रशुद्ध बनाता है।

अिस दृष्टिसे सोचें तो व्यक्तिवाद भी अेक दर्शन ही है। अिससे अुलटा समाजवाद अेक दूसरा दर्शन है। साम्यवाद अथवा समष्टिवाद अुसीका अेक बदला हुआ रूप है।

गाधीजीने सत्य, अहिसा, शरीर-श्रम और स्वदेशी आदिके आधार पर जो सत्याग्रही व्यवस्था दुनियाके सामने रखी है, वह भी अेक सार्वभौम दर्शन ही है। अुसे हम सत्याग्रह-दर्शन कह सकते है। सर्वोदय-दर्शन भी अुसे कहा जा सकता है। साम्यवादमे और अिस दर्शनमें जो भी साम्य अथवा भेद पाया जाता

है, अुसे स्पष्ट करनेके लिअे हम गाधीवादको गीताकी भाषामें साम्ययोगका नाम दे सकते हैं। अिस दर्शनमें व्यक्तिवाद तथा समाजवादका आन्तरिक विरोध नष्ट होकर दोनोका सुन्दर समन्वय हो जाता है।

'जीवनके सव प्रश्न केवल वलसे ही हल हो सकते हैं, वल-प्रयोग और वल-सगठन ही जीवनकी कुजी है'—अैसा माननेवाले लोग वल-दर्शनके अनुयायी हैं।

जीवनकी सारी प्रवृत्तिया धनसे ही चलती हैं, धन ही जीवन-क्रमका अतिम निर्णायक तत्त्व है—अैसा माननेवाले धनजय लोगोका धन-दर्शन चार्वाक-दर्शनसे कुछ कम लोकप्रिय नही है।

आज तो कला भी अपनेको अेक स्वतत्र जीवन-दर्शनके रूपमे प्रस्तुत करती है। परन्तु यहा हम अिसकी चर्चा नही करेंगे।

अब तो शिक्षाका दर्शन भी अेक सार्वभौम दर्शन होनेका अनुभव करने लगा है। शिक्षा अव सामाजिक तथा आध्यात्मिक जीवनकी सभी अुलझनें हल करनेका दावा करने लगी है। शिक्षाका शास्त्र कहता है कि बल द्वारा अथवा शासन-तत्र द्वारा अथवा प्राचीन गूढ धर्मोकी अुपासना द्वारा जो कार्य आज तक सिद्ध नही हो सके, वे शिक्षाके द्वारा सपूर्ण रूपमे सिद्ध होंगे। शिक्षामें निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और साधना द्वारा ज्ञान, कौशल और वल प्राप्त होता है। शिक्षाशास्त्रका आधार अुसकी वोधशक्ति, धैर्य, सेवा, वलिदान और ओश्वर-प्रणिधान पर रहता है। शिक्षाका शास्त्र तात्त्विक दृष्टिसे राज्य-शासनका विरोधी है। शिक्षाके शासन द्वारा जिस आदर्श अराजक व्यवस्था (Ideal state of Anarchy) की स्थापना होगी, वही मानव-जीवनकी प्रतिष्ठाके अनुकूल और मनुष्यके योग्य समाज-व्यवस्थाके लिअे सपूर्ण होगी। जो कार्य कानून वनानेसे, धर्मशास्त्रोकी आज्ञासे, कलाके अनुनयसे या वल-प्रयोगके भयसे नही होता, वह शिक्षाके द्वारा पूरी तरह सिद्ध होता है। दुनियामें अैसा अेक भी कार्य नही, जो शिक्षाके प्रयोगके लिअे दु साध्य हो। शिक्षाको हम सत्याग्रहका पूर्ण दर्शन कह सकते हैं, क्योकि शिक्षाके द्वारा सारे समाजकी सेवा करनेवाला सेवक सत्य, अहिसा और आत्म-वलिदानसे ही अपना कार्य सिद्ध करता है।

अपनी शक्तिका सपूर्ण भान होने पर शिक्षा (जिसे मैं विनया कहता हू) कहेगी. 'मैं सत्ताकी दासी नहीं हू, कानूनकी किंकरी नही हू, विज्ञानकी सखी नही हू, कलाकी प्रतिहारी नही हू, अर्थशास्त्रकी गुलाम नही हू। मैं तो धर्मका पुनरागमन हू। मनुष्यके हृदय, वुद्धि तथा दूसरी सव अिन्द्रियोकी स्वामिनी हू। मानसशास्त्र और समाजशास्त्र मेरे दो पाव हैं, शिल्प और कला मेरे दो हाथ हैं, विज्ञान मेरा मस्तिष्क है, निरीक्षण और तर्क मेरी आखें हैं, अितिहास और गाथायें मेरे कान हैं, स्वतत्रता मेरा श्वास है, अुत्साह और अुद्योग मेरे

फेफडे है, धीरज मेरा व्रत है, श्रद्धा मेरा चैतन्य है और सर्वोदय मेरा प्रसाद है। मैं अैसी जगदम्बा हू — जगद्धात्री हू। मेरी अुपासना करनेवालेको किसीका मुह नही देखना पडता। अुसकी सारी अिच्छायें मेरे द्वारा ही तृप्त होगी। मैं भविष्यकी सम्राज्ञी हू। मेरे द्वारा ही मनुष्य परिपूर्ण और कृतार्थ बनेगा।'

दर्शनशास्त्र अेक सार्वभौम विद्या है। अुसे हम केवल तत्त्वचर्चा तक ही मर्यादित न बना दें। हमारे जीवन पर अुसका पूरा पूरा प्रभाव पडना चाहिये। और दर्शनकी अिस सिद्धिके लिअे हमें तत्त्वज्ञानार्थ-दर्शनका रूप ही बदल डालना चाहिये। अितना ही मुझे यहा कहना है।

मैं अपने विचारोका जरा भी विस्तार नही कर सका हू। अुनका समर्थन करनेका भी मुझे मौका नही मिला। अुस ओर केवल अिशारा करके ही मुझे सतोष मानना पडा है। मैं लाचार था। सेवाके आदेशको माथे पर चढाकर मै यहा आया हू। जिन विचारोंसे प्रेरित होकर मैं तत्त्वज्ञानकी खोज करता हू, अुन्हें आपके समक्ष रखकर ही मैंने सतोष कर लिया है।

'सत्य पर धीमहि।'

५

धर्माचार्य अथवा साहित्याचार्य*

आजका अपना विषय पसद करनेमें मुझे अपने मनके साथ थोडा सघर्ष करना पडा। पहले मेरा विचार था कि भारतकी अनेक भाषाओ, बोलियो और अुनके परस्पर सम्बन्धके विषयमें ही आज कुछ कहू। राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचारार्थ भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें घूमते घूमते भाषाके प्रश्नका मुझे जो दर्शन हुआ और अुसके पीछे रहे प्राताभिमान, भाषाभिमान, लोक-शिक्षण तथा राज्य-प्रवधके सवधमें अुत्पन्न होनेवाले प्रश्नोके जो हल मुझे सूझे, अुन्हीका सक्षिप्त विवेचन करनेका मेरा विचार था। हमारे साहित्यकारो, प्रचारको और लोकसेवकोको अिस प्रश्नका गहरा अध्ययन करके शासकोको अुचित दिशा सुझानी चाहिये, क्योकि निकट भविष्यमें यह विषय सबसे अधिक महत्त्व ग्रहण करनेवाला है।

परन्तु मुझे लगा कि यह विषय जितना साहित्यका है अुससे अधिक राष्ट्र-नीतिका और राष्ट्र-सगठनका है, अिसलिअे साहित्यके साथ सीधा सवध रखनेवाला कोअी दूसरा विषय मुझे लेना चाहिये। अुसमें भी कुछ समयसे मेरे दिमागमें जो विचार अिकट्ठे हो रहे थे अुन्हें अेक बार सदगति अवश्य देनी चाहिये, अिस भावनासे मैंने आजका यह विषय चुना है।

* ता० १७–३–'३८ को वडोदामें दिया गया भाषण।

कैसे-कैसे वर्ग या लोग जन-समुदाय पर असर डालते हैं, प्रभुत्व भोगते है, अिसका विचार करने पर सर्व-प्रथम मेरे ध्यानमे आये धर्माचार्य, और अुनके पीछे पीछे पहले कुछ सकोचसे, अुसके वाद थोडे आत्म-विश्वाससे और फिर धृष्टतासे आते दिखाअी पडे साहित्याचार्य। अिसलिअे सामाजिक जीवन तथा राष्ट्र-जीवनमे अिन दोनो कोटिके लोगोका क्या स्थान है, अिसकी जाच करनेकी अिच्छा हुअी। धर्म-धुरन्धर और साहित्य-धुरन्धर अिन दोनोको हम आजकल आचार्य कहते है, परन्तु दोनोके साथ आचार्य शब्दका प्रयोग अेक ही अर्थमें नही होता। धर्माचार्य अपने ज्ञान और प्रतिष्ठा द्वारा तथा अपने विशिष्ट जीवन द्वारा समाज पर अधिकार भोगते हैं, जब कि साहित्याचार्य अपनी विद्वत्ता और प्रतिभासे मुख्यत शब्दसृष्टि पर अधिकार भोगते है। अधिकारी तो दोनो ही हैं, परन्तु प्रत्येकका क्षेत्र अलग है। प्रत्येक धर्माचार्य यथासभव शास्त्रकी मर्यादाकी तथा प्राचीन परपराकी रक्षा करनेका आग्रही होता है, जब कि प्रत्येक साहित्याचार्य शब्दतत्त्वसे परिचित होनेके कारण अभिरुचि और औचित्यकी सूक्ष्मताकी रक्षा करनेका आग्रही मालूम होता है। रससृष्टिका यह ब्रह्मा पूर्व-परम्पराको जानते हुअे भी स्वातत्र्यका ही अुपासक होता है।

आचार्य शब्दकी प्राचीन व्याख्याको देखनेसे पता चलता है कि अेक समय अिस शब्दका सुन्दर और व्यापक अर्थमें प्रयोग होता था।

आचिनोति हि शास्त्रार्थं आचारे स्थापयत्युत।
स्वयमाचरते यस्तु तमाचार्य प्रचक्षते॥

समस्त शास्त्रोका अध्ययन करके, अुनमें से शास्त्रकारोका हेतु समझकर, अिन शास्त्रोकी दृष्टिको जो लोकाचारमे स्थापित कर देता है और शास्त्रदृष्टिके अनुसार चलनेसे शास्त्रशुद्ध जीवन कृतार्थ कैसे होता है यह दिखानेके लिअे अुसके अनुसार जीवन जीकर लोगोके सामने अुदाहरण प्रस्तुत करता है, वह आचार्य है। कितना भव्य है यह आदर्श! अितिहासके द्वारा देश-परदेशके भूतकालकी परम्पराओंका क्रम जो जानता है, वर्तमान कालकी लोकस्थितिकी विविधतासे जो परिचित होता है और भविष्य कालमे समाज कैसा रुख अख्तियार करेगा अिसकी भी जिसे निश्चित झाकी होती है, वह त्रिकाल-दर्शी पुरुष अवश्य ही मानव-जीवन पर अपना प्रभाव डालता है। अिस प्रकार जो पुरुष राष्ट्र-जीवन पर प्रभाव डालता है, वह आचार्य कहा जाता है, अपने जीवन-चिन्तन द्वारा तथा अपने अध्ययन-विवेचन द्वारा लोक-जीवन पर जो दुगना प्रभाव डालता है, वह आचार्य कहा जाता है।

समस्त जन-समुदायके धारण, भरण, पोषण, रक्षण और विकासके लिअे जो जिम्मेदार है अुन धर्मतत्त्वकी सत्ताका प्रयोग करके जो पुरुष लोक-जीवनका नियंत्रण करता है, वह धर्माचार्य है। अैसे धर्माचार्योने बडे बडे सम्राटोसे भी अधिक

सत्ता भोगी है। अिसका कारण यह है कि वे गहरे समाजशास्त्रज्ञ थे। वे लोक-मानसको जानते थे और लोकहित किस बातमे है यह भी जानते थे। इसके फलस्वरूप वे लोक-हृदयके स्वय-सम्राट् बन गये थे।

प्राचीन कालमें अैसे लोगोने मनुष्य-जातिके निर्माणमे बडेसे बडा हाथ बटाया था। परन्तु अैसे स्वयभू धर्म-पुरुषोकी परम्परा और गद्दी स्थापित करनेका प्रयत्न मिथ्या होता है। जैसे प्रत्येक अच्छी बातका असफल अनुकरण होता है वैसे धर्माचार्योंका भी असफल अनुकरण होने लगा। अमुक पुरुष मूल धर्माचार्यका पुत्र है, कुटुम्बी है या शिष्य है अिसीलिअे यदि वह अुनकी गद्दी पर बैठे, तो वह बाह्य आचारका अनुकरण कर सकता है और समाजका बाह्य नियत्रण भी कर सकता है, परन्तु अिससे जीवनका अथवा चैतन्यका विकास तो हो ही नही सकता। यदि बाह्य नियत्रणसे समाजका अुद्धार सभव होता, तो राज्यसत्ताने कभीका अुसका अुद्धार कर दिया होता। राज्यसत्ता अपनी मर्यादाको जानती है और अेक विशेष मर्यादा तक लोकसेवा करके रुक जाती है। परम्पराके आधार पर बने हुअे धर्माचार्य अिससे अधिककी आशा रखकर दभका पोषण करते हैं और निष्फलताको निमत्रण देते है।

अिन धर्माचार्योंके समान ही समर्थ किन्तु अुनसे अधिक दीर्घदर्शी और नम्र होते है सत। सतोने समाजके नियत्रणका आग्रह छोड दिया। अुन्होने स्वयको ही नियत्रित करनेमे अपनी सारी शक्तिका अुपयोग किया और अपनी वाणी तथा आचरण द्वारा जितना विचार-प्रचार और धर्म-प्रचार सभव था अुतना करके सतोष माना। धर्माचार्य स्वाभाविक रूपमे कर्मकाडी होते है, क्योकि अुनका सबध बाह्य नियत्रणके साथ अधिक होता है। सत कर्मकाडको गौण स्थान देकर कर्मयोग, सदाचार और भक्तिमार्गको ही प्रधानता देते है। अिससे अुन्हे अपने कार्यमें अधिक सफलता मिलती है।

धर्माचार्यो और सतोने लोगो पर असर डालनेके लिअे अपने जीवनकी सहायतामे साहित्यकी सेवाका अुपयोग किया। धर्माचार्योंने शास्त्र, भाष्य और टीकायें लिखी और सतोने स्तोत्र तथा कविताओकी रचना की। साहित्यके जीवन पर होनेवाले अिस प्रभावको देखकर कुछ साहित्य-कुशल लोग सतोका अनुकरण करने लगे। अपनी भाषाशक्तिका अुपयोग करके अुन्होने सतवाणीका सुन्दर अनुकरण किया। अिसलिअे भोलेभाले समाजने माना कि वे लोग भी सत ही है। वाणीका अनुकरण तो हो सकता है, परन्तु रहन-सहनका, अुदात्त जीवनका अनुकरण कैसे हो सकता है? अत अैसे साहित्याचार्योंने अपने सतपदको बनाये रखनेके लिअे दभ शुरू किया। वे कहने लगे "हम तो साक्षात्कारी पुरुष है, हम बधनोसे परे है। तुम हमारे अुपदेशके अनुसार चलो। हमारा आचरण तुम्हारे अनुकरणके लिअे नही है। 'न देवचरित चरेत्।' हम चाहे जैसा

आचरण करे, फिर भी हम शुद्ध है। हम कहे वैसे तुम चलो। हम करे वैसा तुम मत करो।" लोग भी मानने लगे कि 'मुक्तास्ते न विचारणीयचरिता.।' किन्तु अैसा दभ कहा तक चल सकता था?

प्रचारके दो साधन है. जीवन और कविता, आचार और विचार, चरित्र और साहित्य। अिनमे से दूसरा साधन कम प्रभावकारी नही था। कविता, विचार और साहित्यकी मददसे ही धर्मका व्यापक प्रचार हुआ है। प्रसिद्ध धर्माचार्यो और सतोमें साहित्य-सर्जनकी शक्ति थी। अुन्होने नही तो अुनके शिष्योने तेजस्वी साहित्यका सर्जन अवश्य किया है। अपौरुपेय माने जानेवाले कुरान शरीफकी लोकोत्तरता सिद्ध करनेके लिअे अेक दलील यह भी दी गअी है कि अुसकी किसी भी आयतकी बराबरी कर सके अैसी अेक काव्यकृति रच कर तो बताओ! अुपनिषद्, बाअिबल, बुद्धके धर्म-सवाद, जैन धार्मिक साहित्यके अग, सतवाणी — यह सब अुत्तम साहित्य ही है।

जब साहित्यकी शक्तिके जोर पर किया जानेवाला सतोका छिछला अनुकरण बहुत बढ गया तब लोग अुससे घबरा गये। लोग समझने लगे कि साहित्य-शक्ति और सतपन दो अलग चीजें है। फिर भी साहित्यका आकर्षण बढनेसे सामान्य लोग भाषाके सामने जीवनको गौण मानने लगे। अिसलिअे कुछ साहित्याचार्य साहसपूर्वक आगे आकर कहने लगे 'हम तो केवल साहित्यके अुपासक है। अुच्च जीवनका दावा हम करते ही नहीं। हम तो केवल विचारो और कल्पनाओके प्रचारक है। अिससे अधिक कुछ करनेकी जिम्मेदारी हमने अपने सिर पर ली ही नही है। हम बिलकुल सामान्य कोटिके मनुष्य है। हम केवल स्वान्त सुखाय लिखते है। तुम्हे अिसमें आनद आये तो जरूर हमारे साहित्यका आनद लो।'

अैसे साहित्यकारोने जिस हद तक अिस तरहका रुख अपना कर दभको दूर किया और जीवनको स्वच्छ बनाया, अुस हद तक अुन्होनें समाजकी सेवा ही की है।

परन्तु कोअी निर्लज्ज और बेहया मनुष्य भी दभको दूर करनेका दावा कर सकता है। यथार्थवादके नाम पर छिछले जीवनका प्रचारक बनना आसान है। अिनके लिअे बहुत बडा प्रयत्न करनेकी जरूरत नही होती। साहित्यकी सजावटसे भोग-प्रधान जीवनको आसानीसे सुन्दर बनाया जा सकता है। अिसलिअे अैसे साहित्यके लोकप्रिय होनेमें देर नही लगती।

धर्माचार्योकी सस्या धीरे धीरे अप्रतिष्ठित हो गअी। सतोका जीवन अेकागिक, अभावात्मक और अेकलक्षी मालूम होने लगा। अिसलिअे साहित्याचार्य अधिक आगे आये। साहित्यके आधार पर साहित्य-सर्जककी योग्यता नापनेकी वृत्ति लोगोमें होती ही है, अिसलिअे साहित्याचार्योकी खूब बन आअी।

साहित्यका प्रभाव जैसे जैसे बढता गया वैसे वैसे कलाका तत्त्व खिलता गया। और साहित्य द्वारा कैसा पौष्टिक, हितकर और रुचिकर भोजन परोसा जाता है, अिसका विचार करनेके बजाय अिस बात पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा कि वह भोजन कितने सुन्दर बरतनमें परोसा जाता है। कलाकार कहने लगे कि कला अुसके 'significant form' मे है, चमत्कृति-जनक शब्द-रचना या आकारमें कला है, अिसीमें अुसकी प्रधानता है। अिसके फलस्वरूप साहित्याचार्य समाजको कैसी प्रेरणा देते हैं, यह बात मानो गौण बन गअी। सच पूछा जाय तो कलाका मर्म अुसके चुनावमें, 'selection' में है, सच्ची कला चमत्कारी निरीक्षण और चमत्कारी विवरणमें निहित होती है। 'Power of perception' और 'power of expression' में ही कलातत्त्व निहित है। दोनोमें हसके जैसी वैदग्ध्य-शक्ति ही मुख्य है।

अब यह वैदग्ध्य-शक्ति, 'selection' की दृष्टि अथवा हसवृत्ति केवल सुख-परायण भी हो सकती है और हित-परायण भी हो सकती है। साहित्याचार्योको अपनी अिस शक्तिका अुपयोग अपने हित तथा जगतके हितके लिअे करना चाहिये। परन्तु सभी साहित्याचार्य अैसा नही करते। जिस प्रकार धर्माचार्योका जीवन दुर्बल बन गया अुसी प्रकार साहित्याचार्योका जीवन भी शिथिल होने लगा। अिसलिअे लोकगुरु बननेकी अपनी योग्यताको खोकर वे नटो, विटो और गायको जैसे केवल लोक-रजक बन गये।

अिस प्रकार जब धर्माचार्यों और साहित्याचार्योंने बडी बडी आशायें दिखाकर और असाधारण अधिकार भोगकर अतमें निराशाको जन्म दिया, तब लोग फिरसे अिस बातकी जाच करने लगे कि धर्म क्या है और साहित्य क्या है?

सपूर्ण जीवसृष्टिका — मनुष्य-जातिका तथा मनुष्येतर जगतका कल्याण कैसे हो, सबका विकास कैसे हो, अिस बातका विचार करनेवाला तथा अिसके अनुसार जीवनका मार्गदर्शन करनेवाला तत्त्व ही धर्म है। महाभारतकारने कहा है 'यत् स्यात् धारणसयुक्त स धर्म अिति निश्चय ।' अिसी विचारको सक्षिप्त करके अुन्होने दुबारा कहा 'यत् स्यात् अहिसासयुक्त स धर्म अिति निश्चय ।' यदि हम अेक-दूसरेका नाश करने लगे, तो दुनियामें कुछ रहेगा ही नही। अिससे बाह्य जगतका तो नाश होगा ही, परन्तु अुसके साथ हमारे हृदयका भी नाश हो जायेगा। अिसीलिअे अहिसाको धर्मका आधार माना गया है। धर्मका यह विधान जीवनके लिअे है, जीवनके विकासके लिअे है।

धर्ममें अनेक बातें अतीन्द्रिय, अलौकिक होती हैं। अिसलिअे अैसा माना जाता था कि धर्मकी प्रेरणा तथागतो (ज्ञानियो) से ही, अवतारी पुरुषोसे ही मिल सकती है। धर्ममें कुछ न कुछ तो अतीन्द्रिय, अलौकिक और गूढ रहने ही

वाला है। फिर भी जैसे जैसे जीवनका अध्ययन और प्रत्यक्ष दर्शन होता जाता है, वैसे वैसे धर्मका स्वरूप भी बुद्धिग्राह्य और निश्चित होता जाता है।

आहारशास्त्र और विहारशास्त्र, शौचाचारका शास्त्र और लोकाचारका शास्त्र, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र, मानसशास्त्र और व्यवहारशास्त्र, राजशास्त्र और विनयशासन (शिक्षा), जीवन-साधना और कलोपासना, विज्ञान और अध्यात्म — अिन सबको मिलाकर धर्मका कलेवर बनता है। यही जीवनशास्त्र है। आज हमें अैसे जीवनशास्त्रमे पारगत जीवनाचार्योकी आवश्यकता है।

कुछ साहित्याचार्य कहते है 'राजनीतिसे हमारा कोअी सबध नही, हम तो साहित्यके विरल वातावरणमें विचरण करते है।' कुछ पामर धर्माचार्य भी अितनी ही कायर वृत्तिसे कहते है 'राजनीतिसे हमारा क्या वास्ता? हम तो पारलौकिक कल्याणका विचार करनेवाले है। अिस नश्वर और मायारूप जीवनसे मुक्त होनेका मार्ग बताना ही हमारा अेकमात्र कार्य है।' ये दोनो ही खतरोसे भागनेवाले ह। जो लोग खतरोसे भागते है, अुनमें कितना तेज हो सकता है? अुनकी प्रवृत्तिमें कितना जीवन प्रकट हो सकता है?

जीवनाचार्य समस्त जीवनका विचार करता है। वह जीवन-वीर होता है, और यदि अुसे सच्चे धर्मकी प्राप्ति हो जाय और अुसमें सच्ची साहित्य-शक्ति प्रकट हो, तो वह जीवन-वीर जीवन-सम्राट् बन सकता है। जीवनाचार्य होनेके कारण जो साहित्याचार्य बने, अैसे अेक लोकोत्तर पुरुष हमारे बीच विद्यमान है। वे है रवीन्द्रनाथ ठाकुर। जीवनाचार्य होनेसे जो धर्माचार्य बन गये है, अैसे भी अेक अलौकिक पुरुष हमारे बीच है। और वे है महात्मा गाधी। अिन दोनोकी विभूतिया भिन्न है, फिर भी लोकोत्तर है।

जीवनशास्त्रकी अभी सपूर्ण रूपमे रचना नही हुअी है, अिस कारण आज भी नये नये प्रयोगोके लिअे अवकाश है। जीवनशास्त्र कभी भी सपूर्ण नही होगा, अिसलिअे अुसमें प्रयोगोकी वीरताके लिअे अनत काल तक अवकाश बना रहेगा। साहित्य-परिषदो द्वारा भाषाका विकास हो सकता है, साहित्यका तत्र विशुद्ध किया जा सकता है, परन्तु जीवनशास्त्री कभी निर्माण नही किये जा सकते। धर्म-परिषदो द्वारा धर्मका सस्करण और परिष्करण हो सकता है, परन्तु जीवनाचार्य कभी अुत्पन्न नही हो सकते। अशोकने धर्म-परिषदोका आयोजन किया था। अकबरने भी अिस तरहका प्रयत्न किया था। आज देश-विदेशकी जनता भी सर्व-धर्म-परिषदोका आयोजन करती है। किन्तु जब जीवनाचार्य यह कार्य अपने हाथमें लेगे अुस समय अैसी परिषदोकी प्रवृत्तियोके बिना ही सर्व-धर्म-समन्वय सिद्ध होगा और लोगोमें सर्व-धर्म-समभावका विकास होगा। और अुसके बाद साहित्य भी स्वय शुद्ध होकर मनुष्य-हृदयको समृद्ध बनायेगा।

६

समीक्षा

१

जिन भौतिक पदार्थोंको हम अचेतन कहते है अुनका आतरिक जीवन कैसा होता है, यह हम नही जानते। सुख या दु खमें सचेतन प्राणियोके शरीरमे जो परिवर्तन अथवा विकृति होती है वैसा ही परिवर्तन अथवा विकृति जड माने जानेवाले पदार्थोंमे भी कुछ अश तक देखी जाती है। अब यह तो निश्चयके साथ कौन कह सकता है कि वह केवल बाहरी विकृति है या भीतरसे अिन पदार्थोंको सुख-दु खका और भावनाओका अनुभव होता है? मनुष्यो और पशु-पक्षियोमें, मछलियो, जीव-जन्तुओ और कीडे-मकोडोमें सुख-दु ख जैसे दिखाअी देते है वैसे वनस्पतियोमे नही दिखाअी देते। किन्तु मनु भगवान जैसे आद्य ऋषियोने कल्पना की थी कि वृक्ष, वनस्पति आदिके भीतर अैसी सज्ञा — चेतना होती है, जो बाहर व्यक्त नही होती। 'अन्त सज्ञा भवन्त्येते।' जगदीशचन्द्र बसुके प्रयोगोके बारेमें जाननेके बाद हमें यह लगे बिना नही रहता कि मनु भगवानकी कल्पना बिलकुल सच्ची है। मनुष्यमे तो सुख-दु खकी भावना और अिष्ट-अनिष्टकी भावना होती ही है। पशु-पक्षियोमे और कीडे-मकोडोमे भी वह दिखाअी पडती है। वृक्षो, वनस्पतियो तथा औषधियोमें अुसके अस्तित्वका अनुमान होता है। अिसलिअे हमारी कल्पना दौडती है कि जड माने जानेवाले पदार्थोंमें भी यह भावना होनी चाहिये। और अिस कारणसे 'अचैतन्य न विद्यते' अिस वचनके अक्षरश सत्य होनेका विश्वास बैठता है।

२

विश्वके अुत्पन्न किये गये पदार्थोंमे जितने अश तक जडता है अुतने अश तक अुसका स्थूल या सूक्ष्म शास्त्र बनाना सभव मालूम होता है। जो अश चैतन्य-रूप माना जाता है, अुसका शास्त्र बनानेमे अनेक कठिनाअियोका अनुभव होता है। फिर भी चैतन्यका शास्त्र बनानेके प्रयत्नसे ज्ञानकी सीमा जितनी व्यापक बनी है अुतनी भौतिक पक्षके अध्ययनसे नही बनी है। आज तक भौतिक प्रयोग निश्चयात्मक — शकातीत — पाये गये, अिससे यह माना गया कि भौतिक सत्यता ही निराबाध सत्य है, भौतिक प्रमाण ही अेकमात्र तृप्तिकर प्रमाण है। और अिस कारणसे भौतिक जगतके सिद्धान्तोको चेतन जगतमें लागू करके गणित अथवा गणितशास्त्रसे यदि भौतिक घटनाये सिद्ध हो, पदार्थशास्त्रके सिद्धान्तोसे

यदि रसायनशास्त्र सिद्ध हो, रसायनशास्त्रके द्वारा यदि वनस्पतिशास्त्रका सुमेल साधा जा सके, वनस्पतिशास्त्र यदि प्राणीशास्त्रका हल खोजे और प्राणीगास्त्रसे यदि मानसशास्त्र और समाजशास्त्रका निर्माण किया जा सके, तो मनुष्यको लगता है कि हमने ज्ञानको सरल वनाया है, ज्ञानके आधारको सुदृढ वनाया है। अुसके वाद तो अव्यात्मशास्त्रको अलग और स्वतत्र स्थान देनेकी भी आवश्यकता नही रह जायगी। स्थूलसे यदि सूक्ष्म फलित हो जाय तो कोअी परेशानी नही रहेगी, अैसी मान्यता सर्वत्र दिखाअी देती है।

वास्तवमें, अिससे विरुद्ध दिशामें और अिसीलिअे विशुद्ध दिशामे प्रयत्न होना चाहिये। चैतन्य-तत्त्वका हमें भीतरसे अनुभव है, अुसका व्यापार हमारे जीवनमें प्रत्यक्ष होता है, अिस चैतन्य-तत्त्वका अविक अध्ययन, अिसका निरीक्षण और परीक्षण यदि अुत्कटतासे किया जाय, तो अिसके वारेमें हमें अद्भुत ज्ञानकी प्राप्ति होनी चाहिये।

सभव है कि यह ज्ञान हमें प्रयोग-पद्धतिसे नही किन्तु योग-पद्धतिसे प्राप्त हो। विज्ञानके मार्गकी अपेक्षा ध्यानमार्ग सभवत अिसमें अधिक अुपयोगी सिद्ध होता होगा। अुसके वाद अिस वातकी जाच करनी चाहिये कि मनुष्यमे जो चैतन्य प्रकट रूपमें है वही निचली कोटियोमें भी सूक्ष्म रूपमें है या नही। अिस प्रकार निकटके स्पष्ट और अनुभूत चैतन्यके रूप, लक्षण तथा स्वभावके सिद्धान्तोकी रचना करके वादमे अुन्हें यदि हम प्राणीशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, रसायन-शास्त्र, पदार्थ-विज्ञान और ज्योतिष तक ले जाय, तो हमारे ज्ञानका विस्तार सर्वथा भिन्न पद्धतिसे होगा और वह अकल्पित सीमा तक पहुचेगा। अिससे ज्ञान-साधनाकी सारी वुनियाद ही वदल जायगी। निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोगके साधनोको जिस प्रकार हम सूक्ष्मातिसूक्ष्म वनाते हैं और भौतिक घटनाअोके ज्ञानक्षेत्रमें नित-नअी विजय और सफलता प्राप्त करते हैं, अुसी प्रकार मनुष्यके भीतरके साधनोको — मन, वुद्धि, अहकार, चित्त आदि अत करण-रूप साधनोको — यदि हम शुद्धसे शुद्ध वनायें, तो ज्ञानका अेक दूसरा और समर्थ पहलू खुलेगा और विकसित होगा। प्राचीन कालमें अिस दिशामें कुछ निश्चित प्रयत्न हुअे थे, परन्तु आज अुन्हें हम भूल गये हैं। अुनके विषयमे आज जो वातें लिखित रूपमे मिलती है, अुनमें से कअी वातें तो सभवत अुस तत्रके विस्मृत हो जानेके पश्चात् वादके लोगोने अनुमान और कल्पनासे लिख डाली होगी। अिसलिअे अिन वातो पर आधार न रखकर अिस क्षेत्रमें हमें मूलसे ही नये प्रयत्न करने होगे।

अत साधनोकी यह शुद्धि ही तप है। यह तप ज्ञानयुक्त होना चाहिये, अिसे आज भुला दिया गया मालूम होता है।

३

प्राचीन कालमें कवि शब्दका अर्थ अलग था, आज अुसका अर्थ अलग है। आज कविका कार्य कल्पनायें दौड़ाना और सूक्ष्म जटिल भावोका सच्चा-झूठा विश्लेषण करके अुसे रोचक रूपमे व्यक्त करना है। कविका आजका क्षेत्र है मनुष्यके अनुभवो, अुसकी शकाओ और भयो, अुसकी आशाओ और आकाक्षाओ तथा अुसकी वासनाओ और अिच्छाओको शब्दबद्ध करके या अन्य प्रकारसे व्यक्त करके सर्वग्राह्य बनाना। जीवनके अिन सब विभागोमें जितनी अव्यवस्था, अनवस्था और गैर-जिम्मेदारी होती है अुतनी सब कविके काव्योमें दिखाओ पडती है। कवि शास्त्रशुद्ध विचार करनेके लिअे वचन-बद्ध नही है, कविको जिस समय जो कुछ सत्य अथवा सत्यकल्प दिखाओ देता है, अुसे वह अुसी रूपमें व्यक्त करता है। अिस दृष्टिसे कविके अुद्‌गार तत्त्वज्ञानका कच्चा माल हैं। अज्ञात प्रदेशमें खोज करनेके लिअे निकले हुअे कोलबसोको अिस बातका विश्वास नही होता कि कैसे खडोसे अुनका मिलाप होगा। भारतकी खोजके प्रयासोमें अमेरिका अुनके हाथ आयेगा और अुसीको भारत-भूमि मान लेनेका भ्रम खडा होगा। कवियोने यह स्वीकार नही किया है कि दुनियाके ज्ञान, अनुभव या श्रद्धाके साथ अुनके अुद्‌गारोका मेल बैठना चाहिये। वे यह भी नही मानते कि अुनके भिन्न भिन्न समयके अुद्‌गारोमें और भिन्न भिन्न वृत्तिके अुद्‌गारोमें कोओ मेल होना चाहिये। कविके कल्पना-विहारमें यदि आकस्मिक सयोगसे जीवन-अुपासना आ जाय और अुसके फलस्वरूप यदि अुसके अुद्‌गारोमें अेकसूत्रताका हमे दर्शन हो, तो कवि अुसे अवाछनीय नही मानता। वह आनन्द और आश्चर्यसे अुसका स्वागत करता है। परन्तु यदि अुसके अुद्‌गारोमे कोओ मेल न हो, तो भी कवि अुसे अपना दोष नही मानता। "Do I contradict myself? Well, then I contradict myself I contain multitudes"*—अिस प्रकार कहकर कवि बच निकलेगा। यदि सारे समाजमें विचारो और सिद्धान्तोकी अराजकता चलती है, तो अेक कविके मस्तिष्कमें अुसके चलनेसे आसमान नही टूट पडेगा। जिस प्रकार राजाके अनेक सलाहकार होते हैं, राज्यतत्रमें जिस प्रकार अनेक पार्टिया होती हैं, वर्षमें जिस प्रकार अनेक ऋतुअें होती हैं, अुसी प्रकार मनुष्यमे अुसके जीवन पर अधिकार करनेवाले अनेक तत्त्व रहेंगे ही। अिन्द्रियोका झुकाव, तरह तरहकी वासनाअें, कल्पनाअें, अनुभव, अतृप्त जीवन-प्रयोग, नअी-पुरानी निष्ठाअें और अधविश्वास—सब मिलकर अपने चुनावकी अुम्मीदवारी करनेके लिअे अुसके सामने खडे होगे। अिनमें मेलकी अपेक्षा कैसे रखी जाय?

कवियोके काव्य-विहारमें जिम्मेदारीकी अपेक्षा चाहे न रखी जाय, परन्तु पारमार्थिकता (seriousness) की अपेक्षा तो पूरी पूरी रखी जाती है। अुसमें

* अमेरिकन कवि वॉल्ट विटमैन।

दभ, कृत्रिमता, जान-बूझकर ठूसा हुआ असत्य अित्यादि कभी नही आने चाहिये। अुसमे 'logical consistency' भले ही न हो, किन्तु 'psychological integrity' तो होना ही चाहिये। कवि निरकुश तो है, अर्थात् बाहरी अकुशको वह स्वीकार नही करता, परन्तु अपने भीतरके स्वयभू अकुशको वह कभी भी तोड नही सकता। यदि वह अैसा करेगा, तो कवि नही रहेगा।

कविका जीवन शास्त्रशुद्ध अथवा स्मृतिशुद्ध हो चाहे न हो, परन्तु वह गहरा, वास्तविक और अधिक वीर्यवान तो होना ही चाहिये। कवि अपने जीवनमें बाहरी नियत्रणको भले न स्वीकार करे, लेकिन अिसी कारणसे अुसका जीवन अितना आर्य, विशुद्ध और अर्थमय होना चाहिये कि अुसके जीवनसे अनेक लोगोको जीवनका आदर्श और आदर्श जीवनका मापदण्ड प्राप्त हो। कविमे यदि जीवन-दारिद्रच व्याप्त हो, तो अुसके कल्पना-वैभव, अुसकी शब्द-समृद्धि तथा अुसके गगन-विहारसे दुनियाको क्या लाभ? ये सब बाहरी अुपकरण ज्यो ज्यो बढते जायगे त्यो त्यो अुसका अपना जीवन अधिक नीरस, अधिक स्वादहीन और अधिक तिरस्करणीय होता जायगा। कविकी अपेक्षा कविका काव्य अधिक भव्य होनेकी सभावना तो रहती है, किन्तु अुसका जीवन अुसके काव्यकी कुछ अगमे तो भी बराबरी करनेवाला होना चाहिये। अपने काव्यके निकट बैठनेमे कविको लज्जा नही आनी चाहिये अथवा निर्लज्जताका पोषण करनेका मौका नही आना चाहिये।

४

तत्त्वज्ञानी अेक प्रकारके कवि ही होते है। अुनमें भी कल्पनाकी, तीक्ष्ण बुद्धिकी, क्रातदर्शिताकी और तत्त्व-दर्शनकी झलक तो होनी ही चाहिये। परन्तु तत्त्वज्ञानी दूसरे अेक-दो बधनोको स्वीकार करता है। वह जो कहता है अुसमें परस्पर मेल होना चाहिये, तर्कशुद्धि होनी चाहिये, सागोपाग विवेचनकी पूर्णता होनी चाहिये। वह जो कुछ कहे अुसमे से अुठनेवाले प्रश्नोका हल अुसके पास होना चाहिये। अुसका जीवन-दर्शन सपूर्ण है, सुसगत है, यह अुसे सिद्ध करना चाहिये। अपनी बाते दूसरोके गले पूरी तरह और अच्छी तरह अुतारनेकी अुसकी तैयारी होनी चाहिये। वह चाहे जिस क्षेत्रमे विहार करे, तो भी अतमे वह बुद्धिका पुजारी है, युक्ति (reasoning) का अुपासक है। और बुद्धिका तो यह दावा है कि अुसकी बातें सदा अेकसी होती है, सार्वभौम होती है और अुनकी 'अपील' विश्वजनीन होती है। तत्त्वज्ञानमे शायद धर्मसे भी अधिक पथ खडे हुअे होगे, फिर भी बुद्धिने अपना यह दावा छोडा नही कि मेरी बात सबके गले अुतरनी ही चाहिये। लोग पूरी तरह सोचे-विचारे तो वे मेरे ही मतके बन जायेगे — अिस तरहकी आशा और अैसी प्रतिज्ञा तत्त्वज्ञान करता है। जीवन यदि केवल बुद्धिका ही बना हुआ होता, तब तो यह बात सत्य सिद्ध होती। परन्तु जीवन अेक अद्भुत रसायन है। हम जीवनका चाहे जितना विश्लेपण करे, फिर भी अुसमें

कुछ अदृष्ट तत्त्व तो रहेंगे ही। मनुष्य-जाति वयस्क बनी तबसे अुसने जीवनकी मीमासा आरभ की है। लेकिन आज भी जीवनकी गूढता मिटी नही है। जैसे जैसे ज्ञान और विश्लेषणका विकास होता जाता है वैसे वैसे जीवनकी गूढता क्षितिजकी तरह आगे ही बढती जाती है। अिस कारण तत्त्वज्ञानके अधिकाधिक परिपुष्ट होनेके बावजूद जीवनकी शोधमें, मृगयामे वह थककर पीछे ही पडता रहा है।

अिसलिअे तत्त्वज्ञानीको बार-बार ठहर कर अपने साधनोको अधिक सूक्ष्म और अधिक तीक्ष्ण करना पडता है। और तर्क जैसे प्रामाण्यवादमें अुलझ जाता है असी प्रकार तत्त्वज्ञान सदा मनोविश्लेषणमें अुलझता रहा है। तत्त्वज्ञानीने बुद्धिको तीव्र बनानेकी जरूरत तो स्वीकार की, परन्तु जीवनको शुद्ध बनाने और अुसके द्वारा जीवनका साक्षात्कार करनेकी शक्ति पानेकी जरूरतको स्वीकार नही किया। धार्मिकताने अिस कर्तव्यको निष्ठासे स्वीकार किया है।

५

कवि और तत्त्वज्ञ दोनोका समन्वय करके धर्मने ज्ञान-साधनाके लिअे जीवन-शुद्धि रूपी जीवन-साधनाकी आवश्यकताको स्वीकार किया। जीवन ही ज्ञानप्राप्ति-का अुत्तम साधन है और ज्ञानप्राप्ति होनेके बाद अुसका विनियोग भी जीवनके विकासके लिअे ही होना चाहिये, अितना समझ लेनेके बाद धर्मने कविके दर्शनकी झलक और तत्त्वज्ञानीके विश्लेपणकी मददसे साक्षात्कारका मार्ग अपनाया।

अिसमें पहले-पहले जीवन-शुद्धिकी स्पष्ट कल्पना मनुष्यको नही आअी। शुद्धिके नाम पर जीवनको शून्यरूप — तत्त्वरहित — कर डालनेवाले कितने ही पन्थ खडे हो गये। जीवनमें सयमकी आवश्यकता है, तपकी आवश्यकता है, वीर्यकी आवश्यकता है। अिन्हे प्राप्त करनेके बजाय कुछ लोगोने जीवनको जीवन-विमुख बनानेका प्रयत्न किया। हमारे वैरागियोमें अिसके कितने ही अुदाहरण मिलते है। जादू, कीमिया, जडी-बूटी, ज्योतिष और मत्र-साधना जैसी विचित्र प्रवृत्तिया वैरागियोमें दिखाअी देती रही हैं। किन्तु अुनके शून्यताके आदर्शके साथ अिन प्रवृत्तियोका मेल नही बैठ सकता। अीश्वरने जिन वृक्ष-वनस्पतियोसे मनुष्यको अलग किया, अुन्हीका जीवन फिरसे स्वीकार करना अीश्वरको पराजित करना है। अिसमे धार्मिकता नही है, तब फिर धर्म-विजय तो हो ही कैसे सकती है?

धर्मकी सच्ची प्रवृत्ति यह होगी कि वह मनुष्य-जीवनके छोटे छोटे प्रवा-होको गहरा बनाये और बादमें अुन्हे अुचित दिशामें मोडकर अुन्हे बलवान और वेगवान प्रवाहोका रूप दे।

तत्त्वज्ञानमें अनेक वाद अुत्पन्न होते हैं। धर्म जीवत वस्तु है, अिसलिअे अुसमें अनेक पथ और साधनायें स्थापित हो जाती हैं। लेकिन अिसे हम भूल नही सकते कि जब तक जीते-जागते लोगोंके हाथमें ये पथ और साधना-क्रम रहते हैं तब तक ये प्रयोगके रूपमे ही रहते है। लेकिन बादमें जड लोग अिन प्रयोगोको

सिद्ध हुअे तत्रोका रूप दे देते हैं और नये या अधिक अनुभवोका लाभ अुठानेसे इनकार करते है। पथोके वढनेसे कोअी नुकसान नही है, लेकिन न्यायवुद्धिको अिन प्रयोगोके परिणामका आदान-प्रदान करनेकी तैयारी रखनी चाहिये। वुद्ध भगवानने अेकातिक तपस्याके मार्गका अनुभव करके अुसकी व्यर्थताकी घोपणा की। अुनके प्रयोगोके अिस निष्कर्पको कुछ लोगोने अतिम माना और कुछ लोगोने पहलेसे ही अुसका विरोव किया। भौतिकशास्त्री तटस्थ रहकर अपने सिद्धान्त स्थापित करते है और अुन्हे छोडते हैं, वार-वार अुन्हे जाचते है और सुधारते है और अपने अनुभवके प्रति ही वे वफादार रहते हैं। धर्ममार्गमें भी अैसा ही होना चाहिये। किन्तु अिस मार्गमें व्यक्तिनिष्ठा, ग्रथनिप्ठा अथवा वचन-निष्ठा, मताग्रह, दलवदी और पक्षाभिमान वाधक सिद्ध हुअे है, और सत्ताका लोभ अिसमे घुस जानेसे ये सभी भ्रष्ट हुअे हैं। धर्म यदि जीवत न रहें, तो वे विपैले वनकर सारे जीवनको नष्ट कर देते हैं। धर्म जैसी तीव्र प्रभावकारी वस्तुकी विकृति मारक ही सिद्ध हो सकती है।

६

कवि, तत्त्वज्ञ और धर्मज्ञ तीनोने देखा कि कुछ ऐसी अमर श्रद्धायें होती है, जो कल्पनासे भिन्न, अनुभवसे परे और साधनाके लिअे प्रेरक होती हैं। यह कहना कठिन है कि ये श्रद्धाये कहासे आती हैं, कैसे मनुष्यको पकडती है और किस वातमे अुनकी शक्ति समायी हुअी है। ये श्रद्धायें सव मनुष्योको समान रूपसे नही पकडती। प्रत्येक युगमें अिनका स्वरूप वदलता है, अिनके नये नये अवतार होते है और अिसीलिअे प्रत्येक युगको अपना वैशिष्टच प्राप्त होता है। सभी मनुष्य वुद्धिका प्रयोग करते है। परन्तु वुद्धिमें ये श्रद्धायें मिली रहती है, अिसलिअे दर्शनो और पथोकी विविधता अुत्पन्न होती है। अहिसा अिसी प्रकारकी अेक स्वयभू श्रद्धा है। गाधीजीने अुसे सत्यसे निकालनेका प्रयत्न किया है। परन्तु अैसा करनेके लिअे सत्यके रूपको ही गूढ वनाना पडता है। और अतमे हम जहा थे वहीके वही रह जाते हैं। अहिसा अेक स्वयभू, अमर श्रद्धा है और वह जीवनके काव्य, जीवनके तत्त्वज्ञान, जीवनकी साधना और जीवनके साक्षात्कार सभीमे प्रवेश करती है।

आज हमारे देगमें जो जीवन-चर्चा चलती है अुसके पीछे जाने-अनजाने भी अहिसाका तत्त्व रहता है, अिस वातको हम समझ लें तो ही हमारी चर्चा विगद और फलप्रद वनेगी।

७

जीवन-चर्चामें अेक वातका हमें ध्यान रखना चाहिये। तर्ककी कसौटी पर जो चीज अशुद्ध और अपवित्र सावित हो, अुसे हम अपनी अिस चर्चामें जरा भी स्थान नही देंगे। परन्तु जिन प्रश्नोके सामने तर्क स्वय ही थककर

रुक जाये, वहा तर्कके दोषकी वजहसे हम प्रश्नोको अुडा नही देंगे। मनुष्यका जीवन तर्कबुद्धिके जितना सरल नही है। असख्य विरोधी वस्तुओका समन्वय करके जीवन स्थिर और प्रवृत्त हुआ है। अुसकी सरल मीमासा करने जायगे, तो अतमें वह ब्याज-सहित हमसे बदला लेगा। अिसलिअे तर्कका पूरा-पूरा लाभ अुठाते हुअे भी अुसके निर्णयोको हम सावधानीके साथ ही स्वीकार करे।

ध्यानमें रखने लायक दूसरी बात यह है कि जीवनकी मीमासामें अनुभवके विरुद्ध कोअी बात नही आनी चाहिये। साथ ही, अुसमें मानव-जीवनकी अमर श्रद्धाओका द्रोह भी नही होना चाहिये। मेरा विश्वास है कि प्राचीन विचारकोने अिस बातकी सावधानी रखी थी। परन्तु अुनका अनुभव अधूरा था, अनुभव पर विचारोका प्रकाश डालनेकी अुनकी शक्ति स्थूल थी और निश्चित किये हुअे निर्णयोकी पुन जाच करनेकी अुनकी प्रयोग-वृत्ति मद थी, अिसीलिअे प्राचीन तत्त्वज्ञान अपने समयके लिअे ठोस और सच्चा होते हुअे भी आज वह हमारा पर्याप्त दिशादर्शक नही बन सकता।

परन्तु आज दुनियामें जितने भी महान धर्म प्रचलित हैं, वे सब अनेक दृष्टियोसे जीवनकी मीमासा ही है। अुनके पीछे प्रयोग-वीरोका गहन अनुभव है, अिसीलिअे अुनके सिद्धान्त सहज भावसे हमारे आदरके पात्र बनते है। अुन पर कोअी विचार किया ही नही जा सकता, अैसा मानना पुरानी भूल है। तर्कके अेक झटकेसे अुन्हे अुडा देना आजकी भूल है। अनेक अधूरे सिद्धान्तोका घेरा खडा करनेसे हम गोल-गोल जरूर घूमेंगे, लेकिन प्रगति जरा भी नही कर सकेंगे।

अर्धसत्योको ले अुडना — अुन्हे बिना सोचे-विचारे ही स्वीकार कर लेना आजके जमानेकी विशेषता है। अर्धसत्योमें हमेशा अधिक जोश होता है। अुनमें परिणामोके बारेमें गैर-जिम्मेदारी भी अुतनी ही रहती है। अर्धसत्य सदा आक्रमण करनेमें विश्वास रखते है। अुनका यह स्वभाव सदा दोषरूप ही होता है, अैसा नही कहा जा सकता। जो व्यक्ति सारे पहलुओको देख सकता है और हर पहलूकी सुन्दरताकी ओर बारी-बारीसे झुक जाता है, अुसमें कार्य करनेका जोश और अुत्साह कम रहता है। वह परस्पर विरोधी दलीलोका चिन्तन करनेमें लगा रहता है।

चौतरफा विचार करनेके बाद अतमें आचरणकी अेक स्पष्ट दिशा निश्चित होनी ही चाहिये और अपनी सारी शक्ति हमें अुसी दिशामें प्रवाहित करते आना चाहिये। परिस्थितियोमें परिवर्तन न हो तब तक अुसी दिशा और अुसी अुपायको दृढतासे पकडे रहनेकी शक्ति भी हममें होनी चाहिये। यह शक्ति हममें आध्यात्मिक चरित्रके बिना नही आ सकती। पुराना जमाना

यदि अपरिवर्तनशील माना जाता है, तो आजका जमाना परिणामका विचार किये विना, 'स्वभाव है अिसीलिअे' परिवर्तन करनेमे विश्वास रखनेवाला हो गया है। 'नव नव प्रीतिकर नराणाम्' यह मानवका स्वभाव है, धर्म नही। परन्तु आज जनसमुदाय अपने स्वभावके ही वश होकर आचरण करता है। जहा चरित्रकी दृढताकी आवश्यकता है, जहा पतवार पर मजबूत हाथ रखकर नौकाको अेक ही दिशामें चलाना जरूरी है, वहा आज निष्ठाकी यह अेकाग्रता बहुत मद पडी हुअी दिखाअी देती है। लोग प्रतिज्ञा-पालनमें दुर्बल हो गये हैं और चचल वस्तुओमे निष्ठा रखनेवाले बन गये है। आज जीवन-मीमासा और जीवन-चर्चा कितनी ही क्यो न चले, परन्तु विचारपूर्वक कष्ट सहकर जीवनकी भावना करनेवाले लोगोके अुदाहरण बहुत कम मिलते है।

८

सस्कृति किसे कहा जाय, यह अभी तक पूरी तरह स्पष्ट नही हुआ है। अेक समय अैसा था जब कि नैतिक जीवन, चरित्रकी दृढता, आर्यत्व ही सस्कृतिका आधार माने जाते थे। आज परिस्थितिया बदल गअी हैं। तरह तरहके अनुभव करना, प्रसगानुसार अथवा बिना कारण परिवर्तन करना, धैर्यके साथ परिणामोकी जाच न करना — यह आजका स्वभाव बन गया है। सदाचार और चरित्रके आग्रहके बिना यदि सस्कृतिका निर्माण किया जा सके, तो आज जनताको यही चाहिये। कोअी व्यक्ति चरित्रका सीधा विरोध नही करता। सदाचारके आदर्शमे आवश्यक शुद्धि और परिवर्तन भी होता है। परन्तु आज अनेक जगह यह वृत्ति दिखाअी देती है 'चरित्रका विकास प्रत्येक मनुष्यका व्यक्तिगत प्रश्न है, अिसके आधार पर समाजका और राज्य-व्यवस्थाका विचार किया ही नही जा सकता।'

अिसलिअे चरित्रके स्थान पर आज सस्कृतिके लिअे भौतिक साधन-शक्ति, बौद्धिक विकासकी सूक्ष्मता, राज्यतत्रकी स्थिरता, कलाकी विशिष्टता आदि अन्य बातोका आधार खोजा जाता है। अिसके फलस्वरूप प्रत्येक सामाजिक प्रयोगकी स्थिति वैसी ही हो जाती है जैसी जकातसे बचनेके लिअे सारी रात जगलमे भटक कर सवेरे ठीक जकात-नाकेके सामने ही आकर खडी होनेवाली गाडीकी होती है। और अतमें हमारी गाडी अिस अनुभव पर आकर रुक जाती है कि नैतिक प्रगति किये सिवा कोअी चारा नही है। दुनियाका आधुनिक अर्थशास्त्र सदाचारशास्त्रसे बचनेका मिथ्या प्रयत्न करता है, दुनियाकी व्यावहारिक राजनीति भी नीतिका दभ करके नीतिशून्य ढगसे काम करना चाहती है तथा शिक्षामें नीतिका आग्रह रखनेके बारेमें लोग अधिकाधिक साशक होने लगे हैं। अिस प्रकार जीवन-साधनामे सदाचारका, नीतिका अश अथवा अकुश जितना कम किया जा सके अुतना कम करनेकी वृत्ति आज लोगोमे बढ रही है।

९

पुराणोमे अेक कथा है। अेक खोये हुअे राजाको ढूढनेके लिअे असकी रानी त्रिखण्डमें घूमी, लेकिन अतमें थककर रानीने राजाकी बाहरी खोज छोड दी। अुसने सोचा कि जो ब्रह्माण्डमें है वह पिण्डमें होना ही चाहिये। अिसलिअे रानीने अपने मनको शात, निश्चल और निर्विकार बनाकर अपने भीतर ही राजाकी खोज शुरू की। जितना ब्रह्माण्ड बाहर है अुतना ही मेरे भीतर भी है, अिसलिअे ध्यानके द्वारा भीतरकी सृष्टिमें राजाका पता लगना ही चाहिये —अैसा सोच कर रानीने अपने भीतर राजाकी खोज की और अिसमें अुसे सफलता मिली। पुराण तो अैसा ही लिखेंगे। आज भी अगर हमारी कोअी चीज खो जाय और हम सारी दुनियामें अुथल-पुथल मचानेके बजाय थोडा रुककर सोचें कि वह चीज कहा थी, कहा तक हमें अुसका स्मरण है, वह कहा रखी हुअी होनी चाहिये, तो कम प्रयत्नमें अुसके मिलनेकी अधिक सभावना रहती है।

अिसी प्रकार किसी विषयमें अधे होकर अनेक प्रयोग करनेके बजाय यदि हम पहले मनमें ही सोचें और अपने जैसे विचार रखनेवाले लोगोके साथ चर्चा करें, तो जीवनमें समय और शक्तिका कितना ही अपव्यय करनेवाले प्रयोगोकी अपेक्षा मनमें — विचार-क्षेत्रमे — ही मनन तथा चर्चाके रूपमें प्रयोग करके हम कीमती निर्णय पर पहुच सकते हैं, अैसा करनेसे हमारी शक्तिका सग्रह भी होता है। जो प्रजा फलदायी चर्चाका शास्त्र जानती है, वह अनेक गलतियोसे बच जाती है। किसी भी निर्णय पर आनेके पहले हम जो विचारक-समिति नियुक्त करते हैं अुसका यही अुद्देश्य होता है।

लोक-शिक्षणकी दृष्टिसे आम जनताके लिअे अिस समितिका निर्णय जानना जितना जरूरी है, अुससे अधिक जरूरी और महत्त्वपूर्ण है निर्णयसे पूर्व हुअी अनेक-विध चर्चाको जानना और अुसके मर्मको समझना। अिस प्रकार जीवन-चर्चा सामाजिक शक्तिको बचाने और बढानेका अेक साधन है। अैसी चर्चामें सर्व-समत और अेक लक्ष्यवाले निर्णय पर पहुचनेकी आशा शायद ही रखी जायगी। परन्तु अितना तो निश्चित है कि अुससे समाजकी विचार-शक्ति और आचार-दृष्टि अधिक शुद्ध होगी।

१०

प्राचीन कालमें समाज-तत्र अेकसी गतिसे चला करता था। अुसके कुछ बाह्य नियमोमें सामान्य परिवर्तन भले ही हो जाय, परन्तु अिन प्रश्नोकी गहराअीमें कोअी नही अुतरता था कि समाजकी बुनियाद कैसी है और समाज किन तत्त्वोके आधार पर चलता है। और यदि कोअी अुतरता भी था तो समाज-रचनाकी कोअी काव्यमय पौराणिक अुपपत्ति देकर ही सतोष मान लेता था। अुस समय लोगोमें कुछ अिस प्रकारकी वृत्ति थी कि समाज कोअी अगम्य गूढ वस्तु है,

वह स्वयगतिक है, हमे समाजका स्पर्श करनेसे डरना चाहिये। आज अिस अगम्यताको तोडनेके प्रयत्न चल रहे हैं। कोअी वस्तु गूढ है—अगम्य है—अिसलिअे वह पवित्र है, अिस प्रकारकी मनोवृत्तिको आज कोअी बरदाश्त नही कर सकता। आज यह मनोवृत्ति दिनोदिन बढ रही है कि समाज-जीवनकी जड़ें हम सोचते थे अुतनी गूढ और दुर्बोध हैं ही नही। गायका जबडा बडा होगा तो वह अधिक घास खायेगी, अुसकी नाक चौडी होगी तो वह अधिक श्वास लेगी, अुसके थन बडे होगे तो वह अधिक दूध देगी। बस, अितनी बातो परसे अच्छी गायके लक्षण निश्चित कर लीजिये; अिससे अधिक अिसमें कोअी गूढ बात है ही नही—यह कहनेकी ओर आजके गोपालनशास्त्रकी वृत्ति रहती है। गुणभेदका विश्लेषण करते करते वह परिमाण-भेद पर आ पहुचता है, अिसलिअे अिसमे रहस्य जैसी कोअी बात है ही नही, अैसा सिद्ध किया जा सकता है। यह आजकी मान्यता है।

गूढवाद आज जितना कम हो सके अुतना ही अच्छा है। अज्ञान और आलस्यसे गूढभावको जन्म देना मनुष्यके लिअे शोभाकी बात नही है। प्रत्येक वस्तु अमीमास्य है—अैसा कह देनेमें श्रद्धा नही परतु जडता है, यह हमें समझना चाहिये। अिसके साथ हमें यह भी जानना चाहिये कि किसी वस्तुकी अुतावलीमें की गअी मीमासा महत्त्वपूर्ण तत्त्वोको भुला देती है और अतमें 'घट्टकुटी प्रभात-न्याय'से सवेरा होने पर मूल कठिनाअीका 'जकात-नाका' तो हमारे सामने खडा ही रहता है।

११

और, अतमें विविध प्रकारकी जीवन-चर्चा करनेका फल क्या है? हमें सारे जीवन और अेक पूरी सदी तक वाग्वर्धिनी सभा नही चलानी है। पीढी दो पीढी तक भरपेट चर्चा करनेके बाद मनुष्य-जीवनको अेक विशिष्ट दिशा मिलनी ही चाहिये।

मेरी कल्पनाके अनुसार ठेठ प्राचीन कालमें लोग केवल स्फूर्तिसे ही विचार करते थे। अेकाध भव्य विचार मनमे स्फुरित हुआ कि अुससे मोहित होकर वे अपना समस्त जीवन अुसी विचारको अर्पण कर देते थे। अुस जमानेके लोग अलौकिक प्रयोग-वीर थे। अुसके पश्चात् तर्कबुद्धिका विकास होने पर चर्चाका युग आरभ हुआ। मनुष्य-जाति प्रौढ बनी। मैं मानता हू कि ६०० अीस्वी पूर्वके आस-पासके १००–२०० वर्ष मनुष्य-जातिके प्रौढ बननेका काल बताते हैं। अुस कालमें ससारके सभी देशोमें चर्चायें चलती थी, भव्य सवादोका आयोजन किया जाता था और सिरकी बाजी लगाकर वाद-विवाद होता था। जरतुश्त, सुकरात, याज्ञवल्क्य, बुद्ध भगवान, महावीर—ये सभी समकालीन थे अैसा तो कोअी नही कहेगा, किन्तु ये सब मानव-बुद्धिकी प्रथम प्रगल्भताके प्रतिनिधि अवश्य थे।

अुसके बाद जीवनने जो नया मोड़ लिया, अुसमें भक्ति-सम्प्रदायका अधिक विकास हुआ, सामाजिक सस्थाओकी स्थायी रचना हुअी, विविध कलाओ तथा विद्याओका अुदय हुआ और मध्ययुगका वैभव प्रकट हुआ।

अब मानव-जाति अेक महान परिर्वतनके समीप आ पहुची है। अिस मौसमकी फसल कैसी होगी, अिस प्रश्नका अुत्तर हमारे जीवनकी अुत्कटता और पारमार्थिकता पर आधार रखता है। जमीनमें खूब अच्छा कस हो, पानी अुचित मात्रामें हो और हवा-बरसात अनुकूल हो, तो खेतकी फसल सुन्दर आनी ही चाहिये। परन्तु यदि कोअी जमीन जोतनेका पुरुषार्थ ही न करे, और जोते तो भी अुसमें अच्छे बीज न बोये, तो दोष मौसमका नही माना जायगा।

अब मानव-जीवन महान परिवर्तनके बिन्दु पर खडा है। अिसमें जो सकल्प बोये जायगे, जो प्रयोग आजमाये जायगे और जिन प्रेरणाओ पर अमल किया जायगा, वे अेक भव्य, व्यापक और तेजस्वी सस्कृतिका रूप ग्रहण करेंगे। परन्तु अिसके लिअे श्रद्धाको ही अपना धन समझनेवाले प्रयोग-वीरोकी आवश्यकता है। यदि मनुष्य क्षुद्र वासनाओ और तुच्छ आदर्शोंके वश हो जाय, यदि मनुष्य अुत्तुग महत्त्वाकाक्षाओके लिअे शास्त्रीय निष्ठा तथा फकीरकी लापरवाहीसे अपना जीवन न्योछावर करनेके लिअे तैयार न हो, तो यह मौसम बेकार जायगा। प्रतिदिनके सुख, प्रतिदिनकी सुरक्षितता और पामर विलासितामें ही यदि मनुष्य सतोष माने, तो जमानेकी असाधारण परिस्थितियोके कारण ही अुसके जीवनमें विकृति आ जाती है और जीवन सड जाता है। परन्तु यदि मनुष्य महासागरके भयानक तूफानमें भी कूद पडनेकी हिम्मत करे, यदि वह प्राणोकी बाजी लगानेको तैयार हो जाय, तो निश्चित रूपसे वह अैसी महान सस्कृति तथा अलौकिक प्रगतिका स्वामी बन जायगा जिसकी आज तक कभी कल्पना नही की गअी थी। पारमार्थिक चर्चाके अतमें वीर्यवत्तर — अधिक शक्तिशाली — जीवनका विकास होना चाहिये। अुस जीवनसे जो नया मानव जन्म लेगा, वह मनुष्य-जातिको सर्वथा नअी दिशा प्रदान करेगा। हम अिन महान सकल्पोसे परिचित बनें, अुनका आह्वान करें, अुनकी दीक्षा लें और अुनके रगमें रग जाय।

१२

हमें अज्ञात किन्तु अुज्ज्वल भविष्यमें छलाग मारनी है।

७

महाभारत

अुपनिषद्-कालके गुरु-शिष्य-सवादो तथा सरल जीवन-पद्धतिके वाद हमें मध्यदेशके और अिन्द्रप्रस्थके महाराज्योका दर्शन होता है।

हस्तिनापुरके राजा शान्तनुको बुढापेमे दूसरी वार विवाह करनेका मोह हुआ और वह भी अेक धीवरकी पुत्रीके साथ! और यहीसे महाभारतकी दुर्दशाका आरभ हुआ। पिताकी अिस अिच्छाको पूरी करनेके लिअे भीष्मने आजीवन ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा की और राजपदका त्याग करके यथाशक्ति राजसेवा करनेका व्रत लिया। शान्तनुके वादके राजा अच्छे नही निकले। विचित्रवीर्य वहुत छोटी अुमरमें मर गया। धृतराष्ट्र जन्मसे अधा था और पाडु पाडुरोगसे मर गया। अुसके वाद राजगद्दीके लिअे धृतराष्ट्रके पुत्रो और पाडुके पुत्रोमें झगडा शुरू हुआ। दुर्योधनने अनेक प्रकारसे कपट-जाल रचा और पाडव हर वार अुस जालमे फसे। विदुर और श्रीकृष्ण पाडवोके सहायक थे, अिसलिअे हर वार पाडव जैसे-तैसे दुर्योधनके जालसे बाहर निकल जाते थे। अतमें युधिष्ठिर दुर्योधनके साथ जुआ खेलनेको तैयार हुआ और अुसमें हारा। पाच भाअियोकी पत्नी द्रौपदीको भी युधिष्ठिरने दाव पर लगा कर खो दिया! अतमें यह शर्त तय हुअी कि पाडव वारह वर्षका वनवास और अेक वर्षका अज्ञातवास पूरा करें, तो अुनका राज्य अुन्हें लौटा दिया जाय। बारह वर्ष तो आसानीसे कट गये। तेरहवें वर्षमे पाडव विराट नगरीमें गुप्त रूपमें रहे। अज्ञातवासका वर्ष मुश्किलसे पूरा हुआ होगा कि अितनेमें पाडवोको क्षात्रधर्मके अनुसार गायोका रक्षण करनेके लिअे प्रकट होना पडा। अिससे यह विवाद अुठा कि अज्ञातवासका अेक वर्ष पूरा हुआ या नही। चन्द्रकी गतिके अनुसार वर्ष गिना जाय अथवा सूर्यकी गतिके अनुसार, अिसकी चर्चा चली, और अतमें रणकी शरण लेनेका निर्णय हुआ। अिस भारतीय युद्धमें भारतके लगभग सभी राजा शामिल हुअे थे। दोनो पक्षोकी कुल अठारह अक्षौहिणी चतुरग सेना कुरुक्षेत्र पर अेकत्रित हुअी। अठारह दिन तक यह युद्ध चला और युद्धके अतमें दोनो पक्षोके कुल अठारह मनुष्य वचे। पाडवोकी विजय तो हुअी, परन्तु युधिष्ठिरको हाथ मल कर कहना पडा कि यह जय तो पराजयसे भी वुरी है। अधर्मकी सडाध खूब फैली हुअी थी। धर्म-सवधी वाद-विवाद करनेमें प्रत्येक व्यक्ति प्रवीण था। महाभारतके युद्धमें वचे हुअे काठियावाडके यादव अुन्मत्त वनकर परस्पर लडने लगे। अतमें वहा भी भयकर गृहयुद्ध हुआ और सहार-कार्य पूरा हुआ। अुसके

बाद परीक्षितका राज्य आरभ हुआ। तक्षक नामके नाग राजाने आक्रमण करके अुसका वध किया। अर्जुनने खाडव वनको जलाकर नागकुलका जो नाश किया था, अुसीका यह बदला था। परीक्षितके बाद जन्मेजयने नाग लोगोसे बदला लेनेके लिअे अेक सत्र आरम किया। हिंसा और प्रतिहिंसा जोरोसे चली। परन्तु नागकन्याके अुदरसे अुत्पन्न हुअे आस्तिक नामक अेक ब्राह्मणकी मध्यस्थतासे यह विग्रह शात हुआ और विग्रहसे अूबी हुअी भारतभूमिको अतमें शाति मिली। अुसके बाद क्या हुआ, अिसका निश्चित अितिहास नही मिलता। परन्तु वैरसे वैर शात नही होता, क्षमासे ही वैर शात होता है—अितना पाठ भारत-भूमिने भारतीय युद्ध, यादवोके गृहयुद्ध और जन्मेजयके सर्पसत्रसे सीखा, अैसा कहें तो गलत नही होगा।

अिस भारतीय युद्धके समकालीन कृष्ण-द्वैपायनने (अिन्हीको वेदव्यास कहा जाता है) अुस युद्धका तथा अुस समयका सपूर्ण वर्णन जय अथवा महाभारत नामक अेक विशाल ग्रथमें लिख रखा है। महाभारत ससारके बडेसे बडे ग्रथोमें से अेक है। व्यासने जिस रूपमें यह ग्रथ लिखा होगा अुसी रूपमे तो आज वह हमारे पास नही है। अिस महान राष्ट्रीय ग्रथके अनेक बार राष्ट्रीय सस्करण हुअे हैं।

रामायणमें भारतवर्षका आदर्श चित्रित किया गया है, जब कि महा-भारतमें अनेक अच्छी और बुरी वासनाओसे पीडित महान जन-समुदायका यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। भारतके असख्य पहाडोसे हिमालय अपनी अुत्तुगताके कारण अलग पडता है, अुसी प्रकार महाभारतमें दो नरवीर श्रीकृष्ण और भीष्म सबसे अलग पडते हैं। दोनो ही घटना-जालके सूत्रधार होते हुअे भी परि-णामके बारेमे कोअी परवाह नही करते। भीष्माचार्य विरोधी पक्षके सूत्रधार हैं, फिर भी श्रीकृष्णके परम भक्त हैं। वे अत्यन्त स्वार्थत्यागी, प्रतिज्ञा-निष्ठ, ब्रह्म-चारी और तपस्वी हैं। फिर भी निष्ठाबद्ध होनेके कारण यह जानते हुअे भी कि अुनका पक्ष असत्का पक्ष है, वे अुसे छोड नही पाते। 'अर्थस्य पुरुषो दास.' जैसा दीन वचन कहकर अुन्हे अपने आचरणका समर्थन करना पडता है, जब कि श्रीकृष्ण अैसी कोअी जिम्मेदारी स्वीकार ही नही करते। वे सारे परिणामोको पहलेसे ही जानते हैं। भीष्म यदि अर्थके दास हैं, तो श्रीकृष्ण प्रेमभक्तिके दास हैं। भीष्मकी कर्तव्य-निष्ठा अलौकिक है, श्रीकृष्णकी अनासक्ति दैवी है। भीष्माचार्यने निष्काम कर्म किया और फलकी सारी व्यवस्था अीश्वर-भावसे श्रीकृष्णने की।

रामायणकी सीता और महाभारतकी द्रौपदी अपने रूपकी तरह स्वभावमें भी विरोधी हैं, फिर भी दोनो अपने अपने ढगसे आदर्श नारिया हैं। सीताका सर्वार्पण आदर्श है, जब कि द्रौपदीकी तेजस्विता अनुकरणीय है। यही कारण है

७

महाभारत

अुपनिषद्-कालके गुरु-शिष्य-सवादो तथा सरल जीवन-पद्धतिके वाद हमें मध्यदेशके और अिन्द्रप्रस्थके महाराज्योका दर्शन होता है।

हस्तिनापुरके राजा शान्तनुको वुढापेमें दूसरी वार विवाह करनेका मोह हुआ और वह भी अेक धीवरकी पुत्रीके साथ। और यहीसे महाभारतकी दुर्दशाका आरभ हुआ। पिताकी अिस अिच्छाको पूरी करनेके लिअे भीष्मने आजीवन ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा की और राजपदका त्याग करके यथाशक्ति राजसेवा करनेका व्रत लिया। शान्तनुके वादके राजा अच्छे नही निकले। विचित्रवीर्य वहुत छोटी अुमरमें मर गया। धृतराष्ट्र जन्मसे अधा था और पाडु पाडुरोगसे मर गया। अुसके वाद राजगद्दीके लिअे धृतराष्ट्रके पुत्रो और पाडुके पुत्रोमें झगडा शुरू हुआ। दुर्योधनने अनेक प्रकारसे कपट-जाल रचा और पाडव हर वार अुस जालमें फसे। विदुर और श्रीकृष्ण पाडवोके सहायक थे, अिसलिअे हर वार पाडव जैसे-तैसे दुर्योधनके जालसे वाहर निकल जाते थे। अतमें युधिष्ठिर दुर्योधनके साथ जुआ खेलनेको तैयार हुआ और अुसमें हारा। पाच भाअियोकी पत्नी द्रौपदीको भी युधिष्ठिरने दाव पर लगा कर खो दिया। अतमें यह शर्त तय हुअी कि पाडव वारह वर्षका वनवास और अेक वर्षका अज्ञातवास पूरा करें, तो अुनका राज्य अुन्हें लौटा दिया जाय। वारह वर्ष तो आसानीसे कट गये। तेरहवे वर्षमें पाडव विराट नगरीमें गुप्त रूपमें रहे। अज्ञातवासका वर्ष मुश्किलसे पूरा हुआ होगा कि अितनेमें पाडवोको क्षात्रधर्मके अनुसार गायोका रक्षण करनेके लिअे प्रकट होना पडा। अिससे यह विवाद अुठा कि अज्ञातवासका अेक वर्ष पूरा हुआ या नही। चन्द्रकी गतिके अनुसार वर्ष गिना जाय अथवा सूर्यकी गतिके अनुसार, अिसकी चर्चा चली, और अतमें रणकी शरण लेनेका निर्णय हुआ। अिस भारतीय युद्धमें भारतके लगभग सभी राजा शामिल हुअे थे। दोनो पक्षोकी कुल अठारह अक्षौहिणी चतुरग सेना कुरुक्षेत्र पर अेकत्रित हुअी। अठारह दिन तक यह युद्ध चला और युद्धके अतमें दोनो पक्षोके कुल अठारह मनुष्य वचे। पाडवोकी विजय तो हुअी, परन्तु युधिष्ठिरको हाथ मल कर कहना पडा कि यह जय तो पराजयसे भी वुरी है। अधर्मकी सडाध खूव फैली हुअी थी। धर्म-सवधी वाद-विवाद करनेमें प्रत्येक व्यक्ति प्रवीण था। महाभारतके युद्धमें वचे हुअे काठियावाडके यादव अुन्मत्त वनकर परस्पर लड़ने लगे। अतमें वहा भी भयकर गृहयुद्ध हुआ और सहार-कार्य पूरा हुआ। अुसके

बाद परीक्षितका राज्य आरभ हुआ। तक्षक नामके नाग राजाने आक्रमण करके अुसका वध किया। अर्जुनने खाडव वनको जलाकर नागकुलका जो नाश किया था, अुसीका यह बदला था। परीक्षितके बाद जन्मेजयने नाग लोगोसे बदला लेनेके लिअे अेक सत्र आरभ किया। हिंसा और प्रतिहिंसा जोरोसे चली। परन्तु नागकन्याके अुदरसे अुत्पन्न हुअे आस्तिक नामक अेक ब्राह्मणकी मध्यस्थतासे यह विग्रह शात हुआ और विग्रहसे अूबी हुअी भारतभूमिको अतमें शाति मिली। अुसके बाद क्या हुआ, अिसका निश्चित अितिहास नही मिलता। परन्तु वैरसे वैर शात नही होता, क्षमासे ही वैर शात होता है — अितना पाठ भारत-भूमिने भारतीय युद्ध, यादवोके गृहयुद्ध और जन्मेजयके सर्पसत्रसे सीखा, अैसा कहें तो गलत नही होगा।

अिस भारतीय युद्धके समकालीन कृष्ण-द्वैपायनने (अिन्हीको वेदव्यास कहा जाता है) अुस युद्धका तथा अुस समयका सपूर्ण वर्णन जय अथवा महाभारत नामक अेक विशाल ग्रथमें लिख रखा है। महाभारत ससारके बडेसे बडे ग्रथोमें से अेक है। व्यासने जिस रूपमें यह ग्रथ लिखा होगा अुसी रूपमें तो आज वह हमारे पास नही है। अिस महान राष्ट्रीय ग्रथके अनेक बार राष्ट्रीय सस्करण हुअे हैं।

रामायणमें भारतवर्षका आदर्श चित्रित किया गया है, जब कि महा-भारतमें अनेक अच्छी और बुरी वासनाओसे पीडित महान जन-समुदायका यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। भारतके असख्य पहाडोसे हिमालय अपनी अुत्तुगताके कारण अलग पडता है, अुसी प्रकार महाभारतमें दो नरवीर श्रीकृष्ण और भीष्म सबसे अलग पडते हैं। दोनो ही घटना-जालके सूत्रधार होते हुअे भी परि-णामके बारेमें कोअी परवाह नही करते। भीष्माचार्य विरोधी पक्षके सूत्रधार हैं, फिर भी श्रीकृष्णके परम भक्त हैं। वे अत्यन्त स्वार्थत्यागी, प्रतिज्ञा-निष्ठ, ब्रह्म-चारी और तपस्वी हैं। फिर भी निष्ठावद्ध होनेके कारण यह जानते हुअे भी कि अुनका पक्ष असत्का पक्ष है, वे अुसे छोड नही पाते। 'अर्थस्य पुरुषो दास.' जैसा दीन वचन कहकर अुन्हें अपने आचरणका समर्थन करना पडता है, जब कि श्रीकृष्ण अैसी कोअी जिम्मेदारी स्वीकार ही नही करते। वे सारे परिणामोको पहलेसे ही जानते हैं। भीष्म यदि अर्थके दास हैं, तो श्रीकृष्ण प्रेमभक्तिके दास हैं। भीष्मकी कर्तव्य-निष्ठा अलौकिक है, श्रीकृष्णकी अनासक्ति दैवी है। भीष्माचार्यने निष्काम कर्म किया और फलकी सारी व्यवस्था अीश्वर-भावसे श्रीकृष्णने की।

रामायणकी सीता और महाभारतकी द्रौपदी अपने रूपकी तरह स्वभावमें भी विरोधी हैं, फिर भी दोनो अपने अपने ढगसे आदर्श नारिया हैं। सीताका सर्वार्पण आदर्श है, जब कि द्रौपदीकी तेजस्विता अनुकरणीय है। यही कारण है

कि शास्त्रकारोने दोनोको अेक ही श्लोकमें पास पास रखकर प्रात स्मरणीय वना दिया है।

महाभारतका समय अर्थात् श्रीकृष्ण, भीष्म और युधिष्ठिर, जरासध और भीम तथा कर्ण और अर्जुनका समय। अुसी समय यवन और नाग लोग भी भारतमें आये। अफगानिस्तान और तिव्वतके साथ आजकी अपेक्षा अुस समय भारतका अधिक सवध था। कुन्ती और माद्री, द्रौपदी और गांधारी, सत्यभामा और रुक्मिणी, अुत्तरा और चित्रागदा सव दूर-दूरकी राजकन्याये कुरुकुलमें व्याही गअी थी।

विद्वानोकी यह मान्यता है कि आज महाभारत जिस रूपमे हमारे सामने है, वह रूप सन् ४०० के आसपास अर्थात् आजसे लगभग डेढ हजार वर्ष पूर्व निश्चित हो चुका होगा।

१९२३

८

महाभारतका आस्वाद

महाभारतको ज्यो ज्यो हम अधिक पढते है त्यो त्यो अुसके प्रति हमारा आदर वढता ही जाता है। 'प्रतिपर्वं रसावहम्' जैसी महाभारतकी प्रशसा तो सामान्य मालूम होने लगती है। महाभारतके लिअे यदि कोअी अेक विशेषण शोभा देनेवाला हो, तो वह है 'आर्यभव्य'। रामायण यदि वीणा-मधुर है, तो महाभारत मेघ-गभीर है। महाभारतने अत्यन्त गहराअीमें अुतर कर मनुष्य-स्वभावकी थाह ली है।

महाभारतकारने चरित्र-चित्रणमें अपने सपूर्ण शक्ति-वैभवका अुपयोग सकल्प-शिथिल धृतराष्ट्रका तादृश और सुन्दर चित्र प्रस्तुत करनेमें किया है। वह अधा राजा कुछ भी नही करता। वह सवकी वात केवल सुनता ही रहता है, फिर भी आरभसे अत तक हम अुसे नजरके सामनेसे दूर नही रख सकते। पद-पद पर दैवकी महत्ताका वर्णन करनेवाला यह राजा दैवकी साक्षात् मूर्ति है। सव-कुछ जानते-वूझते हुअे भी जैसे दैव अधा है वैसे धृतराष्ट्र भी अधा है। भीष्म, विदुर और सजयके समान सलाहकार अुसके आसपास रहते थे, गाधारी जैसी पतिव्रता नारी भी अुसे खूव डाटती-फटकारती थी, वह यह वात भी जानता था कि श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष परमात्मा हैं, फिर भी अुस अधेने कुछ नही देखा, कुछ नही समझा।

शेक्सपीयरके हेमलेट जैसा वह क्षीण-सकल्प धृतराष्ट्र 'हमारे हाथो कुछ नही होगा, अपने आप जो होना हो हुआ करे' की वृत्ति रखकर जीता है।

चेतनाधारी होते हुअे भी 'जडवल्लोक आचरेत्' सूत्रका धृतराष्ट्रने विकृत वृत्तिसे पालन किया है। सारा दोष दुर्योधन पर थोपनेके लिअे तैयार रहते हुअे भी धृतराष्ट्रका अधिकसे अधिक समर्थन दुर्योधनको ही मिलता है। मौका आने पर वह विदुरको दूर हटा देता था, लेकिन दुर्योधन पर अकुश नही रखता था। जैसे जैसे शकुनि जुअेमें जीतता गया वैसे वैसे अिस बूढेके हृदयकी कली खिलती गअी। 'कौन जीता? क्या जीता? दाव पर क्या रखा गया था?' अैसे प्रश्न वह बडी आतुरतासे पूछता रहता था। अिसीसे अुसके मूल स्वभावकी पहचान हमे हो जाती है। भारतीय युद्धके अतमें अिस कौरव राजाने लौह-भीमको भुजाओमें दबाकर अुसका जो चूरा कर डाला, अुसमें भी हमें धृतराष्ट्रके अिसी स्वभावके अत तक बने रहनेका प्रमाण मिलता है। धृतराष्ट्र असमर्थ तथा कूट मनोवृत्तिका अत्यन्त समर्थ चित्र है।

प्रत्येक नाटकमें और कथामें नायकके साथ अुपनायक होते हैं। साहित्य-शास्त्रने अिनके स्वभावको चित्रित करनेकी मर्यादायें बताअी हैं। परतु कभी कभी कथानकोमें नायकके सिवा अेक दूसरा मगल-मूर्ति पात्र होता है। विक्टर ह्यूगोके 'ला मिज़रेबल्स' का बिशप ऑफ डी अेक अैसा ही पात्र है। 'ला मिज़रेबल्स' के लम्बे और विपुल कथानकमें बिशप ऑफ डीका बहुत कम सबध आता है। परन्तु अुसकी मगलमयी छाया ठेठ अत तक कथानक पर छायी रहती है। अिस कथानकका कोअी भी पात्र बिशपसे अूचा नही अुठ सका है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'घरे बाहिरे' का नायक निखिल और अुपनायक सदीप हैं। परन्तु मगल-मूर्ति तो निखिलका अध्यापक — 'नत नयने अनिमेषे' अुसकी चिन्ता रखनेवाला चन्द्रशेखर है।

महाभारतकी तीन मगल-मूर्तिया हैं भीष्म, कृष्ण और व्यास। अिस त्रिमूर्तिमें भी प्रधान स्थान भीष्मका है। कृष्णकी विभूति अन्तमें दिव्य होनेके कारण भव्य नही कही जा सकती। व्यास किसी वानप्रस्थके समान दूर ही दूर रहते हैं। समस्त महाभारत पर अपनी मगल छाया फैलानेवाले तो धर्मात्मा भीष्म ही हैं। वे सागरके समान गभीर, हिमालयके समान प्रचड और अनत आकाशके समान शान्त और निर्मल हैं।

भीष्म कृष्णके अुत्तम भक्तोमें से अेक हैं।

> प्रह्लाद-नारद-पराशर-पुण्डरीक-
> व्यासाम्बरीष-शुक-शौनक-भीष्म-दाल्भ्यान्।
> रुक्मागदार्जुन-वसिष्ठ-विभीषणादीन्,
> पुण्यान् अिमान् परमभागवतान् स्मरामि॥

अिस प्रकार प्रतिदिन प्रात काल अुठकर हम जिन परम भागवतोका स्मरण करते हैं, अुनमें भी भीष्मका स्थान अनुपम है। दूसरे भागवत भगवानके अधीन

कि शास्त्रकारोंने दोनोंको अेक ही श्लोकमें पास पास रखकर प्रातः
बना दिया है।

महाभारतका समय अर्थात् श्रीकृष्ण, भीष्म और युधिष्ठिर, जरास
भीम तथा कर्ण और अर्जुनका समय। अुसी समय यवन और नाग
भारतमें आये। अफगानिस्तान और तिब्बतके साथ आजकी अपेक्षा अु
भारतका अधिक संबंध था। कुन्ती और माद्री, द्रौपदी और गांधारी
और रुक्मिणी, अुत्तरा और चित्रांगदा सब दूर-दूरकी राजकन्यायें कुरुकुल
गअी थीं।

विद्वानोंकी यह मान्यता है कि आज महाभारत जिस रूपमें हमारे
है, वह रूप सन् ४०० के आसपास अर्थात् आजसे लगभग डेढ़ हजार
निश्चित हो चुका होगा।

१९२३

८

महाभारतका आस्वाद

महाभारतको ज्यों ज्यों हम अधिक पढ़ते हैं त्यों त्यों अुसके प्रति
आदर बढ़ता ही जाता है। 'प्रतिपर्व रत्नाकरम्' जैसी महाभारतकी
तो सामान्य मालूम होने लगती है। महाभारतके लिअे यदि कोअी अेक
शोभा देनेवाला हो, तो वह है 'आर्यभव्य'। रामायण यदि वीणा-मधुर
महाभारत मेघ-गंभीर है। महाभारतने अत्यन्त गहराअीमें अुतर कर
स्वभावकी थाह ली है।

महाभारतकारने चरित्र-चित्रणमें अपने संपूर्ण शक्ति-वैभवका अुपयोग म
शिथिल धृतराष्ट्रका तादृश और सुन्दर चित्र प्रस्तुत करनेमें किया है। वह
राजा कुछ भी नहीं करता। वह सबकी बात केवल सुनता ही रहता है, फि
आरंभसे अंत तक हम अुसे नजरके सामनेसे दूर नहीं रख सकते। पद-प
दैवकी महत्ताका वर्णन करनेवाला यह राजा दैवकी साक्षात् मूर्ति है। सब
जानते-बूझते हुअे भी जैसे दैव अंधा है वैसे धृतराष्ट्र भी अंधा है। भीष्म,
और संजयके समान सलाहकार अुसके आसपास रहते थे, गांधारी जैसी पति
नारी भी अुसे खूब डांटती-फटकारती थी, वह यह बात भी जानता था कि श्री
प्रत्यक्ष परमात्मा हैं, फिर भी अुस अंधेने कुछ नहीं देखा, कुछ नहीं समझा

शेक्सपीयरके हेमलेट जैसा वह क्षीण-संकल्प धृतराष्ट्र 'हमारे हाथों
नहीं होगा, अपने आप जो होना हो हुआ करे' की वृत्ति रखकर जीता

चेतनाधारी होते हुअे भी 'जडवल्लोक आचरेत्' सूत्रका धृतराष्ट्रने विकृत वृत्तिसे पालन किया है। सारा दोष दुर्योधन पर थोपनेके लिअे तैयार रहते हुअे भी धृतराष्ट्रका अधिकसे अधिक समर्थन दुर्योधनको ही मिलता है। मौका आने पर वह विदुरको दूर हटा देता था, लेकिन दुर्योधन पर अकुश नही रखता था। जैसे जैसे शकुनि जुअेमे जीतता गया वैसे वैसे अिस बूढेके हृदयकी कली खिलती गअी। 'कौन जीता? क्या जीता? दाव पर क्या रखा गया था?' अैसे प्रश्न वह बडी आतुरतासे पूछता रहता था। अिसीसे अुसके मूल स्वभावकी पहचान हमे हो जाती है। भारतीय युद्धके अतमें अिस कौरव राजाने लोह-भीमको भुजाओमें दबाकर अुसका जो चूरा कर डाला, अुसमें भी हमें धृतराष्ट्रके अिसी स्वभावके अत तक बने रहनेका प्रमाण मिलता है। धृतराष्ट्र असमर्थ तथा कूट मनोवृत्तिका अत्यन्त समर्थ चित्र है।

प्रत्येक नाटकमें और कथामें नायकके साथ अुपनायक होते हैं। साहित्य-शास्त्रने अिनके स्वभावको चित्रित करनेकी मर्यादायें बताअी है। परतु कभी कभी कथानकोमें नायकके सिवा अेक दूसरा मगल-मूर्ति पात्र होता है। विक्टर ह्यूगोके 'ला मिज़रेबल्स' का बिशप ऑफ डी अेक अैसा ही पात्र है। 'ला मिज़रेबल्स' के लम्बे और विपुल कथानकमें बिशप ऑफ डीका बहुत कम सबध आता है। परन्तु अुसकी मगलमयी छाया ठेठ अत तक कथानक पर छायी रहती है। अिस कथानकका कोअी भी पात्र बिशपसे अूचा नही अुठ सका है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'घरे बाहिरे' का नायक निखिल और अुपनायक सदीप है। परन्तु मगल-मूर्ति तो निखिलका अध्यापक — 'नत नयने अनिमेषे' अुसकी चिन्ता रखनेवाला चन्द्रशेखर है।

महाभारतकी तीन मगल-मूर्तिया हैं भीष्म, कृष्ण और व्यास। अिस त्रिमूर्तिमे भी प्रधान स्थान भीष्मका है। कृष्णकी विभूति अन्तमें दिव्य होनेके कारण भव्य नही कही जा सकती। व्यास किसी वानप्रस्थके समान दूर ही दूर रहते हैं। समस्त महाभारत पर अपनी मगल छाया फैलानेवाले तो धर्मात्मा भीष्म ही हैं। वे सागरके समान गभीर, हिमालयके समान प्रचड और अनत आकाशके समान शान्त और निर्मल हैं।

भीष्म कृष्णके अुत्तम भक्तोमें से अेक हैं।

> प्रह्लाद-नारद-पराशर-पुण्डरीक-
> व्यासाम्बरीष-शुक-शौनक-भीष्म-दाल्भ्यान्।
> रुक्मागदार्जुन-वसिष्ठ-विभीषणादीन्,
> पुण्यान् अिमान् परमभागवतान् स्मरामि॥

अिस प्रकार प्रतिदिन प्रात काल अुठकर हम जिन परम भागवतोका स्मरण करते हैं, अुनमें भी भीष्मका स्थान अनुपम है। दूसरे भागवत भगवानके अधीन

भीष्मकी अिस प्रतिज्ञासे कौरव-कुल अथवा आर्य-सस्कृतिको क्या लाभ हुआ ? और कुछ नही तो मैं सत्यके लिअे लड रहा हू, अितना सतोष तो भीष्मको मिलना ही चाहिये था। राज्य पर अपने अधिकारको छोडकर वे राजाके सेवक बने। अपनी सारी वफादारी अुन्होने राजगद्दीके लिअे अर्पण कर दी। जो खाता हू वह राजगद्दीका अन्न है, राजगद्दीकी जो भी आज्ञा हो अुसे शिरोधार्य मानना चाहिये, अिस प्रकारकी वैधानिक वृत्ति अुन्होने धारण की। भीष्मके जैसा तत्रवादी (constitutionalist) शायद ही दूसरा कोअी हो सकता है। किन्तु तत्रको ही देवता मानकर आचरण करनेसे अुन्होने राष्ट्र-हितका सर्वनाश कर दिया।

दूसरी ओर श्रीकृष्णने हर मौके पर विद्रोही वृत्ति ही धारण की। जिस समय अुनकी सर्वज्ञता और धर्मवृत्ति जिस मार्ग या कदमको अुचित ठहराती, अुसीका नि शक भावसे अनुसरण करना श्रीकृष्णका मार्ग था। अिसी मार्गसे पाडवोकी रक्षा हुअी। यह सच है कि विजय पाडवोको मिली, परन्तु वह विजय अितिहासके पिर्‌हसकी विजय जैसी थी। अतमे धर्मराजको छलछलाअी आखोसे कहना पडा .

जयोऽयमजयाकारो भगवन्! प्रतिभाति मे।

राष्ट्रके क्षात्रकुलका ह्रास हुआ। अर्जुनका भय सच्चा सिद्ध हुआ। साब जैसे राजपुत्र नाचनेवाले छोकरोका काम करने लगे और अृषि-मुनियोकी हसी अुडाने लगे। कश्यप जैसे वैद्य-विशारद ब्राह्मण भी तक्षककी रिश्वत खाकर राज-सेवाको छोड लौट गये। अैसी अधाधुधी सर्वत्र फैल गअी। स्वय श्रीकृष्णके घर सुरामत्त यादवोका कलह जागा और अुसीके फलस्वरूप दूसरा महान कुलक्षय हुआ। अिसमें कोअी शका नही कि श्रीकृष्णने धर्मकी स्थापना की, क्योकि अुन्होने अर्जुन-गीता, अुद्धव-गीता और अनुगीता जैसे सर्वोच्च धर्मोपदेश जगतको दिये। परन्तु अुनके अपने युगमे अथवा अुसके बादके अेक हजार वर्षोमें कृष्ण-धर्मके प्रचारका अथवा अुससे होनेवाली मानव-समाजकी अुन्नति और समृद्धिका नाम-निशान भी दिखाअी नही देता। यही कहना चाहिये कि राजसूय यज्ञ करके धर्मराजने राजकुलका सर्वनाश किया। परन्तु भीष्म या कृष्णके मार्गकी परीक्षा तात्कालिक परिणामोकी दृष्टिसे करना गलत है। श्रीकृष्णकी मृत्युके पश्चात् यदि अधा धृतराष्ट्र जीवित होता, तो वह अवश्य कहता कि सचमुच 'काल ही बलवान है, अुसकी अिच्छाको अन्यथा करनेके लिअे कोअी समर्थ नही।'

युधिष्ठिर गीताधर्मके अनुसार यथोचित आचरण रखकर नम्रतापूर्वक अपना कर्तव्य करनेवाला और मानवके लिअे जितना सतोष पाना सभव है अुतना सतोष प्राप्त करनेवाला अेक सपूर्ण राष्ट्र-पुरुष है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके चतुवर्गका अुसमें योग्य समन्वय हो गया था। अैहिक विजय, अैहिक

सुख और अैहिक वैभव—ये सब बाहरसे आकर्षक और भीतरसे निस्सार अिन्द्रायनके फल जैसे है, यह समझ कर ही अुसने व्यवहार किया था। 'धर्मो रक्षति रक्षित.' यह युधिष्ठिरका प्रतिज्ञा-वाक्य था। धर्ममार्ग पर युधिष्ठिरकी जितनी श्रद्धा थी अुतनी किसी दूसरेकी मालूम नही होती। धर्ममार्ग हमें जहा भी ले जाय वही निःशक होकर हमें जाना चाहिये और धर्मके हाथमें हम किसी भी समय सुरक्षित हैं यह श्रद्धा हमेशा रखनी चाहिये—अिस वृत्तिके फलस्वरूप धर्मराजका जीवन सब दृष्टियोसे सफल रहा है।

कर्ण धर्मराजका बडा भाअी था। बेचारेको जन्मसे ही आर्य और शुभ सस्कार प्राप्त नही हुअे थे। कर्ण निष्ठामें दृढ, हृदयका अुदार, रणमें शूर और आदर्श दानी था। परन्तु हीनताकी ग्रथि (inferiority complex) अुसकी रग-रगमे बध गअी थी। कुछ बातें दुर्योधनकी समझमें नही आती थी, परन्तु कर्ण अुन्हें समझता था। अुन बातोको भी दुर्योधनके समक्ष कर्णने साफ शब्दोमे नहीं रखा। मित्रनिष्ठाका अर्थ यह तो नही है कि मनुष्य मित्रका अनुयायी बन जाय, अुसकी धुनके अनुसार चले। कर्णने निष्ठाका, वफादारीका अतिरेक करके दुर्योधनकी सारी हीन वृत्तियोको प्रोत्साहन ही दिया। यही कारण है कि कर्णके समान अनन्य मित्रकी निष्ठाके प्रति प्रतिनिष्ठा दिखानेके लिअे दुर्योधनको अपने अधर्म-मार्गमें अधिकाधिक दृढ होना पड़ा।

कर्णका बडेसे बडा दोष अुसका अभिमान, अुसका अहप्रेम था। वह किसीको कुछ समझता ही नही था। प्रत्यक्ष भारतीय युद्धके पहले अनेक बार पराजित होकर कर्ण और दुर्योधनको अपने पक्ष और विरोधी पक्षके बलाबलका अनुभव हो चुका था, परन्तु अिस अनुभवकी सतत अुपेक्षा करनेमें ही कर्णने बहादुरी मानी होगी। पाच पाडवोंने मिलकर जो दिग्विजय की थी वैसी कर्णने अकेले ही करके दुर्योधनसे वैष्णव याग कराया था और अैसा करके गायोके हरणके लिअे की गअी घोषयात्रासे आत्म-विश्वास खो बैठनेवाले दुर्योधनको जोश चढाया था। परशुरामसे कर्णने अस्त्र प्राप्त किये अथवा अिन्द्रको अपने कुडल दे दिये, यह बहुत बडी बात थी। किन्तु अिससे भी अधिक मूल्य अुसकी दिग्विजयका था। परन्तु महाभारतकारने अिस दिग्विजयको बहुत महत्त्व नही दिया। शायद पाडवोकी दिग्विजयके बाद कर्ण गया था, अिसलिअे अुसे यह विजय आसानीसे मिल गअी हो। हितकी बात सुननेमें धृतराष्ट्र, दुर्योधन और कर्ण तीनोके मार्ग तीन अलग प्रकारके थे। धृतराष्ट्रसे जो बात कही जाती वह तुरन्त अुसके गले अुतर जाती थी, परन्तु अुस पर आचरण वह जरा भी नही कर पाता था। पाडवगीतामें दुर्योधनके मुहसे जो श्लोक कहलाया गया है, वह सचमुच धृतराष्ट्रके स्वभावका द्योतक है

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति.।।

केनापि देवेन हृदि स्थितेन।
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमी।।

धृतराष्ट्रकी दृष्टिमें देव और दैवमें जो अेक मात्राका फर्क है वह भी नही रह गया था।

दुर्योधन पक्षाभिमानी, स्वार्थी और दीर्घद्वेषी था, अिसलिअे अुसमें अतर्मुखता जैसा कुछ नही था। वह बार-बार आवेशमें आ जाता था, बार-बार अपने कथनका समर्थन करता था, बोध देनेवाले व्यक्तिके हेतु पर ही शका करता था और अपने निश्चय पर दृढ रहकर सबको अपने साथ पकडे रखता था। फिर भी अेक बात अुसमे अैसी थी, जो अुसे हमारे आदरका पात्र बनाती है —वह भीतर और बाहर समान था। वह अपनी मनोवृत्तिके साथ अीमानदार रहता था। कर्णके विषयमे अैसा कहना कठिन है। कुछ बातें कर्ण अच्छी तरह समझ लेता था। परन्तु वफादारीसे आचरण करनेके आग्रहको मानकर वह दुर्योधनकी बातको ही ग्रहण करता था और फिर हृदयपूर्वक अुसीको धारण करके अुससे चिपटा रहता था। कर्णके अैसे स्वभावके कारण अुसे महापुरुषोकी प्रथम पक्तिमें रखना कठिन है। भीष्म बिलकुल नम्र बनकर अपना मत प्रकट करते थे, अुनका यह मत धर्मज्ञान और परिस्थितियोके सपूर्ण ज्ञानके अनुरूप होता था। यह मत नि सदेह दुर्योधनके विरुद्ध जाता था, परन्तु युद्धके समय भीष्म सपूर्ण निष्ठासे लडते थे। भीष्मके समान महापुरुषकी भी यह कर्तव्य-निष्ठा और राजनिष्ठा कर्ण जैसे हलके दरजेके आदमीकी समझमें कैसे आती? अुसे तो केवल अुसी अेकनिष्ठाका भान था, जिसकी धुन राजाके अनुयायियोमे होती है। अिस कारणसे अुसने भीष्माचार्यके साथ हमेशा अन्याय किया और दुर्योधनका मन अुनके बारेमें अत्यन्त कलुषित कर दिया। भीष्म दिल खोलकर लडते नही, अुनके मनमे पाडवोके प्रति पक्षपात है अिसलिअे वे सपूर्ण शक्ति लगाकर युद्धमें जूझते नही—अैसा दुर्योधनको जो लगा करता था अुसका कारण कर्ण ही था। अपने दस दिनके युद्धके अतमें भीष्म पितामहको दुर्योधनके मुखसे जो मर्मभेदी वचन सुनने और सहने पडे तथा जिनके कारण अिस वीर पुरुपकी आखोमें आसू आ गये थे, अुनके मूलमे भी कर्ण ही था। स्व-पर-बलका यथार्थ अनुमान न होना और गुस्सेसे जलकर रूठ जाना यदि युद्धकलाकी दृष्टिसे महादोष हो, तो भीष्माचार्यने कर्णको जो अर्ध-रथी कहा वह सर्वथा अुचित ही था।

किसी योद्धाका रथी होना केवल शौर्य पर आधार नही रखता। यह सच है कि 'युद्धे अपलायनम्' प्रत्येक क्षत्रियका धर्म होना चाहिये, परन्तु कुशल योद्धाको अवसरके अनुसार काम करना पडता है और भविष्यकी नीतिको सामने रखकर युद्धमें पीठ भी दिखानी पडती है। धर्मराजने कअी बार पीठ दिखाअी थी। दुर्योधनने भी पीठ दिखाअी थी। तब यदि कर्ण दिखाये तो आश्चर्यकी बात

नही। परन्तु निष्प्रभ होकर, हतवल होकर पीठ दिखाना अेक वात है, और शत्रुके वलको आजमा कर जिस समय हम शत्रुके सामने टिक नही सकेंगे अैसा अनुमान लगाकर मौकेको टाल देना दूसरी वात है। यह भेद जो नही समझता और आखो पर पट्टी वाधकर, अधा वनकर मृत्युको स्वीकार करता है, अुसे विरक्त कहा जा सकता है, शायद अुसे मृत्यु-परायण भी माना जा सकता है; परन्तु यह नही कहा जा सकता कि अुसने क्षात्रधर्मका परम अुत्कर्ष प्रकट किया है।

भीष्मने कर्णको मत्सर या द्वेषसे अर्ध-रथी नही कहा था, वल्कि यह समझ कर कहा था कि जिस तरह कर्णका पानी अुतारनेसे ही अुसके हृदयमे वसा हुआ घमड अुतरेगा, जिसके पीछे भीष्मका अेक हेतु अुस गलत अनुमानको भी सुधारना था, जो दुर्योधनने युद्धका निश्चय करते समय लगा लिया था। 'भीष्म जव तक जीवित हैं तव तक मै युद्धमे भाग नही लूगा' अैसी घोषणा करके कर्णने क्षात्रधर्म तथा मित्रनिष्ठा दोनोको मिटा दिया और युद्धमें भीष्म विजयी न होकर मृत्युको प्राप्त करेंगे जिस विचारको मजवूत करके प्रारभसे ही अप-शकुनका वातावरण अुत्पन्न कर दिया था। जिस अवसर पर मित्रनिष्ठ, दान-प्रतिज्ञ तथा युद्ध-दुर्दम तनुत्यागी कर्णने यही सिद्ध कर दिखाया कि वह सव कुछ होते हुअे भी अतमें अहप्रेमी ही था।

कर्णका वल, अुसकी मित्रनिष्ठा, जन्मके विषयमे अुसके साथ हुआ अन्याय, रणमें अुसे प्राप्त हुआ वीरोचित मरण और अुस समय भी अुसके साथ हुआ अन्याय — जिन सव वातोके कारण कर्णके वारेमें जनताके मनमे स्वाभाविक सहानुभूति, कौतुक और पक्षपात है। जिस पक्षपातके कारण कर्णके दोषोकी ओर लोगोका ध्यान नही जाता। कर्णके साथ अुदार न्याय करते समय कृष्ण, अर्जुन आदि पाडव-पक्षियोके साथ अन्याय न हो और भीष्माचार्यका मन कर्णके विषयमें कुछ कलुषित हो जानेका पूर्वाग्रह न वन जाय, जिसी खयालसे जितना विवेचन करना मुझे जरूरी लगा है।

अेक तरहसे देखा जाय तो भीष्म और कर्ण दोनो ही यह जानते थे कि अुनका पक्ष असत्यका पक्ष है और वल-कौशलमें भी वह पगु है, फिर भी दोनो केवल कर्तव्य-निष्ठासे, अपनी आर्यवृत्तिके प्रति वफादार रहते हुअे फलके वारेमें सपूर्ण अुदासीनता रखकर, युद्धमें लडे थे। भारतवर्ष पर राज्य करनेका अधिकार जैसे भीष्मका था वैसे ही कर्णका भी था। भीष्मने सौतेली माके वशके लिअे अथवा अुसके सतोषके लिअे और कर्णने अपनी माताकी अुपेक्षाके कारण राज-गद्दीके अपने अधिकारका त्याग किया था। भीष्मकी भ्रातृनिष्ठा तथा कर्णकी मित्रनिष्ठा और पक्षनिष्ठा आर्य-सस्कृतिकी वहुत वडी सपत्ति है।

कर्ण और भीष्म अेक-दूसरेसे अीर्ष्या करते थे, अैसा लगना स्वाभाविक है। फिर भी महापुरुष अेक-दूसरेकी महत्ताको पहचाने विना नही रहते, यही

बात जगतको दिखानेके लिअे भीष्मके रणभूमि पर गिरनेके बाद और दोनो पक्षो द्वारा शोकके कारण युद्ध स्थगित कर दिये जानेके बाद महाभारतकार दु खसे नम्र बने हुअे मानसवाले कर्णको भीष्मके पास ले गये है। वह प्रसग सचमुच अुदात्त और करुण है। यह बूढा पक्षपाती है, यह हम सबका बुरा चाहता है — अिस तरह भीष्मके खिलाफ सदा दुर्योधनके कान भरनेवाला कर्ण आसुओसे रुधी आवाजमें जब भीष्मसे प्रार्थना करता है कि 'मै कर्ण आपका दर्शन करने आया हू, मेरी ओर दयादृष्टिसे देखकर मुझसे दो शब्द बोलिये', तब लगता है कि भीषण कलियुगका बीजारोपण करनेवाला काल पूरा हो गया है और अुसके स्थान पर प्रेमधर्मका सिचन करनेवाला तथा सत्ययुगका शुभ स्मरण करानेवाला काल आ गया है। राजनीतिज्ञ लोग मौका आने पर हृदयकी कोमलता दिखाते हैं, अपने स्वार्थकी रक्षा करते हुअे अुदारता, आर्यता और अन्तर्मुखता भी दिखाते है, परन्तु अिस अवसर पर अैसी दभपूर्ण सस्कारिताका हमें जरा भी भास नही होता। 'आदौ नम्रा. पुनर्नम्रा कार्यकाले च निष्ठुरा कार्यं कृत्वा पुनर्नम्रा' अैसा बीभत्स राजनीतिज्ञ न तो कर्ण था और न भीष्म थे। 'कणिक नीति' में कहे अनुसार कार्य हो जानेके बाद आखोकी पलकें गीली करके दिखानेकी धूर्तता भी अिस मिलनमें नही थी। यहा अेक आर्य पुरुष दूसरे आर्योत्तम तथा अर्हत-पदको पहुचे हुअे पुरुषको प्रणामाजलि अर्पण करने आया था। भीष्मने गद्‌गद अत करणसे कर्णको अपने पास बैठाकर बताया कि अुसके लिअे अुनके मनमें कितना आदर है और यह भी बताया कि हमेशा अुसका (कर्णका) तेजोवध करनेमें अुनका क्या अुद्देश्य था। भीष्मने जन्मभर जिस शातिके लिअे जी-तोड परिश्रम किया, अुस शातिकी स्थापनाके लिअे अुन्होने कर्णसे शुद्ध मनसे याचना की। कर्णने भी अुतने ही खुले मनसे अैसा क्यो सभव नही है अिसके अपने कारण भीष्मको बताये और अपने निश्चयके लिअे अुनके आशीर्वाद मागे। अुदार भीष्मने कर्णको अपने आशीर्वाद दिये और अुसे अुत्साह दिलाकर अनासक्त भावसे युद्ध करने तथा कौरवोका नेतृत्व ग्रहण करनेकी सलाह दी। हिमालय जैसा अुत्तुग आर्यत्व तथा महासागर जैसा गभीर कारुण्य व्यक्त करना अन्य किस अवसर पर सभव होता? युद्धके वर्णनोकी तरह अिस प्रसगके वर्णनको भी विस्तृत रूप न देकर महाभारतकारने अवसरकी पवित्रता तथा सयमका औचित्य दोनोकी रक्षा की है। भारतवर्ष जैसे समृद्ध, भव्य और सौंदर्य-विपुल देशकी ही अुपमा जिसे शोभा दे अुस महाभारतमें भी अिस प्रकारके देव-दुर्लभ प्रसग कितने होगे?

१९३३

नही। परन्तु निष्प्रभ होकर, हतवल होकर पीठ दिखाना अेक वात है, और शत्रुके वलको आजमा कर अिस समय हम शत्रुके सामने टिक नही सकेंगे अैसा अनुमान लगाकर मौकेको टाल देना दूसरी वात है। यह भेद जो नही समझता और आखो पर पट्टी वाधकर, अधा वनकर मृत्युको स्वीकार करता है, अुसे विरक्त कहा जा सकता है, शायद अुसे मृत्यु-परायण भी माना जा सकता है; परन्तु यह नही कहा जा सकता कि अुसने क्षात्रधर्मका परम अुत्कर्ष प्रकट किया है।

भीष्मने कर्णको मत्सर या द्वेषसे अर्ध-रथी नही कहा था, वल्कि यह समझ कर कहा था कि अिस तरह कर्णका पानी अुतारनेसे ही अुसके हृदयमे वसा हुआ घमड अुतरेगा, अिसके पीछे भीष्मका अेक हेतु अुस गलत अनुमानको भी सुधारना था, जो दुर्योधनने युद्धका निश्चय करते समय लगा लिया था। 'भीष्म जव तक जीवित है तव तक मै युद्धमे भाग नही लूगा' अैसी घोपणा करके कर्णने क्षात्रधर्म तथा मित्रनिष्ठा दोनोको मिटा दिया और युद्धमें भीष्म विजयी न होकर मृत्युको प्राप्त करेंगे अिस विचारको मजवूत करके प्रारभसे ही अप-शकुनका वातावरण अुत्पन्न कर दिया था। अिस अवसर पर मित्रनिष्ठ, दान-प्रतिज्ञ तथा युद्ध-दुर्दम तनुत्यागी कर्णने यही सिद्ध कर दिखाया कि वह सव कुछ होते हुअे भी अतमे अहप्रेमी ही था।

कर्णका वल, अुसकी मित्रनिष्ठा, जन्मके विषयमें अुसके साथ हुआ अन्याय, रणमें अुसे प्राप्त हुआ वीरोचित मरण और अुस समय भी अुसके साथ हुआ अन्याय — अिन सव वातोके कारण कर्णके वारेमें जनताके मनमे स्वाभाविक सहानुभूति, कौतुक और पक्षपात है। अिस पक्षपातके कारण कर्णके दोषोकी ओर लोगोका ध्यान नही जाता। कर्णके साथ अुदार न्याय करते समय कृष्ण, अर्जुन आदि पाडव-पक्षियोके साथ अन्याय न हो और भीष्माचार्यका मन कर्णके विपयमें कुछ कलुषित हो जानेका पूर्वाग्रह न वन जाय, अिसी खयालसे अितना विवेचन करना मुझे जरूरी लगा है।

अेक तरहसे देखा जाय तो भीष्म और कर्ण दोनो ही यह जानते थे कि अुनका पक्ष असत्यका पक्ष है और वल-कौशलमें भी वह पगु है, फिर भी दोनो केवल कर्तव्य-निष्ठासे, अपनी आर्यवृत्तिके प्रति वफादार रहते हुअे फलके वारेमें सपूर्ण अुदासीनता रखकर, युद्धमे लडे थे। भारतवर्ष पर राज्य करनेका अधिकार जैसे भीष्मका था वैसे ही कर्णका भी था। भीष्मने सौतेली माके वशके लिअे अथवा अुसके सतोपके लिअे और कर्णने अपनी माताकी अुपेक्षाके कारण राज-गद्दीके अपने अधिकारका त्याग किया था। भीष्मकी भ्रातृनिष्ठा तथा कर्णकी मित्रनिष्ठा और पक्षनिष्ठा आर्य-सस्कृतिकी वहुत वडी सपत्ति है।

कर्ण और भीष्म अेक-दूसरेसे अीर्ष्या करते थे, अैसा लगना स्वाभाविक है। फिर भी महापुरुप अेक-दूसरेकी महत्ताको पहचाने विना नही रहते, यही

मनुष्यका कर्तव्य क्या है, धर्म-सकटमें मनुष्यको कौनसा मार्ग लेना चाहिये, क्या करनेसे मनुष्य कर्म करते हुअे भी अुससे अलग रह सकता है, अिसकी चर्चा गीतामें की गअी है। अिसमें व्यक्ति तथा समाजके जीवन-रहस्यकी चर्चा आध्यात्मिक दृष्टिसे की गअी है।

भगवद्गीताको हमारे शास्त्रोमें अुपनिषदोका श्रीकृष्ण द्वारा दुहा हुआ दूध कहा गया है। श्रीकृष्णने ज्ञान, कर्म, भक्ति, साख्य, योग आदि सारे मार्गोंके मूल तत्त्वोकी व्यावहारिक चर्चा करके अर्जुनको यह बताया है कि अुसके जैसे क्षत्रियका कर्तव्य क्या है। अर्जुनको प्रतीति करानेके लिअे श्रीकृष्णने अपना काल-स्वरूप अथवा विश्वरूप अर्जुनके सामने प्रकट किया। अिस विश्वरूपका अर्थ है भूत, भविष्य और वर्तमान तीनो कालोकी अेकत्र की हुअी अितिहास-मूर्ति। जिसे हम भावी या अदृष्ट कहते है वह औश्वरकी दृष्टिसे वर्तमान और ज्ञात है, अैसा श्रीकृष्णने अर्जुनको दिखा दिया और फिर भी 'तेरी अिच्छा हो वैसा कर' यह कहकर अर्जुनको अुसके स्वातत्र्यका भान भी अुन्होने करा दिया।

परन्तु श्रीकृष्ण अर्जुनको युद्धके लिअे प्रेरित कर सके, अिससे हमें क्या लाभ हुआ? वेदव्यासने कृष्णार्जुनका दिव्य सवाद जगतके सामने अितिहासके रूपमें नही रखा है, अुन्होने अिस सवादके द्वारा यह धर्म-रहस्य प्रकट किया है कि प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें वासना-रूपी प्रवल शत्रुके विरुद्ध ('कामरूप दुरासदम्') जो सनातन युद्ध चलता है, अुसमें मनुष्यको निरहकार बनकर कैसे लडना चाहिये ('युद्धस्व विगतज्वर')। अत हृदयमें अथवा समाजमें जो दुर्वृत्तिया हो अुनके विरुद्ध लडनेवाले प्रत्येक योद्धाके लिअे भगवद्गीता गुरु-अुपदेश सिद्ध हुअी है।

१९२३

९

भगवद्गीता

कुरुक्षेत्रकी रणभूमि पर दोनो पक्षोंके सैन्य लडनेके लिअे सज्ज खडे है। युधिष्ठिरने दोनो सैन्योके बीच खडे रहकर स्वय यह घोपणा की है कि किसीको अभी भी न्यायके लिअे अपना पक्ष छोडकर विरोधी पक्षमें जाना हो तो वह जा सकता है। अैसे अवसर पर पाडव-पक्षके वीर अर्जुनको शका हुअी कि हमारा लडना अुचित है या नही? लडनेमें पुण्य है या पाप? सगे-सबधियोको मारकर राज्य करना अुचित है अथवा राज्यका त्याग करके सन्यास लेना अुचित है? श्रीकृष्ण स्वय अर्जुनके सारथिके रूपमें रथमें बैठे थे। अर्जुन अुनकी शरणमे गया। कितना विचित्र, कितना नाजुक और फिर भी कितना स्वाभाविक प्रसग! जिसके अूपर सारी लडाअीका आधार हो वही योद्धा यदि अतिम क्षणमें अिस तरह शस्त्र फेंककर 'मै नही लडूगा' कहते हुअे खडा हो जाय, तो क्या हो? अुत्साहके चार शब्दोंसे अर्जुनको जोश चढनेवाला नही था। अिसलिअे श्रीकृष्णने अर्जुनको धर्मका रहस्य समझा कर यह बताया कि अुसे क्या करना चाहिये। श्रीकृष्ण और अर्जुनके बीच हुअे अिस सवादका महाभारतमें अठारह अध्यायोमें वर्णन किया गया है। अुनमे कुल सात सौ श्लोक है। अुसके भीतर हिन्दू धर्मके सारे ही तत्त्वोका समावेश भलीभाति हो जाता है। अुसे पढ कर मनुष्यको अुत्तम रूपमें अिस बातका ज्ञान हो जाता है कि अुसे अिस ससारमें कैसे व्यवहार करना चाहिये। भगवद्गीता सारे हिन्दुओका महान धर्म-ग्रन्थ बन गअी है। सभी पथोके लोग भगवद्गीताके प्रति आदर रखते है। गीताजीका अनुवाद ससारकी सभी भाषाओमें हुआ है और प्रत्येक देशके लोग गीताजीकी प्रशसा करते है। भारतमें तो भगवद्गीताका अर्थ समझानेके लिअे अितने ग्रथ लिखे गये है कि अुन सबको अेकत्र किया जाय तो कअी अलमारिया भर जायें।

राष्ट्रके जीवन पर जिसका बडेसे बडा प्रभाव पडा हो, फिर वह कोअी राष्ट्रीय पुरुष हो, राष्ट्रीय घटना हो अथवा राष्ट्रीय ग्रथ हो, अुसका अुल्लेख अितिहासको करना ही चाहिये। महाभारत-रूपी विशाल महासागरमे भगवद्गीता अेक अैसा रत्न है, जिसका प्रभाव केवल हिन्दू समाज पर ही नही परन्तु भारतके साथ जिस जिस प्रजाका सबध स्थापित हुआ है अुस अुस प्रजा पर पडता आया है और आगे भी सदा पडता रहेगा। यह ग्रथ अभी तक भी वृद्ध नही हुआ है।

Knowledge' (आध्यात्मिक ज्ञानका सुव्यवस्थित सत्त्व) कह सकते हैं। अिस 'science of metaphysics' (अध्यात्म-शास्त्र) की सहायतासे अुपनिपदोका रहस्य समझनेमे सुगमता होती है। 'Science is organised knowledge' — शास्त्र सुव्यवस्थित ज्ञान है। अुपनिषदोमे जो आध्यात्मिक ज्ञान बिखरा हुआ है, वह ब्रह्मसूत्रोमें सुव्यवस्थित हुआ है। केवल जाननेसे विज्ञानके प्रयोजनकी पूर्ति हो जाती है।

लेकिन मनुष्य केवल जाननेसे तृप्त नही होता। जैसा अुसने जाना है वैसा जब वह जीने लगता है — या जीना जानने लगता है — तभी अुसे सतोष होता है। अिसलिअे हरअेक विज्ञानके साथ अुसके 'application' (विनियोग) की कलाका अर्थात् जीवन-कलाका जब विकास होता है, तभी ज्ञान और अुसका शास्त्र कृतार्थ माना जा सकता है। यह जीवन-कला भगवान श्रीकृष्णने अेक अद्भुत अवसर पर योगयुक्त होकर अर्जुनके लिअे प्रस्तुत कर दी। अिसीलिअे कहा जाता है कि अुपनिषद् गायें हैं और गीता अुन गायोका दुग्धामृत है। गीताके प्रत्येक अध्यायके अन्तमें हम कहते हैं 'अुपनिषदोमें जो ब्रह्मविद्या है अुसके अनुसार योगशास्त्रका निर्माण करके भगवानने जिसका गायन किया वह भगवद्-गीता है।' ('विद्' का अर्थ है सीखना, जिस परसे विज्ञान (Science) के लिअे 'विद्या' शब्द बना है। और 'शास्' का अर्थ है नियत्रण करना, राह दिखलाना, अिस परसे 'शास्त्र' अर्थात् 'code of Conduct' — चाल-चलनके नियम — अथवा 'art of Life' — जीवनकी कला — ये दो शब्द सिद्ध हुअे हैं।)

अुपनिषदोमें से पहले ब्रह्मविद्या निकली, तदुपरान्त योगशास्त्र निकला; और अुसीका भगवानने गायन किया, अिसलिअे अुसे भगवद्गीता कहते हैं।

अिस रीतिसे धर्मानुभवोका लेखन करनेवाले (१) दस प्रधान अुपनिषद्, (२) अुनको बिलोकर निकाली हुअी ब्रह्मविद्या और (३) अिन दोनोकी दृष्टिकी रक्षा करके रचा हुआ योगशास्त्र अर्थात् जीवन-कला — अिन तीनोका जो कोअी मेल बैठा सके, तीनोकी अेकवाक्यता सिद्ध कर सके, अुसीने जीवनका रहस्य पाया है और वही आचार्य माना जा सकता है, अैसी प्राचीन मर्यादा है। जो जीवन-व्यवस्था अिन तीनोका सामजस्य कर दे अर्थात् जो जीवन-व्यवस्था अिस प्रस्थानत्रयीके साथ बिलकुल ठीक मेल खाती है वह धर्मानुभवके अनुकूल है, अैसा हमारे पूर्वजोका मतव्य है। जो मनुष्य अिस प्रकारकी नअी जीवन-व्यवस्था समाजके सम्मुख अुपस्थित करता है, अुसका मार्गदर्शन स्वीकारनेके लिअे समाज तैयार हो जाता है। लेकिन अैसा मनुष्य अगर केवल बौद्धिक कसरत करके दिखाये, तो अितनेसे अुसे आचार्यत्व प्राप्त नही होता। अुसे अिसके अनुसार जीकर, अपने आचरण द्वारा अपनी पारमार्थिकता (earnestness) सिद्ध करनी चाहिये। आचार्यका यह आदर्श है

१०

प्रस्थानत्रयी किसलिअे ?

अिस दुनियावी जीवनकी झझटसे वचकर जो व्यक्ति मोक्षकी तरफ प्रयाण करता है, अुसकी यात्राका पाथेय क्या है ? हमारे पूर्वजोके अनुसार (१) दस अुपनिषद्, (२) ब्रह्मसूत्र और (३) भगवद्‌गीता ये तीन ग्रथ मोक्षयात्राके पर्याप्त पाथेय हैं। और अिसलिअे अिन तीन ग्रथोको प्रस्थानत्रयी कहा जाता है। 'प्रस्थान' का अर्थ है घर छोडकर मोक्षकी तरफ प्रयाण करनेकी क्रिया। अुसके लिअे यह अुपयुक्त और अुत्तम पाथेय है।

अव ये ही तीन ग्रथ क्यो चुने गये ? और अिन्हीका अधिकार किस लिअे माना गया ?

भौतिक क्षेत्र तथा आध्यात्मिक क्षेत्रमें अनुभव अर्थात् साक्षात्कार ही अन्तिम प्रमाण हो सकता है। अुसीका अधिकार माना जाता है।

वेदकालमें जिन ऋषियोने अपना जीवन धर्मको समर्पित किया और धर्मका ही ध्यान किया, अुन ऋषियोने अपने अनुभव, विचार और कल्पनायें वेदके अन्तमें ब्राह्मण-ग्रथोमें और अुपनिषदोमे लिखकर रखी हैं। यह सारा धर्मानुभव वेदके अन्तिम भागमें लिखा गया है, अिसलिअे अिसे वेदान्त कहते हैं।

अव हरअेक प्रामाणिक और प्रयत्नशील मनुष्यको जो अनुभव होता है, वह सर्वत्र अेकरूप ही होना चाहिये। कल्पनामे फर्क हो सकता है, तर्क आडे-टेढे रास्तेसे जा सकता है, लेकिन अनुभव तो अेकरूप ही हो सकता है। अनुभव अगर अेकागी हो तो भी अनुभवके दूसरे अगोके साथ अुसका मेल वैठना ही चाहिये। अिसलिअे दस अुपनिषदोमें जो अनुभव लिखे गये हैं और सगृहीत किये गये हैं अुनमें यदि अेकवाक्यता न हो, तो हमें मान लेना चाहिये कि हम अुन वचनोका अर्थ ठीक ठीक समझ नही पाये हैं। जो कोअी अिन वचनोमें सामजस्य स्थापित कर सके, अुसकी वात विचारने योग्य मानी जायगी।

विभिन्न देशोमे प्रचलित भिन्न-भिन्न कानूनोका अध्ययन करके अुनमे पाये जानेवाले मूलभूत तत्त्वोको चुन कर जिस प्रकार हम अुनका अेक धाराशास्त्र (Jurisprudence) वना लेते हैं, अुसी प्रकार धर्मानुभवके विश्व-वचनो परसे परब्रह्मका स्वरूप और अुसे प्राप्त करनेकी साधना निश्चित कर देनेवाले ब्रह्मसूत्रोकी रचना वादरायण कृष्ण-द्वैपायनने की है। अगर हम दशोपनिषद्‌को 'raw material of Religious Experience' (धार्मिक अनुभवका कच्चा माल) कह सकें, तो ब्रह्मसूत्रोको 'the organised essence of Spiritual

११
अुपनिषदोंकी शिक्षा
[अेक पत्रसे]

आपका पत्र मिला।

बीचमे मेरी तबीयत खूब अच्छी मालूम होती थी। अुन दिनो मैंने पढनेका आनद लिया। चौमासेकी वनश्री देखनेके लिअे मै थोडा घूमता भी था। महाराष्ट्रकी भूमिकी कोअी अनोखी शोभा है। अूची-नीची जमीन, जहा देखो वहा छोटी-बडी पहाडिया। अिसलिअे चलनेमें या देखनेमे नया नया आनद मिलता है। गुजरातमें यह आनद नही मिलता। बिस्तर पर लेटा लेटा भी मै यहासे सिंहगढ देख सकता हू। और मेघोकी प्रतिभा तो प्रतिक्षण नया नया रूप धारण करती है। हरीभरी धरती और नीला आकाश दोनो मिलकर रगोके सभी मिश्रण और प्रकार सिद्ध कर दिखाते है। हरी घास खाकर मस्त बने हुअे बछडे पूछ अूची करके चारो ओर कूदते फिरते है और पोपट, मैना और पडुक पक्षी नये नये गीत खोजते है। अैसी वनशोभाके बीच भद्दी मोटर-बसो और भेडियोके झुडो जैसी ट्रेनोकी अभद्रता भी दब जाती है और दोनो सर्वत्र फैले हुअे काव्यमे वृद्धि ही करती है।

अैसे अनुकूल वातावरणमें अुपनिषद् पढनेमें कितना आनद आता होगा, अिसकी कल्पना आप कर सकते है। लगभग सारे ही अुपनिषद् मै वार-वार पढ गया हू। प्रतिक्षण अुनमे से मुझे नअी दृष्टि प्राप्त होती है। आजसे पन्द्रह वर्ष पूर्व मैंने अुपनिषद् पढे थे, परन्तु भाष्यकी सहायतासे।

यह सच है कि भाष्यकारोने हम पर अनेक अुपकार किये है, किन्तु अुपनिषद् अैसे ग्रथ है कि भाष्यके साथ पढनेसे अुनका मूल स्वाद नही मिलता। भाष्यकारोमें यह दोष होता है — आप चाहें तो अिसे अुनकी मर्यादा कह लीजिये — कि वे अुपनिषदोमें से अेक विशेष तर्कसिद्ध और समन्वित वस्तु निकालनेका प्रयत्न करते है। अुपनिषद् अिस तरह पढनेके लिअे है ही नही। अुपनिषद् तो ज्ञानवीर परमहसोके 'inspired' अुद्गार हैं। अुपनिषद्-कार अृषियोने यह सोचा ही नही होगा कि हमारे वचनोमे परस्पर विरोध है या नही, अुनसे कोअी सुव्यवस्थित सुपरिष्कृत तत्त्वज्ञान (फिलॉसफी) निष्कर्षके रूपमे निकलता है या नही। अुनके विचारो तथा कल्पनाओमें शुद्ध कौमार्य है। अुनके भाषाप्रवाहके साथ अेक बार हमारा परिचय हो जानेके बाद तो जिस तरह हम

आचिनोति हि शास्त्रार्थम् आचारे स्थापयत्युत।
स्वयमाचरते यस्तु स आचार्य प्रचक्षते।।

तमाम शास्त्रोंमें से जो अुनका रहस्य वीन-वीन कर निकालता है (आचिनोति हि शास्त्रार्थम्) और जो अुस रहस्यको जीवनमे अनुस्यूत करनेकी या वोनेकी प्रक्रिया सिखाता है (आचारे स्थापयति अुत) और अिससे भी महत्त्वकी तथा दुष्कर वात तो यह कि जो अुसके अनुसार आचरण करता है यानी जीवन जीकर दिखाता है (स्वय आचरते यस्तु), वही आचार्य कहला सकता है। प्रस्थान-त्रयीकी अेकवाक्यता जो तर्कसे, जीवन-व्यवस्थासे और अपने आचरणसे सिद्ध करता है, अुसीको हम आचार्य या धर्मविद लोक-नायककी हैसियतसे स्वीकार कर सकते हैं।

अैसे आचार्य आज तक अधिक नही तो पाच-दस अवश्य हुअे हैं। शकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क आदि प्राचीन आचार्य और श्री दयानन्द सरस्वती, श्री अरविंद, महात्मा गाधी आदि आधुनिक आचार्य अिस देशका पथ-प्रदर्शन करते आये हैं।

अव सवाल यह है कि अगर अिन सवका प्रतिपादन मूल धर्मानुभवसे सुसगत है, तो अिनकी जुदी जुदी दृष्टियोंमें भी कुछ-न-कुछ अेकता मिलनी ही चाहिये। हम अिन्हे आपसमे लडाकर अन्तमे जो जीते अुसीको प्रमाण माननेकी सोचें, तो जीवन-द्रोही ठहरेंगे। ये सारे आचार्य अपनी वुद्धि और श्रद्धाके अनुरूप हमे सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था देते हैं। अितना ही नही, स्वय अुसके अनुसार आचरण करके जव अुन्होने सफलतापूर्वक लोक-नेतृत्व किया है, तव अुन सवकी दृष्टिमे भी कही तो मेल होना ही चाहिये।

साराश, अिन सव आचार्योंमें जो कोअी समन्वय करके दिखायेगा, वह सचमुच आचार्योंका आचार्य माना जा सकता है। अिस समय अैसी विभूतिकी ससारको आवश्यकता है।

अिसके लिअे जैनोका सप्तभगी स्याद्वाद काममे आना ही चाहिये।

२९-१-'४१

वृत्तिसे। काव्यके क्षेत्रमें गत पचास वर्षोंमें हमने अपने बालकोका खूब मार्गदर्शन किया है। अब अुपनिषदोके अिस भव्य काव्यमें अुनका मार्गदर्शन करनेकी जरूरत है। तभी सस्कारी शिक्षण सार्थक होगा। जानकारी चाहे जितनी दिमागमें भरें, लेकिन अुतना ही करनेसे क्या लाभ होगा? हृदय-परिवर्तन होना चाहिये। और हृदय-परिवर्तन करनेकी शक्ति तो अिन अुपनिषदोके अृषियोमें ही है।

अक्तूबर, १९२६

१२

नये जीवन-दर्शन

[अेक पुरानी टिप्पणी]

हमारे विद्वान धार्मिकोने यह बात निश्चित कर दी है कि जो मनुष्य प्रस्थानत्रयीकी अेकवाक्यता सिद्ध कर दिखाये वह आचार्य है। प्रस्थानत्रयीका अर्थ क्या? अुपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता। अुपनिषदोमें हमारे अृषियोके मौलिक अनुभव और मौलिक विचार हैं। ब्रह्मसूत्रोमें अुपनिषदोके वचनोसे निथरा हुआ दार्शनिक शास्त्र है। और गीता अिन्ही अुपनिषदोसे तैयार किया हुआ दिव्य रसायन है। गीता अुपनिषदोका अत्यन्त व्यापक किन्तु सक्षिप्त जीवन-भाष्य है।

अिसलिअे मूल वस्तु तो अुपनिषदोमें सगृहीत प्राणवान तथा प्रामाणिक अनुभवात्मक विचार ही हैं। जो मनुष्य अिन सबकी अेकवाक्यता सिद्ध कर सके अर्थात् अिन अुद्गारोमें से अेकरूप तथा अखड जीवन-रहस्य निचोड सके, वही आचार्य है, वही जीवन-स्वामी है।

जीवनके सपूर्ण तत्त्वोकी मीमासा जिसमें की गअी हो, अेक सार्वभौम तत्त्वकी कुजीसे प्रत्येक प्रश्नका हल जिसमें बताया गया हो, जो बुद्धिका समाधान करे, हृदयको सतोष दे, कर्मको प्रेरित करे और बुद्धि-हृदय-कर्म तीनोका समन्वय करके पुरुषार्थके अतमे विजयी शाति प्राप्त कराये वह दर्शन है। अैसे दर्शनका द्रष्टा अृषि है, और अुसका व्यास (organiser) आचार्य है।

आजके युगमे जीवनके सभी मुख्य प्रश्नोका हल निकालनेवाले कुछ दर्शन प्रचलित हैं। सपत्तिशास्त्र अैसा अेक दर्शन है। वह मानता है और कहता है कि सपत्तिके प्रयोगसे हर बातमे सफलता प्राप्त की जा सकती है। यह दर्शन कहता है कि जो बात सपत्तिके क्षेत्रमें नही आती, वह अुपेक्षाके लायक है। अिस अुपेक्षा-की सलाहके कारण यह दर्शन अधूरा या पगु नही माना जा सकता। वेदात भी तो जगत और मायाकी अुपेक्षा ही सूचित करता है न!

गायका धारोष्ण दूध पी जाते है, अुसी तरह हमें अुपनिषदोके अमृतकी धारायें पीनेका आनद अनुभव होना चाहिये।

अुपनिपदोकी कुछ दलीलें हमारे गले नही अुतरती। कुछ बाते पढकर तो हम हसे बिना नही रह सकते। सत्यकी शोधमें अुपनिपदोके अृषि कैसे अनेक दिशाओमें दौडते हैं, यह देखकर हमारे मनमे अुनके लिअे प्रेम अुमडता है। विचारकी अेक भी दिशाकी खोज अुन्होने बाकी नही रखी है। परन्तु सदियो तक की गअी अिस खोजके अतमे जब हम अुन्हें अध्यात्म-ज्ञानके धवलगिरिके सर्वोच्च शिखर पर बैठे हुअे देखते हैं और 'अभय वै ब्रह्म'की अुनकी गभीर गर्जना सुनते हैं, तब भक्तिभावसे हमारा मस्तक नत हो जाता है और साष्टाग प्रणिपात करके 'त्व हि न पिता योऽस्माक अविद्या परपार तारयसि। नम परमअृषिभ्य नम परमअृषिभ्य।' जैसी औपनिषदी नति (नमस्कृति) हमारे मुखसे निकल पडती है।

आज हमारे समाजमे अुपनिषदोको दूरसे ही नमस्कार करनेकी वृत्ति दिखाअी पडती है। अुपनिषदोका अध्ययन बहुत कम होता है। और जो होता भी है वह वयोवृद्ध लोगोमें भाष्योकी सहायतासे तथा पचीकरणके प्रपचके बाद होता है। हमारे युवक जब सीधे अुपनिषदोके पास जायगे तभी अुनकी दृष्टि खुलेगी तथा विचार और जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें नये नये अनुभव प्राप्त करनेकी शक्ति अुनमें बढेगी। अुपनिषदोके वचन तो बिजलीकी कौंध जैसे हैं। अुनका सपूर्ण अर्थ अभी तक किसीने किया नही है। पाच-पचास हजार वर्ष तक नये नये ढगसे प्रयत्न किये जायें, तो भी अुनमें से जाननेको कुछ न कुछ बाकी ही रह जायगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभवकी मददसे नये ढगसे अुपनिषदोके पास जायगा और अनुभवसे तेज बनी हुअी बुद्धिसे नअी प्रेरणा अुपनिषदोसे प्राप्त करेगा। अिस अेक ही वचनको हम लें 'सन्मूला सोम्य अिमा सर्वा प्रजा सदायतना. सत्प्रतिष्ठा।' अिसमें सपूर्ण मानव-समाजशास्त्र समाया हुआ है।

'सर्वासा विद्याना हृदय अेकायनम्'—अिस वचनको पढनेके बाद क्या शिक्षाकी सपूर्ण दिशाको बदलनेका मन नही होगा?

'हृदयेन हि रूपाणि जानाति। हृदये हि अेव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्ति।' याज्ञवल्क्यके अिस निरूपणको पढनेवाला व्यक्ति कला और आनद-मीमासाको नअी दृष्टिसे ही समझेगा। और थोडा आगे जाकर जब अध्यात्म-विद्याका वही हिमालय कहता है· 'हृदयेन हि सत्य जानाति। हृदये हि अेव सत्य प्रतिष्ठित भवति।' तब तो हमें अैसा लगे बिना नही रहता कि समग्र तत्त्वज्ञानकी नीव ही बदलनेकी आवश्यकता है।

मैं तो आपको अितना ही लिखना चाहता था कि अुपनिषदोका स्वतत्र अभ्यास करनेकी जरूरत है। अधश्रद्धासे नही परन्तु स्वतत्र बुद्धिसे और आदरकी

मानव-जाति अपनी जिम्मेदारी अेक ही दर्शनके हाथमें नही सौंप सकती। वह सभी दर्शनोकी अेक समिति नियुक्त करके अपना कामकाज अुसके हाथमें सौंपती है।

अैसा करनेसे मनुष्य-जातिको सुविधा तो बहुत हुअी, सुरक्षितता भी शायद मालूम हुअी हो, परन्तु यह क्रम अुन्नतिकी दृष्टिसे ठीक नही है। अेक अेक दर्शनके हाथमें अपना जीवन सौंप कर मनुष्य-जातिने आज तक कितने ही प्रयोग किये है, परन्तु अिसमें अुसे सदा पछताना पडा है। अिसमे दोष दर्शनोका नही है, दोष तो मनुष्य-जातिकी अुतावलीका ही है। प्रत्येक दर्शनने जीवनकी व्यवस्था हाथमें लेनेसे पहले जो कौल-करार किये है, अुनमें अेक कडी शर्त अुसने यह रखी है कि हमारा प्रयोग अेकाग्रतासे बहुत लम्बे समय तक किया जाना चाहिये। धैर्यकी यह शर्त मनुष्य-जाति पाल नही सकी। अिस कारण अेक भी दर्शनकी पूरी परीक्षा होनेका सतोप न तो अुस दर्शनको मिला और न मनुष्य-जातिको मिला। मनुष्य-जातिको तो निकटका लाभ चाहिये और अतमे सुन्दर फल भी चाहिये। आरभमें, मध्यमें और अतमे लाभदायक, सुखदायक और सरल हो, अैसा कुछ अुसे चाहिये। यह अिच्छा चाहे जितनी स्वाभाविक हो, परन्तु जीवन-धर्मके यह विरुद्ध है। धैर्य कहता है कि जिस प्रकार मध्यरात्रिके विना सूर्योदय नही होता अुसी प्रकार निराशामें से निकले विना श्रद्धा भी आशाकी सुवर्ण-किरणे नही दिखा सकती।

दर्शनोके अिस महान स्वयवरमें मनुष्य-जातिके हाथोसे माला पहननेके लिअे अेक दर्शन-राज अुपस्थित हुआ है। अुसका नाम है **विनय** अर्थात् शिक्षण। शिक्षण अेक अद्‌भुत जडी-बूटी है, अलौकिक रसायन है, अमृत-सजीवनी है, कामधेनु है तथा कल्पलता है। शिक्षण आप जिसकी कल्पना कर सकें वह सब है, और अुससे अधिक भी बहुत कुछ है। सत्ययुग लानेकी शक्ति तो शिक्षणमें ही है — अैसा दावा शिक्षणके दर्शनकारोका है। हमें अिस दर्शनके स्वरूपको, अिसकी मागको, अिसके कलाकारोको, अिसकी शर्तोंको और अिसकी फलश्रुतिको ध्यानसे सुनना चाहिये। सभव है कि यह अतिम राजपुत्र ही स्वयवरमें सफल हो। आज तक कोअी दर्शन सफल न हुआ अिसलिअे शिक्षण भी सफल नही होगा, अैसा अनुमान निकालनेमें अनुचित अुतावली होनेकी भी सभावना है। जब हम हर दर्शनकी बात सुनते आये हैं, तो शिक्षणकी बात भी क्यो न सुनें?

१९३१

चिकित्साशास्त्र भी अेक दर्शन है। वह कहता है कि आत्मरक्षा अर्थात् शरीर तथा प्राणोकी रक्षा मनुष्यका परम धर्म है। सभी प्रकारके कामोपभोग भोगनेकी शक्ति बढा कर अधिकसे अधिक जीना जीवनका परम पुरुषार्थ है।

राज्यसत्ता भी अेक दर्शन है। सैन्यबल और कानून-बल अुसका द्विविध साधन है। अुसका विश्वास है कि दुनियाके सारे दु खोकी दवा सत्ताके योग्य अुपयोग द्वारा हो सकती है। यदि कोअी सामाजिक आपत्ति दूर करनी हो या सामाजिक अभिलाषा पूरी करनी हो, तो समझदारी भरे कानून बनाने तथा अुन कानूनोका व्यवस्थित अमल करनेकी शक्ति बढानेसे अैसा किया जा सकता है।

विश्वव्यापी व्यापार तथा वस्तु-विनिमय भी दर्शनकी कोटिमें पहुचनेकी आकाक्षा रखता है। भूख जीवनका मुख्य प्रेरक तत्त्व है। जहा भूख मालूम हो वहा अुसे तृप्त करो, कि जीवनका मुख्य कार्य पूरा हुआ।

ससारका प्रत्येक धर्म तो जीवनके प्रत्येक प्रश्नका निराकरण करनेके लिअे ही अुत्पन्न हुआ है। प्रत्येक धर्मको लगता है कि जीवनका रहस्य मैंने ही अच्छी तरह जाना है। लोग मेरा सेवन करेंगे तो अुन्हे सुख अवश्य मिलेगा, अथवा जो कुछ अुन्हें मिलेगा वही सच्चा सुख होगा।

आजकल कला भी सपूर्ण दर्शन होनेका दावा करती है। दु खकी बात अितनी ही है कि कला स्वय अपना स्वरूप नही जानती। कलाने हर बातको सरल, आह्लादक और अनुकूल बनानेका बीडा अुठाया है। जो प्रश्न धर्मको कठिनसे कठिन लगे हैं अुन्हें भी अत्यन्त सरल और सुसाध्य बना सकनेका जादू मेरे पास है, यह कलाका अेक बडा दावा है।

प्रत्येक दर्शन स्वयभू सम्राट्के जैसा होता है। प्रत्येक दर्शनकी यह वृत्ति होती है कि वह अपनी शक्तिसे सब-कुछ कर सकता है, अुसे दूसरे किसीकी मददकी जरूरत नही, वह असहाय नही है, किसीकी मदद भी यदि वह लेता है तो अुदारता दिखाने या अुसे प्रोत्साहन देनेके लिअे ही। अिस वृत्तिके बिना अुसमे दर्शनत्व कैसे आ सकता है? यहूदी लोगोके परमेश्वरकी तरह प्रत्येक दर्शन द्वितीयाक्षम — लोभी अीश्वर ही होता है।

कुछ लोग प्रत्येक दर्शनसे थोडा थोडा अच्छा तत्त्व अेकत्र करके अच्छाअीकी सपूर्ण सामग्री तैयार करना चाहते हैं। लेकिन दर्शनका स्वभाव ही कुछ अैसा है कि वह दूसरे दर्शनके साथ मिल ही नही सकता। जैसे तेल और पानी अेकसाथ नही मिल सकते, शक्कर और नमक अेकसाथ नही मिल सकते, वैसे ही दो दर्शन अेकसाथ मिलकर नही चल सकते। यह भय रहता है कि दर्शनोकी खिचडी कर देनेसे वे स्वय भी बिगडेंगे और मानव-जीवनको भी बिगाडेंगे। परन्तु मनुष्य-जाति तो मानव-स्मृतिके आरभसे ही प्रत्येक दर्शनसे थोडा थोडा अश लेकर और अुन सबको मिलाकर ही अपना जीवन चलाती आअी है। अश्रद्धालु

तब क्या निसर्गमें अुडाअूपन नही है? है भी और नही भी है। यदि प्रत्येक प्रयोगमें अमुक विशिष्टता हो और प्रत्येक प्राणीका अनुभव लेनेवाला चैतन्यका केन्द्र अथवा व्यक्तित्व प्रत्येक प्रयोगमें हो, तो फिर अुडाअूपन कहा रहा? निसर्गमें समृद्धि है, धैर्य है और बुद्धिकी अनतता है। जितना कुछ झड जाता है या सूख कर गिर जाता है, असमय विनष्ट हो जाता है, अधूरा रह जाता है अथवा दूसरोका शिकार बन जाता है, वह सब क्या बेकार गया? नही, कभी नही। प्रत्येक वस्तु जिस प्रकार सकारण है अुसी प्रकार सप्रयोजन भी है। निसर्गमें व्यर्थ कुछ नही है।

हमारी बुद्धि और निसर्गकी महाबुद्धिके बीच जातिका अैक्य है, परन्तु अैश्वर्यका अैक्य नही, अिसीलिअे हम अुस महाबुद्धिको समझनेकी हिम्मत तो कर सकते है, परन्तु नम्र बनकर ही वैसा करनेकी आशा रख सकते हैं।

और, वह महाबुद्धि भी क्या पूर्ण विकसित हुअी है? पूर्ण व्यक्त अथवा प्रकट हुअी है? अुसका नित्य विकास होता ही रहता है। अुस विकासका अत कब होगा, यह कौन कह सकता है? परन्तु अुसका अत किसलिअे हो?

व्यक्तिका अथवा विश्वका जीवन प्रवाह-रूप होता है।

हम भले ही यह मानें कि यौवनमें बाल्यकाल मिट जाता है और वृद्धावस्थामें बाल्यकाल तथा यौवनका लोप हो जाता है, परन्तु वास्तवमें अैसा नही होता। सब अवस्थायें — विकासके क्रमके अनुसार हम जितनी अवस्थाओसे होकर निकले हो वे सब अवस्थाये -- अेक ही साथ हममें होती हैं। किसी कथाके अत तक जब हम आ जाते है तो क्या अुसके आदि और मध्य नष्ट हो जाते हैं? कोअी राग पूरा हो जाने पर क्या अुसका अस्थाअी और अतरा नष्ट हो जाता है? अैसा होता तो रागका ज्ञान ही हमे नही होता। भूत भी वर्तमान है। नदी समुद्रमें मिल जाती है, फिर भी अुसका अुद्गम और अुसका मध्य तो बहता ही रहता है। निसर्गकी महाबुद्धि व्यक्त होती जाती है, विकसित होती जाती है, तो भी अुसके प्राथमिक स्वरूपका अवशेष तो रहता ही है। जिस प्रकार हिन्दू धर्ममें 'तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्' से लेकर अद्यतन विचारो और आचारो तक सभीके लिअे स्थान है, सबका आदर है, अुसी प्रकार निसर्गमें सभी स्थितियोका समावेश और समन्वय है। अधिकाश स्थानोमें वह स्थूल रूपमें है, तो किसी स्थानमें सूक्ष्म रूपमें है।

*

पुरुष-सूक्तमें कहा गया है कि विराट् पुरुषके असख्य मस्तक है, असख्य आखें है और असख्य पैर ह। अिसके आधार पर हमें जानना चाहिये कि विराट् पुरुषके असख्य मन और असख्य हृदय भी है, क्योकि वह सब अेकरूप है। अिन अनत मनोमे कोअी भी विचार अुठा, कल्पना जागी या भावनाकी अूर्मि अुठी

१३

मूलभूत मनन

—And having found his instrument,
Forgets or disregards or more presumptuous still,
Denies the Power that wields it

—William Cowper

निसर्गमे बुद्धि, हेतु और योजना नही है, अैसा कौन कह सकता है? जो बुद्धि मदान्ध होकर निसर्गके बारेमें अैसा सकुचित मत रखती है, वह बुद्धि भी क्या निसर्गकी ही कृति नही है?

सृष्टिमें असख्य जीव पैदा होते है। अुन्हें पोषण मिलता है, अुनका विकास होता है और अुनका नाश होता है। और यह सब किसी मागलिक नियमके अनुसार ही होता है, यह क्या बताता है? जहा भी देखिये वहा व्यवस्था है, योजना है, औचित्य है, अनुकूलता है, सुन्दरता है, धीरज है, विकास है। यह सब महाबुद्धिके बिना सभव ही नही हो सकता। वनस्पतिके जीवन और विकासकी जाच कीजिये। सूक्ष्म कीडोका जीवन-धर्म खोज निकालिये। तारोके विस्तारका और अुनके विराट् रास (नृत्यक्रीडा) का ध्यान कीजिये। हृदयकी गूढ और जटिल भावनाओके महासागरमे अवगाहन कीजिये। ज्ञात और अज्ञात सभी अद्भुत है, व्यवस्थित है, हेतुपूर्ण है। पत्तोका आकार, बादलोकी अस्पष्ट रेखाये, हड्डियोकी रचना, शखोका मरोड, पतिगोके पख, हिंसक जानवरोकी भूख, श्वापदो (शिकारी जानवरो) का भय, दुष्टोके षड्यत्र और प्रत्येकको व्यापनेवाली अल्प या महानिद्रा सभी कुछ हेतुपूर्ण है। कुछ हमें पसन्द आता है, कुछ नही आता। कुछसे हम प्रसन्न होते है, कुछसे हम घबराते है। यह हमारा जीवन-धर्म है। हम केवल अेक अश है। अशकी मनोभावनासे सपूर्णकी रचना या योजनाका माप नही निकाला जा सकता, अुसकी जाच, अुसका मूल्याकन नही किया जा सकता। जैसे भूखके विना खाना नही पच सकता, जैसे जिज्ञासाके विना निरीक्षण नही हो सकता, जैसे अखड जागृतिके विना अुन्नति नही साधी जा सकती, वैसे ही नम्रताके विना, अपनी अल्पज्ञताके भानके विना विश्वके रहस्यकी झाकी नही हो सकती — यितना मानव कब समझेगा?

जहा देखिये वहा निसर्गमें कितनी सुन्दरता है, कितनी व्यवस्था, कितनी परस्पर अनुकूलता, कितनी मितव्ययिता, कितना सामजस्य है!

नही रहती। समाज-सेवा करनी है? हा, परन्तु सत्यका हाथ छोड कर नही। दान और परोपकार करना है? हा, परन्तु वह भी सत्यके प्रति वफादार रहकर ही। शास्त्रोकी रचना करनी है? हा, किन्तु जहा तक सत्य ले जाय वही तक। अन्य सबका सहवास खतरोसे भरा हो सकता है, परन्तु जिस प्रकार बालकके लिअे परम आप्त, परम कल्याणकारी अुसकी माता ही होती है, अुसी प्रकार मनुष्यके लिअे यह सत्य ही परम आप्त, परम कल्याणकारी होता है। और सब बातें बाहरी होती हैं। अुन्हे प्राप्त करना होता है या अुन्हे सीखना होता है, परन्तु सत्य तो हमारी अुत्पत्तिके साथ ही रहता है, वह हमसे पहलेका है। बहू ससुरालके सभी लोगोकी श्रद्धाभक्तिसे सेवा करती है, परन्तु अुसकी निष्ठा तो अेक पतिको ही अर्पित होती है। अिसी प्रकार हम चाहे जिस क्षेत्रमें कार्य करे, चाहे जो जिम्मेदारी अुठायें, चाहे जो साधना करे, परन्तु अिस प्रिय सखा सत्यको, अिस सनातन साथीको छोडकर न करे। वह है अिसीलिअे जगत है। वही ईश्वर है। हमारी दृष्टि अन्तर्मुख होगी तब हमें यह विश्वास होगा कि आत्मा अुससे अलग नही है। सत्यका अर्थ केवल व्यवहारकी प्रामाणिकता ही नही है। सत्यका अर्थ केवल यथार्थ कथन ही नही है। सत्य हमारे साथ पहलेसे ही है। जैसे जैसे हमारी अुन्नति होती जाती है वैसे वैसे हमे अिस सत्यका सूक्ष्म और सूक्ष्मतर दर्शन होता जाता है। स्थूल अथवा सूक्ष्म सत्यके दर्शनसे कोअी मनुष्य वचित होता ही नही। अिसीलिअे सबके लिअे आशा है, और सबके जीवनमें जिम्मेदारी है। सत्यका दर्शन ही जीवनका सार है, बाकी सब नि सार है। क्यो? क्या आपको विश्वास नही होता कि बाकी सब नि सार है? मैं सचमुच कहता हू कि बाकी सब नि सार है। हम अुस हृदय-स्वामीको धोखा न दें। वह हमें कभी धोखा देता ही नही। वह कल्याणकारी है यह अुसकी सुन्दरता है, परन्तु यह अुसकी सिफारिश नही है। सत्य सत्य है, यही अुसकी सिफारिश है। प्रत्येक प्रवृत्तिका अतिम फल, अतिम सतोष सत्य ही है।

अिस बातका अनुभव होनेके बाद ॐ ही हमारा महाकाव्य बन जाता है। अुसका जप ही हमारा अखड सतोप हो जाता है।

१९२४

कि वह किसी न किसी प्रकार मूर्तरूप लिये बिना नही रहती। अिसीलिअे तो मनके व्यापार पर प्रबल नियत्रण रखना जरूरी होता है।

मै जितने मानसिक पाप करता हू वे सब मेरे आचरणमें भले ही न अुतरें, परन्तु कही न कही तो वे आचारका रूप लेगे ही। यह आशा व्यर्थ है कि हम किसी न किसी प्रकार अपने विचारो, अपने मनोरथो और अपनी कल्पना-तरगोको अलग या अलिप्त रख सकते हैं।

पानीमें पडा हुआ नमक जैसे सारे पानीमे फैल जाता है, आकाशमें अुठी हुअी अूर्मि जैसे अनत तक पहुच जाती है, वैसे ही हमारी वासनायें विश्वमे फैलती हैं और विश्वको बनाती हैं या अुसे पीडा पहुचाती हैं। केवल आचार पर रखा जानेवाला नियत्रण काफी नही है, चित् शक्ति तो हमारे सकल्पमें ही रहती है। सारा विश्व और अुसका अेक अेक रज सकल्प-प्रभव है, अिसलिअे सकल्प-शुद्धि ही महासाधना है।

२१-४-'२७

१४

ॐ – प्रणवोपासना

[अेक प्रवचन]

ॐकार हमारा सर्वश्रेष्ठ अेकाक्षरी मत्र है। अिसे प्रणव कहते हैं। अिसका दर्शन और श्रवण गभीर और आह्लादक है। ॠषियोने अिस प्रणवका रहस्य बतानेके लिअे अेक अुपनिषद्का अुपयोग किया है, फिर भी अिसका सपूर्ण आकलन नही होता। अिस ॐ का अर्थ क्या है? ॐ का अर्थ है सनातन 'हा'। सशय, अश्रद्धा, नास्तिकता सबको अेक स्मितसे ही दूर करनेवाला यह प्रसन्न 'हा' हैं। ॐ कहता है ब्रह्म है, यह जगत है, भूत-भविष्य-वर्तमान सभी है। अिनके परस्पर सबधके बारेमें हम कैसी भी कल्पना क्यो न करें, सब कुछ है, और वह अेक ही है, कुछ नही है, अैसा नही। जहाँ ॐ है वहां असत्य, अभाव या सशयके लिअे स्थान ही नही है।

वही सत्य-नारायण है। वही हमारा प्रिय सखा है। अुसके सहवासमें हम सर्वत्र सुरक्षित हैं। जीवनमें अनेक मार्ग हमें ललचाते हैं, हर कदम शकासे भरा होता है, सर्वोच्च आदर्श कौनसा है— अिस बारेमें हम सदा अुलझनमे पडे रहते हैं, प्रतिक्षण हमारे सामने धर्म-सकट आते हैं, परन्तु यदि हम अिस प्रिय सखा ॐ का अथवा शुद्ध सत्यका हाथ पकड कर चलें, तो कही भी अुलझन

सतोने सबसे बडा काम यह किया कि धर्म और रूढिके नाम पर जो भ्रम, वहम या गलतफहमिया फैली हुआी थी अुनको दूर कर दिया। सभवत सतोका सबसे श्रेष्ठ कार्य यही है।

लोगोके भ्रमको दूर करनेके साथ साथ अुन्होने व्यवहार-शुद्धिका कार्य भी काफी किया है। अुनके जमानेमें भिन्न भिन्न जातियोमें जो कुछ छल, कपट और अमानुषता थी, अुसे भी दूर करनेके लिअे सतोने काफी प्रयत्न किया है। वे सत्यके प्रचारक थे। जहा तक अुनके जीवनका सम्बन्ध आता था, वे सत्याग्रही भी थे। किन्तु समाजकी कमजोरीको तथा अुसके और अपने बीचमें रहनेवाले अन्तरको देखकर सत्य-प्रचारसे अधिक आग्रह अुन्होने नही रखा।

सामाजिक सुधारके बारेमें भी सतोने कुछ कम काम नही किया। छुआ-छूतको अुन्होने अैसा फटकारा है कि अगर स्वार्थी ब्राह्मणोने अुनका काम बिगाड न दिया होता, तो छुआछूत कभीकी नष्ट हो गअी होती।

सत जानते थे कि जाति-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था समाजके आर्थिक सगठनके लिअे चाहे जितनी आवश्यक हो, परन्तु अिस व्यवस्थासे समाजका कल्याण और व्यक्तिका अुद्धार न कभी हुआ है और न होनेकी सभावना ही है।

सतमतका प्रादुर्भाव यो तो अनादि कालसे है, किन्तु जिस 'सतवाणी' का यहा सग्रह किया गया है अुस वाणीका और अुसकी परम्पराका प्रारभ तो शायद कबीरसे ही हुआ है। कबीरने जो कार्य किया अुसकी प्रेरणा तो अुन्हे स्वामी रामानन्दसे ही मिली थी। कबीरका हिन्दुओ और मुसलमानो दोनोके ही साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण अुनमें असाधारण योग्यता आ गअी थी। निर्भयताके साथ वे दोनोको फटकारते थे। दोनोको वे शुद्ध सत्य-धर्मका रास्ता दिखाते थे। आज हमारे देशमें और खासकर गावोमें जो हिन्दू-मुस्लिम-अेकता दीख पडती है, वह सतोकी ही बदौलत है। सतोने सामाजिक नियम ज्यो-के-त्यो ही रहने दिये। वे जानते थे कि सामाजिक रूढियोके पीछे विशिष्ट वर्गोंके हित-अहितका भी सवाल आता है। लोगोको अिन रूढियोके बारेमें अुदासीन बना दिया, तो आधा काम हमारा हो गया। बाकीका आधा काम युग-प्रवर्तक काल स्वय ही कर लेगा। सतोकी अिस दृष्टिमें शायद दीर्घदर्शिता थी। शायद अपने सामाजिक कार्यको दृढ बनानेके सम्बन्धमें वे अुदासीन थे। समयके प्रवाहके साथ समाजमें रूढिने अपना आसन फिरसे जमा लिया और अुसने निश्चय किया कि सतोका अुपदेश सतोके ही लिअे अच्छा है। लोगोमें न तो सतोका त्याग है और न सतोकी शान्ति है।

सतोके कार्यमें यह जो कमजोरी रह गअी, अुसे सतोकी कार्य-पद्धतिका दोष मानें या मनुष्य-स्वभावके नैसर्गिक दोषका परिणाम मानें?

सतोने शास्त्रधर्मको श्रद्धाजलि देकर अेक ओर रख दिया। लोकधर्ममें जो अच्छा अश अुन्हे मिला अुसीकी अुन्होने प्रतिष्ठा बढाअी और अनिष्ट

१५
संतवाणीका कार्य*

आज जव कि देशमे धर्म-धर्मके वीच झगडे वढ रहे है और चन्द लोग घवरा कर यहा तक कहने लगे है कि धर्म-मजहवकी वला ही न रहे तो अच्छा, तव 'सतवाणी' का यह सग्रह देखकर अत्यन्त आनन्द और सन्तोष होता है। दावानल चारो ओर भडक रहा हो और वीचमें वर्षा हो रही हो, तव जैसा सन्तोप होता है वैसा ही असर 'सतवाणी' का देशके सतप्त हृदय पर पडता है। लडाओी-झगडे होते है धर्मके मिथ्या अभिमानसे, धर्मके नाम पर चलाये जानेवाले स्वार्थ, मत्सर और द्वेषसे, अथवा अज्ञानके कारण वास्तविक भावको छोडकर शव्दोको दिये हुअे महत्त्वके कारण। सत कहते है धर्म कोअी घरका पशु तो है नही, जिसका पालन-पोपण वाह्य रूपसे किया जा सकता हो। धर्म तो जीवन-परिवर्तन है, नअी दृष्टिको प्राप्त करना है। धर्म अेक विशिष्ट कोटिका जीवन है। अुस जीवनका जिन्होने प्रत्यक्ष परिचय पा लिया अुनके मनमें वाह्य सिद्धान्तोके झगडे गौण हो जाते है। पहुचे हुअे लोगोकी तो 'अेक ही वात' होती है। 'सव साधोका अेक मत, विचके वारह वाट।'

जव देशमे धर्म-अधर्मके लडाअी-झगडे वढ गये तव अिन सतोने अनेक रूपोमे अवतार ले लेकर धर्मका हार्द ढूढ निकाला और लोगोको दिया। सतोमें सवको सभालनेकी समन्वयकारी वृत्ति थी, परस्पर स्वार्थका मेल जमानेके लिअे वह धूर्तोका किया हुआ समझौता नही था। सतमें और कोअी श्रेष्ठता हो या न हो, अुसका प्रथम लक्षण अुसकी निस्पृहता है। जो निस्पृह है वह निर्भय भी है। अिसीलिअे अिन सतोने धर्माग्रही और धर्माभिमानी कर्मकाण्डी लोगो पर कोडे लगानेमे जरा भी सकोच नही किया।

सतोके पास अिस सुधार-कार्यके लिअे कोअी निश्चित योजना या कार्य-पद्धति नही थी। अुन्हे पुरानी रचना तोड कर किसी नअी रचनाकी स्थापना नही करनी थी। वे रचनामात्रको अुदासीनतासे देखते थे। कभी वे कहते थे कि अिन ग्रथोमे क्या खोजते हो, अिनमें क्या धरा हुआ है! ग्रथोको छोड दो। ग्रंथोके सहारे हृदय-ग्रथि खुलनेकी नही। 'मसि कागजके आसरे क्यो टूटै भववन्ध!' कभी वे कहते थे कि अिन ग्रथोका कोअी दोप नही। सोचनेवाले लोग ही जहा स्वार्थी, अज्ञानी या मोहमत्त हो, वहा वेचारे धर्मग्रथ क्या करे?

---

* श्री वियोगी हरि द्वारा सगृहीत 'सतवाणी' की प्रस्तावना।

भिन्न भिन्न संतोके वचनोका अैसा सग्रह करना दीर्घकालके संकल्प और प्रयत्नोका फल होता है। अुसके पीछे जो परिश्रम किया जाता है अुसके साथ साथ जो अपूर्व आनन्द मिलता है, वही अुस परिश्रमका मधुर फल है। अिस सग्रहके पठन-पाठनसे जो आनन्द होता है अुससे कही वढकर सग्रहकारको अिन रत्नोका चुनाव करनेमें हुआ होगा।

सग्रह करनेके वाद सग्रहकारने जिन भिन्न भिन्न शीर्षकोके नीचे अिनका वर्गीकरण किया है, वे शीर्षक ही सतमतका रहस्य बतानेके लिअे समर्थ हैं।

सग्रहके साथ साथ आधुनिक हिन्दी गद्यमें सग्रहका जो भावार्थ (paraphrase) सग्रहकारने दिया है, अुसमे अुनकी कवित्व-शक्ति भी प्रकट होती है। अिसे पढते समय गद्यकाव्यका रसास्वाद मिल जाता है।

मुझे विश्वास है कि जिन लोगोकी जन्मभाषा हिन्दी नही है अुन्हे यह भावार्थ बडी सहायता पहुचायेगा। अपनी अपनी प्रान्तीय भाषाअे बोलनेवाले हम हिन्दी-प्रेमियोका यह विशेष कर्तव्य है कि हम अपनी अपनी भाषाओके सतोकी सूक्तियोका अैसा ही सग्रह सकलित कर अुसे नागरी अक्षरोमे छपा दें और हिन्दीमे अुसका अनुवाद भी दे दें। वियोगीजीकी गद्यकाव्यकी शक्ति हरअेक भाषान्तरकारमें शायद न हो, किन्तु कवियोकी वाणीका तेज और अुसकी मधुरिमा अपने कर-भारसे राष्ट्रभाषाको समृद्ध किये विना नही रहेगी।

१६

सत्य-नारायणका व्रत

१

प्रास्ताविक

स्वामी विवेकानन्दने अपने 'अुद्वोधन' में कुछ सुन्दर कथायें और आनदप्रद शब्दचित्र दिये हैं। अुनमे अेक यह भी है

"सनातन हिन्दू धर्मका मदिर गगन-स्पर्शी है। अुस मदिरमें जानेके मार्ग भी कितने है! और अुस मदिरमे क्या नही है? वेदातियोके निर्गुण ब्रह्मसे लेकर ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, दुर्गा, सूर्य-नारायण और चन्द्रमा तक तथा चूहे पर सवार गणेशसे लेकर ठेठ छठी, शीतला जैसे छोटे-वडे देवी-देवताओ तक सभी कुछ है। और वेद, वेदात, दर्शन, पुराण, तत्र आदिमे अितना माल भरा है कि अुनमें से अेक ही चीजसे हमारा भव-वन्धन टूट सकता है। और अुस मदिरके सामने लोगोकी भीड भी कितनी वडी है! तैंतीस करोड लोग अुस मदिरकी ओर दौडते हैं।

शका प्राणपणसे विरोध किया। अपने अनुभव, अपने निरीक्षण और लोक-
ल्याणके आधार पर अुन्होंने विशिष्ट सिद्धान्त-निरपेक्ष धर्म चलाया।

अेक वात खास तौरसे ध्यानमें रखनी चाहिये। अिन सतोकी गगोत्री तो
वनाथोके योगमार्गमे है। हठयोग और कीमियाका प्राधान्य अुनमें वहुत था।
ादमें अिन दोनो चीजोकी प्रतिष्ठा कम होने लगी और सुरता-साधक ध्यान-
ागका महत्त्व वढा। ध्यानयोग चूकि लोक-सुलभ नही था, अिसलिअे अुसके साथ
ाथ भक्तियोग आ गया। अनासक्ति और त्याग तो सतधर्ममे प्रारभसे अन्त तक
रा ही हुआ है। हठयोगकी प्रतिष्ठा सतोने अपने मूक विरोधसे जिस तरह
म की, अुसी तरह ब्रह्मचर्याश्रमकी प्रतिष्ठा भी सतोने विना किसी विरोधके
म कर दी। जो ब्रह्मचारी है वही सत हो सकता है — गृहस्थाश्रम सतोके
ज़ि है ही नही, अैसे विचारको अुन्होंने धीरे-धीरे नरम वनाकर सादगी, सतोप,
गरिग्रह और भूतमात्रके कल्याणकी दयावृत्ति, अिन्हीको अुन्होंने जीवनका सार-
र्वस्व वताया।

सतोके प्रभावसे हमारा राष्ट्रीय चारित्र्य वहुत ही अूचा अुठा, अिसमे कोअी
देह ही नही। किन्तु आजकल सतमतके प्रचारके वारेमे अेक शिकायत वार-
र अुठती है। वह यह कि सतोने लोगोमे जो सतोप-वृत्ति और अनाग्रह पैदा
या अुमीका नतीजा है कि लोगोमे लोक-जीवनके वारेमे अनुत्साह पैदा हो गया।
तवाणीका अधिकसे अधिक प्रचार हुआ सिक्खोमें, वैष्णवोमे और महाराष्ट्रके
रकरी लोगोमें। सतमतके और सतवाणीके प्रचारके गुण-दोष अिन लोगोके
वनसे निश्चित करनेका मोह अैतिहासिकोको अवश्य होगा, किन्तु अैसा करना
चित नही है। प्राचीन कालसे मनुष्यने अपने सामाजिक गुण-दोषोके अनुसार
ाने धर्मको समझा और अपनी सकुचित दृष्टिके अनुसार अुसका पालन किया।
कायर हैं वे अहिंसाकी ढालके पीछे रहकर अपनी कायरताको ढाक देते हैं,
न्तु अिससे अहिंसा-धर्म कायरोका धर्म सिद्ध नही होता।

भाषाकी दृष्टिसे भी सतोकी सेवा कुछ कम नही है। सतोने तो भाषाकी
क टकसाल ही खोल दी है, जिसमें से नअी नअी किस्मकी अशर्फिया नित्य ढल-
लकर निकलती रहती है। वन्दूककी गोलीकी तरह सतवाणी सीधे मनुष्यके
दय तक पहुच कर अेक क्षणके भीतर अुसकी मरी हुअी धर्मवुद्धिको पुनर्जीवित
र देती है। सतोकी वाणी अनेकार्थी, जन-मनोहर, अल्पाक्षर, मधुर और सत्य-
ी होती है। अुनकी शैली निश्चयात्मक होती है, क्योकि वह जीवन-मूलक होती
अिसी कारण वह लोक-सुलभ भी होती है। सतवाणी किसी भी राष्ट्रकी
श्रेष्ठ पूजी है। वह वाणीका विलास नही, किन्तु जीवनका निचोड है, अिसी-
अे वह जीवित और अमर होती है। सतवाणी अैसी स्वर्गीय गगा है, जिसमें
ान-पान करनेसे लोक-जीवन पवित्र, समृद्ध, समर्थ और स्वतत्र हो जाता है।

हस-वाहन होता है, जब कि रूढधर्म 'बहुचराजी माता' की तरह कुक्कुट-वाहन होता है। शास्त्रके हसको तत्त्वरूपी मोती मिलते है या नही, यह कहना कठिन है, परन्तु रूढिके कुक्कुटको बहुत घूमनेवाला होनेके कारण भले-वुरे सस्कारोके रूपमे दाने खूब मिलते है।

आजकल यूरोपमें सस्कारी लोगोका ध्यान 'अेन्थ्रोपोलॉजी' अथवा मानव-वश-शास्त्रकी ओर अधिक है। अुसका प्रभाव भारतमे भी पडा है। यहाके विद्वान शास्त्रोसे वाहरके हिन्दू सस्कारो और रीति-रिवाजोका अध्ययन करने लगे है। वगालमें रवीन्द्रनाथ ठाकुरने बाअुल सप्रदायके साहित्यकी ओर लोगोका ध्यान खीचा है। मैसूरमें मिथिकल सोसायटीने तथा वम्वईमें सर नारायण चदावरकरने लोकरूढियोकी दृष्टिसे हिन्दू धर्मका रहस्य खोजनेका प्रयास आरभ किया है। यूरोपके मानववश-शास्त्री मुख्यत अैसे साधनोके वारेमें टिप्पणिया लिखनेका तथा भिन्न-भिन्न देशोमें प्रचलित मान्यताओकी तुलनाका कार्य करते आये है।

सस्कारी सनातन धर्मका रूढधर्म भी वडा सस्कारी है। अुसका अध्ययन विलकुल अलग ढगसे होना चाहिये। हिन्दू समाजके नेताओकी दृष्टि पहलेसे ही अिस रूढधर्मकी ओर होनेसे अुन्होने रूढधर्मके स्वतत्र प्रवाहको किसी भी तरह रोका नही और पहलेसे ही अुसे सस्कारी वनानेका शुभ प्रयत्न आरभ कर दिया था। अुन्होने रूढधर्मके सभी देवी-देवताओको पचायतनके अवतार बना डाला, अुनमें से मुख्य देवी-देवताओको राष्ट्रीय त्योहारोमें स्थान दे दिया, मासके वदलेमें अुडदका आटा या भूरा कुम्हडा रख कर हिसक सस्कारोको अहिसक वना दिया और अिस प्रकार सारी जनताको अुन्नतिका मार्ग दिखाया।

रूढधर्ममें बहुत वडी शुद्धता खोजना ही भारी भूल है। लोगोका जैसा स्वभाव है अुसीको स्वीकार करके अुसमें अुन्नतिका अेकाध बीज बो देनेका, लोक-जीवनमें अहिसाकी अेकाध काव्यमय छटा वढा देनेका ही काम अुसमें किया जा सकता है। अिसी दृष्टिसे हिन्दू शास्त्रकारोने रूढधर्म पर कौनसे और कितने सस्कार चढाये है और अुनकी वजहसे आजका हिन्दू जीवन कितना सस्कारी तथा काव्यमय वन गया है, अिसकी हमें सस्कृतिकी दृष्टिसे जाच करनी चाहिये। भगिनी निवेदिताने अिस प्रकारका अध्ययन बहुत किया है। फील्डिग हॉलने ब्रह्मदेशके वारेमें अिसी तरहके अनेक लेख लिखे है। किन्केड साहवने अेंग्लो-अिडियन पद्धतिसे अिस दिशामें वहुत लिखा है। परन्तु हम अितनेसे कभी सतोप नही मान सकते। हमें प्रत्येक त्योहार, प्रत्येक रिवाज और प्रत्येक सस्कारकी जाच करनी चाहिये और यह खोज निकालना चाहिये कि अुसमे कौनसा रहस्य रखनेका प्रयत्न किया गया है। रूढियोमे दोप देखना कठिन नही है। परन्तु सत्यकी शुभ दृष्टि गुण-विवेचनसे सतोप नही मानती, वह तो रहस्य जानना चाहती है। अैसी ही दृष्टिसे अपने देशके प्रचलित व्रतो तथा अुत्सवोका

"हमारे मनमें भी कुतूहल पैदा होनेसे हम पैदल चले गये। लेकिन जाकर देखते है तो स्तव्ध रह जाते है। मदिरके भीतर कोअी जाता ही नही। दरवाजे पर पचास सिर, सौ हाथ, दो पेट और पचास पैरोवाली अेक मूर्ति खडी है और सब लोग अुस मूर्तिके पैरोके पास लोट रहे है। अेक आदमीसे हमने पूछा 'यह है क्या?' अुसने कहा 'अुस मदिरके भीतर जो देवी-देवता दिखाअी देते है अुन्हे आप दूरसे ही नमस्कार करे और अुन पर अेक दो फूल फेक दे, तो अुनकी बहुत पूजा हो गअी। लेकिन सच्ची पूजा तो अिस दरवाजे पर खडे देवकी ही करनी चाहिये। और यह जो आप वेद, वेदात, दर्शन, पुराण, शास्त्र सब देखते है, अुनका प्रसगवश श्रवण करे तो कोअी हर्ज नही। लेकिन आज्ञा तो आपको अिस देवकी ही माननी चाहिये।'

"हमने दुबारा पूछा 'तो अिस देवाधिदेवका नाम क्या है?'

"अुत्तर मिला 'लोकाचार यानी रूढि।'"

अिस छटादार शब्दचित्रमें स्वामी विवेकानन्दने हिन्दू धर्मका व्यावहारिक रूप दिखाया है। यह स्थिति केवल हिन्दू धर्मकी ही है, अैसा नही। सारे ससारमें सभी धर्मोकी यह स्थिति है। शास्त्रकी प्रगति तर्कके अनुसार हो सकती है, परन्तु लोकाचार तो हृदयका प्रवाह जिस दिशामे बहे अुसी दिशामें बहता है। अीसाअी धर्म और अिस्लाममे कितने ही सस्कार और प्रथाये अुन धर्मोके सिद्धान्तोसे भिन्न हैं। भारतमें द्विज और अद्विज जैसा समाजका बड़ा भेद होनेसे शास्त्रधर्म तथा प्राकृत धर्मके दो स्पष्ट भेद पडे हुअे हम देखते है। हर समय धर्म-सुधारकोने प्राकृत धर्मको सुधार कर अुसे सस्कृत धर्म बनानेका प्रयत्न किया है। रूढधर्म और अुसकी रूढियोकी निन्दा करनेमें ही हमने अभी अभी अनेक वर्ष बिता दिये, परन्तु हमारे ध्यानमे यह बात नही आअी कि रूढ-धर्मके पीछे राष्ट्रीय प्राण होते है। देशके दोष और देशकी विशेषतायें, देशकी शक्ति और देशकी अशक्ति अिस रूढधर्मके ही ॠणी होते है। किसी देशका शास्त्रधर्म केवल अुस देशके आदर्श अथवा सर्वोच्च महत्त्वाकाक्षाको बताता है, परन्तु देशकी सच्ची स्थिति तो रूढधर्मसे ही समझी जा सकती है। समाज जब बहते पानीकी तरह पुरुषार्थी और स्वच्छ होता है तब शास्त्रधर्म पत्थर जैसा कठोर बना हुआ नही होता, और रूढधर्म भी अपमानित नही होता। समाजमे अुच्च वर्ग और सामान्य वर्ग जब परस्पर मिल-जुलकर रहते है तब शास्त्रधर्मकी अुदात्तता झर-झर कर रूढधर्ममे अुतर आती है और जिस प्रकार कमलको कीचडसे पोषण मिलता है अुसी प्रकार शास्त्रधर्मको रूढधर्मसे नित-नया भोजन मिलता है। शास्त्रधर्मका तर्कशास्त्र बहुत तीक्ष्ण होता है, शास्त्र-धर्मका मानसशास्त्र बहुत सूक्ष्म होता है। परन्तु रूढधर्म बहुत भोला होता है। वह मानव-स्वभावकी गहरी परीक्षा नही करता। शास्त्रधर्म ब्रह्मदेवकी तरह

अुदाहरण है। अेक पुराण-धर्माभिमानी शास्त्रीने कहा था कि सत्य-नारायणका व्रत पिछले १०० वर्षोंमें ही अस्तित्वमें आया है। गुजरात और महाराष्ट्रके बीचके व्यापारका और छोटे छोटे राज्योका स्मरण जब ताजा था अुस समय यह व्रत शुरू हुआ होगा। परन्तु अिस व्रतके विस्तार और लोकप्रियताको देखते हुए यह कहना गलत नही होगा कि अिस व्रतमें लोगोके हृदयमें बसनेवाले धर्मका रूप सुन्दर ढगसे देखनेको मिलता है।

दुनियाका अधिकतर व्यवहार मामूली लोगोके हाथमें होता है। सत्य पर आम लोगोकी तात्त्विक श्रद्धा बहुत कम होती है। ससारमें चाहे जैसा नुकसान सहन करने जितना पौरुष सामान्य लोगोमें नही होता। सत्य-असत्यका कोअी भी विचार किये बिना क्षणिक और प्रत्यक्ष लाभके लिअे लोग वचन-भग करते है, नियम तोडते है, झूठेको सच्चा कर दिखाते है। कामनाकी सिद्धिके लिअे सत्यके साथ समझौता करनेवाले अैसे अज्ञान लोगोको सत्यकी लगन कैसे लगाअी जाय और सत्यके सेवनसे ही अतमें सारी कामनाये सिद्ध होती है यह श्रद्धा अज्ञान लोगोके मनमे कैसे बैठाअी जाय, यह अेक विकट सनातन प्रश्न है। साधु-सतोने, कानून बनानेवालोने तथा समाजके नेताओने अनेक तरहसे अिस दिशामें प्रयत्न करके देख लिया है। सत्यनारायण-व्रतके प्रवर्तकने अपनी शक्ति और मतिके अनुसार सत्य-नारायणकी पूजा तथा कथाके द्वारा अिस प्रश्नको हल करनेका प्रयत्न किया है।

सत्य-नारायणकी पूजाको लोगोमें प्रचलित करनेसे दो अुद्देश्य सिद्ध हुअे हैं। लोग सत्यका सेवन या पालन करे, यह पहला अुद्देश्य, सत्यकी महिमाका समाजमें निरन्तर गान हो, यह दूसरा अुद्देश्य। अिस पूजाको अुत्सवका नाम नही दिया, परन्तु व्रत कहा है—यह बात भी यहा ध्यानमें रखने जैसी है। अुत्सवमें हम किसी भूतकालीन घटनाका या किसी धार्मिक तत्त्वका अुत्साहके साथ सहर्ष स्मरण करते हैं, जब कि व्रतमें हम अपने जीवनको अधिक अूचा बनानेके लिअे कोअी न कोअी दीक्षा ग्रहण करते है।

सत्य-नारायणकी कथा सुननेसे और स्वादिष्ट प्रसाद खानेसे सत्य-नारायणका अुत्सव हुआ माना जायगा, लेकिन अुसे व्रत नही कहा जा सकता। जिसे सत्य-नारायणका व्रत करना हो अुसने स्वय हर समय, हर स्थान पर और हर अवसर पर सत्यके आचरणकी और मौका मिलने पर सब लोगोको सत्यका महत्त्व समझाकर सत्यका कीर्तन करनेकी दीक्षा ली हो, तो ही अुसे सत्य-नारायणका व्रत करनेका पुण्य मिल सकता है।

दुनियामें सभी लोग सामर्थ्य और सपत्तिकी अभिलाषा रखते है। धर्म कहता है. 'भूतदया तथा सत्याचरण द्वारा ही तुम्हे सच्चा सामर्थ्य और सपत्ति मिल सकेगी।' पुराणोने यही सिद्धान्त अेक सुन्दर रूपक द्वारा हमारे मन पर बैठाया

अध्ययन हम करना चाहते है। अिसका आरभ हम गुजरात और महाराष्ट्रमें लोकप्रिय तथा तुलनामे अत्यन्त नवीन व्रत — सत्य-नारायणके व्रतसे करते हैं।

२

व्रत-रहस्य

सत्या परता नाही धर्म।
सत्य तेंचि परब्रह्म ॥*
— मुक्तेश्वर

सत्य-नारायणका व्रत अिस प्रान्तमें तथा महाराष्ट्रमे अत्यन्त लोकप्रिय है। धर्मशास्त्रोमे अिस व्रतका स्थान नहीं है, परन्तु रूढधर्ममें सत्यनारायण-व्रतका स्थान अूचा है। लोगोकी यह मान्यता है कि अिस व्रतसे अिष्ट-कामना सिद्ध होती हैं। अिस व्रतमे सत्य-नारायणकी पूजा, कथाका श्रवण तथा प्रसादका भक्षण — अैसे तीन मधुर विभाग हैं। कदाचित् अिसी कारणसे अिस व्रतके पीछे सत्यकी जो महिमा है वह ढक गअी है। अुस महिमाकी ओर लोगोका ध्यान खींचनेका यह अेक अल्प प्रयत्न हैं।

अिस रहस्यको पढनेसे पहले जिन लोगोको सत्य-नारायणकी कथा याद न हो, अुन्हे यह कथा जान लेना जरूरी है।

धर्म मानव-हृदयकी अत्यन्त अुच्च वृत्ति है, और वह मनुष्यके संपूर्ण जीवनको व्याप्त किये रहती है। हमारा जीवन अुत्तम, सामान्य अथवा हीन होता है, धर्मको भी हम अैसा ही रूप देते हैं। बुद्धि-प्रधान तार्किक लोग धर्मवृत्तिको तत्त्वज्ञानका दार्शनिक रूप देते हैं, प्रेमल नम्र लोग अुसे अुपासनाका रूप देते हैं, कर्म-प्रधान कला-रसिक लोग पूजा-अर्चा आदि तान्त्रिक विधि द्वारा धर्मवृत्तिका पोषण करते हैं, जब कि सामान्य अज्ञ जन-समुदाय कथा-कीर्तनके द्वारा ही धर्मके अुच्च सिद्धान्तोका आकलन कर सकते हैं।

धर्माचरणके फलके बारेमे भी यही सिद्धान्त लागू होता है। धर्माचरणका फल आन्तरिक, अतःस्थ और अुच्च होता है। यह बात जिन लोगोके ध्यानमे नही आ सकती, अुनके सतोषके लिअे पौराणिक कथाओ द्वारा बाह्य फल बताना पडता है। धर्मके तत्त्व कितने ही अूचे क्यो न हो, परन्तु यदि अुन्हे समाजमें रूढ करना हो तो अुन्हे समाजकी भूमिका तक नीचे अुतारना ही पडता है। भगवान तथागत (बुद्ध) ने जिन तत्त्वोका अुपदेश किया, वे अुच्च, अुदात्त और नैतिक थे, परन्तु जब अुन्हे देवी-देवता, पूजा-अर्चा, मन्त्र-तन्त्र आदिका तान्त्रिक स्वरूप देकर महायान पथ अवतरित हुआ तभी वे तत्त्व अथवा अुनका अश आधे अेशियाके गले अुतरा। सत्य-नारायणका व्रत अिसी प्रकारका अेक ताजा

* सत्यसे भिन्न कोअी धर्म नही है। सत्य ही परब्रह्म है।

अुदाहरण है। अेक पुराण-धर्माभिमानी शास्त्रीने कहा था कि सत्य-नारायणका व्रत पिछले १०० वर्षोंमें ही अस्तित्वमें आया है। गुजरात और महाराष्ट्रके बीचके व्यापारका और छोटे छोटे राज्योका स्मरण जब ताजा था अुस समय यह व्रत शुरू हुआ होगा। परन्तु अिस व्रतके विस्तार और लोकप्रियताको देखते हुए यह कहना गलत नही होगा कि अिस व्रतमें लोगोके हृदयमें बसनेवाले धर्मका रूप सुन्दर ढगसे देखनेको मिलता है।

दुनियाका अधिकतर व्यवहार मामूली लोगोके हाथमें होता है। सत्य पर आम लोगोकी तात्त्विक श्रद्धा बहुत कम होती है। ससारमें चाहे जैसा नुकसान सहन करने जितना पौरुष सामान्य लोगोमे नही होता। सत्य-असत्यका कोअी भी विचार किये बिना क्षणिक और प्रत्यक्ष लाभके लिअे लोग वचन-भग करते हैं, नियम तोडते हैं, झूठेको सच्चा कर दिखाते है। कामनाकी सिद्धिके लिअे सत्यके साथ समझौता करनेवाले अैसे अज्ञान लोगोको सत्यकी लगन कैसे लगाअी जाय और सत्यके सेवनसे ही अतमें सारी कामनाये सिद्ध होती है यह श्रद्धा अज्ञान लोगोके मनमें कैसे बैठाअी जाय, यह अेक विकट सनातन प्रश्न है। साधु-सतोने, कानून बनानेवालोने तथा समाजके नेताओने अनेक तरहसे अिस दिशामें प्रयत्न करके देख लिया है। सत्यनारायण-व्रतके प्रवर्तकने अपनी शक्ति और मतिके अनुसार सत्य-नारायणकी पूजा तथा कथाके द्वारा अिस प्रश्नको हल करनेका प्रयत्न किया है।

सत्य-नारायणकी पूजाको लोगोमें प्रचलित करनेसे दो अुद्देश्य सिद्ध हुअे है। लोग सत्यका सेवन या पालन करे, यह पहला अुद्देश्य, सत्यकी महिमाका समाजमें निरन्तर गान हो, यह दूसरा अुद्देश्य। अिस पूजाको अुत्सवका नाम नही दिया, परन्तु व्रत कहा है — यह बात भी यहा ध्यानमें रखने जैसी है। अुत्सवमें हम किसी भूतकालीन घटनाका या किसी धार्मिक तत्त्वका अुत्साहके साथ सहर्ष स्मरण करते हैं, जब कि व्रतमे हम अपने जीवनको अधिक अूचा बनानेके लिअे कोअी न कोअी दीक्षा ग्रहण करते हैं।

सत्य-नारायणकी कथा सुननेसे और स्वादिष्ट प्रसाद खानेसे सत्य-नारायण-का अुत्सव हुआ माना जायगा, लेकिन अुसे व्रत नही कहा जा सकता। जिसे सत्य-नारायणका व्रत करना हो अुसने स्वय हर समय, हर स्थान पर और हर अवसर पर सत्यके आचरणकी और मौका मिलने पर सब लोगोको सत्यका महत्त्व समझाकर सत्यका कीर्तन करनेकी दीक्षा ली हो, तो ही अुसे सत्य-नारायणका व्रत करनेका पुण्य मिल सकता है।

दुनियामें सभी लोग सामर्थ्य और सपत्तिकी अभिलाषा रखते है। धर्म कहता है 'भूतदया तथा सत्याचरण द्वारा ही तुम्हे सच्चा सामर्थ्य और सपत्ति मिल सकेगी।' पुराणोने यही सिद्धान्त अेक सुन्दर रूपक द्वारा हमारे मन पर बैठाया

है। पुराण कहते है 'सामर्थ्य और सपत्ति अर्थात् शक्ति और लक्ष्मी, क्रमश कल्याणकी अिच्छा तथा सत्य अर्थात् शिव और सत्य-नारायणके अधीन रहती है, क्योकि शक्ति शिवकी पत्नी है और लक्ष्मी सत्य-नारायणकी पत्नी है। पतिकी आराधना यदि तुम करो, तो पत्नी जरूर तुम पर अनुग्रह करेगी।' अिस प्रकार धन, धान्य, सतति, सपत्ति आदि अैहिक लक्ष्मीकी अिच्छा रखनेवाले लोगोसे अिस व्रतमे सत्यकी अर्थात् सत्य-नारायणकी आराधना करनेको कहा गया है।

हिन्दू धर्ममें तथा हिन्दू नीतिशास्त्रमे सत्यका व्यापक अर्थ किया गया है। श्री वेदव्यासने महाभारतमें सत्यके तेरह अर्थोकी कल्पना की है। हिन्दू शास्त्रो और पुराणोको अुलट कर देखे तो हमें मालूम होगा कि परस्पर सर्वथा भिन्न तीन वस्तुओका समावेश सत्य शब्दमे होता है।

पहली वस्तु सत्यका अर्थ है यथार्थ कथन। जो बात जैसी हो, जिस रूपमें हम जानते हो अथवा जिस रूपमें हुअी हमने देखी हो, जिस रूपमें हमने अुसे समझा-बूझा हो, अुसे वैसी ही यथातथ कहना सत्य है।

दूसरी वस्तु सत्यका अर्थ है 'ऋतम्', सृष्टिका नियम अथवा किसी भी महाकार्यका विधान। 'सत्यसे ही सूर्य अुगता है', 'सत्यसे ही हवा चलती है', 'सत्यसे ही पृथ्वी विश्वको (सबको) धारण करती है', 'सत्यसे ही यह लोक चलता है', 'सत्य ही यज्ञकी प्रतिष्ठा है'—अित्यादि शास्त्र-वचनोमे सत्यका अर्थ होता है अैसा नियम, जिसका अुल्लघन नहीं किया जा सकता।

तीसरी वस्तु सत्यका अर्थ है प्रतिज्ञा-पालन। सत्यका अर्थ है यह टेक कि अेक बार मुहसे निकले हुअे बोलका पालन होना ही चाहिये; अैसी टेक कि अेक बार मुहसे निकाला हुआ वचन हमें निगल नही जाना चाहिये। अिस सत्यके लिअे ही कर्णने अपने कुडल अिन्द्रको दे दिये, अिस सत्यके लिअे ही राम वनवासको गये, अिस सत्यके लिअे ही हरिश्चन्द्रने अपने राज्यका दान कर दिया। यहा तक कि मातृभक्त पच पाडवोने माताके वचनको सत्य सिद्ध करनेके लिअे द्रौपदीके साथ विवाह करनेका निन्दनीय माना जानेवाला कर्म भी किया।

(आज हमारी सत्य और वफादारीकी कल्पना अधिक विशुद्ध हो गअी है। अपने पुत्र क्या प्राप्त करके लाये हैं यह जाने बिना ही 'पाचो भाअी समान रूपमें बाट लो' माताके मुखसे निकले हुअे अिस वचनको सत्य सिद्ध करनेके लिअे आज यदि कोअी पाच भाअी अेक स्त्रीसे विवाह करने लगें, तो हम अुन्हे सत्यद्रोही मूर्ख ही कहेंगे। सपनेमे ब्राह्मणको दिये हुअे अपने वचनको सच्चा सिद्ध करनेके लिअे प्रजाके स्वामित्वका सपूर्ण राज्य यदि प्रजा पर घोर अन्याय-अत्याचार करनेवाले किसी तामसी ब्राह्मणको कोअी राजा सचमुच दे दे, तो आज हम अुसे राजधर्मसे भ्रष्ट, श्रद्धाजड और पामर ही कहेंगे। खैर, यहा तो हम प्राचीन कल्पनाके अनुसार सत्य-नारायणकी कथाका रहस्य समझना चाहते है।)

जन-समुदायमें खास तौर पर दो वृत्तिया प्रबल होती हैं लोभ और भय। अिन दो वृत्तियोका लाभ अुठाकर सत्य-नारायणकी कथा रचनेवालेने सत्यकी महिमा गाअी है। सत्यका सेवन और कीर्तन करो, अिससे तुम्हे सतति, सपत्ति आदि सारी बातें मिल जायगी, तुम्हारे सकट दूर होगे और तुम्हारी मनोकामना परिपूर्ण होगी — यह हुआ लोभ। सत्यको भूलोगे, सत्यको छिपाओगे, तो तुरन्त ही तुम्हारे बाल-बच्चे मर जायगे, तुम्हारा धन-धान्य नष्ट हो जायगा, तुम्हारा जमाअी डूब मरेगा, राजा यदि अन्यायसे किसीको जेलमे बन्द करेगा, तो अुसकी सत्ता नष्ट हो जायगी और अुस पर सब तरहके सकट आ पडेंगे — यह हुआ भय।

सत्यका व्रत सबके लिअे अेकसा फलदायी है। सत्य-पालन सब वर्णोंका धर्म है, यह दिखानेके लिअे अिस कथामें ब्राह्मण, राजा, वैश्य, ग्वाले और लकडहारेको लाया गया है। अैसा लगता है कि अूपर बताये हुअे सत्यके तीनो अर्थ सत्यव्रतमें स्वीकार किये गये है। वैश्य साधु और अुसका जमाअी की हुअी प्रतिज्ञाओको भूल जाते हैं, अिसलिअे अुन पर सत्यदेवका कोप होता है। अुसके फलस्वरूप चन्द्रकेतु राजा अुनके विरुद्ध हो जाता है। अिन अभागे ससुर-जमाअीकी स्त्रियोके हृदयमे प्रतिज्ञा-पालनकी धर्मबुद्धि जाग्रत होती है, अिस कारण तुरन्त चन्द्रकेतु राजाके हृदयमें भी न्यायबुद्धि जाग्रत होती है। साधु और अुसका जमाअी चोरोके डरसे दडी साधुके सामने झूठ बोलते है, अिसलिअे हमारे कथाकार — अिस असत्य भाषणसे अुनका सर्वस्व नष्ट हो गया अैसा अुनका अनुभव देकर — विनाशके भय द्वारा अुन्हे सत्यनिष्ठ बनाते है। कलावती पति-दर्शनके मोहके कारण सत्यनारायण-व्रतके नियमका भग करती है। तुगध्वज राजा अपने अुच्च वर्णके गर्वसे और सत्ताके मदसे सत्यका अनादर करता है। अिसलिअे कलावतीका पति और तुगध्वज राजाका राज्य नष्ट हो जाता है। परन्तु कलावतीका मोह और राजाका मद नष्ट होते ही अुनका सौभाग्य अुन्हे फिर प्राप्त हो जाता है, यह दिखाकर कथाकार लोगोसे कहते है भाअियो, जो सच हो वही बोलो, अपना वचन मत तोडो तथा समाज और प्रकृतिके सर्वव्यापी नियमोको मत तोडो, अुनका अुल्लघन मत करो। अिस प्रकार आचरण करोगे तो तुम्हारा अैहिक और पारलौकिक कल्याण अवश्य होगा, क्योकि जो मनुष्य सत्यका पालन करता है वह

सर्वान् कामान् अवाप्नोति
प्रेत्य सायुज्यम् आप्नुयात्।

अिस लोककाव्यमें सत्यको सर्व-सग-परित्यागी दडीका रूप दिया गया है, यह भी ध्यानमें रखने जैसी बात है। अिसमें कविने बडे सुन्दर ढगसे यह सूचित किया है कि सत्यका अनुसरण करके चलनेसे समस्त वासनाये नष्ट होकर

मनुष्यमे सन्यासकी वृत्ति दृढ होती है और सत्यका आचरण करनेवाले मनुष्यमें आतरिक वृत्तियो तथा वाह्य समाजका नियमन या दडन करनेकी दडी-शक्ति अुत्पन्न हो जाती है। सत्य-नारायणकी पूजामे सत्यके स्वरूप तथा महिमाको प्रकट करनेवाले कुछ अत्यत अुदात्त श्लोक हैं। अुन्हे यहा देकर श्री सत्य-नारायणकी यथामति की हुअी अिस अुपासनाको मैं पूरा करूगा।

नारायण त्वमेवासि सर्वेपा च हृदि स्थित ।
प्रेरक प्रेर्यमाणाना त्वया प्रेरितमानस ।
त्वदाज्ञा शिरसा धृत्वा भजामि जनपावनम् ।।
नानोपासनमार्गाणा भावकृद् भाववोधक ।
त्वदधिष्ठानमात्रेण सैव सर्वार्थकारिणी ।
तामेव त्वा पुरस्कृत्य भजामि हितकाम्यया ।।
न मे त्वदन्य त्रातास्ति त्वदन्य न हि दैवतम् ।
त्वदन्य न हि जानामि पालक पुण्यरूपकम् ।।
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते धरणीधर ।
त्वदन्य कोऽत्र पापेभ्य त्रातास्ते जगतीतले ।।

'वाछितार्थ-फलप्रद' अिस श्री सत्यनारायण-व्रतका और कथाका रहस्य जो पढेगा अुसीको श्री सत्य-नारायणका कृपा-प्रसाद मिलेगा। यह सस्कृत भाषामें लिखा हुआ नही है अथवा आधुनिक है, अैसा मानकर यदि कोअी अिसका अनादर करेगा, तो अुसका सत्यनारायण-व्रत निष्फल जायगा। परन्तु यदि कोअी मनुष्य ध्यान और मननके साथ अिसे सुनकर सत्य-नारायणके व्रतका आचरण करेगा, तो वह :

सर्वदु खेभ्यो मुक्तो भवति मानव ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो दुर्लभ मोक्षमाप्नुयात् ।।
अिह सद्य फल भुक्त्वा परत्रे मोक्षमाप्नुयात् ।
धनधान्यादिक तस्य भवेत् सत्यप्रसादत ।।
दरिद्रो लभते वित्त वद्धो मुच्येत वन्धनात् ।
भीतो भयात् प्रमुच्येत सत्यमेव न सशय ।।

कलियुगमे कोअी भी मनुष्य चाहे जैसी भली-बुरी कामनायें सिद्ध करनेके लिअे सत्य-नारायणका व्रत करने लगा। यह देखकर श्री महादेवने फलप्राप्तिके मार्गमे अेक मेख और चटखनी डाल दी है

जो मनुष्य जितेन्द्रिय और सत्यवादी होगा, वही अुसे अुखाड कर अिस व्रतके फलका द्वार खोल सकेगा। 'अिति शम्'

१७

गजेन्द्र-मोक्ष

अीश्वर हमारा परम पिता है यह तो सब लोग मानते हैं, परन्तु हम सब भाअी-भाअी हैं अिस बातका विश्वास सबको नही होता। सर्वोदयमें विश्वास करनेवाला सत्याग्रही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का नियम पालनेवाला होता है, अिसलिअे कोअी मनुष्य अुसका शत्रु नही होता। अिसका यह अर्थ नही कि कोअी सत्याग्रहीके प्रति शत्रुता नही रखता। अुसके अनेक शत्रु हो सकते हैं। धर्मके अनुसार चलनेवाला प्रत्येक मनुष्य अधर्मका आचरण करनेवाले मनुष्यके मार्गमें विघ्नरूप बनता मालूम होता है। फिर भी सत्याग्रही अपने मनमें किसीके लिअे प्रेमके सिवा दूसरा कोअी भाव नही रखता। जब वह अपने भाअीको कुवासनाके वश हुआ देखता है तब प्रेमसे अुसका विरोध जरूर करता है। समय आने पर प्रेम कठोर हो सकता है। प्रेममे दुर्बलताकी या मोहकी मृदुता नही होती। परन्तु सत्याग्रही विरोध करते हुअे भी अपने भाअीका भला ही चाहता है और अपना विरोध वह खुद कष्ट सहकर ही प्रकट करता है। जिस विरोधके मूलमे प्रेम रहता है, वह हमेशा सफल ही होता है। अिसमें देर भले ही लगे, परन्तु विजय तो प्रेमकी ही होती है। सच पूछा जाय तो अिसमें विरोधी पक्षकी भी विजय होती है। वह बेचारा जिस कुवासनासे घिरा हुआ रहता है अुससे वह मुक्त हो जाता है — अुसमें से वह अपनी आत्माको फिर प्राप्त कर लेता है। यह भी अेक असाधारण विजय है। सत्याग्रहका युद्ध धर्मयुद्ध होता है। अिसलिअे अुसका परिणाम सदा सबके लिअे शुभ और मगलमय ही होता है। जब दो आदमी परस्पर विरोधी स्वार्थके वश होकर लडते हैं तब अेककी जीत और दूसरेकी हार होती है, अीश्वर तटस्थ रहकर देखता है और कर्मका नियम झगडेका निबटारा कर देता है। परन्तु जब अेक पक्ष स्वार्थको छोडकर धर्मका आधार लेता है तब परमात्मा स्वय अुसका पक्ष लेता है, क्योंकि परमात्मा सदा सत्यका पक्षपाती होता है। कठिन काम तो है स्वार्थको छोडकर धर्मका पालन करना। अीश्वर धर्मनिष्ठ मनुष्यकी परीक्षा भी कुछ कम नही करता। अीश्वरकी नीति धर्मनिष्ठ तथा अुसका विरोधी — दोनोका हित करनेकी होती है। अिस कारणसे धर्म-सग्रामकी अवधि भी बहुत लबी होती है। धर्मनिष्ठ पक्ष जब निष्पाप बन जाता है तभी अुसे सफलता मिलती है। और सफलताका मुख्य भाग तो यह है कि विरोधियोका विरोध शात हो जाता

है और दोनो फिरसे पहले जैसे अेकप्राण भाअी भाअी वन जाते हैं। यही सिद्धान्त पुराणोमें 'गजेन्द्र-मोक्ष' की कथामे वताया गया है।

अिन्द्रके दरबारमे हाहा और हूहू नामके दो गवैये भाअी थे। अुनके हृदयमें मत्सरने प्रवेश नही किया तव तक वे हिल-मिलकर रहते थे। परन्तु दोनोके दुर्भाग्यसे अुनके मनमे स्पर्धा वढ गअी। दोनोके मनमें यह भाव अुत्पन्न हुआ कि 'मैं ही श्रेष्ठ हू, अिसलिअे श्रेष्ठ स्थान मुझे मिलना चाहिये।' अिन्द्रने दोनोको समझा कर कहा 'अीश्वरके यहा सव समान हैं। मैं तो तुम दोनोमे कोअी भेद नही देख पाता।' फिर भी अुन गवैयोको सतोष नही हुआ। अतमे अिन्द्रने दोनो भाअियोको देवल अृषिके पास भेज दिया। देवल अृषि महाज्ञानी थे, त्रिकाल-दर्शी थे। लेकिन पूर्णज्ञानी प्राय मौन ही रहता है। अृषिका मौन देखकर अीर्ष्या और मत्सरसे भरे हुअे दोनो गवैये कहने लगे 'विलकुल मूर्ख है। कुछ भी नही समझता।' मुनिने मौन तोडकर दयाभावसे कहा 'तुम दोनो कैसे मूर्ख हो! स्पर्धा और असूयासे तुम्हारे दिमाग सड गये हैं। तुम्हारे भाग्यमे क्या लिखा है, यह तुम नही जानते। जानते होते तो अितना मत्सर न रखते। परमात्माने हर मनुष्यका भविष्य अुससे गुप्त रखा है, फिर भी कर्मका सिद्धान्त समझानेके लिअे जरा कठोर वनकर मैं तुम्हारा जितना भविष्य जानता हू अुतना तुम्हे सुना देता हू। भाअी-भाअी होकर भी तुम अेक-दूसरेसे अीर्ष्या करते हो, अिसका परिणाम यह होगा कि तुम स्वर्गसे नीचे गिरोगे और चित्रकूट पर्वतके पास पशुयोनिमे जन्म लोगे। अेक वनेगा जगली हाथी और दूसरा वनेगा सरोवरमे रहनेवाला मगर। वहा तुम अपने वैरका पशुभावसे पोषण करोगे, भाअी-भाअी न रहकर शत्रु वन जाओगे।'

वस, अितना सुनते ही दोनोका मद अुतर गया। दोनोको क्षणिक पश्चात्ताप हुआ। दोनो अृषिके चरणोमे लोट कर प्रार्थना करने लगे 'आप हम पर दया नही करेगे?' अृषिने कहा 'कर्मका नियम अटल है। अिसमें किसीकी दया काम नही आती। किन्तु कर्मका नियम कल्याणमय भी है। वह जितना कठोर है अुतना ही दयामय भी है। कर्मका फल दडरूप नही होता। अुसमें विगडे हुअे आदमीको सुधारनेकी शक्ति होती है। तुम दोनोमे से अेकके हृदयमें पश्चात्ताप जाग्रत रहेगा और वह धर्मके मार्ग पर चलेगा। सकटके समय अुसे अीश्वरका स्मरण होगा। दूसरेके हृदयमें अीर्ष्याकी आग धाय-धाय जलती रहेगी। वह अुत्तरोत्तर नीचे ही गिरता जायगा। परन्तु अुसका भी अुद्धार होगा। अपने भाअीका विरोध करते करते अुसके हृदयमें भाअीकी श्रद्धाका सचार होगा, अुसमें भी आस्तिकता अुत्पन्न होगी और आस्तिकताके वल पर अुसका भी अुद्धार हो जायगा।'

भविष्यका अितना परदा खोल कर मुनिराज फिर मौनमे डूब गये और हाहा तथा हूहू अपने कर्मोंके कारण स्वर्गसे नीचे गिर गये। अेक बना राजाका हाथी और दूसरा बना पासके सरोवरका बडा मगर (ग्राह)। दोनो अपने पूर्वजन्मको भूल गये, अपने भ्रातृत्वको भूल गये। मगर हाथीको खाना चाहता था और हाथी मगरसे डरता था। हाथी अपने पशु-जीवनके अनुसार विलासमें डूब गया। शत्रु कहा है और शत्रुका बल किसमे है, यह बात विलासके नशेमें चूर हाथी भूल गया और रूप-यौवनवती हथिनियोके साथ क्रीडा करनेके लिए सरोवरमें अुतरा। ग्राहको तो वही मिल गया जो वह चाहता था। अुसने गजराजका पाव पकड लिया। गज छूटनेके लिअे चिघाडने लगा। हथिनिया भी लाचार बन कर चिंघाडने लगी। लेकिन पानीमें हाथीका बल कितना चलता? हाथी जमीनकी ओर दौडने लगा और मगर अुसे पानीकी ओर खीचने लगा —'गजो ह्याकर्षते तीर ग्राहश्चाकर्षते जलम्।' दोनोका यह युद्ध सदियो तक चला (दिव्यवर्ष-सहस्रकम्)। अतमें अव्यक्त-मूर्ति ग्राहने विशाल गजको पकज-वनमे — कीचडमें खीच लिया। अब गजके लिअे वचनेका कोअी मार्ग नही रह गया। अुस समय गजको यह ज्ञान हुआ कि अब मुझे केवल हृदयस्थ परमात्मा ही बचा सकता है। गजराज न तो शास्त्र पढा था, न वह वेदविद् था। परन्तु अुच्च कुलमें जन्मा हुआ होनेके कारण वह नारायण-परायण था। अुसने नारायणका ध्यान किया। कविने गजराजके ध्यानका गीर्वाण-वाणीमें अिस प्रकार वर्णन किया है

अनाश्रयाय देवाय नि स्पृहाय नमो नम।
नमो जगत्प्रतिष्ठाय गोविन्दाय नमो नम।
विश्वेश्वराय देवाय शिवाय हरये नम॥

नारायणाय परलोक-परायणाय
कालाय लोकैकनाथाय।
हितात्मकाय आर्तिविनाशनाय नमस्करोमी।

अच्युत आत्मवन्त प्रभु प्रपद्ये।
सनातन लोकगुरु नमामि॥

शरण्य शरणार्ताना प्रपद्ये भक्तवत्सलम्।
प्रपद्ये मुक्तसगाना यतीना परमा गतिम्॥

अेकाय लोकनाथाय परत परमात्मने।
नम सहस्रशिरसे अनन्ताय नमो नम॥

ध्यान समाप्त होते ही आत्मशक्तिका आविष्कार हुआ, गजराजके हृदयमें श्रद्धाका पूर चढा।

तावद् भवति मे दु ख चिन्तासंसारसागरे।
यावत्कमलपत्राक्ष न स्मरामि जनार्दनम् ॥

गजराज पानीमें पूरी तरह डूब गया था। सास लेनेवाली सूडका भाग पानीके अूपर रह गया था। अुससे अेक कमल तोडकर गजेन्द्रने भक्ति अीश्वरको अर्पण किया। कमल अनासक्तिका प्रतीक है। कीचडमें अुसका होता है, पानीमे अुसका निवास है। फिर भी वह शुद्ध और पवित्र रहत पानीमें रहकर वह पानीसे अलिप्त रहता है और प्रकाशमान प्रतापशाली व्यान करता है। कमलकी वृत्ति धारण करके गजराजने अीश्वरको कमल किया, अिसलिअे भगवानको अुसकी मददके लिअे दौडना पडा। परमा गजेन्द्र और ग्राह दोनोको कीचडसे बाहर खींच लिया।

पृथ्वी पर आते ही ग्राहकी शक्ति तथा अुसकी दुर्बुद्धि नष्ट हो स्वार्थके छूट जानेसे अुसे भी पश्चात्ताप हुआ। अप्रमेय परमात्माने दोनोंका किया। भगवानके दर्शनके बाद भला किसकी दुर्गति हो सकती है? दो हृदय पवित्र हो गये। अुन्हे अिस बातका भान हो गया कि हम अेक ही पिताके पुत्र है, भाअी भाअी है, समान है, एक ही है।

दृढवद्धधर्ममूलो वेदस्कन्ध पुराणशास्त्राढ्य ।
ऋतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति ॥*

महाभारतकारने लिखा है गजेन्द्र-मोक्षकी यह कथा सुननेसे दुष्ट स्व नाश होता है। क्यो न हो? अीश्वर भले-बुरे दोनोका कल्याण करता दोनो अपने अपने ढगसे अीश्वरकी चरण-पूजा करते है।

सुरासुरैरर्चितपादपद्म सनातन अेकगुरु नमामि।

मार्च, १९२३

---

* धर्म जिसका दृढ मूल है, आध्यात्मिक ज्ञान जिसका तना है, प्राच अितिहास जिसकी शाखा है, स्वार्थत्यागपूर्ण पुरुषार्थ जिसका पुष्प है और मुि —स्वतत्रता जिसका फल है, अैसे परमात्मा-रूपी कल्पवृक्षकी सदा जय है

१८

स्वाद-संयम

['हमारे शास्त्र स्वादेन्द्रियके सयम पर बहुत जोर देते नही लगते'– गाधीजीके अिस वचनसे प्रेरित होकर काकासाहबने स्वादेन्द्रियके सयम पर कु सुन्दर शास्त्र-वचन भेजे है। अिन्हे भेजते हुअे काकासाहब लिखते हैं 'आ जो शास्त्र अधिक रूढ हैं, अुनके बारेमें बापूजीकी यह टीका सही है। ब बडा पुण्य ब्रह्म-भोजनमें है, अिस प्रकार लोगोको समझा कर रोज मिष्टान्न खा वाले ब्राह्मण स्वाद-सयमकी बात न करे यह स्वाभाविक ही है।'

गाधीजीका यह वचन ब्रह्मचर्यको ध्यानमे रखकर कहा गया था। गाध जीका कहना था कि ब्रह्मचर्यकी नीव बचपनमें ही डाली जानी चाहिये अ स्वादेन्द्रियके सयमकी प्रतिज्ञा लिये बिना यह नीव कच्ची ही रहती है। जित जोर हम ब्रह्मचर्य पर देते हैं अुतना ही जोर आरभसे हमें स्वादेन्द्रिय-स पर भी देना चाहिये। गाधीजीका यह वचन यहा अुद्धृत करने जैसा है 'शैता लिअे पेटमें से प्रवेश करना आसान होता है। अिस द्वारको खुला रखा कि सम लो सब पापोके लिअे सारे द्वार खुले कर दिये गये।'

काकासाहब भी अिन अुद्धरणोके अतमे स्वीकार करते है कि बाल-ब्र चारियोके लिअे गाधीजी स्वादेन्द्रिय-सयम पर जितना जोर देते हैं अुतना ज शास्त्रोमें नही दिया गया है। परन्तु स्वादेन्द्रियको बहकानेसे जो अनर्थ-परम्प चालू होती है अुसका वर्णन यद्यपि यतिको ध्यानमें रख कर ही किया गया फिर भी वह सब लोगोके लिअे हृदयमें अकित करने जैसा है। अिसलिअे का साहबके भेजे हुए शास्त्र-वचन हम यहा देते हैं।

यह कहनेकी आवश्यकता नही कि जहा अति-आहारको वर्ज्य कहा ग है वहा स्वादेन्द्रिय-सयमकी ही बात कही गअी है, क्योकि अति-आहारके मू स्वाद ही है।

—महादेव देसा

अनारोग्य अनायुष्य अस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्य लोक-विद्विष्ट तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥
नोच्छिष्ट कस्यचिद् दद्यात् नाद्याच्चैव तथातरा।
न चैवात्यशन कुर्यात् ॥

—मनुस्मृति

अति-भोजन आरोग्य, आयुष्य और स्वर्ग तीनोको असभव बना देता वह अपुण्य है, जगतमें निन्दित है, अिसलिअे त्याग करने योग्य है।

किसीको जूठा अन्न नही देना चाहिये, असमय नही खाना चाहिये तथा अति-आहार नही करना चाहिये।

यमस्मृतिमें नीचेके वचन आये है

अन्नसगात् वल दर्पो विपयासक्तिरेव च।
काम क्रोध तथा लोभ पतन नरके ध्रुवम्॥
तावज्जितेन्द्रियो न स्याद् विजितान्येन्द्रिय पुमान्।
न जयेद्रसन यावज्जित सर्व जिते रसे॥

अन्नकी आसक्तिसे वल, अहकार, विपयासक्ति, काम, क्रोध और अतमें निश्चित ही नरक-पात होता है। अन्य अिन्द्रियोको जीत लेने पर भी जव तक मनुष्य रसको नही जीतता तव तक वह जितेन्द्रिय नही कहा जाता। जिसने रसको जीत लिया अुसने सव-कुछ जीत लिया।

मनुस्मृतिमे दूसरा वचन भी है

अेक काल चरेत् भैक्ष न प्रसज्जेत विस्तरे।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर् विपयेष्वपि सज्जति॥
अलाभे न विपादी स्याल्लाभे चैव न हर्पयेत्।
प्राणयात्रिकमात्र स्यात् मात्रा सगाद्विनिर्गत॥

अेक जून भिक्षा माग लेनी चाहिये, वहुत पानेकी अिच्छा नही रखनी चाहिये। भिक्षा प्राप्त करनेमें आसक्त यति विपयमें भी फस जाता है।

अलाभ होने पर विपाद नही करना चाहिये, लाभ होने पर प्रसन्न नही होना चाहिये, अनेक प्रपचोका परिग्रह छोडकर केवल शरीर-यात्रा चलानेका ही प्रपच रखना चाहिये।

आगे चलकर मनुस्मृति कहती है

अल्पान्नाभ्यवहारेण रह स्थानासनेन च।
ह्रियमाणानि विपयैर् अिन्द्रियाणि निवर्तयेत्॥
अिन्द्रियाणा निरोधेन रागद्वेपक्षयेण च।
अहिसया च भूताना अमृतत्वाय कल्पते॥

अल्प-अन्न खाकर, अेकात स्थान तथा आसनसे, विपयो द्वारा खीची जाने-वाली अिन्द्रियोको (विपयोसे) मोड लेना चाहिये।

अिन्द्रियोके निरोधसे, राग-द्वेपके क्षयसे तथा भूतोके विपयमें अहिसाका विकास करनेसे अमृतत्व प्राप्त किया जाता है।

अव विष्णुस्मृतिको देखिये

ना स्वादयेद्रस तत्र जिह्वया धर्मवित् क्वचित्।
अनेन विधिना हुत्वा पचप्राणाहुति पृथक्॥

शेष औषधवत्प्राश्य स्थित्यर्थं श्रुतिशासनात्।
मृष्टामृष्टे न कुर्वीत रागद्वेषौ च चेतसा॥
मिताशनो भवेन् नित्य भिक्षुर्मोक्षपरायण।
कामदर्पादयो दोषा न भवन्ति मिताशिन॥

धर्मको जाननेवाला (अन्न खाते समय) जीभसे रसका स्वाद न ले। अिस विधिसे अलग अलग पच-प्राणाहुतिया देकर बाकीका अन्न श्रुतिके शासनके अनु-सार शरीर-निर्वाहके लिअे केवल औषधिकी तरह खाना चाहिये। अुसमे कच्चे या पके हुअेका, स्वादिष्ट या अस्वादिष्टका, विचार नही करना चाहिये तथा मनसे राग-द्वेष नही करना चाहिये।

मोक्ष-परायण भिक्षुको नित्य मिताहारी रहना चाहिये। मिताहारी मनुष्य काम, क्रोध आदि दोषोसे मुक्त रहता है।

खानेमें कौनसा अन्न पसद किया जाय, अिस विषयमें देखिये

हित मित सदाऽश्नीयाद् यत्सुखेनैव जीर्यते।
धातु प्रकुप्यते येन तदन्न वर्जयेद् यति॥

सदा हितकारी और मित आहार खाना चाहिये, सरलतासे पचाया जा सके अैसा ही आहार खाना चाहिये। जिस अन्नसे धातु (वात, पित्त, कफ) का प्रकोप हो वैसे अन्नका यतिको त्याग करना चाहिये।

दत्तात्रेय कहते हैं :

आत्मसमितम् आहार आहरेद् आत्मवान् यति।
अत्यतक्षुधितस्यापि समाधिर् नैव जायते॥

जितात्मा यतिको आत्माके अनुकूल आहार करना चाहिये। अत्यत क्षुधित (भूखा) रहनेवालेको भी समाधि सिद्ध नही होती।

व्यासजी कहते हैं :

नाहार चिन्तयेत् प्राज्ञ धर्ममेक तु चिन्तयेत्।

समझदार मनुष्यको आहारका विचार न करके केवल धर्मका ही विचार करना चाहिये।

श्रुति-वचन अिस प्रकार है

औषधवत्प्राश्नीयात्प्राणसधारणार्थं यथा मेदोवृद्धिर्न जायते।

केवल प्राणोको टिकाये रखनेके लिअे औषधकी तरह अन्न खाया जाय, अिस प्रकार खाया जाय कि मेद अर्थात् चरबीकी वृद्धि न हो।

पराशरका श्लोक तो स्पष्ट ही है

अन्नदोषेण चित्तस्य कालुष्य सर्वदा भवेत्।
कलुषीकृतचित्ताना धर्म सम्यङ् न भासते॥

अन्नके दोषसे चित्त सदा कलुषित होता है; और कलुषित बने हुअे चित्त-वालोको धर्मका सही भान नही होता।

वायुपुराणमे ताबूल (पान) के बारेमें लिखा है

द्वावेतौ समवीर्यौं तु सुरा ताबूलमेव च।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ताबूल वर्जयेत् यति॥

सुरा और ताबूल दोनोका अेकसा प्रभाव होता है, अिसलिअे सुराकी तरह ताबूलका भी यतिको हर प्रयत्नसे त्याग करना चाहिये।

मनुस्मृतिकी सुन्दर दलील लीजिये

अिन्द्रियाणा तु सर्वेषा यद्येक क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृते. पात्रादिवोदकम्॥

जिस प्रकार चमडेके पात्रमें (पखालमें) अेक भी छेद हुआ कि अुसमें से सारा पानी झर जाता है, अुसी प्रकार अेक भी अिन्द्रियका पतन हुआ कि मनुष्यकी सपूर्ण प्रज्ञाका पतन हो जाता है।

शखस्मृतिमे वानप्रस्थके विषयमें यहा तक कहा गया है

नाग्निशुश्रूषया क्षान्त्या स्नानेन विविधेन च।
वानप्रस्थो दिव याति याति भोजनवर्जनात्॥

अग्निसेवासे, क्षमासे, विविध तीर्थोंके स्नानसे भी वानप्रस्थ स्वर्गमे नही जाता; भोजन-त्यागसे ही वह स्वर्गमें जाता है।

वानप्रस्थ वृद्ध होता है। वह विषयोका त्याग करे अिससे पहले विषय ही अुसका त्याग कर देते हैं। अेकमात्र रसेन्द्रिय ही अुसकी जाग्रत रहती है। वह तो झरती ही रहती है। रसेन्द्रियका सयम सबसे महत्त्वपूर्ण है, अैसा मान कर ही अूपरका श्लोक रचा गया होगा।

मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि विद्यार्थी ब्रह्मचारीके विषयमें स्मृति-योमें आहारके सयमके बारेमें कुछ कहा ही नही गया है। बढते हुअे शरीरकी जितनी माग हो अुतना आहार अुसे मिलना ही चाहिये—'यथेच्छ ब्रह्म-चारिणाम्।' गृहस्थ लोग मोक्षमार्गी, अत्यत सयमी, नही होते। अिसलिअे वान-प्रस्थ और सन्यासियोके विषयमें कहते समय ही स्वादजयकी बातें आती हैं।

शैशवेऽभ्यस्तविद्याना यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीना योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।

(रघु-राजाओका वर्णन करते हुअे कवि कहते है वे बचपनमें विद्याभ्यास करते थे, यौवनमें विषयोका सेवन करते थे, वृद्धावस्थामे मुनिवृत्तिवाले होते थे और अतमे योगसे शरीरका त्याग करते थे।)

कालिदासकी अिन पक्तियोके अनुसार ही हमारा सामाजिक आदर्श रहा है, फिर भी हमारे शास्त्रकारोने बार-बार यह बात कही है कि मोक्षके लिअे कामको जीतना और कामको जीतनेके लिअे रसको जीतना आवश्यक है।

व्यासजी कहते हैं

काम अेव मनुष्याणा पिधान ब्रह्मबोधने।
तस्मात्काम त्यजन्धीरो ज्ञानमाप्नोति मोक्षदम्।।

काम ही मनुष्यके ब्रह्मज्ञानमें बाधक होता है। अत कामको त्याग कर ही धीर पुरुष मोक्ष देनेवाला ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

पत्र पूरा करते करते श्री शकराचार्यका यह सुन्दर वचन याद आ गया .

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यताम्
तदुदित भिक्षौषध गृह्यताम्।
स्वाद्वन्न न तु याच्यताम्
विधिवशात्प्राप्तेन सतुष्यताम्।।

क्षुधाको अेक व्याधि (रोग) मानना चाहिये और अुसके लिअे बताअी हुअी औषधि भिक्षान्न ग्रहण करना चाहिये। परन्तु स्वादिष्ट अन्न न माग कर विधिवशात् प्राप्त होनेवाले अन्नसे सतोष करना चाहिये।

१९

सप्तपदी

सप्तपदीमें वैवाहिक जीवनके सभी आदर्श सपूर्ण रूपमें व्यक्त होते हैं। जीवनके आदर्शको अधिकाधिक अूचा बनानेका परिश्रम करनेवाले लोगोंने सप्त-पदीके मत्रोंसे अनेक अच्छे अच्छे अर्थ निकाले हैं। वे सब सच्चे हैं, स्वीकार करने जैसे हैं, परन्तु अुन सबका आधार अिन मत्रोके सीधे शब्दार्थ पर हैं:

१ 'ॐ अीश अेकपदी भव। सा मा अनुव्रता भव।' वैवाहिक जीवन चलानेके लिअे पति-पत्नी दोनोंमे अुत्साह होना चाहिये। अेक-दूसरेको प्रेरणा देनेवाला चैतन्य होना चाहिये। सगे-सम्बन्धी, अिष्ट-मित्र, अतिथि-अभ्यागत, वृद्ध और बालक, नौकर-चाकर तथा अन्य आश्रित जन — सबका आधार गृह-स्थाश्रम पर है। अिसलिअे पति-पत्नीको घरकी समृद्धि बढानेके लिअे सदा तैयार रहना चाहिये। अिसमे भी कमाअी करनेकी जिम्मेदारी पतिकी है, अिसलिअे सुख-दुःखमें अपने अुत्साहको बनाये रखनेके लिअे वह अपनी पत्नीसे सहायता मागता है। पुरुषार्थ करनेकी जिम्मेदारी मेरी है, परन्तु तेरी सहायता मुझे हमेशा ही चाहिये। जीवन-यात्रामे काटे आयेंगे, कष्ट आयेंगे, अिसलिअे मैं आगे चलूगा, तू मेरे पीछे पीछे आना। मैं जिन व्रतोंका पालन करू, अुनका पालन तू भी करना। हमारा आदर्श अेक रहेगा। अिसीसे हमारा जीवन अेकरूप बनेगा। अैसा कह कर पति सर्वव्यापी परमात्मासे प्रार्थना करता है कि वह पति-पत्नी दोनोको मार्ग दिखाये।

'अीश' का अर्थ है प्रेरणा। अुसीके बल पर घर-गृहस्थीकी गाडी चलती है।

२ 'ॐ अूर्जे द्विपदी भव।' अूर्जका अर्थ है शक्ति, शारीरिक सामर्थ्य। विवाह-सम्बन्धसे शारीरिक तथा दूसरी शक्तिया बढनी चाहिये। बडे परिवारका भार अुठानेके लिअे पति-पत्नी दोनोंमे सब प्रकारकी शक्ति आवश्यक है। गृहस्था-श्रममें परस्पर आकर्षणके साथ अेक-दूसरेकी शक्ति बढानेकी प्रवृत्ति भी होनी चाहिये।

३ 'ॐ रायस्पोपाय त्रिपदी भव।' विवाहका तीसरा आदर्श है धन-धान्यकी समृद्धि। गृहस्थाश्रम पर ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास तीनो आश्रमोंका अव-लम्बन है, अतः प्रत्येक गृहस्थीको धन-धान्यकी समृद्धिके लिअे प्रयत्न करना ही चाहिये। जिस प्रकार धन-धान्यकी आवश्यकता है अुसी प्रकार ज्ञान, कुशलता और हर प्रकारके शुभ सस्कारोंकी भी आवश्यकता है। गृहस्थियोंको अिन सबके लिअे सदा ही प्रयत्नवान रहना चाहिये।

४. 'ॐ मायोभव्याय चतुष्पदी भव।' जो लोग यह समझते है कि विवाह केवल अेक-दूसरेके सुखके लिअे ही है, अुन्हे यह जानना चाहिये कि आपसमें प्रेमकी गहरी भावना, सब प्रकारका सामर्थ्य तथा धन्य-धान्य और ज्ञान-कुशलता — अितना प्राप्त करनेके बाद ही और अिन तीनो बातोकी व्यवस्था तथा वृद्धि करनेके बाद ही मनुष्य सुखकी कामना कर सकता है और अुसके योग्य भी बन सकता है। अिसीलिअे विवाहके सात अुद्देश्योमें सुख-सतोषको केन्द्रस्थानमें रखा गया है।

जिस प्रकार त्रिविध तैयारी करनेके बाद ही सुख भोगनेके लिअे मनुष्य तैयार हो सकता है, अुसी प्रकार अिस सुखसे तीन प्रकारके अिष्ट परिणाम निकलने चाहिये।

५. 'ॐ प्रजाभ्य पचपदी भव।' प्रजाका अर्थ है सतान और समाज। गृहस्थाश्रम अिनके हितके लिअे होना चाहिये। विवाहकी सतान सस्कारी हो, सुशिक्षित हो, तो ही माता-पिताको अिहलोक और परलोकमें, पारिवारिक जीवनमें और सनातन सामाजिक जीवनमे स्थिरता प्राप्त हो सकती है। अुपनिषदोमें कहा गया है कि जो सतान अच्छी तरह सुशिक्षित और सुसस्कारी होती है, वही माता-पिताको और दूसरे पितरोको अुत्तम लोक प्राप्त कराती है, अुन्हे सद्गति अर्पण करती है। 'पुत्र अनुशिष्ट लोक्य आहु।'

अिसके बादका आदर्श वैवाहिक जीवनके लिअे अत्यत आवश्यक है। अिस आदर्शकी रक्षा और पालन हो तो ही विवाहित जीवनकी सफलता सिद्ध हो और अुसकी सुगध अत तक टिकी रहे।

६ 'ॐ ॠतुभ्य षट्पदी भव।' वर्षमें जैसे अेकके बाद दूसरी, छह ॠतुए आती है और सारी सृष्टि अिन ॠतुओके अनुसार अपने जीवनमें परिवर्तन करती है, वैसे ही पति-पत्नीको भी जीवनकी ॠतुओमें होनेवाले परिवर्तनोके अनुसार नित-नूतन ढगसे अेक-दूसरेके लिअे अनुकूल बनना चाहिये। व्यापार-व्यवसायमे मूल करार पर ही दृढतासे डटे रहनेकी जरूरत होती है, जब कि विवाह-सम्बन्धमें अेक-दूसरेके अनुकूल बननेकी जरूरत होती है। युवावस्थाके खेलाडीपनमे दोनो अेक-दूसरेके साथ जैसे घुलमिल जाते हैं अुसी प्रकार प्रौढ होते ही दोनो अेक-दूसरेकी प्रौढ रसिकताके अनुकूल बन जाते हैं। अिसके बाद जीवन समृद्ध होते होते अेकमें आर्य-गभीरता आने लगी कि तुरन्त ही दूसरेको भी अुसके अनुकूल प्रसन्न-गभीरता अपने भीतर बढानी चाहिये। परेशानीके समय जो पत्नी पतिको धीरज बधाये, दु खके समय अुसे सान्त्वना दे, पराक्रम करनेके अवसर आने पर अुसे प्रोत्साहन दे, पतिकी विजयमें आनद व्यक्त करे और धर्माचरणमें पूरी तरह अुसका साथ दे वही सह-धर्मिणी है। और जब जीवनके परिपक्व होने पर अेक पक्ष विरक्ति अनुभव करे अुस समय रामकृष्ण परमहसके लिअे जिस प्रकार अुनकी

पत्नी शारदा माता अनुकूल बन गअी अुसी प्रकार पत्नी मोक्षमार्गमें भी पतिकी साधना-सहचरी बन जाय, तो कहा जायेगा कि अुनके विवाहका परिपूर्ण अुत्कर्ष हुआ।

७ 'ॐ सखा सप्तपदी भव।' जीवन भर जिस पत्नीको पतिका अनुसरण ही करना है, अुस पत्नीके अनुयायी या गुलाम मान लिये जानेका डर रहता है। अिस डरको दूर करनेके लिअे परस्पर समानताका द्योतक सखाभाव विवाहका सर्वश्रेष्ठ और चरम अुद्देश्य माना गया है। सख्य अथवा समानता किसीका अधिकार नही है। जहा समृद्ध अैक्य है वहा समानताकी जिद हो ही नही सकती। सख्यके मूलमे परस्पर आदर और भक्ति होनी चाहिये। पतिको पत्नीके विरुद्ध स्वाभिमानकी भावनाका विकास न करके, व्यवहारमें आश्रयदाताकी स्थिति अनुभव करते हुअे भी, पत्नीके प्रति भक्तकी वृत्ति ही धारण करनी चाहिये। अिस प्रकार अेक-दूसरेके अुपासक बन जानेसे दोनोको जीवनमे अपार आनद तो प्राप्त होता ही है, साथ ही दोनोका अखड सहवास होने पर भी विवाह-सम्बन्धमे कभी बासीपन नही आता। न तो थकान मालूम होती, न अूब महसूस होती। जिस प्रकार अुषा प्रतिदिन आने पर भी अपनी प्रसन्नताको बनाये रखती है अुसी प्रकार विवाहमें भी पति-पत्नीको नये नये आकर्षण और नये नये सतोष निरन्तर प्राप्त होते ही रहते हैं। जिस सम्बन्धसे अैसी नित्य-नूतनता, प्रसन्नता और जीवत शाति प्राप्त होती है, वही सम्बन्ध सच्चा विवाह है। अुसीसे सब प्रकारके कल्याण सिद्ध होते हैं। विवाह-सम्बन्धको आदि, मध्य और अत तीनो स्थितियोमें सुखमय, शातिमय और कल्याणमय बनाया जा सकता है।

अैसे आदर्शका पालन करनेवाली पत्नी अपनी सेवा, नम्रता और प्रसन्नताके द्वारा केवल पतिकी ही नही परन्तु सास-ससुर, ननद-भौजाअी सबकी आदरणीय सम्राज्ञी बन जाती है और अुसके अुत्पन्न किये हुअे वातावरणके कारण मनुष्य तथा देव सभी सतुष्ट होते हैं।

जुलाअी, १९३९

२०

शास्त्रोंका अुपयोग

जिस प्रकार श्वास लेनेके लिअे किसीसे पूछना नही पडता, भारतमे रहनेके लिअे जिस प्रकार हमारे लोगोको किसीकी अिजाजत नही लेनी पडती, अुसी प्रकार सनातन धर्ममें रहनेके लिअे किसीकी मेहरबानीकी जरूरत नही होती। सनातन धर्म पर किसीका विशेष अधिकार नही है। वह सभीका है। सब हिन्दू अुसमें रह सकते है और अुससे लाभ अुठा सकते हैं।

सनातन धर्मके अृषि-मुनियोने धर्मशास्त्र रचे है और वे सस्कृत भाषामें लिखे गये है। अिसलिअे सस्कृत भाषा पवित्र मानी जाती है। लेकिन सस्कृत भाषाका अर्थ सनातन धर्म नही है। अकेले शास्त्रोको भी सनातन धर्म नही कहा जा सकता। हिन्दू जातिके अर्थात् ब्राह्मणसे लेकर अत्यज तककी सारी जातियोके समझदार और पवित्र पुरुषोका जीवन और चिन्तन ही सनातन धर्म है।

अैसे पवित्र पुरुष अत्यन्त नम्र बनकर शिष्यभावसे प्राचीन अृषि-मुनियोके वचनोको स्वीकार करते आये हैं। वे अृषि-मुनियोके वचनोके आधार पर अपना जीवन बनानेकी प्रेरणा प्राप्त करते आये हैं। अिसीलिअे शास्त्रोका अितना महत्त्व है। और वह अुचित भी है, क्योकि अृषि-मुनि स्वय धर्मप्राण थे —— अर्थात् वे धर्मके लिअे ही जीते थे। वे अीश्वर-प्राप्तिके लिअे प्रयत्न करते थे और प्राणी-मात्रका कल्याण चाहते थे।

धर्मका विचार करना हो तब पहले धर्मनिष्ठ, धर्म-परायण और धर्मप्राण लोगोके वचनोसे धर्मकी दृष्टि प्राप्त करनी चाहिये। अिसीके लिअे और अितना ही धर्मशास्त्रोका अुपयोग है।

अीश्वरने सबको आखें दी है, सभीको बुद्धि दी है, प्रत्येकको अुसके अपने लिअे और अुसके बालबच्चोके लिअे स्वतत्र जिम्मेदारी भी अीश्वरने दी है। मनुष्य कितना भी अयोग्य क्यो न हो, फिर भी अुसके बच्चोके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी अुसके हाथोमें सौपने जितना विश्वास तो अीश्वर अुस पर रखता ही है। यही बताता है कि मनुष्य अपनी और कुछ हद तक दूसरोकी जिम्मेदारी अपने सिर लेनेका अधिकारी अवश्य है। कोअी भी मनुष्य अिसलिअे परतत्र नही रह सकता कि वह मदबुद्धि है, अनपढ है, पिछडा हुआ है या सस्कारहीन है। शास्त्र मनुष्यको परतत्र बनानेके लिअे नही किन्तु अुसे स्वतत्रताके अधिक योग्य बनानेके लिअे हैं। अिसलिअे शास्त्र राजा या कानूनका स्थान नही लेते, परन्तु

माता और गुरुका स्थान लेते हैं। जहा राजा और कानूनके पास जानेका प्रत्येक-को अधिकार हो वहा माता और गुरुके पास जानेका अधिकार सिद्ध करना जरूरी नही होता। शास्त्रोंके अध्ययनका अधिकार ब्राह्मणोंको ही है—असी मान्यता यदि समाजमें फैली हुअी हो, तो अिसका कारण यही है कि शास्त्रोंके ज्ञानके लिअे जो भाषाज्ञान, जो धैर्य तथा जो अुत्साह चाहिये वह ब्राह्मणोंमे है और साधारण लोगोंमें नही है। ब्राह्मणोंकी आजीविका ही शास्त्रोंका अर्थ करने पर निर्भर रहती है, अिसलिअे यदि वे शास्त्रोंका अध्ययन न करे तो कहा जाये? परन्तु जब किसी भी बातका मनुष्यको अेकाधिकार मिल जाता है तब वह आसानीसे अभिमानी और आलसी बन जाता है। ब्राह्मणोंका भी अैसा ही हुआ।

यह बात सच है कि शास्त्रोंकी रक्षा करने, शास्त्रोंका प्रचार करने और शास्त्रोंका अधिकाधिक गहरा अध्ययन करनेका कार्य ब्राह्मणोंको सौंपा गया है। लेकिन समाज जाग्रत रहेगा तो ही ब्राह्मण अपना यह कर्तव्य अच्छी तरह पूरा करेंगे। ब्राह्मणोंको जो दक्षिणा और आजीविका मिलती है, वह केवल दूसरी जातियोंके लोगोंको आशीर्वाद देनेके लिअे ही नही मिलती। अुन्हें स्वय ज्ञानवान और चरित्रवान रहकर सब लोगोंको पवित्रताकी और कौशल्यकी शिक्षा देनी चाहिये, लोगोंको सदाचारका ज्ञान देना चाहिये। विदेशी लोगोंके आक्रमणसे प्रजाकी रक्षा करनेके लिअे जिस प्रकार क्षत्रियोंकी सेना रहती थी, अुसी प्रकार ब्राह्मणोंकी सेना अज्ञान, अधविश्वास और अनाचार रूपी शत्रुसे लडकर प्रजाकी रक्षा करनेके लिअे थी। क्षत्रिय यदि लुटेरे बन जाय और ब्राह्मण अज्ञान तथा अधविश्वासके समर्थक बन जाय, तो वे समाज-द्रोह करते हैं। फिर वे समाजमे जमीन-जागीर या दक्षिणा पानेके अधिकारी नही रह जाते।

समाजमें जब अेकाध मनुष्य बिफरता या बिगडता है, तो समाज अुसे सजा कर सकता है। परन्तु जब पूरा वर्ग ही बिगडता है, रास्तेमे भटक जाता है, सड जाता है या शिथिल बन जाता है, तब समाजको अपनी रक्षाका काम स्वय ही करना पडता है। अैसे मौके पर क्षत्रिय और ब्राह्मण यदि परम्परासे चलती आअी अपने अधिकारकी बातें करे, तो वे अुन्हे शोभा नही देती और न समाजके सामने अुनका कुछ चलता है। लोगोंके तूफानी या डरपोक बननेसे जैसे राजाकी लाज चली जाती है, वैसे ही लोगोंके नास्तिक या अधविश्वासी बननेसे धर्माचार्योंकी लाज निश्चित रूपसे चली जाती है।

अधविश्वास ही बडीसे बडी नास्तिकता है, अीश्वरका द्रोह है, धर्मकी हत्या है। यह दु खकी बात है कि हमारे लोग अिसे नही समझते। लगभग डेढ हजार वर्ष पहले अरबस्तानमें अेक मनुष्यने यह बात समझ ली थी कि अध-विश्वासोंका पोषण करनेमे अीश्वरका द्रोह है। अिसलिअे अुसने अधविश्वासोंका

नाश करनेवाला अेक पथ चलाया। जहा फोडा होता है वहा मक्खिया आकर बैठती है और अुस सडाधकी ओर हमारा ध्यान खीचती हैं। अुसी प्रकार जहा अधविश्वास होगे वहा अुनका भडा फोडनेके लिअे अिस्लाम जरूर पहुच जायगा। सच्चे अिस्लामका किसी भी धर्मसे विरोध नही हो सकता। परन्तु अधविश्वासोका वह घोर विरोधी है। किसी समाजमें अिस्लामको सफलता मिले तो समझ लेना चाहिये कि अुस समाजमें धर्मके नाम पर अधर्म चलता है, सच्चे शास्त्र सो गये है और अधविश्वासोका राज्य चलता है। यह प्रत्येक धर्मके लिअे अीश्वरकी दी हुअी नोटिस है। अिस नोटिसके मिलते ही प्रत्येक समाजको जाग्रत हो ही जाना चाहिये।

हिन्दू धर्ममे जितनी भी जातियोका समावेश होता है अुन सब जातियोको अपने चरित्रकी शुद्धि करनी चाहिये, सभीको अपना चरित्र-बल बढाना चाहिये। अिसलिअे अधविश्वासोकी अथवा अधविश्वासियोकी सत्ताको स्वीकार न करके हमे स्वय धर्मका रहस्य जाननेका प्रयत्न करना चाहिये।

आज कोअी भी मनुष्य सस्कृत भाषा सीख सकता है। शास्त्र सबके लिअे बिलकुल खुले हैं। शास्त्रोमे अच्छा क्या है और आज न चल सके या गले न अुतर सके अैसा कितना है, यह भी सब कोअी जान सकते हैं। स्मृतिग्रन्थ अितने पुराने हो गये है कि कट्टरसे कट्टर सनातनी लोग भी यह नही कह सकते कि वे शास्त्रोके अक्षरार्थका पालन कर सकते है अथवा पालन करनेके लिअे तैयार है। शास्त्रोके अेक-अेक अक्षरको पसद करनेवाला कोअी सनातनी मिलेगा या नही, अिसमें भी शका ही है। कुछ लोग वकीलकी तरह दलीलें देकर अिस स्थितिको छिपा जरूर सकते हैं, परन्तु अिससे स्वय अुनका भी जब समाधान नही होगा, तब दूसरा तो कौन धोखेमें आ सकता है? अिसीलिअे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सनातन धर्मका अर्थ है तमाम हिन्दू जातियोके सयाने और चरित्रवान लोगोका आजका धार्मिक आदर्श।

२१

अवतारवाद

१

अवतारवाद हिन्दू धर्मका अेक विशेष अग है। वेदान्त कहता है कि मनुष्य मूलमें अीश्वर है। प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमे अीश्वरीय तत्त्वका वास है, यह वात कम-अधिक परिवर्तनके साथ हरअेक धर्ममे कही गअी है। रोमन, ग्रीक या पौराणिक धर्मोंमे, जिनमे देवी-देवताओंकी वहुत वडी सख्या है, तथा जगतमे अेक अप्रतिम मल्ल वनकर रहनेवाले अीर्ष्यालु अीश्वर पर ही श्रद्धा रखनेवाले यहूदी धर्ममें, अीसाअी धर्ममे और अिस्लाममे भी देवी-देवताओंके स्वभावोकी कल्पना लगभग मनुष्यके स्वभाव जैसी ही की गअी है। धर्मकथाओमे कहा गया है कि अीश्वरने मनुष्यको अुत्पन्न किया है, परन्तु विकासवादी यह कहते आये है कि अीश्वर ही मनुष्यकी कृति है। अैसा आभास हो सकता है कि ये सव मत अवतारवादसे मिलते-जुलते है। परन्तु अवतारवाद सचमुच अेक विलक्षण और अद्‌भुत परिणामवाली कल्पना है। यह वाद जितना हृदयको आश्वासन देता है अुतना ही तर्कवुद्धिके लिअे भी ग्राह्य है। अिसके यथार्थ स्वरूपको हमें समझ लेना चाहिये। अवतारवादको कुछ हद तक समझ लेनेके वाद अव मुसलमान और अीसाअी भी कहने लगे हैं कि 'अवतार ही पैगम्वर है' अिस अर्थमे हमें अवतारवाद मान्य है। कुरानमें तो स्पष्ट कहा गया है कि "अैसी अेक भी भूमि या पीढी नही है, जिसे अीश्वरने पैगम्वर न दिया हो।" सृष्टिकी तरह पैगम्वरोकी परम्परा अवाधित रूपमे चली आअी है। यहूदी और अीसाअी भी पैगम्वरोकी परम्परा पर विश्वास रखते हैं। अिसलिअे अव यदि हम मूल कल्पनाका और विभिन्न धर्मोकी अलग अलग समझके सच्चे स्वरूपका अनुसरण करके अवतारवादकी मीमासा प्रस्तुत करे, तो न केवल हिन्दू धर्मको परन्तु सभी धर्मोको वह मान्य होगी। अितना ही नही, भविष्यमे समस्त मानवजातिका समावेश करनेवाला सारे धर्मोका जो तत्त्व-परिवार रचा जायगा, अुसमें अवतारवादको मुख्य स्थान प्राप्त हुअे विना नही रहेगा। यहा हमारा अुद्देश्य केवल लाभकी या प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे अवतारवादको सुन्दर दिखाना नही है, हमारा अुद्देश्य यही दिखाना है कि आज अवतार-मीमासा कितनी महत्त्वपूर्ण और सस्कृति-पोषक है।

वौद्ध परिभाषाके अनुसार कोअी जीव जव अतर्मुख वनकर अपनी स्थितिके वारेमे असतुष्ट होता है और अपने सारे दोषोको दूर करके सव शुभ गुणोका

आत्यतिक विकास साधनेका सकल्प करता है, तव अुसे बोधिसत्त्व कहा जाता है। अैसा बोधिसत्त्व अेकके बाद दूसरे सद्‌गुणकी पारमिता अर्थात् सर्वोच्च कोटि सिद्ध करते करते प्रत्येक जन्ममें अूपर चढता जाता है और अतमें बुद्ध बन जाता है। अुसमें जब अपना अुद्धार करनेकी शक्ति आ जाती है तब अुसे 'पच्चेक (प्रत्येक) बुद्ध' कहा जाता है। वही बुद्ध जब जगतका अुद्धार करनेके लिअे समर्थ बन जाता है तब वह शाक्यसिंह गौतम बुद्धके समान 'तथागत' हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्यका स्वाभाविक अुन्नति-क्रम यही है। गीताने जिसका 'अनेक-जन्म-ससिद्ध' कहकर परिचय दिया है, अुसीको 'नर करनी करे तो नरका नारायण होय' अिस लोकोक्तिमें 'नारायण' कहा गया है।

हममें से ही हमारा अुद्धारक अुत्पन्न हुआ, हमने जो साधना नही की वह अुसने की, हममे से ही अेक होने पर भी वह परमात्माका अश बन गया — यह सब आखोसे देखते हुअे भी मनुष्यके लिअे अिसे स्वीकार करना कठिन होता है। अिसमे अेक यह कठिनाअी तो है ही कि हमारी बराबरीका आदमी हमसे आगे चला गया अैसा स्वीकार करनेमें हमें हीनताका अनुभव होता है। लेकिन दूसरी अेक सैद्धान्तिक कठिनाअी भी है, जिसका विचार यहा किया जाना चाहिये।

यह शका स्वाभाविक रूपमें ही पैदा होती है कि प्रत्येककी आत्मा स्वभावसे शुद्ध, बुद्ध, नित्य-मुक्त और सर्व-समर्थ होते हुअे भी अपना यह मूल पद वह क्यो खो बैठी? जो शुद्ध है वह अशुद्ध कैसे हो सकती है? जो मुक्त है वह बधनमें कैसे फस सकती है? जो नित्य है वह अनित्य कैसे बन सकती है? और जो सर्व-समर्थ है वह स्वयको अध पतनसे क्यो नही बचा सकती? ये प्रश्न अुठना स्वाभाविक है। तर्क कहता है कि 'आत्माका अध पतन हुआ ही नही। यह सब भ्रम है। आत्मा शुद्ध, बुद्ध, नित्य-मुक्त ही है।' तो फिर यह भ्रम कैसे पैदा हुआ? जब स्वतत्र रूपसे देखने पर अैसे परस्पर विरोधी कथन सही मालूम होने लगते हैं तब तर्कबुद्धि परेशानीमें पड जाती है और अुसे स्वीकार करना पडता है कि अिसका स्पष्टीकरण मेरे पास नही है। अपने पराभवकी अिस स्वीकृतिको ही 'माया' कहा गया है। माया कोअी वाद, कोअी सिद्धान्त नही है, परन्तु वस्तुस्थितिका स्वीकार है।

सर्वोच्च स्थितिमें होने पर भी जो आत्मा अपने स्थानको टिका नही सकी, वह अशुद्ध, अनित्य, अज्ञानी और बद्ध होनेके बाद फिरसे अूपर चढनेकी शक्ति कैसे प्राप्त कर सकती है? जो कुछ अपने पास था वही जिसे सभालते नही आया, वह आत्मा खोये हुअेको अब अपनी शक्तिसे वापिस पानेकी योग्यता कैसे प्राप्त करेगी? अिसलिअे जो समर्थ है अुसीको कृपालु बनकर नीचे अुतरना चाहिये और हमारा हाथ पकड कर हमें अूपर अुठा लेना चाहिये। अिसमें स्वय अूपर चढना नही है, परन्तु समर्थको हमें खीचकर अूपर चढाना है। सर्व-समर्थ

परमात्मा कारुण्य-बुद्धिसे कृपालु बन कर मनुष्योंका अुद्धार करनेके लिअे नीचे अुतरता है और हाथ बढाता है, अिसीलिअे पतित बने हुअे हम पुनीत हो सकते हैं। जिस जिस विभूतिमे हम अुद्धारक शक्ति देखते हैं अुस अुस विभूतिमें तारक प्रभु अुतरा है, अवतरित हुआ है, अैसा मानना ही युक्तिपूर्ण है। यह अवतार अल्प मात्रामें हो या पूर्णताको पहुचा हुआ हो, अमुक समयके लिअे हो या जीवन-पर्यन्तके लिअे हो, किन्तु तारक तत्त्व बाहरसे आकर मनुष्यमें अवतरित अवश्य होता है, अैसी जगतके अुद्धारकी जो कल्पना है अुसीको अवतार-वाद कहा जाता है।

कुम्हारका चक्र अेक बार घूमने लगा कि फिर घूमता ही रहता है। परन्तु अुसकी गति स्वयभू नही है। मिली हुअी गतिको लम्बे समय तक टिकाये रखनेमे ही अिस चक्रका सामर्थ्य है। चक्रका स्वभाव तो अैसा है कि वह — अति अल्प प्रमाणमे ही क्यो न हो — प्रतिक्षण रुकनेका प्रयत्न करता है। अिसीलिअे अुसकी गतिको बनाये रखनेके लिअे कुम्हारको हाथमें अेक डडा लेकर बार-बार चक्रको प्रेरणा देनी पडती है। और अिसके फलस्वरूप ही चक्र घूमता रहता है। स्वभाव-जड समाजके बारेमे भी यही नियम लागू होता है। अीश्वरकी कृपासे अवतारी पुरुषोके प्रतापकी परम्परा चालू रहती है। प्रेरणाका सबल अटूट बना रहता है। धौंकनी चालू रहती है, अिसीलिअे सस्कृति रूपी अग्नि आज तक प्रज्वलित रही है।

यह प्रेरणा बाहरसे आती है अथवा अत स्फूर्त है? मानुषी है अथवा अतिमानुषी है? — अिसकी चर्चामे हम नही जायगे। अवतारवाद कहता है· यह प्रेरणा नि सन्देह बाह्य है, अतिमानवी है। अिस प्रेरणाको मनुष्य ग्रहण कर सकता है, धारण कर सकता है, यही अुसकी महत्ता है! विरोधी पक्ष कहेगा घर्षणके फलस्वरूप जब गरमी बहुत बढ जाती है तब अुससे आग भडक अुठती है और वह ज्वाला या प्रकाशका रूप धारण करती है, अैसा हम हमेशा देखते हैं। अुष्णता-से ही प्रकाश अुत्पन्न होता है। अुष्णता और प्रकाशमे स्वरूप-भेद है, किन्तु तत्त्वत अुष्णताका अुत्कट रूप ही प्रकाश है, अिस विषयमे हम शका नही करते। अुष्णता अत्यधिक बढ जाती है तब हमारे अवतारके लिअे पृष्ठभूमि तैयार होती है, अैसा कहकर चाहे जहासे प्रकाश आकर अुसमें घुस नही जाता। वह भीतरसे ही प्रदीप्त होता है। अिसी प्रकार मनुष्य-जातिका तारनहार मनुष्योमें से ही अुत्पन्न होता है और वह सर्वश्रेष्ठ मनुष्य-स्वभावका ही बना हुआ होता है।

अिस चर्चाको जरा आगे बढाने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि दो पक्षोमे मतभेद नही है, केवल शब्दभेद है। गाधीजी कहते हैं "जो पुरुष अपने युगमे सबसे श्रेष्ठ धर्मवान होता है, अुसे भविष्यकी प्रजा अवतारके रूपमें पूजती है। जिस पुरुषमें अपने युगमें सबसे अधिक धर्म-जागृति होती है, वह अुस युगका

अवतार होता है।" अवतारकी कल्पनाको अैसा दोहरा रूप देकर गाधीजीने अूपरके वादको शात ही कर दिया है। प्रत्येक पीढीमें, प्रत्येक युगमे समाजको सावधान रखनेवाला कोअी न कोअी पुरुष होता ही है। अुसीकी विभूति अुसके समयके लोगोको असाधारण जैसी लगती है। अिसलिअे बादके लोग अुसे अवतारके रूपमे पहचानने लगते है, और अुसकी दी हुअी प्रेरणाको अीश्वरीय प्रेरणा मान कर श्रद्धा और आदरसे अुसे स्वीकार करते है।

कुरानमे भी स्पष्ट कहा गया है कि अल्लाहने प्रत्येक देशको और प्रत्येक युगको अेक अेक पैगम्बर दिया है। पैगम्बरसे रहित कोअी भूमि नही है, पैगम्बरसे रहित कोअी समाज नही है, पैगम्बरसे रहित कोअी युग नही है। अिसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक स्थान और प्रत्येक कालमें कोअी न कोअी तारक पुरुष होता ही है। अुसे पहचाननेकी शक्ति समाजमे होनी चाहिये।

*

अिसी स्थान पर हम शास्त्रोके प्रामाण्यका थोडा विचार कर लें। तारक विभूतिकी प्रेरणाको अेक बार श्रद्धा और आदरसे स्वीकार कर लेनेके बाद अुसके वचनोका सग्रह होना बिलकुल स्वाभाविक है। अिस प्रकार प्रेरणा शब्दबद्ध होकर ग्रन्थोका रूप धारण करती है, सत-वचन ही शास्त्र है अैसा जो मूल सिद्धान्त था वह विकृत हो जाता है तथा शास्त्र-प्रामाण्यको शब्द-प्रामाण्य अथवा ग्रन्थ-प्रामाण्यका रूप मिल जाता है। धर्मका तत्त्व गूढ है, अवसरके अनुसार अुसका विनियोग बदलता है। धर्मज्ञ पुरुषके द्वारा परिस्थितियोका प्रत्यक्ष निरीक्षण करके अेक समय जो निर्णय लिया जाता है वह काल और परिस्थितियोके बदल जाने पर लागू नही होता। शकराचार्यने भी कहा है 'यस्मिन् देशे काले निमित्ते च यो धर्मोऽनुष्ठीयते स अेव देशकालनिमित्तातरेषु अधर्मो भवति।' (शाकर शारीरभाष्य — ३ १, २५) अैसी स्थितिमें व्याकरणशास्त्र, तर्कशास्त्र और मीमासाशास्त्रके बल पर प्राचीन वचनोका अर्थ करना और मृतप्राय ग्रन्थो पर जीवत समाजके जीवन-क्रम तथा भाग्यका आधार रखना अत्याचार है और आत्मद्रोह है। 'शिष्टा प्रमाणम्' यही मार्ग सच्चा है। वह पवित्र जीवित व्यक्ति शिष्ट है, जिसकी बुद्धि और हृदय शुद्ध है, जो समाज-हितको समझता है और जिसका हृदय समाज-हितकी ओर ही मुडता है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह अित्यादि व्रत जिनके लिअे स्वाभाविक बन गये है, वे विरल व्यक्ति ही शिष्ट कहे जाते है। अैसे लोगोने जो मार्ग बताया हो वही शास्त्र है। भर्तृहरि तो अिससे आगे जाकर कहते है कि सत्पुरुष सहज रूपमें जो कह देते हैं वह भी शास्त्र ही बन जाता है।

परिचरितव्या सन्त यद्यपि कथयन्ति ते न अुपदेशम्।
यास्तेषा स्वैरकथा ता अेव भवन्ति शास्त्राणि॥

प्राचीन शास्त्र-वचनोका अर्थ करना हो तो वह भी अैसे शिष्ट लोगो द्वारा ही किया जाना चाहिये। जीवनके जीते-जागते तत्त्वज्ञानको केवल पडितोके हाथमे नही फसने देना चाहिये।

१९३०

२

हमारे पूर्वज कह गये है कि भूमिका भार हरण करनेके लिअे प्रत्येक युगमें अवतार आते है। अिन वचनोका केवल शब्दार्थ ग्रहण करनेसे बहुतसे लोगोमें यह समझ घर कर बैठी है कि जैसे नावमे मुसाफिरोका भार बढने पर नावसे वह भार सहन नही होता और वह पानीमें डूब जाती है, वैसे ही जनसख्याके बढनेसे पृथ्वीको अपनी पीठ परका भार असह्य मालूम होता है। वास्तवमें पृथ्वीके तत्त्वोसे ही बने हुअे मानवोकी सख्या बढने या घटनेसे पृथ्वीके भारमे और पृथ्वीके जड द्रव्योमें कोअी घटती-बढती नही होती।

राअी जितने अेक छोटेसे दानेमे से बड जैसा विशाल वृक्ष जमीन पर खडा होता है, परन्तु अिस विशाल वृक्षका अितना बडा बोझ बाहरसे नही आता, हवा, पानी और मिट्टीसे ही वह पैदा होता है। वृक्षके बढनेसे धरतीका बोझ कैसे बढेगा? घोडे पर बैठे बैठे कोअी सवार थैलीमे रखी रोटिया खा ले, तो थैलीका बोझ कम हो जायगा और सवारके पेटका बोझ बढ जायगा। लेकिन अिससे घोडेको क्या? अुसे तो अुतना ही बोझ ढोना पडेगा। पृथ्वीको भी यही बात लागू होती है। पृथ्वीका बोझ जो बढता है वह भौतिक नही परन्तु नैतिक होता है। अुस बोझको अुतारनेका कार्य अवतारका होता है। जब समाजमें अनाचार बढ जाता है, स्वार्थ, विद्रोह, कलह और नास्तिकता फूलते-फलते है, तब पृथ्वीके लिअे अुनका बोझ असह्य हो जाता है। अुस स्थितिमे पृथ्वी गरीब गायकी तरह दीन बनकर अपने पालन-कर्ता विधाताके पास जाती है; और सर्व-अतर्यामी परमात्मा दया करके धर्म-परायण व्यक्तिमे अवतरित होता है। जिस प्रकार हम सिगडीको हिला-हिलाकर और फुकनीसे फूक-फूक कर अुसकी आगको प्रज्वलित करते है, अुसी तरह अवतारी पुरुष समाजको हिला कर, धर्मको फूक कर, धर्मका शुद्धीकरण करके फिरसे सज्जनता, मनुष्य-प्रेम और दैवी सपत्तिकी स्थापना करता है। समाजके सयाने और समझदार लोग अिस धर्म-प्रेरणाको पहचान कर आस्तिकतासे अुसका स्वीकार करते है।

अवतारका अुद्देश्य है मानव-समाजमें धर्मकी सस्थापना करना। धर्म-सस्थापनाका अर्थ कोअी मत अथवा पथ चलाना नही, किन्तु सत्य, प्रेम, दया, वासना-सयम, सर्वभूत-हितमें रत रहनेकी भावना आदि शुभ मगलमय तत्त्वोके प्रति लोगोमें विश्वास जगाना है। धर्म वही है जिसमे सबका कल्याण समाया हुआ हो। सर्वत्र

समस्त प्रजाओंको सनातन रूपमें धारण करनेवाला तत्त्व धर्म है। यह धर्म विश्व-व्यापी होता है, सनातन होता है और अिसी कारण नित्य-नूतन होता है। चित्रकार जीवत, चलते-फिरते, चैतन्ययुक्त शरीर पर मोहित होकर अुसका चित्र बनाता है और मूर्तिकार अैसे शरीर पर मुग्ध होकर अुसकी मूर्ति बनाता है। जिस व्यक्तिने जीवत शरीरका दर्शन किया है, जिसने जीवत शरीरके साथ सत्सग किया है, अुसे चित्र या मूर्ति देखकर भी मूल चैतन्यका स्मरण होता है और अुससे चैतन्यमयी प्रेरणा मिलती है। किन्तु जिनके अनुभव और कल्पना अुस चित्र या मूर्तिके बाहर जाते ही नही, अुनके लिअे वह चित्र और मूर्ति बन्धनरूप हो जाते हैं। चैतन्यकी भूख जड मूर्तिसे कैसे मिट सकती है? जीवत मूर्ति मनुष्यका अुद्धार करती है। निष्प्राण मूर्ति गलेका पत्थर बनकर मनुष्यको डुबा देती है।

अवतारी पुरुषोके नाम पर जो धर्म चलते हैं वे सचमुच अुनके नही होते। प्रेमका सदेश दूसरे गाव भेजनेके लिअे प्रेमपत्र भेजना पडता है। प्रेमपत्र ले जाने-वाला सदेश-वाहक प्रेमी नही होता, पत्रका कागज, स्याही, स्याहीका रग, अक्षरो-का मोड, शब्द, भाषा, भाषाके अलकार -- अिनमे से अेक भी तत्त्व प्रेम नही होता। प्रेम तो अमूर्त है, परन्तु अिन सब साधनोके बिना अुसका वहन कैसे हो? प्रेमको समझनेवाला अिन सब साधनोका अुपयोग करते हुअे भी अिन पर निर्भर नही रहता। साधनोसे प्रेम भिन्न है, यह समझ लेनेके कारण वह साधनोको ही सर्वस्व नही मान लेता। अिसी न्यायसे धर्म-सस्थापक अपने समाजमे रूढ हो चुकी कल्पनाओ, रीति-रिवाजो और सिद्धान्तोका आधार लेकर अुन्हीमें अपने सदेशको अुडेलता है और अुसे लोगोके सामने रखता है। पुरानेमे से जितना बुरा और त्याग देने जैसा अुसे विश्वासपूर्वक लगता है, केवल अुतनेका ही वह विरोध करता है। अुसकी वृत्ति जितनेको निभाया जा सके अुतनेको निभा लेनेकी ही होती है। वह जो नये साधन, जो नअी प्रथायें अथवा नअी सस्थायें अुत्पन्न करता है और जिन वस्तुओके प्रति अत्यत आदर और आग्रह बढाता है, अुन सबको अुसके सदेशके वाहकके रूपमें ही महत्त्व दिया जाना चाहिये। परन्तु अविद्या — अज्ञान — से जकडी हुअी मनुष्य-जातिने तत्त्वके साथ सम्बन्ध बाधनेके बजाय तत्त्व-वाहक अथवा तत्त्व-सग्राहक बाहरी साधनोको ही महत्त्व दिया है और कभी कभी अुनके लिअे अनेक भयकर युद्ध किये हैं।

साधन-भेदके कारण अैसे युद्ध होते देख कर कुछ लोग तत्त्वको केवल बौद्धिक रूपमे ग्रहण करके ही सतोष मान लेते हैं। साधनाके विषयमें अुनका विश्वास न होनेके कारण वे साधना-मात्रकी अुपेक्षा करते हैं। वे लोग अिस बातको भूल जाते हैं कि धर्म केवल तत्त्वके ज्ञानके लिअे ही नही है — धर्म जीवन-परि-वर्तनके लिअे है, आत्मशुद्धिके लिअे है, आत्म-साक्षात्कारके लिअे है। सामान्य जन-समुदाय देवको छोड कर देवालयकी या मसजिदकी ही अुपासना करते हैं, जब कि

कुछ अुत्साही किन्तु अज्ञानी विद्रोही मदिरोको तोड कर देवको बचानेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु सच्ची जरूरत अिस बातकी है कि मनुष्य मदिरको मदिर और अीश्वरको अीश्वरके रूपमें पहचाने। अैसा होने पर मनुष्य साधनके विषयमे साध्यके जितना ही आग्रह रखते हुअे भी साधन-पूजक नही बनेगा। प्रत्येक धर्म-सस्थानक या पैगम्बर जो कुछ दे जाता है अुसका शुद्ध रूपमे सेवन हो, अिसके लिअे अुसकी विरासतका प्रतिक्षण सस्करण और परिष्करण होना चाहिये। जिसका नित्य सस्करण होता है अुसका नाश नही करना पडता। नित्य सस्करण ही जीवन-को प्राणयुक्त अथवा चैतन्यमय बनाये रखनेका साधन है।

मुहम्मद पैगबरसे पहले अरबस्तानमें बाबा अब्राहमका धर्म चलता था। अुस धर्ममे अनेक प्रकारके दोष घुस गये थे। अुनमें से जो दोष मुहम्मद साहब-को असह्य मालूम हुअे, अुन्हीका अुन्होने डटकर विरोध किया। परन्तु मक्काकी यात्रा (हज), काबाका चुम्बन, काबाका स्नान, अेकवस्त्री स्नान आदि विधियोको निर्दोष समझ कर अुन्होने चालू रहने दिया। बक्र-अीदका पशु-बलिदान भी मुह-म्मद साहबने स्वय आरभ नही किया, परन्तु अिसके मूलमें शिबि-श्रियाल अथवा रुक्मागदके जैसे भक्तोकी अलौकिक अीश्वर-निष्ठाको देखकर ही मुहम्मद साहबने अुसे रहने दिया। मासाहारी लोगोको बक्र-अीदका बलिदान स्वभावत शोभा देता है, परन्तु अिसी बक्र-अीदका बलिदान भारतमें महाकलहका मूल बन गया है। तटस्थ दृष्टिसे अिस्लामका अध्ययन करनेसे पता चला है कि बक्र-अीदका बलिदान अिस्लामका मुख्य अग नही है। अिस्लामका अर्थ है अीश्वरके विषयमे अनन्य निष्ठा। अिस्लामका सच्चा आग्रह अीश्वरके अद्वैतके बारेमें है। अनात्माको आत्मा मानना, अनीश्वरको अीश्वर मानना — अिससे अिस्लामको अतिशय चिढ है। प्रत्येक धर्मनिष्ठ साधक और भक्तको भी अिस बातसे चिढ होती है। जो लोग विलास-निष्ठ हैं, धन-लोलुप हैं, जान-माल-परस्त हैं, किताब-परस्त हैं, वे सच्चे भक्त नही हैं, सच्चे मुसलमान नही हैं। आजकलके कुछ मुसलमान दूसरोका अनुकरण करके ताबूत निकालते हैं और मसजिद-परस्तीका दोष करते हैं, यह दूसरी बात है। परन्तु सच्चे अिस्लामका अर्थ है अीश्वर-निष्ठा, गरीबोके लिअे दया, अीश्वर-प्रार्थना और धर्मसेवा। यही बात हर धर्मके बारेमे कही जा सकती है। धर्मके कारण होनेवाले झगडोको देखकर व्याकुल बने हुअे अेक निरक्षर भक्तने पूछा है

"भाळा भोळा ठाकुर हारु
बाझी का मरो?"*

१९३३

* भले और भोले अीश्वरके लिअे तुम क्यो आपसमें लडते-झगडते हो?

जीवन-व्यवस्था

दूसरा खण्ड

विविध धर्म

कुछ अुत्साही किन्तु अज्ञानी विद्रोही मदिरोको तोड कर देवको वचानेका प्रयत्न करते है। परन्तु सच्ची जरूरत अिस वातकी है कि मनुष्य मदिरको मदिर और अीश्वरको अीश्वरके रूपमें पहचाने। अैसा होने पर मनुष्य साधनके विषयमें साध्यके जितना ही आग्रह रखते हुअे भी साधन-पूजक नही वनेगा। प्रत्येक धर्म-सस्थापक या पैगम्वर जो कुछ दे जाता है अुसका शुद्ध रूपमे सेवन हो, अिसके लिअे अुसकी विरासतका प्रतिक्षण सस्करण और परिष्करण होना चाहिये। जिसका नित्य सस्करण होता है अुसका नाश नही करना पडता। नित्य सस्करण ही जीवन-को प्राणयुक्त अथवा चैतन्यमय वनाये रखनेका साधन है।

मुहम्मद पैगवरसे पहले अरवस्तानमें वावा अव्राहमका धर्म चलता था। अुस धर्ममें अनेक प्रकारके दोष घुस गये थे। अुनमे से जो दोष मुहम्मद साहव-को असह्य मालूम हुअे, अुन्हीका अुन्होने डटकर विरोध किया। परन्तु मक्काकी यात्रा (हज), कावाका चुम्वन, कावाका स्नान, अेकवस्त्री स्नान आदि विधियोको निर्दोष समझ कर अुन्होने चालू रहने दिया। वक्र-अीदका पशु-वलिदान भी मुह-म्मद साहवने स्वय आरभ नही किया, परन्तु अिसके मूलमें शिवि-श्रियाल अथवा रुक्मागदके जैसे भक्तोकी अलौकिक अीश्वर-निष्ठाको देखकर ही मुहम्मद साहवने अुसे रहने दिया। मासाहारी लोगोको वक्र-अीदका वलिदान स्वभावत शोभा देता है, परन्तु अिसी वक्र-अीदका वलिदान भारतमे महाकलहका मूल वन गया है। तटस्थ दृष्टिसे अिस्लामका अध्ययन करनेसे पता चला है कि वक्र-अीदका वलिदान अिस्लामका मुख्य अग नही है। अिस्लामका अर्थ है अीश्वरके विषयमें अनन्य निष्ठा। अिस्लामका सच्चा आग्रह अीश्वरके अद्वैतके वारेमें है। अनात्माको आत्मा मानना, अनीश्वरको अीश्वर मानना — अिससे अिस्लामको अतिशय चिढ है। प्रत्येक धर्मनिष्ठ साधक और भक्तको भी अिस वातसे चिढ होती है। जो लोग विलास-निष्ठ है, धन-लोलुप है, जान-माल-परस्त है, किताव-परस्त हैं, वे सच्चे भक्त नही है, सच्चे मुसलमान नही है। आजकलके कुछ मुसलमान दूसरोका अनुकरण करके तावूत निकालते हैं और मसजिद-परस्तीका दोष करते है, यह दूसरी वात है। परन्तु सच्चे अिस्लामका अर्थ है अीश्वर-निष्ठा, गरीवोके लिअे दया, अीश्वर-प्रार्थना और धर्मसेवा। यही वात हर धर्मके वारेमें कही जा सकती है। धर्मके कारण होनेवाले झगडोको देखकर व्याकुल वने हुअे अेक निरक्षर भक्तने पूछा है

> "भाळा भोळा ठाकुर हारु
> वाझी का मरो?" *

१९३३

* भले और भोले अीश्वरके लिअे तुम क्यो आपसमें लडते-झगड़ते हो?

२२

हिन्दू धर्म बनाम हिन्दू समाजशास्त्र

हमारे समाजमें धर्मके नाम पर अूच-नीच-भावकी तालीम व्यवस्थित रूपमें दी जाती रही है। हिन्दू लोग आज अिस भावको सनातन धर्मका अेक अभिन्न अग मानने लगे हैं। हिन्दू धर्म अपने विशुद्ध रूपमे आर्य, अुदात्त और मुक्ति-परायण धर्म है। यदि किसी घातक दोषने अुसे निष्प्राण, अनार्य और जहरीला बना दिया हो, तो वह है अूच-नीचका भाव।

हम यह बात क्यो नही समझते कि हिन्दू धर्म और हिन्दू समाजशास्त्र दोनो अलग अलग है। हिन्दू धर्म 'निर्दोष' और 'सम' ब्रह्मकी अुपासना सिखाता है। वह 'साधुष्वपि च पापेषु' 'समबुद्धि' का प्रतिपादन करता है। वह 'विद्याविनय-सपन्न' ब्राह्मणसे लेकर 'श्वपाक' तक सबके प्रति 'समदर्शित्व' तथा 'समवर्तित्व' का अुपदेश करता है। परन्तु हिन्दू समाजशास्त्र अूच-नीचकी भावनाके अभद्र और अमगल तत्त्व पर जोर देता है। यदि हम अपनी स्मृतियोसे अूच-नीचकी भावनाको मान्य रखनेवाले वचन निकाल डालें, तो अुनमे बाकी कितना भाग बचेगा!

अिसीलिअे भगवान मनुने अपनी स्मृतिमे ही अेक 'भेषज-रूप' (औषधि-रूप) वचन दिया है कि स्मृतियोमें यदि कोअी धर्म (वेद) विरोधी वचन हो, तो अुसे अप्रमाण मानना चाहिये। अिसका कारण यह है कि स्मृतिया सदा धर्मशास्त्रोका विवेचन ही नही करती, वे धर्म-विरोधी परन्तु तत्कालीन शिष्ट-जन-मान्य समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और रूढियोका भी समर्थन करती है। परन्तु प्रगति न करनेका आदी बना हुआ समाज अेक बडे हितकारी न्यायको भूल जाता है। वह न्याय यह है समाजशास्त्र अथवा अर्थशास्त्रकी अपेक्षा शुद्ध धर्मतत्त्व अधिक प्रबल है। देश और कालसे मर्यादित धर्मशास्त्रकी अपेक्षा सनातन और सार्वभौम धर्मतत्त्व परम प्रमाण है।

अिसलिअे जब समाजमें धार्मिकता बढती है, धर्मका आकलन विशुद्ध बनता है, तब आचार और समाज-रचनामे तत्त्वके अनुरूप परिवर्तनकी जरूरत स्वीकार की जाती है। अब वह समय आ गया है जब हमें शुद्ध हिन्दू धर्मको समाज-व्यवस्था (जिसमें पुराना अर्थशास्त्र और परम्परागत किन्तु भेददर्शक शिष्टाचार समाये हुअे है) के चगुलसे छुडा लेना चाहिये। अपनी स्मृतियोको अब हमें अपने अध्यात्मके सिद्धान्तके अनुकूल बना लेना चाहिये।

जनवरी, १९३९

२२

हिन्दू धर्म बनाम हिन्दू समाजशास्त्र

हमारे समाजमें धर्मके नाम पर अूच-नीच-भावकी तालीम व्यवस्थित रूपमें दी जाती रही है। हिन्दू लोग आज अिस भावको सनातन धर्मका अेक अभिन्न अग मानने लगे हैं। हिन्दू धर्म अपने विशुद्ध रूपमे आर्य, अुदात्त और मुक्ति-परायण धर्म है। यदि किसी घातक दोषने अुसे निष्प्राण, अनार्य और जहरीला बना दिया हो, तो वह है अूच-नीचका भाव।

हम यह बात क्यो नही समझते कि हिन्दू धर्म और हिन्दू समाजशास्त्र दोनो अलग अलग हैं। हिन्दू धर्म 'निर्दोष' और 'सम' ब्रह्मकी अुपासना सिखाता है। वह 'साधुष्वपि च पापेषु' 'समबुद्धि' का प्रतिपादन करता है। वह 'विद्याविनय-सपन्न' ब्राह्मणसे लेकर 'श्वपाक' तक सबके प्रति 'समदर्शित्व' तथा 'समवर्तित्व' का अुपदेश करता है। परन्तु हिन्दू समाजशास्त्र अूच-नीचकी भावनाके अभद्र और अमगल तत्व पर जोर देता है। यदि हम अपनी स्मृतियोसे अूच-नीचकी भावनाको मान्य रखनेवाले वचन निकाल डालें, तो अुनमें बाकी कितना भाग बचेगा!

अिसीलिअे भगवान मनुने अपनी स्मृतिमें ही अेक 'भेषज-रूप' (औषधि-रूप) वचन दिया है कि स्मृतियोमें यदि कोअी धर्म (वेद) विरोधी वचन हो, तो अुसे अप्रमाण मानना चाहिये। अिसका कारण यह है कि स्मृतिया सदा धर्मशास्त्रोका विवेचन ही नही करती, वे धर्म-विरोधी परन्तु तत्कालीन शिष्ट-जन-मान्य समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और रूढियोका भी समर्थन करती हैं। परन्तु प्रगति न करनेका आदी बना हुआ समाज अेक बडे हितकारी न्यायको भूल जाता है। वह न्याय यह है समाजशास्त्र अथवा अर्थशास्त्रकी अपेक्षा शुद्ध धर्मतत्त्व अधिक प्रबल है। देश और कालसे मर्यादित धर्मशास्त्रकी अपेक्षा सनातन और सार्वभौम धर्मतत्त्व परम प्रमाण है।

अिसलिअे जब समाजमे धार्मिकता बढती है, धर्मका आकलन विशुद्ध बनता है, तब आचार और समाज-रचनामे तत्त्वके अनुरूप परिवर्तनकी जरूरत स्वीकार की जाती है। अब वह समय आ गया है जब हमें शुद्ध हिन्दू धर्मको समाज-व्यवस्था (जिसमें पुराना अर्थशास्त्र और परम्परागत किन्तु भेददर्शक शिष्टा-चार समाये हुअे हैं) के चगुलसे छुडा लेना चाहिये। अपनी स्मृतियोको अब हमे अपने अध्यात्मके सिद्धान्तके अनुकूल बना लेना चाहिये।

जनवरी, १९३९

२३

आर्य संस्कृतिका आधार

[सामान्य जानकारी]

हिन्दू धर्मको वेदधर्म भी कहा जाता है। वेद ससारमें प्राचीनसे प्राचीन और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। वेदोमे अिन्द्र, मित्र, वरुण, द्यावा-पृथिवी, अुषा, सविता, रुद्र आदि अीश्वरके अनेक रूपोका वर्णन और स्तुति है। ये सारे मत्र अृषिगण जब ध्यानमे वैठते थे अुस समय अुनमे स्फुरित होते थे। वेदोमे हिन्दू धर्मके सभी तत्त्वोका सूक्ष्म मूल है। कुछ मत्रोंमें सुन्दर काव्य है। वेद चार है। अृग्वेदमे अधिकाश स्तुतिके ही मत्र है। यजुर्वेदमे यज्ञका प्रकरण है। सामवेदमें हमारा प्राचीन गायन है। अथर्ववेदमे विविध प्रकारकी अनेक वाते है।

अिन वेदोसे ही ब्राह्मण नामक अेक दूसरा भाग अुत्पन्न हुआ। यहा ब्राह्मण अमुक प्रकारके ग्रन्थोका नाम है। ब्राह्मणोमे यज्ञ-सम्बन्धी और धर्मतत्त्व सम्बन्धी लबी लबी चर्चायें है।

ब्राह्मण-ग्रथोसे ही अुपनिषदोका जन्म हुआ। अुपनिषदोमे हमारे धर्मकी सारी अुदात्त कल्पनाये और अुसके विशाल तत्त्व आ गये है। अुपनिषदोमें गुरु-शिष्यके कुछ सवाद वडे ही सुन्दर हैं। भगवद्गीतामे श्रीकृष्णने अिन अुपनिषदोका ही दूध दुह कर रखा है। (वादशाह शाहजहाके वडे पुत्र दाराने अिन अुपनिषदोका फारसीमें अनुवाद किया था।) अुपनिषदोके वाद अध्ययन और अध्यापनका कार्य खूब वढा, अिसलिअे स्मरण-शक्ति पर वहुत वोझ पडने लगा। अिसके फल-स्वरूप सूत्रग्रन्थोका निर्माण हुआ। सूत्रग्रन्थोमे छोटे छोटे वाक्य अैसे ढगसे रचे गये है कि वहुतसी जानकारी ध्यानमे रह जाय। परन्तु अिन वाक्योका अर्थ करनेकी कुजी गुरुसे मिली हो, तो ही अिन सूत्रग्रथोका अुपयोग हो सकता है। यह कुजी और सूत्रोका विवरण विद्वान आचार्योंने अपने भाष्योमें दिया है।

जैसे जैसे फलप्राप्तिके लिअे अेक निश्चित पद्धतिसे यज्ञविधि करनेका आग्रह बढा वैसे वैसे जीवनका हर काम लोग नियमके अनुसार और धर्मके अनुसार करने लगे। चार वर्णोंमें से ब्राह्मणोको कैसा आचरण करना चाहिये, क्षत्रियका क्या कर्तव्य है, वैश्योका धर्म क्या है और शूद्रोको कौनसी मर्यादामे रहना चाहिये — यह सव विस्तारसे लिखा गया। मनुष्य क्या खाये, क्या न खाये, क्या पहने, दूसरोके साथ कैसा व्यवहार करे, जीवनके मुख्य मुख्य अवसरो पर कौनसे सस्कार प्राप्त करे अथवा विकसित करे, आदि सव वातोके नियम रचे गये। अिन नियमोको स्मृति अिसलिअे कहते है कि अृषि-मुनियोने पुराने समयके आचारोका स्मरण

करके ये स्मृतिया लिखी है। अिन स्मृतियोमें मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृति बडी है। वेदके मत्र देवताओसे सुने गये थे, अिसलिअे अुन्हे श्रुति कहते हैं। ब्राह्मणो और अुपनिषदोका समावेश भी श्रुतिमे ही होता है।

जिस प्रकार मनुष्यके आचरणोकी व्यवस्था स्मृतियोमें हुअी है अुसी प्रकार धार्मिक और तात्त्विक विचारोकी व्यवस्था दर्शनोमे हुअी है। आत्माका दर्शन करनेके लिअे ये ग्रन्थ अुपयोगी हैं, यह जानकर अिन ग्रन्थोको ही दर्शन कहा जाने लगा। दर्शन छह हैं। जो दर्शन वेदोको महत्त्व नही देते, अुन्हे नास्तिक दर्शन कहा जाता है। वे सर्वथा भिन्न हैं। जिस वेदान्तके बारेमे हम बहुत सुनते है, वह अुपर्युक्त छह दर्शनोमें से अेक प्रधान दर्शन है।

(नास्तिक दर्शनोमें जैन दर्शन भी आ जाता है। जैन लोग वेदोको नही मानते, अिसीलिअे यहा अुन्हे नास्तिक कहा गया है। आज तो नास्तिक शब्द बिलकुल अलग ही अर्थमें प्रयुक्त होता है। नास्तिक शब्दका आजका अर्थ है अैसा मनुष्य जो आत्मा, अीश्वर अथवा धर्ममें विश्वास नही करता। जैन दर्शनको नास्तिक कहनेमे नास्तिक शब्दका यह अर्थ नही लिया जाता।)

प्रत्येक धर्मके साथ धार्मिक कथायें तो रहती ही है। कथाओके द्वारा धर्मके सारे सिद्धान्त, प्रसग, धर्म-सकट, परम्परा सब कुछ समझाया जाता है। अैसी कथाओका सग्रह पुराणोमें किया गया है। सृष्टिकी अुत्पत्तिसे लेकर ताम्रमुखी (गोरे) लोगोके भारतमें आने तककी अनेक बातें अिन पुराणोमें है। पुराणकारोने अैसी अेक भी बात नही छोडी, जिसका समावेश पुराणोमें न हुआ हो। पुराण अठारह है। अुपपुराण भी अितने ही हैं। रामायण और महाभारत पुराण नही हैं। अिनकी गिनती अितिहासमें होती हैं।

आजका हिन्दू धर्म श्रुति, स्मृति और पुराणोके अनुसार चलता है। अिस-लिअे अुसे श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त धर्म कहा जाता है। अिसके सिवा, आगमो या तन्त्रोके नामसे अेक अलग धर्म-सग्रह है। वे भी धर्मग्रन्थ ही माने जाते है। बगाल, आसाम, नेपाल और काश्मीरमें अिन तन्त्रोका अधिक महत्त्व है, यद्यपि हिन्दू धर्म पर सर्वत्र ही अिन तन्त्रोका प्रभाव है। अिन तन्त्रोमे कुछ विधिया अैसी है, जिनका सर्वथा त्याग कर दिया जाना चाहिये।

१९२३

२३
आर्य संस्कृतिका आधार
[सामान्य जानकारी]

हिन्दू धर्मको वेदधर्म भी कहा जाता है। वेद ससारमें प्राचीनसे प्राचीन और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। वेदोमे अिन्द्र, मित्र, वरुण, द्यावा-पृथिवी, अुषा, सविता, रुद्र आदि अीश्वरके अनेक रूपोका वर्णन और स्तुति है। ये सारे मत्र ऋषिगण जब ध्यानमें बैठते थे अुस समय अुनमे स्फुरित होते थे। वेदोमे हिन्दू धर्मके सभी तत्त्वोका सूक्ष्म मूल है। कुछ मत्रोमें सुन्दर काव्य है। वेद चार हैं। ऋग्वेदमें अधिकाश स्तुतिके ही मत्र हैं। यजुर्वेदमें यज्ञका प्रकरण है। सामवेदमें हमारा प्राचीन गायन है। अथर्ववेदमें विविध प्रकारकी अनेक बातें हैं।

अिन वेदोसे ही ब्राह्मण नामक अेक दूसरा भाग अुत्पन्न हुआ। यहा ब्राह्मण अमुक प्रकारके ग्रन्थोका नाम है। ब्राह्मणोमें यज्ञ-सम्बन्धी और धर्मतत्त्व सम्बन्धी लबी लबी चर्चायें हैं।

ब्राह्मण-ग्रथोसे ही अुपनिषदोका जन्म हुआ। अुपनिषदोमे हमारे धर्मकी सारी अुदात्त कल्पनायें और अुसके विशाल तत्त्व आ गये हैं। अुपनिषदोमें गुरु-शिष्यके कुछ सवाद बडे ही सुन्दर हैं। भगवद्गीतामें श्रीकृष्णने अिन अुपनिषदोका ही दूध दुह कर रखा है। (बादशाह शाहजहाके बडे पुत्र दाराने अिन अुपनिषदोका फारसीमें अनुवाद किया था।) अुपनिषदोके बाद अध्ययन और अध्यापनका कार्य खूब बढा, अिसलिअे स्मरण-शक्ति पर बहुत बोझ पडने लगा। अिसके फल-स्वरूप सूत्रग्रन्थोका निर्माण हुआ। सूत्रग्रन्थोमे छोटे छोटे वाक्य अैसे ढगसे रचे गये हैं कि बहुतसी जानकारी ध्यानमें रह जाय। परन्तु अिन वाक्योका अर्थ करनेकी कुजी गुरुसे मिली हो, तो ही अिन सूत्रग्रथोका अुपयोग हो सकता है। यह कुजी और सूत्रोका विवरण विद्वान आचार्योने अपने भाष्योमें दिया है।

जैसे जैसे फलप्राप्तिके लिअे अेक निश्चित पद्धतिसे यज्ञविधि करनेका आग्रह बढा वैसे वैसे जीवनका हर काम लोग नियमके अनुसार और धर्मके अनुसार करने लगे। चार वर्णोमें से ब्राह्मणोको कैसा आचरण करना चाहिये, क्षत्रियका क्या कर्तव्य है, वैश्योका धर्म क्या है और शूद्रोको कौनसी मर्यादामें रहना चाहिये — यह सब विस्तारसे लिखा गया। मनुष्य क्या खाये, क्या न खाये, क्या पहने, दूसरोके साथ कैसा व्यवहार करे, जीवनके मुख्य मुख्य अवसरो पर कौनसे सस्कार प्राप्त करे अथवा विकसित करे, आदि सब बातोके नियम रचे गये। अिन नियमोको स्मृति अिसलिअे कहते हैं कि ऋषि-मुनियोने पुराने समयके आचारोका स्मरण

पर बडे बडे स्तूप बनानेमें तथा मठ खडे करनेमें भारी खर्च करनेकी प्रथा चल पडी। अिसके सिवा, अशोकने बुद्ध भगवानके अहिंसा और सयमके अुपदेशसे जिस सार्वत्रिक शातिकी स्थापनाकी कल्पना की थी, वह शाति भी दुनियामें नही आअी। प्राचीन कालमे क्षत्रिय राजा अश्वमेध यज्ञ करके बडे बडे युद्ध लडते थे, वैसे ही बौद्ध राजा भी बुद्ध भगवानके अवशेषोके लिअे आपसमें युद्ध करने लगे।

कुछ लोग अैसा मानते है कि हिन्दू धर्ममें कोअी परिवर्तन करनेकी सुविधा है ही नही। हिन्दू धर्म बिलकुल प्रगतिशील नही है। लेकिन यह बात सच नही है। हिन्दू धर्मकी मान्यताओमें, रीति-रिवाजो और सस्कारोमें धीरे-धीरे रूपातर होता आया है। बात अितनी ही है कि जैसे मनुष्यके शरीरमें रोज परिवर्तन होता है, परन्तु सूक्ष्म होनेके कारण अुसका पता नही चलता, वैसे ही हिन्दू धर्ममे धीरे-धीरे सूक्ष्म परिवर्तन होते रहे है। अमुक सिद्धान्तोकी, जिन्हे वह अपने सनातन सिद्धान्त मानता है, रक्षा करके हिन्दू धर्म योग्य परिवर्तन स्वीकार करनेके लिअे सदा ही तैयार रहा है। आर्य राजकुमार सिद्धार्थ द्वारा अुपदिष्ट बौद्ध धर्मसे अुसका जरा भी विरोध नही था। सभव है कि लोगोका विरोध ह्युअेची, यवन और शक जैसे विदेशी राजाओंके नेतृत्वमें विकृत रूप ग्रहण करनेवाले बौद्ध धर्मके खिलाफ रहा होगा। स्थिति अैसी अुत्पन्न हो गअी थी कि यदि भारतमें अिन राजाओका और अिनके बौद्ध धर्मका प्राबल्य बढता, तो भारतमें आर्य सस्कृति टिक नही पाती।

शाक्य मुनिने स्वय समाजमे नया चैतन्य जगानेके लिअे जैसा प्रयास आरभ किया था, कुछ वैसा ही प्रयास अीसाकी तीसरी और चौथी शताब्दीमे भी भारतकी आर्य प्रजाने आरभ किया था।

अशोकके बाद मुख्यत बौद्धोको राज्याश्रय मिलने लगा और ब्राह्मणोकी सत्ता राजकाजमे घटने लगी। लेकिन अिसकी वजहसे ब्राह्मण धर्म डूब नही गया। देशके कोने-अतरेमें पडे हुअे कुछ साधु-चरित ब्राह्मण पडित अुसकी रक्षा कर रहे थे और वनके आश्रमोमें रहनेवाले ब्राह्मण अृषि-मुनि अुसके मूलभूत सिद्धान्तो-का सशोधन कर रहे थे। अुन्होने बुद्ध भगवानके बताये हुअे दोषोको स्वीकार कर लिया, जी-तोड परिश्रम करके शुद्ध वैदिक धर्मका स्वरूप निश्चित किया और अुस पर बौद्ध धर्मका मुलम्मा चढाकर वैदिक कर्मकाडका स्थूल जडवाद अुसमे से निकाल दिया। यज्ञ-याग और अुनके नाम पर होनेवाली हिंसाका (जिसके विरुद्ध बुद्ध भगवानने प्रबल आन्दोलन किया था) हिन्दू धर्ममे लगभग अत हो गया। नीति और सदाचारको अुनका स्वाभाविक महत्त्व प्राप्त हुआ। हिन्दू सन्यासी भी बौद्ध भिक्षुओके समान अुपदेश करनेके लिअे सर्वत्र घूमने लगे। बोधिसत्त्व और बुद्धकी पूजाकी तरह राम और कृष्णकी भी पूजा होने लगी। अिस तरह बौद्ध धर्ममे हिन्दू धर्मसे श्रेष्ठ अथवा अधिक आकर्षक कोअी चीज नही रह गअी।

२४

हिन्दू धर्म-संस्कार

[अेक चिन्तनीय अुपपत्ति]

महाभारतके युद्धके कुछ समय वाद वैदिक या व्राह्मण धर्ममे सडाध पैठ गअी। अुपनिषद्-कालके अुच्च आध्यात्मिक आचार-विचारोके स्थान पर लोग आत्म-अनात्मकी शुष्क नीरस चर्चाओको ही धर्मका अतिम ध्येय मानने लगे। सब कोअी यह समझने लगे कि यज्ञ-यागके आडवरपूर्ण कर्मकाडसे ही स्वर्ग आदि सव कुछ प्राप्त किया जा सकता है। अैसे समय वुद्ध भगवानने सही रास्तेसे भटके हुअे ससारको सत्य और सदाचारके मार्ग पर मोडा, और महावीर स्वामीने सबके मन पर आग्रहके साथ यह वात जमाअी कि अहिसामे ही धर्म निहित है। अिसके सिवा, जब वुद्ध भगवानके अनुयायी अुनके अुपदेशको अमुक धर्म अथवा सप्रदायका रूप देकर सर्वत्र अुसका प्रसार करने लगे तव अुसमे अनेक परिवर्तन करने पडे और अिसके फलस्वरूप वौद्ध धर्मके भी दो पथ हो गये। वौद्ध साधु वुद्ध भगवानके मूल अुपदेशो पर स्थिर रहनेके वजाय जव अपने सप्रदायको लोकप्रिय वनानेका प्रयत्न करने लगे और सप्रदायके प्रचारके लिअे राज्याश्रय भी खोजने लगे तबसे अुनके सघमे सडाध पैठ गअी। हम वुद्ध भगवानके अुपदेशोकी सूक्ष्म जाच करे तो पता चलेगा कि अुनके अुपदेशोमे किसी नये धर्मकी स्थापनाकी अपेक्षा धर्म-परिष्करणका ही भाग अधिक था। अुनका आग्रह परम्परागत प्रचलित धर्मके मूलभूत सिद्धान्तोका विरोध करनेका नही था। वुद्ध भगवानने तो अपनी नजरके सामने धर्मके नाम पर चल रहे ढोगके खिलाफ अपनी आवाज अुठाअी थी। अुनके अुपदेशोकी खूवी यह थी कि अुनका पूरी तरह पालन करते हुअे भी मनुष्य हिन्दू रह सकता था, अितना ही नही वल्कि वह ज्यादा अच्छा हिन्दू वनता था। परन्तु जवसे वौद्ध धर्मका साम्प्रदायिक स्वरूप ही अधिक वढने लगा तवसे वौद्ध साधु नैतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे जीवनका रहस्य समझने और समझानेके वजाय अपने अधिकारोकी रक्षामे ही अधिकाधिक जुटे रहने लगे। व्राह्मणोमें अपने अूचेपनकी जो शेखी थी वह वौद्ध साधुओमे भी आने लगी। जिस प्रकार वैदिक यज्ञके पुरोहित केवल अपने लाभके लिअे लोगोमे अध-विश्वास फैलाते थे अुसी प्रकार वौद्ध साधु भी अपने स्वार्थके लिअे तथा लोगोकी नजरमें अपनी महत्ताको वढानेके लिअे अनेक अधविश्वासोका पोषण करने लगे। वुद्ध भगवानके अवशेषोकी पूजा करनेकी प्रथा आडवरमे वैदिक कर्मकाडसे जरा भी कम नही थी। साथ ही वौद्ध साधुओके दात, नख, अस्थि, राख आदि

वडे वडे स्तूप बनानेमे तथा मठ खडे करनेमे भारी खर्च करनेकी प्रथा चल
ी। अिसके सिवा, अशोकने बुद्ध भगवानके अहिंसा और सयमके अुपदेशसे
स सार्वत्रिक शातिकी स्थापनाकी कल्पना की थी, वह शाति भी दुनियामे नही
आी। प्राचीन कालमे क्षत्रिय राजा अश्वमेध यज्ञ करके बडे बडे युद्ध लडते थे,
ही बौद्ध राजा भी बुद्ध भगवानके अवशेषोके लिअे आपसमें युद्ध करने लगे।

कुछ लोग अैसा मानते है कि हिन्दू धर्ममें कोअी परिवर्तन करनेकी सुविधा
ही नही। हिन्दू धर्म बिलकुल प्रगतिशील नही है। लेकिन यह बात सच नही
। हिन्दू धर्मकी मान्यताओमे, रीति-रिवाजो और सस्कारोमें धीरे-धीरे रूपातर
ता आया है। बात अितनी ही है कि जैसे मनुष्यके शरीरमे रोज परिवर्तन
ता है, परन्तु सूक्ष्म होनेके कारण अुसका पता नही चलता, वैसे ही हिन्दू धर्ममे
रे-धीरे सूक्ष्म परिवर्तन होते रहे हैं। अमुक सिद्धान्तोकी, जिन्हे वह अपने
नातन सिद्धान्त मानता है, रक्षा करके हिन्दू धर्म योग्य परिवर्तन स्वीकार
रनेके लिअे सदा ही तैयार रहा है। आर्य राजकुमार सिद्धार्थ द्वारा अुपदिष्ट
द्ध धर्मसे अुसका जरा भी विरोध नही था। सभव है कि लोगोका विरोध
ुअेची, यवन और शक जैसे विदेशी राजाओके नेतृत्वमें विकृत रूप ग्रहण
रनेवाले बौद्ध धर्मके खिलाफ रहा होगा। स्थिति अैसी अुत्पन्न हो गअी थी
क यदि भारतमें अिन राजाओका और अिनके बौद्ध धर्मका प्राबल्य बढता,
ो भारतमें आर्य सस्कृति टिक नही पाती।

शाक्य मुनिने स्वय समाजमें नया चैतन्य जगानेके लिअे जैसा प्रयास
ारभ किया था, कुछ वैसा ही प्रयास अीसाकी तीसरी और चौथी शताब्दीमे
ी भारतकी आर्य प्रजाने आरभ किया था।

अशोकके बाद मुख्यत बौद्धोको राज्याश्रय मिलने लगा और ब्राह्मणोकी
सत्ता राजकाजमे घटने लगी। लेकिन अिसकी वजहसे ब्राह्मण धर्म डूब नही
ाया। देशके कोने-अतरेमें पडे हुअे कुछ साधु-चरित ब्राह्मण पडित अुसकी रक्षा कर
रहे थे और वनके आश्रमोमे रहनेवाले ब्राह्मण अृषि-मुनि अुसके मूलभूत सिद्धान्तो-
का सशोधन कर रहे थे। अुन्होने बुद्ध भगवानके बताये हुअे दोषोको स्वीकार कर
लिया, जी-तोड परिश्रम करके शुद्ध वैदिक धर्मका स्वरूप निश्चित किया और
अुस पर बौद्ध धर्मका मुलम्मा चढाकर वैदिक कर्मकाडका स्थूल जडवाद अुसमे से
निकाल दिया। यज्ञ-याग और अुनके नाम पर होनेवाली हिंसाका (जिसके विरुद्ध
बुद्ध भगवानने प्रबल आन्दोलन किया था) हिन्दू धर्ममे लगभग अत हो गया।
नीति और सदाचारको अुनका स्वाभाविक महत्त्व प्राप्त हुआ। हिन्दू सन्यासी
भी बौद्ध भिक्षुओके समान अुपदेश करनेके लिअे सर्वत्र घूमने लगे। बोधिसत्त्व
और बुद्धकी पूजाकी तरह राम और कृष्णकी भी पूजा होने लगी। अिस तरह
बौद्ध धर्ममे हिन्दू धर्मसे श्रेष्ठ अथवा अधिक आकर्षक कोअी चीज नही रह गअी।

अिसके विपरीत, बौद्ध धर्मके महायान सम्प्रदायमे विदेशी राजा अपनी अिच्छानुसार हस्तक्षेप कर सकते थे, जब कि अिस हिन्दू धर्ममें तो स्वदेशी परम्पराकी ही प्रतिष्ठा रह सकती थी। अिसके फलस्वरूप नया हिन्दू धर्म सर्वत्र फैल गया। विदेशोसे आये हुअे राजाओको भी अैसा हिन्दू धर्म स्वीकार करके अुसे प्राधान्य देनेमे अपना हित मालूम हुआ। हिन्दू धर्मके अवतारवादने बुद्धको अुस समयके अत्यन्त लोकप्रिय भगवान विष्णुके अेक अवतारका रूप दे दिया और शुद्ध बौद्ध धर्मको आत्मसात् करनेका हिन्दू धर्मका प्रयत्न सफल हुआ।

हिन्दू धर्ममें मूर्तिपूजा कबसे आरभ हुअी यह निश्चित रूपसे कहना कठिन है। परन्तु यह माननेके कारण मिलते है कि मूर्तिपूजा बौद्ध धर्मके प्रभावका फल है। कुछ लोग कहते हैं कि बौद्धोने बुद्ध भगवानके अवशेषो पर स्तूप बनवाना शुरू किया और विहार बनाकर अुनमें बुद्ध भगवानकी मूर्तिकी स्थापना वे करने लगे, अुससे पहले हमारे देशमे मदिर बनवानेकी प्रथा नही रही होगी, ये लोग मानते है कि हमारे पुराणोमे मदिरोका जो अुल्लेख है वह बादमें जोडा गया होगा।

कुछ लोग तो यह मानते है कि अीश्वरके अवतारकी कल्पना भी बौद्ध कालसे आरभ हुअी होगी। परन्तु अेक ही अीश्वरके अनेक रूप है, यह कल्पना तो वेदोमे भी है। अिसी प्रकार वेदोके कुछ ऋषि अैसा भी कह गये है कि 'मै ही अीश्वर हू।' अत लोगोके अुद्धारके लिअे अीश्वर मनुष्य-रूप धारण करता है, यह कल्पना वेदधर्मके लिअे अपरिचित नही है। भगवद्गीतामे तो अवतारवादका सिद्धान्त सपूर्ण रूपमें पाया जाता है।

१९२३

२५

बुद्धका समय और बुद्धका कार्य

[ढाअी हजार वर्ष पूर्व]

पहाडी प्रदेशमे रहनेवाले लोगोको कुदरतके साथ और आपसमें अेक-दूसरेके साथ सदा लडना पडता है। अुनके बीच स्वतत्रताका और लडाअीका वातावरण हमेशा जाग्रत रहता है। लेकिन जब ये ही पहाडी लोग समतल मैदानमे आ बसते हैं और समृद्ध खेती चलाते ह, तब अुनके अिस स्वभावमें परिवर्तन हो जाता है। विस्तीर्ण और अुपजाअू प्रदेशको देखकर मनुष्यमे या तो साम्राज्यकी कल्पना दृढ होती है या स्वभावमे सतोपकी मात्रा बढकर अुसकी अहिंसा-वृत्ति दृढ हो जाती है।

गगा-यमुनाके तटो पर महान साम्राज्योकी स्थापना हुअी, महान युद्ध लडे गये और कुछ समयके लिअे तो लगभग सारा ही देश वीरान हो गया — अिसका

अितिहास महाभारतमे आ गया है। अुसके बाद सपूर्ण भारतवर्षको पुन अेक जीवन-सूत्रमे बाधनेका प्रयत्न बुद्ध भगवानकी प्रवृत्तिसे आरभ हुआ। युधिष्ठिरने भारतवर्षको अेक साम्राज्यके छत्रके नीचे लानेका प्रयत्न किया था। भगवान बुद्धने अहिंसा अथवा प्रेमके धर्मछत्रके नीचे सारी दुनियाको लानेका प्रयत्न किया। वह काल भी अिसके अनुकूल ही था। देशमें मगध, कोसल, वत्स, काशी, अवती जैसे छोटे छोटे राज्य बिखरे हुअे थे। शाक्य, मग्ग, कालाम, कोलीय, मोरीय, मल्ल, विदेह, लिच्छवी आदि गणोके छोटे प्रजासत्ताक राज्य भी थे। राजा लोग साम्राज्यके प्राचीन आदर्शको नजरके सामने रखकर सम्राट् बननेके लिअे आपसमें लडते थे। स्थलाभिमान और वर्णाभिमान खूब बढ गये थे, मूलमे कुलाभिमान तो था ही। लोगोका जीवन आजकी तुलनामें कितना ही सादा और सरल क्यो न रहा हो, फिर भी मौज-शौककी वृत्ति खूब वढ गअी थी। बाह्य विधियोके नीचे धर्मका सच्चा स्वरूप दव गया था। भयसे या लालचसे कुदरती शक्तियोको सतुष्ट करनेमे ही धर्मका सर्वस्व समा जाता था। मत्रोकी शक्तिके बारेमे भ्रामक कल्पनायें वढ गअी थी। लोगोमें अैसी मान्यता रूढ हो गअी थी कि मत्रो द्वारा भली-वुरी सव वासनायें तृप्त की जा सकती हैं और यज्ञ-याग करके अुनमें देवताओके लिअे पशुओका वलिदान देनेसे सारे पाप धुल जाते हैं।

जिन थोडेसे लोगोको अिस स्थितिसे घृणा होती थी, वे दूसरे छोर पर जाकर शरीरको तरह तरहके निरर्थक कष्ट देनेमें ही जीवनकी सफलता मानते थे। सुखोपभोगमे डूबे हुअे लोगोमें अैसे देह-दमन करनेवाले तपस्वियोकी प्रतिष्ठा अत्यधिक वढ गअी थी। मनुष्य-जीवनका ध्येय क्या है, धर्म किस बातमें है, मनुष्यका मनुष्यके प्रति और अन्य प्राणियोके प्रति क्या कर्तव्य है — अिसकी सच्ची कल्पना ही लोगोके मनसे नष्ट हो गअी थी। पडित लोग निठल्ले बैठे बैठे अीश्वरके सम्बन्धमें अनेक चित्र-विचित्र कल्पनायें खडी करके आपसमें लडते-झगडते थे। आत्मा है या नही, अीश्वरका स्वरूप कैसा है, कौनसा यज्ञ करनेसे कौनसा फल प्राप्त होता है — आदि चर्चाओमें ही वे लोग दिन-रात लीन रहते थे।

विचारशील लोग अिन शुष्क चर्चाओ और शुष्क जीवनसे अूब गये थे। नीची जातियोके अनपढ और अज्ञान लोग तो विलकुल ही दव गये थे। अिन सव दु खोसे मुक्त होनेका मार्ग खोजनेके लिअे किसी समाज-हितैषी और स्थिर बुद्धि-वाले व्यक्तिकी जरूरत थी। बुद्ध भगवानने अेक ओर कर्मका अटल नियम लोगोको समझा कर वडे-वडे यज्ञ-यागोका दभ दूर किया और दूसरी ओर आत्मा परमा-त्माकी शुष्क चर्चाओकी प्रतिष्ठा घटाअी, देह-दमनके नशेकी निन्दा की तथा वर्णा-भिमानका मद भी तोडा, सुखकी लालसाके कारण लोगोको पामर वना देखकर अुन्हे ब्रह्मचर्य और त्यागका महत्त्व समझाया और अपने धर्मका दृढतासे पालन करनेवाले लोगोका अेक महान सघ रचकर अुनके द्वारा भोग और भ्रमसे कलुषित

वने हुअे समाज पर मानो सदाचारका आक्रमण किया। वुद्धके समयमें शास्त्रोमें जो अच्छे धर्मतत्त्व थे अुन्हीका अनुवाद जनभाषामे करके अुन्होने सव वर्णोके लोगोको अुनका अुपदेश किया, और सव लोगोको अुन्होने यह समझा दिया कि सदाचार ही धर्मकी वुनियाद है, अहिंसा और त्याग ही धर्मका आधार है।

वुद्धके कुछ पडित शिष्योने यह माग की कि आज समाजमें सर्वत्र वैदिक भाषाकी ही अधिक प्रतिष्ठा है, अिसलिअे अुसी भाषामे आपके अुपदेशोको व्यवस्थित रूप देना ठीक होगा। वुद्धने स्पष्ट शब्दोमें कहा "मै अैसी प्रतिष्ठाको तोडना चाहता हू। मै तो यह चाहता हू कि लोगोमे वोली जानेवाली सभी भाषाओमे तुम मेरे अुपदेशोको फैलाओ। धर्म सवके लिअे है।"

अिससे समाजके सामान्य जन अूपर अुठे। आगे चलकर सतोने भी यही कार्य किया।

१९२३

२६

जीता-जागता संघ

१

आर्य-समाज*

आर्य-समाज अेक जीता-जागता सघ है, वह आखे खुली रखकर दुनियाकी ओर देखनेवाली अेक सगठित सस्था है।

आप असहिष्णु नही है, यह सिद्ध करनेका प्रयत्न आप किसलिअे करे? क्या असहिष्णुता हमेशा दुर्गुण ही होती है? और सहिष्णुता क्या सदा सद्‌गुण ही होती है? महाभारतमे अेक स्थान पर कहा गया है कि सहिष्णुता वोझ ढोनेवाले गधेका भूषण है। पडे रहना, अपमान सहन करना, लुट जाना और फिर भी अिसका विलकुल ही प्रतिकार न करना यदि सहिष्णुता हो, तो अैसी सहिष्णुता सद्‌गुण नही है, वह अधर्म है, पाप है। हम पर दुःख आ पडे और हम अुसे दूर करनेका प्रयत्न न करे, अिसमें पुरुषार्थ नही है। यह तो पातक है, क्योकि जो भी वस्तु हमें नीचे गिराती है, हमारा पात करती है, वह पातक है।

सहिष्णुता दो प्रकारकी होती है अेक निष्क्रिय जडताकी, पामरताकी, कायरताकी, और दूसरी व्यापक दृष्टिकी, प्रेमकी, सर्व-समर्थ अुदारताकी। पामर

* ता० ३१-८-'२८को सूपा गुरुकुलके वार्षिक अुत्सवके अवसर पर अध्यक्ष-पदसे दिया गया भाषण।

मनुष्य अुदारताके नाम पर अपनी निर्बलताको छिपाता है और स्वय अत्यन्त सहिष्णु होनेका ढोग करता है। किन्तु अुसके जीवनमें तेज नही दिखाओी देता। अैसी सहिष्णुताके वजाय तो असहिष्णुता ज्यादा अच्छी है। भयसे डर जानेके वजाय साहसी वनकर भयका सामना करनेमे ही मनुष्यकी अुन्नति है। आपके धर्मके अेकाध सुन्दर तत्त्वका भले ही नाश हो जाय, परन्तु अुसकी आत्माका कभी नाश नही होना चाहिये। आत्माका नाश हुआ वहा सपूर्ण धर्मका नाश हुआ समझिये। प्रतिकार मनुष्यकी जीवत दशाका लक्षण है। तेजस्वी पुरुष अपकारको सहन करके शात कैसे बैठ सकता है?

परन्तु विचारवान शूर-वीर मानव दीर्घ दृष्टिसे देख लेता है कि विचारहीन वनकर लडनेमें कोओी लाभ नही होगा, सहन करके ही हम जीतेगे, सहन करनेसे हम वाजी खोयेगे नही, बल्कि परिस्थितियो पर विजय प्राप्त करेगे। धैर्यवान मनुष्य आत्मत्याग करके वडे वडे कष्ट सहन करता है और मानव-सस्कृतिको अूचा अुठाता है। जिस प्रकार गालीका जवाव गालीसे देकर हम अेक प्रकारका 'न्याय' भले ही प्राप्त करे, परन्तु अपनी या समाजकी कोओी अुन्नति नही करते, अुसी प्रकार प्रत्येक विरोधीका विरोध करनेसे भी हम सदा श्रेय ही साधते है अैसा नही कहा जा सकता। जब हम अपनी शक्तिके भानके साथ ज्ञानपूर्वक कष्ट सहन करते हैं तब हमारा धर्म सोलहो कलाओमें चमकता है, और अतमें अुससे सवका कल्याण होता है। दुष्ट मनुष्य पर विजय प्राप्त करनेके वजाय यदि हम दुष्टता पर ही विजय पा सकें तो वह श्रेष्ठ कदम होगा, अिसे कौन स्वीकार नही करेगा? 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'—क्योकि वीरकी क्षमाके पीछे डर नही होता। लेकिन अगर हमें यह लगे कि सहिष्णु रहनेसे हम सब-कुछ खो वैठेंगे, सहिष्णु वनने जितने समर्थ हम नही हैं, तो समर्थ होनेका ढोग करनेके वजाय अच्छा यही होगा कि हम विरोधका प्रतिकार करे। अिसीमे से हमें आगेका रास्ता मिलेगा।

आर्य-समाजका प्रथम परिचय मुझे अुत्तर भारतमे हुआ था। प्रथम दर्शनमें ही मैंने देख लिया कि आर्य-समाजी किसीके साथ टक्कर लेनेमें सकोच नही करते। वे अिस बातका विचार करने नही वैठते कि हमारे विचारोका प्रचार करनेसे विरोधियोको वुरा लगेगा या नही। अपने मतो और सिद्धान्तोके वारेमें वे अितने अधिक पारमार्थिक (serious) होते है कि कही भी विवाद करनेके लिअे तैयार हो जाते हैं। 'मैं यह खडा हू और ये मेरे विचार हैं। या तो तुम अिन्हे स्वीकार करो, या अिनका खडन करो।'—अिस प्रकार आर्य-समाजियोको कहते सुनकर मुझे लगता था कि अुनके रूपमें मडनमिश्रका नया अवतार हुआ है। अुस समय आर्य-समाजी प्रचारकोके साथ वाद-विवादमें अुतर कर मैंने आर्य-समाजके वारेमें अुनसे खूब जानकारी प्राप्त कर ली। फर्क अितना

ही था कि मेरी वाद-विवादकी मर्यादा अलग थी। वाद-विवादमे अेक आदमी दूसरेको हरा तो सकता है, लेकिन खुद जीत नही सकता। विवादके समय दोनो ही वादी किसी हद तक प्रतिनिविष्ट* होते है। जब दोनोको यह विश्वास हो जाय कि वे अेक-दूसरेका पक्ष समझ गये है तब अुन्हे विवादका अत कर देना चाहिये। मनुष्य बहुत बार विवादके बाद मिलनेवाले अेकान्तमें ही विरोधी पक्षकी दलीलोको हजम कर पाता है।

शात वाद-विवादके फलस्वरूप यह मालूम हो जाता है कि प्रत्येक धर्ममे कोअी न कोअी खूबी तो है ही। मै यह बात समझ गया हू कि मुसलमान मूलत हिन्दुओको चिढानेके लिअे मूर्तिपूजाका विरोध नही करते, परन्तु वे सचमुच मूर्तिपूजामे अीश्वरका घोर अपमान मानते है। आप भले ही मूर्तिपूजाको भ्रम मानें, परन्तु अुसके पीछे अीश्वरकी भक्ति ही है, अीश्वरका अपमान करनेकी नीयत नही है, अिस प्रकार मै अुन्हे समझानेका प्रयत्न करता था। मै अुनसे कहता था कि मूर्तिमे परमेश्वरको देखनेवाले मनुष्यमे जडता भी हो सकती है और अुच्च आध्यात्मिक दृष्टि तथा कवि-हृदय भी हो सकता है।

आर्य-समाजियोके तर्कके पीछे भी मै अुनकी धर्मसेवाकी सुधारक-वृत्तिको देख सकता था। हिन्दू धर्ममें पैठे हुअे चमत्कारो, अधविश्वासो, पामरता और सत्तावादसे ये लोग अूब गये हैं, अिसीलिअे अुनका ये विरोध करते है — यह देखकर मेरी आत्माको सतोष होता था। कुछ हिन्दू शास्त्रोमे लोगोके मन पर धर्मके तत्त्वोको जमानेके लिअे भय और लालचका छूटसे अुपयोग किया गया हे। घरमें भय, बाहर भय, जलमे भय, स्थलमे भय! और मानो जमीन पर रहने-वाले अत्याचारी काफी न हो, अिसलिअे आकाशमे भी शनि, राहु और केतुका भय खडा कर दिया गया। यदि अैसा भय ही धर्मका आधार हो, तब तो अुस धर्मका नाश होना ही अच्छा है।

आर्य-समाजियोमे भी शास्त्र-वचनोका आग्रह देखकर मुझे लगता था कि मुझमें यह वृत्ति क्यो नही है? मै तो सनातनी हिन्दू हू, समस्त शास्त्रोमे विश्वास करनेवाला यानी अुनके प्रति आदर रखनेवाला हू। परन्तु मैने कभी अिन शास्त्रो-को 'पीनल कोड' जैसा माना ही नही। मै तो शास्त्रोको अनुभवी और पूज्य लोगोके वचन मानता हू। मेरे मनमें अुनके प्रति आदरका भाव रहता है, अश्रद्धा नही रहती। लेकिन अुनमें से मै जितना समझ सकू और जितना मेरे गले अुतरे अुतनेको ही मै स्वीकार कर सकता हू और अुस पर अमल कर सकता हू। श्रद्धा रखते हुअे भी यदि किसी वस्तुके बुरी या हानिकर होनेकी प्रतीति मुझे हो जाय, तो केवल अिसीलिअे मै अुसका स्वीकार या अुस पर अमल नही करूगा कि शास्त्रोमें अुसका विधान है।

---

* प्रतिनिविष्ट = विरोधी बनकर बैठे हुअे, हठाग्रही।

अुत्तर भारतमे जब आर्य-समाजी और सनातनी आपसमें लडते थे, अुस समय सनातनियोकी दशा बडी विषम हो जाती थी। आर्य-समाजी तो केवल वेद-शास्त्रको ही प्रमाण मानते थे, जब कि सनातनियोके लिअे वेदोके अुपरान्त ढेरो अन्य शास्त्र-ग्रन्थ भी प्रमाण थे। अिन सबका बचाव करे तो ही सनातनी वाद-विवादमे जीत सकते थे। और वेदोका विरोध तो अुनसे हो ही नही सकता था। अैसे वाद-विवादमे जब मै अुतरता था तब कहता था कि मेरे लिअे सभी शास्त्र श्रद्धापात्र अर्थात् आदरणीय हैं, परन्तु प्रमाणके रूपमे मै किसी शास्त्रग्रन्थको नही मान सकता। आर्य-सस्कृतिके अुद्‌गमके रूपमें और अनुभवी ॠषियोके मुखसे निकले हुअे अुद्‌गारोके रूपमें वेद मेरी दृष्टिमें पूज्य है। किन्तु अुनका निश्चित अर्थ जाने बगैर मै अुन्हे प्रमाणके रूपमे कैसे स्वीकार करू? सायणाचार्य वेदोका अर्थ अेक प्रकारसे करते है, तो यास्काचार्य दूसरे प्रकारसे करते है। लोकमान्यका अर्थ अलग है, तो अरविन्द घोषका अर्थ भी अलग है। स्वामी दयानन्द सरस्वतीका अर्थ तो अुनसे भी अलग है। और वे स्वय ही यह बात कह गये है कि प्रत्येक मनुष्यको वेदोका अर्थ करनेका अधिकार है। अैसी स्थितिमे वेदोके प्रामाण्यके बारेमे शास्त्रार्थ करनेसे क्या लाभ होग? जितना समझमे आये अुतनेको हम स्वीकार करे, बाकीका समझमें नही आता अैसा कहकर छोड दे, किन्तु अुसकी निन्दा न करे। जहा तक मेरी शुद्ध बुद्धि चलती है, मेरा अनुभव पहुचता है और मेरी श्रद्धा टिक सकती है वहा तक मै शास्त्रोको मानता हू। मेरी दृष्टिमे प्राचीन कालके शास्त्रोके व्याकरण-शुद्ध अथवा तर्कशुद्ध अर्थकी अपेक्षा श्रद्धावान और अनुभवी धर्मद्रष्टा सत्पुरुषोके जीवत वचन अधिक महत्त्वपूर्ण है। अुनके शब्दो पर विश्वास रखकर अपना मार्गदर्शन करनेका काम मै अुन्हे सौप देता हू।

अैसी वृत्तिसे की हुअी चर्चाओमे हमे बडा आनद आता था। आर्य-समाजियोकी धर्मचर्चाकी अपेक्षा अुनकी समाजसेवा और अुनका आत्मत्याग मुझे सदा अधिक अुज्ज्वल लगा है। अैसे लोगोके कडवे वचन भी मुझे मीठे लगते थे। 'काश्मीरजस्य कटुताऽपि नितान्त रम्या।'—काश्मीरके केसरका कडुआपन भी स्वादिष्ट लगता है। दयानद सरस्वती जैसा तेजस्वी ब्रह्मचारी और समाज-हितैषी पुरुष ही निर्भयतासे किसी राजासे भी कह सकता था कि "तू कुत्ता मत बन।" जिस समाजमे स्वामी दयानन्दसे लेकर स्वामी श्रद्धानन्द तक बलिदान देनेवाले वीर अुत्पन्न होते जाते है, अुस समाजका तेज सदा अुज्ज्वल ही रहनेवाला है। किसी भी धर्मका प्रचार अुसके पेशेवर या प्राकृत गायको और प्रचारको द्वारा नही होता। शुद्ध बलिदानसे ही धर्मका प्रचार होता है। धर्मका प्रचार अुस धर्मके अपने सच्चे तेजसे होता है।

आज शुद्धिकी और गुण-कर्मानुसार चातुर्वर्ण्यकी बहुत चर्चा हुअी है। सच कहू तो आप अस्पृश्योकी जो शुद्धि करते है, वह मुझे बिलकुल नापसन्द है।

अस्पृश्योकी शुद्धि हम किसलिअे करे? अुन्होने अैसे कौनसे पाप या अपराध किये है कि हम अुन्हे अशुद्ध मानें? वे मृत पशुओको चीरते है, चप्पल-जूते बनाते है या पाखाना साफ करते है, अिसीलिअे क्या वे अशुद्ध हो गये? ये सब तो समाजके लिअे अुपयोगी धन्धे है। अिनके द्वारा अस्पृश्य लोग समाजकी कीमती सेवा करते है। पाखाने साफ करके वे समाजको स्वास्थ्य प्रदान करते है। अेक बगाली कविने अपनी कवितामे अस्पृश्योकी तुलना स्वय हलाहल पीकर देवोको अमृत देनेवाले नीलकठ महादेवके साथ की है। अैसे वर्गको भला शुद्धिकी आवश्यकता कैसे हो सकती है? मै तो 'अस्पृश्यो'को दूर रखनेवाले 'स्पृश्य' वर्गकी शुद्धि चाहता हू। मै स्पृश्योसे कहता हू कि भाअियो, आपके हृदय शुद्ध कीजिये और अपनी अुत्तम प्रकारकी सेवासे आपको अृणी बनानेवाली अिस अभागी जातिको अपनाअिये। अस्पृश्योको दूर रखनेसे हिन्दू जातिका सगठन नही होगा। अेक अस्पृश्यताको यदि हम खतम कर दे, तो हिन्दू, मुसलमान, अीसाअी सभीके साथ हमारा झगडा मिट जायगा। यह झगडा यदि पूर्णतया न मिटा, तो भी मद अवश्य पड जायगा।

आर्य-समाज अस्पृश्यताको नही मानता। फिर भी गुजरातके कुछ आर्य-समाजी अस्पृश्यता-निवारणमे शिथिल है, भीतर ही भीतर या छिपे रूपमे अस्पृश्यताका बचाव करते है। रूढिग्रस्त सनातनी हिन्दू यदि अस्पृश्यताका बचाव करे, तो यह बात समझमे आ सकती है। लेकिन आप लोग तो धर्मका अुद्धार करने निकले है। आप रूढिके शत्रु है। आप यदि अस्पृश्यताका बचाव करे तब तो हद हो गअी न! अधविश्वाससे मुक्ति पाकर यदि आप अपनेको पुण्यपात्र मानते हो, तो अेक प्राचीन वचन अुद्धृत करके मै आपसे कहूगा

अन्यक्षेत्रे कृत पाप पुण्यक्षेत्रे विनश्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृत पाप वज्रलेपो भविष्यति।।

दूसरी बात यह है कि आप चातुर्वर्ण्यको जन्मसिद्ध नही मानते, बल्कि गुण-कर्मके अनुसार मानते है। भगवद्गीतामें श्री भगवानने कहा है

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्ट गुणकर्म-विभागश।

अिसमे भार 'गुणकर्म-विभागश' शब्दो पर दिया जाय या 'मया सृष्ट' पर दिया जाय, अिस प्रश्नकी चर्चामें यहा मै नही अुतरूगा। मैं तो आपसे अितना ही कहूगा कि चातुर्वर्ण्यका आधार चाहे जो हो, अुसमे अूच-नीचका भाव तो कभी होना ही नही चाहिये। सब कोअी अपने अपने स्थान पर समान है। अूच-नीचका भाव आया कि प्रतिस्पर्धा आयी ही समझिये। प्रत्येक मनुष्यकी अिच्छा सर्वोच्च स्थान पर पहुचनेकी होती है। अुसे मना कैसे किया जा सकता है? प्रतिस्पर्धा और चातुर्वर्ण्य अिन दोनोमे कोअी मेल नही हो सकता। यदि आर्य-समाजमे भी ब्राह्मण

श्रेष्ठ और शूद्र कनिष्ठ जैसा अूच-नीच-भाव चालू रहेगा, तो यह समाज सनातनी समाजकी अपेक्षा जल्दी नीचे गिरेगा। सबको सस्कार प्राप्त करनेका, मोक्ष पानेका तथा समाज-सेवा और भूतमात्रकी सेवा करनेका समान अधिकार होना चाहिये। अिसमें बाहरसे मर्यादा लगानेका अधिकार किसीको नही है। चातुर्वर्ण्य केवल समाजमे आजीविकाकी शाति-मूलक और प्रगति-पोपक व्यवस्था करनेके लिअे ही है। जहा आपसी हित-सम्बन्धोके परस्पर विरोधी होनेकी सभावना हो, जहा अेकका लाभ बढनेसे दूसरेकी हानि होती हो, वहा व्यवस्थाकी जरूरत होती है।

वर्ण-व्यवस्थाको मैं मनुष्य-स्वभावमें निहित [अेक प्रयोगरूप] सस्था मानता हू। और जब तक हम यह मानते हैं कि मनुष्य-स्वभावके निर्माणमे अीश्वरका हाथ है तब तक चातुर्वर्ण्यके अीश्वर-कृत अथवा मनुष्य-कृत होनेकी चर्चा मेरी दृष्टिसे बेकार है। मनुष्यका स्वभाव तुरन्त नही बदलता। हमारा पुनर्जन्ममे विश्वास है, वश-परम्परागत सस्कारोमे विश्वास है और अिस बातमे भी हमारा विश्वास है कि शिक्षा द्वारा तथा धर्म-सस्कारोके द्वारा मनुष्यके स्वभावको बदला जा सकता है। अिन सब बातोका विचार करके हम अपने मनमें चातुर्वर्ण्यकी व्यवस्थाको स्थिर कर सकते है।

चारो वर्णोको मिलाकर समाजका विराट् शरीर बनता है, किसी भी वर्णको केवल अपना ही विचार करके स्वतत्र अथवा अलग रहनेका अधिकार नही है — यह बात वेदके पुरुष-सूक्तमें स्पष्ट है। मुझे लगता है कि जबसे हिन्दुओमे प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक जाति अपने अपने अलग मडल बनाकर दूसरे वर्ण या दूसरी जातिके प्रति अुदासीन अथवा लापरवाह हो गये तभीसे चातुर्वर्ण्यका नाश हुआ है। ब्राह्मण यदि ब्राह्मणोका ही विचार करे और अन्य तीन वर्णोके अुत्कर्षकी परवाह न करे, तो वे वर्णोके गुरु न रहकर शैतान बन जाते है। क्षत्रिय अपनी जातिके आत्म-बलिदानसे समस्त समाजकी रक्षा करनेके बजाय यदि अपनी जातिके अधिकारोकी रक्षा और जातिकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेमें लग जाय, तो यही कहना पडेगा कि वे चातुर्वर्ण्यको नही मानते। वैश्य यदि सारे समाजके लिअे खेती और गोरक्षा करना छोड दे और अपने दानके प्रवाहको अपनी जातिका भला करनेकी दिशामें ही मोड दे, तो वे आर्य हिन्दू धर्मके शत्रु कहे जायगे। चारो वर्णोको मिलाकर अेकजीव समाज बनता है, यह दिखानेके लिअे ही वैदिक ॠषिने 'सहस्रशीर्षा' पुरुषकी कल्पना की है। परन्तु अिस अुपमाको खीच-तानकर हम अैसा अनुमान न निकालें कि पाव शरीरका आधा और निचला भाग है, अिसलिअे शूद्र समाजका आधा और अुपेक्षणीय भाग है। प्रत्येक समझदार मनुष्यका कर्तव्य है कि वह अपने आसपासके मनुष्य-मात्रको सस्कारी बनाये। ब्राह्मण अर्थात् शिक्षक यदि यह कहे कि 'अमुक अमुक वर्गोको मैं सस्कारो द्वारा द्विज बनाअूगा ही नही', तो समझना चाहिये कि ब्राह्मण वर्णका दिवाला निकल गया है।

समाजमे कुछ लोग तो दुर्भाग्यसे जड, मद या अपग रहेगे ही। प्रयत्न करने पर भी जो लोग सस्कार ग्रहण नही कर सकते अैसे लोगोके लिअे द्विजोकी अर्थात् सस्कारी लोगोकी परिचर्या करके अपनी आजीविका पानेकी व्यवस्था शूद्र वर्णमें है। परिचर्याका अर्थ है मनुष्यकी व्यक्तिगत सेवा। अग्रेजीमे जिसे 'menial service' कहा जाता है। स्वाश्रयी और स्वावलम्वी समाजमे परिचर्याके लिअे कमसे कम स्थान होता है। सस्कारी लोग समाज-सेवाके रूपमें वीमारोकी या अपाहिजोकी परिचर्या करे, विद्यार्थी धर्मवुद्धिसे अपने गुरुओकी परिचर्या करके अध्यापनके लिअे जरूरी फुरसत अुन्हे जुटा दे, हर परिवारमे युवक और युवतिया कृतज्ञताकी भावना और भक्तिसे परिवारके अतिवृद्ध गुरुजनोकी परिचर्या करे, यह स्वाभाविक है। अैसी परिचर्या करनेवाला मनुष्य हमेशा अूचा उठता है। लेकिन अैसी परिचर्या अेक नैमित्तिक धर्म है। परिचर्याका धन्धा करनेवाला और अुसमे आजीविका प्राप्त करनेवाला अेक वर्ग खडा करके अुसकी सरयाको वढाना समाजकी नावको डुवानेवाली प्रवृत्ति है।

जिस प्रकार शिक्षाशास्त्री ब्रह्मचारिणी मॉन्टेसोरीने अपग वालकोको भी सस्कार प्रदान करनेकी नअी नअी पद्धतिया खोजनेका वीडा अुठाया, अुसी प्रकार हमे भी समस्त शूद्रोको शिक्षा और सस्कारो द्वारा द्विज वनानेका वीडा अुठाना चाहिये। ब्राह्मणको अैसा लगना चाहिये कि समाजका अेक अेक अनपढ या सस्कार-शून्य शूद्र विद्यागुरु ब्राह्मणके पराजयकी पताका है। समाजमे शूद्रोकी सख्या जितनी कम होती है अुतना ही समाज अधिक हलका और अधिक शक्तिशाली वनता है।

जितने लोग स्वतत्र धन्धा करके आजीविका प्राप्त करते है और समाजके योग-क्षेममे पूरा भाग लेते हैं, वे सव वैश्य हैं। भले वह धन्धा राज्य-व्यवस्थाका हो, आभूषण वनानेका हो, दवा-दारू करनेका हो या जूते सीनेका हो। विराट् वैश्य वर्णमे अनेक जातियोका और कौमोका समावेश होता है। वेदोमे तो 'वैश्य' अथवा 'विश्' शब्दका प्रयोग सामान्य मनुष्यके अर्थमे किया गया है। ब्राह्मण-पुत्र शुन शेप वरुणकी प्रार्थना करते हुअे कहता है "हे देव वरुण, हम सव विश् होनेके कारण स्खलनधर्मी है। हम तुम्हारे नियम प्रतिदिन तोडते हैं। तुम हम पर कोप न करना।" मनुष्य-समाजका वडा भाग वैश्य-समाज ही हो सकता है।

ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दो वर्ण समाजकी विशिष्ट और अुत्कट पारमार्थिक सेवाके लिअे अुत्पन्न हुअे है। धर्म-प्रचार अथवा शिक्षा-प्रचारके प्रतापसे यदि सारा समाज सात्त्विक हो जाय, तेजस्वी वन जाय, तो क्षत्रिय वर्णके लिअे अधिक काम न रहे। धर्मकी शक्ति पर यदि हमारा सच्चा विश्वास हो तो हमे अवश्य यह लगेगा कि अेक समय अैसा आने ही वाला है जव मनुष्य-समाजमे अन्याय, अत्याचार और विग्रहका नाश हो जायगा। तेजस्वी समाज अपनी रक्षाका काम किसी अेक वर्गको ही सदाके लिअे नही सौप सकता। 'स्ववीर्यगुप्ता हि मनो-

प्रसूति ।' मनुकी प्रजा — मानव-जाति — अपने वीर्यसे ही अपनी रक्षा करे, दूसरोसे रक्षाकी अपेक्षा न रखे, अैसी स्थिति किसी न किसी दिन तो आनी ही चाहिये । अुस समय तक प्रजाकी रक्षाके लिअे अपना बलिदान देनेको तत्पर रहनेवाला अेक वर्ण समाजसे अपनी आजीविका प्राप्त करनेका अधिकारी रहेगा ही। क्षात्रवृत्तिका समाजके प्रत्येक मनुष्यमें विकास हो, यह वाछनीय है। परन्तु क्षात्रवर्ण बडा रहे या छोटा, यह तत्कालीन परिस्थितियो पर आधार रखता है।

ब्राह्मणका धर्म विद्याकी अुपासना, विद्यावृद्धि और विद्या-प्रचार, धर्मका पालन, धर्मका सस्करण और धर्मका प्रचार करना ही है । जब तक मानव-प्राणी जन्मसे ही अपने साथ ज्ञान लेकर नही आता, जब तक वह सस्कारोकी शिक्षाकी अपेक्षा रखता है, तब तक ब्राह्मण-वर्ण अवश्य रहेगा । ब्राह्मण अपने ज्ञान और दीर्घ दृष्टिसे समाजका स्वाभाविक नेता बन सकता है। वह समाज-भक्षक न बन जाय, अिसके लिअे हमारे शास्त्रकारोने अुस पर तीन प्रकारकी मर्यादाये लगा दी है (१) ब्राह्मणको सपत्ति, सत्ता और सुख तीनोके बारेमें विरक्त रहना चाहिये, (२) ब्राह्मणको अपनी अिन्द्रियो पर विजय प्राप्त करनी चाहिये, गरीबीमे रहना चाहिये, धन-सचयकी लालसा त्याग देनी चाहिये, तथा (३) ब्राह्मणको सत्ताधीश बननेका लोभ नही रखना चाहिये। महान चाणक्यने सत्ताका अुपयोग करके विदेशके शक्तिशाली लोगोको देशसे बाहर निकालनेके लिअे मगध देशमें महान हिन्दू साम्राज्य स्थापित करनेकी हिमायत की। परन्तु अतमें ब्राह्मण-धर्मके विरुद्ध यह कर्म करनेके लिअे अुन्होने भारी प्रायश्चित्त किया। आज देखिये, यूरोपके ब्राह्मण किस प्रकार दुनियाको सुलगाने लगे है।

आज मुझे कही भी वर्णधर्म दिखाअी नही देता। जहा-तहा जातिया ही जातिया दिखाअी पडती हैं। जाति खूनके सम्बन्ध पर रची गअी सस्था है। यह सस्था समूह-धर्मी है। वर्ण सांस्कृतिक है, जाति प्राकृतिक है। जिस प्रकार घास अपने आप अुग आती है अुसी प्रकार जातिया अपने आप बन जाती है । वे धर्मके वश नही परन्तु कुदरतके वश रहती है। सस्कार-प्रधान वर्ण-व्यवस्थाको टिकाये रखनेके लिअे धर्मको जातीय व्यवस्थाका जगल नष्ट कर देना चाहिये।

धर्म-परिवर्तनके बारेमें मेरे विचार अलग है। अपने अपने समूहकी सख्या बढानेकी अिच्छासे किया जानेवाला धर्म-परिवर्तन धार्मिकताको भूलकर समूह-धर्मको प्रधानता देता है। भारतमें अीसाअियोके अनुभवको देखिये। कोअी व्यक्ति जब अपना धर्म छोड़कर अीसाअी बनता है तो वह अपने समाजसे पूरी तरह अुखड जाता है, समाजसे अुसका कोअी सम्बन्ध नही रह जाता। नये समाजमे अुसकी जडे स्वाभाविक रूपमें जमती नही। जब बडी तादादमे या सारी जातिका धर्म-परिवर्तन किया जाता है तब अैसा समाज अपने पुराने सस्कारो और अधविश्वासोको छोडता नही। धर्म-परिवर्तन करनेसे केवल नामका 'लेबल' ही बदलता है। अैसे वर्ग

पुराने समाजसे अलग पड जाते है और नये समाजके लिअे वोझ वन जाते हैं। आवश्यकता है हृदयके परिवर्तनकी, हृदयकी शुद्धिकी, सस्कारोकी अुच्चताकी। अिसके लिअे तो सभी धर्मोमे गुजाअिश है। प्रत्येक मनुष्य अपने आचरण द्वारा अपने जीवन-सिद्धान्तोका अुत्कर्ष दिखाये, तो अुसका असर आसपासके समाज पर स्वाभाविक रूपमे जितना हो सकता है अुतना अवश्य होगा। जब तक लोग कहेगे कि 'अेकमात्र हमारा ही धर्म सच्चा है, बाकी सब धर्म झूठे हैं' तब तक धार्मिक विग्रह रहेगा ही, धर्मके नाम पर अधर्म फैलेगा ही। अिस्लाममे भी यह कहा गया है कि अीश्वरने प्रत्येक देशको और प्रत्येक युगको धर्म-पुरुष दिये हैं, अुसने किसी भी समाज या किसी भी युगको अनाथ नही रखा है। हमारा भी यह विश्वास है कि 'धर्मसस्थापनार्थाय युगे युगे' अवतार होते हैं। अीश्वरकी व्यवस्था अैसी ही हो सकती है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियोके अनुसार, भिन्न-भिन्न जन-स्वभावके अनुसार धर्मका कलेवर भले ही भिन्न-भिन्न रूप धारण करे, परन्तु धर्मतन्त्र बीजरूपमें तो सर्वत्र अेकसा ही ओतप्रोत है। जब अिस व्यवस्थाको सर्वत्र समझ लिया जायगा तभी जगतमे शाति स्थापित होगी। हमारे वेद सबके लिअे खुले है — 'विवृताश्च वेदा ।' सभी धर्मग्रन्थ सब लोगोके लिअे हैं। प्रत्येक मनुष्यको अपने धर्मका पालन करते हुअे भी सब धर्मोके ग्रन्थोका, रीति-रिवाजो-का और सस्कारोका अध्ययन करना चाहिये और अीश्वरकी विविध लीलाको समझ कर अपने जीवनको धन्य बनाना चाहिये। जब हम अिस तरह चलेगे तभी हमे यह विश्वास होगा कि दुनियाके सभी धर्म सच्चे है, सभी धर्म मागल्य-परायण है। और तभी हमारे अिस भारतवर्षमे सब धर्मोका अेक विश्व-कुटुम्ब स्थापित होगा। हमारी शिक्षण-सस्थाये अैसे धर्म-कुटुम्बका आदर्श अपने समक्ष रखें और अुसे सिद्ध करनेका यथाशक्ति प्रयत्न करे, यह सर्वथा वाछनीय है। हमे अिस दिशामे चलनेकी शक्ति प्राप्त हो और हम सब मनुष्योकी ओर मित्रताकी दृष्टिसे देख सके, अैसी प्रार्थनाके साथ मैं अपना भाषण पूरा करता हू।

२

सनातन आर्य-समाज

आर्य-समाजमें सन्यासी हैं, गृहस्थी हैं, राजनीतिज्ञ हैं, शिक्षाशास्त्री हैं, राजनीतिसे घबरानेवाले पेंशनर है और सपूर्ण नागरिकताका अनुभव न करनेवाले सरकारी अधिकारी भी हैं। आर्य-समाज अेक सुधारक पथ है, यद्यपि अुसमे भी प्रगतिको देखकर चौकनेवाले, राजनीतिसे घबरानेवाले और 'हमने बहुत काम कर लिया है, अब तो जो कुछ किया है अुसकी रक्षा करनेका काम ही रह जाता है', अैसा माननेवाले क्षेम-परायण लोग भी हैं। कभी कभी अैसे लोगोके

हाथमें समाजकी धुरा आ जाती है और सुधारक लोग आर्य-समाजके भविष्यके बारेमे क्षणिक अुद्वेगका अनुभव करके निराश हो जाते हैं।

अिस सबके बावजूद आर्य-समाज अेक जीवत समाज है। अुसने काफी प्रगति की है। सनातनियोका सफलतापूर्वक मुकाबला करनेकी पद्धति भी अुसने अब वडी हद तक वदल डाली है। आर्य-समाजका भविष्य अुज्ज्वल है। किसी समय आर्य-समाजका अस्त हुआ तो वह अपने आदर्शोमे अुसकी श्रद्धा घटनेके कारण अथवा अपने प्रयासोमे अुसे निष्फलता मिलनेके कारण नही होगा, परन्तु अिसलिअे होगा कि अुसने सुधारका जो कार्य हाथमें लिया था अुसके पूरा हो जानेसे वह कृतार्थता अनुभव करके अपना पुराना स्वरूप छोड देगा और पुरानी प्रेरणाको नया रूप देनेके लिअे नया शरीर धारण करेगा।

सनातनका अर्थ है नित्य-नूतन। प्राण-विसर्जन करके भी मूल सिद्धान्तोकी रक्षा करना और अुनके बाह्य स्वरूपमें समय समय पर परिवर्तन करना —— अिसीमे सच्चा सनातनत्व समाया हुआ है। मेरा विश्वास है कि अैसा सनातनत्व आर्य-समाजमे पूरी मात्रामे है। अिसीलिअे मेरा यह विश्वास है कि आर्य-समाजका भविष्य अुज्ज्वल है।

२१–१२–'३७

३

आर्य-समाजकी सफलता

अिस बारेमें किसीका मतभेद नही था कि (निजाम हैदराबादमें हुअे सत्याग्रहके सम्बन्धमें) आर्य-समाजकी मागे न्याययुक्त थी। सामाजिक शाति और सामाजिक हितका भग न हो अुस समय तक प्रत्येक मनुष्यको अपनी मान्यताके अनुसार धार्मिक जीवन बितानेका अधिकार होना चाहिये। अिस सिद्धान्तको प्रस्थापित करनेके लिअे मनुष्य-जातिने कितने ही युगो तक पुरुषार्थ किया है और न जाने कितने ही बलिदान दिये हैं। आज अिस विषयमें किसी प्रकारका मतभेद होनेका कोअी कारण नही है। फिर भी यदि कोअी पिछडी हुअी या मूढाग्रही सरकार मनुष्यके सामान्य अधिकारोकी रक्षाके लिअे भी नये बलिदानकी माग करे, तो प्रत्येक धर्मप्रेमीको अितनी कीमत चुकानेके लिअे तैयार रहना चाहिये। परन्तु यह सवाल मनमे अुठे विना नही रहता 'कोअी भी सरकार अैसा बलिदान किसलिअे मागे?' जो वात अनेक वार सिद्ध हो चुकी है, अुसे पुन सिद्ध करनेके लिअे क्या बार-बार कीमत चुकानी होगी?

अिसका अुत्तर यह है स्वतन्त्रता प्राप्त करना जितना मनुष्यका कर्तव्य है अुससे भी अधिक सतत जाग्रत रहकर अुस स्वतन्त्रताकी रक्षा करना अुसका अधिकार है। यदि हम किसी न किसी कारणसे अपनी स्वतन्त्रता खो बैठे, तो

अुसकी पुन स्थापना करनेके लिअे अितनी कीमत तो चुकानी ही पडती है। अिसके बिना यदि स्वतत्रता मिले, तो हम अुसे पचा नही सकते।

आर्य-समाज हिन्दू धर्मका सेनामुख है।

जो लोग अपनी स्वतत्रता खो बैठते है अुन्हे फिरसे स्वतत्रता प्राप्त करनेके लिअे जैसे कीमत चुकानी पडती है, वैसे ही जो लोग दूसरोकी स्वतत्रता छीन कर अुसे पुन लौटानेके लिअे बलिदान मागते है अुन्हे भी अपने अैसे दुर्व्यवहारकी कीमत चुकानी पडती है। अितिहास जानता है कि अिस कीमतका स्वरूप कैसा होना है।

१२–८–'३९

२७
प्रार्थना-समाजकी सेवा*

'अभगमाला' के भक्तकवि भोलानाथ साराभाअी द्वारा स्थापित यहाके प्रार्थना-समाजकी षष्ठिपूर्तिका अुत्सव मनानेके लिअे आज हम यहा अेकत्र हुअे है। साठ वर्षमे अेक सवत्सर-चक्र पूरा होता है, सारा जमाना बदल जाता है और नये युगका आरभ होता है। साठ वर्ष पहले आजके ही दिन अिंग्लैण्डके शाहजादेका स्वास्थ्य-चिन्तन करनेके लिअे अनेक-धर्मी लोग अेक-हृदय बनकर प्रार्थना करनेके लिअे अेकत्र हुअे थे। अुसीमें से गुजरातके प्रार्थना-समाजका अुदय हुआ था। आज साठ वर्ष बाद जब गुजरात पूर्ण स्वराज्यकी लडाअीमें सबमे आगे रहकर अेक-हृदय हो गया है, अुस समय हम यह अुत्सव मना रहे है। साठ वर्ष पहले सरकारी शिक्षा-विभागकी ओरसे प्रार्थना-समाजको प्रोत्साहन मिला था, आज राष्ट्रीय शिक्षासे सम्बन्ध रखनेवाले हम कितने ही लोग आदर और भक्तिसे अिस मणि-महोत्सवमे शामिल हुअे है। प्रार्थना-समाजके साथ शिक्षा-जगतके लोगोका यह सम्बन्ध विशेष ध्यान खीचनेवाला है।

साठ वर्ष पूर्व प्रार्थना-समाजके कारण गुजरात और महाराष्ट्रका सम्बन्ध दृढ हुआ था। आज अेक महाराष्ट्रीयके नाते अिस समाजके अुत्सवमे भाग लेते हुअे मुझे आनद होता है। प्रार्थना-समाज पश्चिम हिन्दुस्तानके अनेक प्रान्तोके बीचकी प्रथम प्रेम-शृखला है।

मै यह कहू तो गलत नही होगा कि प्रार्थना-समाजके साथ बचपनसे ही मेरा सम्बन्ध रहा है। लगभग ३३ वर्ष पहले मैं कारवारके हिन्दू स्कूलमें पढता था।

---

* ता० १७–१२–'३१ को अहमदाबाद प्रार्थना-समाजके मणि-महोत्सवके अवसर पर दिया गया भाषण।

वहा हमारे अध्यापकोका झुकाव प्रार्थना-समाजकी ओर था। अुनके प्रवचन मैं रसपूर्वक सुनता था। ठेठ बचपनमे पढरपुरके साधु-सतोका मुझ पर जो असर हुआ था, वह प्रार्थना-समाजके सस्कारोसे विशुद्ध और दृढ बना। जिस अुमरमे जाग्रत हृदय जराजीर्ण रूढियोके खिलाफ विद्रोह आरभ करता है, अुसमे रूढियोके साथ धर्म-सस्कारोका भी नाश हो जानेका भय रहता है। शास्त्रधर्मकी अपेक्षा हृदय-धर्मको अधिक समझनेवाले साधु-सतोने अपनी आर्षवाणीसे अुस समय मुझे अिस भयसे बचा लिया था। रूढियोके खिलाफ विद्रोह करते हुए भी मनुष्य अपनी नीतिनिष्ठा और अीशनिष्ठाकी रक्षा कर सकता है, यह जो विश्वास और मार्गदर्शन साधु-सतोने मुझे दिया अुसे वर्तमान परिस्थितियोमें लागू करनेका कार्य मेरे लिअे प्रार्थना-समाजने किया है। अुन दिनो यह कल्पना रूढ हो गअी थी कि धर्म केवल अैहिक और पारलौकिक आत्मोन्नतिके लिअे ही है। अिसमें समाज-सेवाको जोडकर जनसेवा ही अीश्वर-सेवा है अिस प्रकारका समन्वय हमारे जमानेने विशेष रूपसे किया है।

परन्तु आगे चलकर जब अिसमें समाज-सेवाका जोर बढा, तो अीश्वर और शास्त्रधर्म दोनोकी ओर लोगोकी अनास्था बढ गअी। मैं मानता हू कि सशय-वाद और नास्तिकता सामान्य मनुष्यके लिअे लगभग अपरिहार्य है। जवानीके साथ जैसे मुह पर मुहासे निकलते हैं वैसे ही विचार-जागृतिके साथ मनुष्यमें सशयवाद और नास्तिकता आते ही हैं। ऑगस्टस कॉन्ट, हर्बर्ट स्पेन्सर, जॉन स्टुअर्ट मिल और जॉन मोर्ली जैसे बुद्धिवादी तथा अीश्वर-विमुख पडितोकी रचनायें पढनेके बाद यदि नास्तिकता अधिक जोर पकडे, तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नही। मनुष्यके जीवनमें नास्तिकता और सशयवादकी लहर अुठे, तो अिसमे मैं कोअी खतरा नही देखता। खतरा है अुसके साथ आनेवाली अल्पबुद्धिमें और अुद्दाम अहकारमें। बचपनके सस्कार यदि अच्छे हो, अथवा यदि सत्यनिष्ठा और धर्म-जिज्ञासा अुत्कट हो, तो नम्रता और शुद्धता अवश्य बनी रहेगी। मेरा सशय-वाद और बुद्धिवाद महामति रानडेकी रचनाओसे दूर हो गया। अुसी अरसेमें डॉक्टर भाडारकरका अेक भाषण मुझे सुननेको मिला। अुनके भाषणमे मुझे तुकारामके जैसी हृदयकी शुद्धता दिखाअी दी। लेखक और वक्ता अधिकतर कलाकार होते हैं। वे अपनी साहित्य-छटासे लोगो पर विशेष प्रभाव डालनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु डॉ० भाडारकरमे अैसा कुछ नही था। नग्न बालककी स्वा-भाविकतासे वे अपने विचार प्रकट करते थे। अिस प्रकार अुन्होने श्रोताओके सामने अेक सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया। राजनीतिक क्षेत्रमें अुनके विचार अुन्नति या स्वाभिमानके पोषक नही हैं, यह मैं जानता था। किन्तु अिस कारणसे अुनकी दूसरी अच्छी बातोकी अुपेक्षा करने जितना मताध मैं अुस समय भी नही था।

प्रार्थना-समाजकी अैसी नीव पर मेरे लिअे स्वामी विवेकानन्द तथा रामकृष्ण परमहसके लेखोने अपनी अिमारत खडी की और मेरे चित्तको अेक प्रकारका आश्वासन और प्रोत्साहन मिलने लगा। १९०८ मे मै 'लॉ-टर्म' भरनेके लिअे वम्बअीमे रहा। अुन दिनो मै प्रार्थना-समाजकी अुपासनाको यथासभव चूकता नही था। अुस अरसेमे वहाके अेक अुपासकने विलियम जेम्सकी 'वेरायटीज़ ऑफ रिलीजियस अेक्सपीरियन्स' नामक पुस्तक मुझे पढनेको दी। धर्मानुभवका विश्लेपण करने तथा अुसका मूल्याकन करनेकी दृष्टिसे यह पुस्तक वडी अुपयोगी है। वुद्धि और भावना, श्रद्धा और सकल्प अिन सवका सुन्दर समन्वय स्वामी विवेकानन्दके लेखो द्वारा मुझे वेदातमे मिला। द्वैत-अद्वैतके झगडे व्यर्थ है, यह मै आसानीसे समझ गया। हिन्दू सामाजिक जीवनमे और धर्म-व्यवस्थामे हम अपने तत्त्वज्ञानके प्रति वफादार नही रहे, यह वात व्यानमे आनेसे धार्मिकताके आधार पर सामाजिक सुधार करनेकी आवश्यकता मेरे सामने अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी। भगिनी निवेदिता और आनन्द कुमारस्वामी आदि प्रतिभावान लेखकोकी रचनाओके कारण धर्मका सामाजिक पहलू अधिकाधिक स्पष्ट होने लगा। जीवनकी समग्र कल्पना करनेके लिअे जो दृष्टि चाहिये, अुसका मुझमे विकास होने लगा। अितनी तैयारीके वाद गीता, अुपनिषद्, तुकाराम, कवीर आदि आध्यात्मिक शक्तियोका स्वरूप और सामर्थ्य मेरे समक्ष अुत्तरोत्तर अधिक प्रकट होने लगा।

हिन्दू धर्ममें अन्य धर्मोके प्रति तिरस्कारका भाव है ही नही। 'तुम्हारे लिअे तुम्हारा धर्म और हमारे लिअे हमारा धर्म'—यह कुरानका वचन सम्प्रदाय-वहुल हिन्दू धर्मका प्राण है। 'अेक सत् विप्रा वहुधा वदन्ति'। प्रार्थना-समाज सभी धर्मोसे समान रूपमे प्रेरणा ग्रहण करता था, अिसलिअे हिन्दू धर्ममें निहित सर्वधर्म-सद्भाव अधिक स्पष्ट हुआ, और जिसे आधुनिक लोग धार्मिक अुदारता कहते है तथा मै जिसे जागृतिकी स्वाभाविकता कहता हू, अुसका दर्शन मुझे हुआ। अव मेरे मनमे यह विचार भी स्पष्ट हो गया कि वेद और स्मृति, वाअिवल और कुरान, शास्त्रोके सस्कार और लोगोमे रूढ वनी हुअी विधिया—अिन सवको किस दृष्टिसे देखना चाहिये और किस दृष्टिसे अिनकी परीक्षा करनी चाहिये। अिससे मुझे हिन्दू धर्मसे भी अधिक विशाल भारतवर्षीय सार्वभौम धर्मका साक्षात्कार हुआ। वचपनसे मिली हुअी प्रार्थना-समाजकी यह अुदार सहायता मेरे लिअे अनेक प्रकारसे अुपकारक सिद्ध हुअी है और अिसलिअे प्रार्थना-समाजके प्रति मेरे मनमें सदा कृतज्ञता वनी रही है।

अिसके वादकी मेरी प्रवृत्ति अिस नूतन विकसित दृष्टिसे भारतके सव धर्मो और सम्प्रदायोका निरीक्षण करनेकी थी। प्रार्थना-समाज अथवा ब्राह्म-समाज, आर्य-समाज और देव-समाज, रामकृष्ण-मिशन और थियॉसॉफी, चैतन्य सम्प्रदाय और स्वामीनारायण सम्प्रदाय—सवकी ओर अिसी दृष्टिसे देखनेका मन होने लगा।

अिस दृष्टिसे देखने पर मालूम हुआ कि प्रार्थना-समाज भारतवर्षीय धर्म-परिवारके सगीतका तानपूरा है। आत्माकी अनतताको व्यक्त करनेवाला भाववाही सगीत चाहे जितने सप्तक चढे अथवा अुतरे, आरोह-अवरोह तथा आलापके चाहे जितने विविध विलास दिखाये, फिर भी अिस तानपूरेके साथ तो अुसे अपना मेल बैठाना ही होगा। अर्थात् सभी धर्मोको प्रार्थना-समाजके साथ सुमेल साधना चाहिये। तानपूरेके अभावमें सगीत खिल नही सकता; किन्तु सारा सगीत तानपूरेमे ही नही समा जाता।

प्रत्येक धर्ममें बुद्धि, दिव्य अनुभव, श्रद्धा, अत करणकी भावनायें, काव्य-कल्पना और कला-रसिकता होती है — होनी ही चाहिये। साथ ही, व्यक्तिका समाज और विश्वके साथ सम्बन्ध, जीवन-व्यापी सघ स्थापित करनेकी वृत्ति और आवश्यकता तथा क्षेमवृत्ति (conservatism) और परिवर्तन-वृत्ति (radicalism) ये दोनो पहलू धर्ममें स्वभावत होते है और होने चाहिये। अिनमें से अेक भी अगको यदि हम कम कर दें, तो धर्म विकलाग हो जायगा और मनुष्य-जीवनके लिअे अपर्याप्त सिद्ध होगा। धर्ममें श्रद्धाकी मात्रा बढनेसे धर्म विगडता नही। भावना और कोमलताके बढनेसे धर्म कमजोर नही बनता। काव्य-कल्पनाओके बढनेसे वह असत्यका प्रेरक नही होता और कला-रसिकताके बढ जानेसे वह हीनताका सग्राहक नही बनता। विश्वके साथ अपने सम्बन्धको पूर्णतया स्वीकार करनेसे वह अव्यावहारिक नही हो जाता। क्षेमवृत्तिको अगीकार करनेसे वह जड नही बन जाता। और न परिवर्तनशीलताका स्वागत करनेसे वह विनाशक हो जाता। धर्मकी मृत्यु अज्ञान, विलासिता और बाह्य सत्ताके कारण होती है। भ्रममूलक सत्यसे सत्य ढक तो सकता है, परन्तु अुसका नाश कभी नही हो सकता। अिसका कारण यह है कि असत्यके पेटमें भी सत्य ही छिपा रहता है। सत्यकी पराजय सत्तामें है। कोअी भी धर्म जब अज्ञानको बरदाश्त करता है, विलासिताके साथ समझौता करता है, अथवा सत्ताकी अुपासना करता है, तब पहले वह धर्म सुलभ हो जाता है, रोचक बनता है, विशाल होता है और अतमें जलके बडे वुलवुलेकी तरह फूट जाता है। शासनकी सहायतासे फैला हुआ धर्म क्षीणवीर्य और क्षण-जीवी वनता है, अिसका सम्राट् अशोकने भी अनुभव किया था और अकबरने भी अनुभव किया था।

प्रार्थना-समाजने अीश्वरके अद्वैत पर विशेष जोर दिया है। यह अिस्लामकी देन मानी जायगी। राजा राममोहनरायने अिस्लामका गहरा अध्ययन किया था। अीश्वरके अद्वैतका जाग्रत भान अिस्लामकी असाधारण सुन्दरता है। सर्वोपरि सत्ताकी पूजा करनेवाले यहूदी लोगोका अीश्वर अीर्षालु 'Jealous God' हो, तो अिसमें कोअी आश्चर्य नही। यह विरासत अिस्लामको और अीसाअी धर्मको समान रूपमें मिली है। भारतवर्षमें जीव-ब्रह्मैक्यका विचार पहलेसे ही चलता

आया है, अिसलिअे हमारे देशमे 'अेक या अनेक' का झगडा अुत्पन्न नही हुआ
हमारे मार्गमे बाधक नही बना। अीश्वर है, वह अद्वितीय है, सर्व-समर्थ है औ
प्रेममय है, यह भावना अथवा अनुभव प्रत्येक धर्मकी पूजी है। वह अीश्वर
अतर्यामी है, आत्म-स्वरूप है, सर्व-सह है, अपार धैर्य रखनेवाला है, जाग्रत
और भक्तानुकूल है, यह शोध बादमे हुअी है। अिस शोधके अभावमे मनुष्य
धार्मिक जीवनमे बडे बडे कष्ट भोगे है, बडी बडी आपत्तियोका सामना किय
है। परन्तु बादमें हुअी अिस शोधका विस्तार करनेका यह स्थान नही है
अिस शोधके कारण धर्मकी पूजी बढी है। जो मनुष्य यह मानता है कि अीश्व
अनेक है, अेक नही, अुसका नाश निश्चित है। 'मृत्यो स मृत्युमाप्नोति य अि
नानेव पश्यति।'

छोटे छोटे देवोकी अुपासनासे जो नुकसान होता है, अुसे दूर करनेके दो ही
अुपाय है (१) मुख्य देवको रहने देकर बाकीके सब देवोकी हत्या कर डालो
अेकेश्वरवादकी लकडीसे अुनका स्पर्श करके अुन्हे अपने स्थानोसे नीचे गिरा दो,
(२) अथवा यह समझो कि अेकके ही ये अनेक रूप हैं, अनेकसे अुस अेकका अेकत्व
कभी नष्ट होता ही नही। भारतवर्ष पहलेसे ही अिस दूसरे मार्ग पर चलत
आया है। सच पूछा जाय तो जिस अीश्वरकी अुपासना हम अपने ढगसे करते है
वह भी परमेश्वरकी मानवीय आवृत्ति है। हमारा अीश्वर मनुष्यका बनाया
हुआ तो नही कहा जा सकता, परन्तु मनुष्यका पहचाना हुआ जरूर कहा जा
सकता है। अीश्वरके स्वरूपके नाते हम जिसे पहचानते हैं, वह मनुष्यके अतिम
प्राप्तव्यका स्वरूप है। मनुष्य स्वयको पहचान कर ही अीश्वरको पहचानन
सीखा है। अिसलिअे हम अीश्वरको अतर्यामी कहते हैं, आत्माराम कहते
है। अुपनिषद्-कालीन ॠषियोने अीश्वरके स्वरूपका जो चिन्तन किया है, अुसी
चिन्तनको प्रार्थना-समाजने पुन प्रचलित किया है और रूढिधर्मसे अुसने आग्रह-
पूर्वक कहा है

तदेव ब्रह्म त्व विद्धि, नेद यदिदमुपासते।

प्रार्थना-समाजने पहलेसे ही मूर्तिपूजाका विरोध किया है। मुझे लगता है
कि हिन्दू धर्ममें मूलत मूर्तिपूजा नही थी, सभवत वह बाहरसे यहा आअी होगी।
आजकी मूर्तिपूजाका विरोध भी बाहरसे ही आया है। भारतके सभी धर्मोने
मूर्तिपूजाका कला-रसिकताके अुत्साहसे स्वागत किया है, अिसलिअे हमारे यहा
मूर्तिपूजाका विरोध करना आसान बात नही है। मूर्तिपूजाकी अपेक्षा मूर्तिपूजाके
आसपास जो आडबर और अनाचार लिपटा रहता है, वह अधिक घातक होता है।
प्रार्थना-समाजने मूर्तिपूजाका जो विरोध किया, वह आरभमें बहुत जोशीला था।
प्रारभमें प्रार्थना-समाजकी यह मान्यता थी कि मूर्तिपूजा असत् मार्ग है, अीश्वर-
का अपमान करनेवाली है, मनुष्यमें नीचता पैदा करनेवाली है और अुसे दुरा-

चारकी ओर ले जानेवाली है। डॉ० भाडारकरने अिसमें परिवर्तन करवाया था। अुन्होने प्रार्थना-समाजमें यह मत दृढ किया कि मूर्तिपूजामें पाप नही है, लेकिन वह निरर्थक है। आगे चलकर कही कही मूर्तिपूजाका विरोध अितना मद पड गया कि प्रार्थना-समाजकी अपनी अुपासनाके समय मूर्तिका अुपयोग न करना ही काफी माना गया। मूर्तिपूजाके निषेधको दिया गया अत्यधिक महत्त्व भीतरसे ही कम होने लगा, यह अेक तरहसे अच्छा हुआ है। मूर्तिपूजामें कोअी खास रहस्य तो है ही नही। मूर्तिपूजा मनुष्यकी कलावृत्तिको सन्तुष्ट करनेवाला अथवा खिलौनोके साथ खेलनेकी बालवृत्तिका पोषण करनेवाला अेक प्रकार है। मूर्तिपूजाका त्याग प्रौढ या परिपक्व वृत्तिके मनुष्यके लिअे स्वाभाविक होना चाहिये। लेकिन आजकी परिस्थितियोमें अिस छोटीसी बात पर विस्तृत चर्चा करना जरूरी नही है। प्रार्थना-समाजमें मूर्तिपूजाके निषेधका जोश कम हो गया अिसलिअे प्रार्थना-समाज शिथिल पड गया है, अैसा माननेका मै कोअी कारण नही देखता।

प्रार्थना-समाज द्वारा किया गया सुधारका तीसरा कार्य है जातिभेदका विरोध। जातिभेद कोअी धार्मिक सस्था नही है, परन्तु मानवके स्वभावमें गहरी जमी हुअी समूह-वृत्तिका ही अेक रूप है। मैं मानता हू कि हिन्दू धर्मने अिसे अुन्नत करके वर्ण-व्यवस्थाका रूप देनेका सतत प्रयत्न किया है। प्रार्थना-समाजने जातिभेदका सर्वत्र अेकसा विरोध नही किया। बगालने अुसका अधिक विरोध किया, महाराष्ट्रका विरोध नही-जैसा ही कहा जायगा, और गुजरातकी तो अुसका विरोध करनेकी हिम्मत ही नही हुअी। जातिभेदकी सस्था मनुष्यकी प्रकृतिसे पैदा हुअी है, अिसलिअे अुसका विरोध करना कठिन है। भारतमें अुसे धर्मकी मान्यता मिल जानेसे अुसकी शक्ति पहाडी किलेमे घुसकर बैठी हुअी सेनाके समान सुदृढ हो गअी है। बाहरी विरोध या आक्रमणसे यह प्रथा मर नही सकती। अिसका भीतरसे ही अत करना चाहिये। आजकी परिस्थितिया और राजनीतिक आकाक्षायें यह काम कर रही है।

आज तकके अनुभवसे मालूम होता है कि प्रार्थना-समाजने अेक ओर जीवन-विमुख वैराग्य तथा दूसरी ओर अनाचारपूर्ण विलासिता दोनोका खातमा कर दिया है। प्रार्थना-समाज स्वभावसे गृहस्थाश्रमी है। प्रोटेस्टेन्ट अीसाअी लोगोकी अग्रेजी शिक्षा पाकर हम बडे हुअे है, अिसलिअे पिछली आधी शताब्दीमें न तो हम अपने जीवनमें अलौकिक त्याग और वैराग्यको दृढ कर सके और न कल्पना-शक्तिको अुन्नत बनानेवाले नये अुत्सवो या त्योहारोका ही आयोजन कर सके। यही कारण है कि प्रार्थना-समाजमें अनेक आदरणीय सत्पुरुष तो हुअे है, परन्तु अुसमें भव्य पुरुषोकी दीर्घ परम्परा हम नही पाते। जीवन-कुशल लोग जीवन-वीर होते ही है, अैसी बात नही। प्रार्थना-समाजके लिअे अब अध्यात्मके क्षेत्रमे वीरवृत्तिका विकास करनेका समय पक गया है।

मेरी दृष्टिमें प्रार्थना-समाजका मुख्य कार्य तो यह है कि अुसने धर्मग्रन्थोके प्रामाण्यका अत कर दिया। वैसे तो नास्तिक, तर्कवादी और धर्मशून्य लोग सदा ही शास्त्रग्रन्थोको अस्वीकार करते रहे हैं, परन्तु समाजके मानस पर अुसका कोअी अच्छा असर नही हुआ। धर्म-परायण सात्त्विक लोग जब वुद्धि, अनुभव और श्रद्धा पर आधार रखकर शास्त्रग्रथोके प्रामाण्यको स्वीकार करनेसे अिनकार करते हैं, ग्रन्थोके अधीन होनेसे अिनकार करते हैं, तभी समाज वौद्धिक और धार्मिक स्वातत्र्य प्राप्त कर सकता है। प्रार्थना-समाजने यह कार्य कर दिखाया, यह अुसकी सवसे कीमती सेवा है।

प्रार्थना-समाजके भाडारकर तथा रानडे जैसे आदि-पुरुषोने शास्त्रो और सत-वचनोके प्रति आदरका भाव वनाये रखा, परन्तु वुद्धिको स्वतत्रता देकर ग्राह्य और अग्राह्यका विवेक मनुष्यके ही हाथमें रखा। ‘केवल मेरे धर्मके ही शास्त्र-ग्रन्थ सच्चे है,’ अिस सकुचितताको दूर करके अुन्होने समाजको यह अुदार वृत्ति सिखाअी कि सत्य जहासे भी मिले वहासे उसे ले लेना चाहिये, ‘सत्य हमारी ही खोयी हुअी वस्तु है, हम अधिकारपूर्वक अुसे ले सकते हैं।’ अग्नि शीतल है —अैसा सौ श्रुति-वचन कहें, तो भी हम अुसे स्वीकार न करे, यह शकराचार्यने कहा है। अपने पूर्वजोने हमे सिखाया है कि सत्य-ज्ञान यवनाचार्योंसे भी ग्रहण किया जा सकता है। हमारे सुभाषित कहते हैं कि अुत्तम विद्या किसी भी मनुष्यसे सीखी जा सकती है। फिर भी हम ग्रन्थोके प्रामाण्यसे चिपटे ही रहते थे। अिसके फलस्वरूप हमारी वुद्धिको ग्रन्थ-परतत्रताकी रुधी हुअी हवामे रहना पडता था और वेचारे शास्त्रग्रन्थोको तार्किको द्वारा की जानेवाली शास्त्रार्थकी चमत्कारपूर्ण कसरतका शिकार वनना पड़ता था।

ससारमें मनुष्यको वकील, डॉक्टर और पुरोहितके वगैर अपना काम चलाना चाहिये। अेक जर्मन दार्शनिकने कहा है कि मनुष्य स्वय ही अपना वकील वने, स्वय ही अपना डॉक्टर वने और स्वय ही अपना शास्त्रज्ञ धर्मगुरु वने यह जरूरी है। मानव-स्वातत्र्यकी अिन त्रिविध शिक्षाओका अेक भाग प्रार्थना-समाजने पूर्णतया सिद्ध किया हैं। और सौभाग्यसे अिस सम्प्रदायमे आरभसे ही मत-वैविध्य दाखिल होनेसे आप्तवाक्यका जुआ भी अिसके सिर पर नही लदा। राजा राम-मोहन रायने अुपनिषदो और अिस्लामके प्रभावको स्वीकार किया। महर्षि देवेन्द्र-नाथने अुपनिषदो और वौद्ध साहित्यसे प्रेरणा ग्रहण की। न्यायमूर्ति रानडे और भाडारकरने अुपनिषदोके साथ साधु-सतोकी वाणीका छूटसे अुपयोग किया। केशव-चन्द्र सेनने औसा ममीहकी विशेष अुपासना की। और रवीन्द्रनाथ ठाकुरने कवीर-पथ तथा लोकगीतोमें फैले हुअे अनेक स्वतत्र लोकधर्मोका प्रभाव समाज पर पडने दिया है। यह सव प्रार्थना-समाजकी अुदारताका हितकारी फल है। महाराष्ट्रके प्रार्थना-समाजने मराठी साधु-सतोके भजनो और गीतोको कुछ परिवर्तनोके साथ

पना लिया। भोलानाथ साराभाओकी ‘अभगमाला’ में महाराष्ट्रका प्रभाव दिखाओी ता है। और साहित्य-शूर बगालने तो गद्य और पद्य, अितिहास और विवेचन त्येक क्षेत्रमे अेक नया ही साहित्य निर्माण किया है।

प्रार्थना-समाजने समाज-सेवाका कार्य भी काफी किया है, परन्तु अुसमे नओी देशा अथवा अलौकिक त्याग जैसा कुछ नही है। अनाथालय, रुग्णालय, विद्यालय, पुस्तकालय या चर्चालय चलाना कोओी विश्वव्यापी धार्मिक प्रवृत्तिका पर्याप्त फल नही माना जा सकता। प्रार्थना-समाज यह भी नही कह सकता कि अुसने सपूर्ण जनताको मत्रमुग्ध करनेवाली धार्मिक पुस्तके बडी सख्यामें प्रकाशित की हैं। प्रार्थना-समाजकी सपूर्ण प्रवृत्ति मध्यमवर्गके घर-बार और अुसके रहन-सहनकी, अुसकी धर्मवुद्धि और सेवाबुद्धिकी शुद्धि करनेमें ही समाप्त हो गओी है। ओश्वर-निष्ठा और सदाचार प्रार्थना-समाजका मुख्य स्वर माना जायगा। यह सच है कि बगालके बहुतसे शिक्षाशास्त्री ब्राह्म-समाजी हैं, परन्तु हमारे देशमें राष्ट्रव्यापी, जीवन-स्पर्शी, स्वतत्र और प्राणवान शिक्षाका प्रचार-प्रसार करनेका तो प्रार्थना-समाजने विचार तक नही किया। जिस प्रवृत्तिके प्रभावसे सपूर्ण समाज देखते ही देखते द्विज नही बन जाता, अुस प्रवृत्तिमें धर्मबल है अैसा नही कहा जा सकता। ‘The religion of a thorough-going gentleman’ तक ही जिसका स्वरूप सीमित है, वह प्रवृत्ति मनुष्यके हृदयको आकर्षित नही कर सकती। केवल वीर-धर्मका ही प्रसार और प्रचार होता है।

अेक जमाना अैसा था जब मनुष्यका सपूर्ण जीवन — वैयक्तिक और कौटुम्बिक, सामाजिक और राजनीतिक — धर्म-व्यवस्थाके अधीन था। अुसके समग्र जीवन पर धर्मका साम्राज्य था। आज वह जमाना चला गया, और वह सकारण गया। अुसके स्थान पर आज लोकमान्य राज्यसत्ताका जमाना आया है। राज्य-सत्ता अेक व्यक्तिके हाथमें रहे अथवा अनेक व्यक्तियोके, अिस सवाल पर लोग चाहे जितने लडे-झगडे हो, परन्तु समग्र जीवनको राज्यसत्ताके, राजनीतिक सस्थाओके हाथमें सौंप देनेकी वृत्ति तो जड जमाती ही जाती है। अेक राष्ट्र और दूसरे राष्ट्रके बीचका व्यवहार, सस्कृतियोका सहयोग, विभिन्न वर्गोके बीचका सम्बन्ध, शिक्षा, व्यापार-अुद्योग, धर्म-व्यवस्था, परिवार-सस्था — अितना ही नही, स्वास्थ्यकी रक्षा और सार-सभाल सब-कुछ सरकारके द्वारा हो और कानूनके नियत्रणमें रहे, अिस तरहकी वृत्ति आजकल बढती जा रही है। जगतमे जितनी भी शक्तिया है, समाजमे जितने भी बल है, वे सब आज राज्यतत्रके अधीन रहते हैं, अुसीकी सेवा करते हैं और अुसीकी कृपासे परिपुष्ट होते है। परन्तु यह स्थिति दीर्घ काल तक नही बनी रह सकती। अिस जमानेका अत देर-सवेर आना ही चाहिये। देरसे नही बल्कि जल्दी ही अिसका अत आना चाहिये। अेक

समय धर्म-व्यवस्था सार्वभौम थी, आज राज्य-व्यवस्था सार्वभौम है। परन्तु हमें यह समझना चाहिये कि भविष्यमें शिक्षा-व्यवस्था ही सार्वभौम बननेवाली है।

प्रार्थना-समाजने शिक्षाका कार्य थोडा-बहुत किया है। परन्तु शिक्षामें स्वतत्र विचारकी दृष्टिसे, दीर्घ तपस्याकी दृष्टिसे अथवा व्यापक सगठनकी दृष्टिसे प्रार्थना-समाजकी कोअी देन नही है। प्रार्थना-समाजको अपनी जीवन-दृष्टिका प्रकाश फैलाकर शिक्षाका अेक स्वतत्र, सपूर्ण और समर्थ दर्शन निर्माण करना चाहिये था। वह चाहे तो आज भी अैसा कर सकता है। आजके सर्व-साधारण धर्मका प्रसार शिक्षाके द्वारा ही हो सकता है। गाधीजीने अेक बार अिसी स्थान पर कहा था कि 'प्रार्थना-समाज सुशिक्षित लोगोका धर्म है।' गाधीजीके अिस वचनमे प्रार्थना-समाजकी विशेषता और दोष, शक्ति और अशक्ति दोनो ही प्रतिबिम्बित होती है। हम चाहे तो अिस स्थितिको बदल कर अपनी नअी शक्ति, नअी प्रेरणा और नअी दिशाका निर्माण कर सकते है।

"अतर्यामी परमात्मा ही मेरा स्वामी है, मेरा आधार है, सर्वात्मैक्य और सर्वसद्भाव ही मेरा परम पुरुषार्थ है। शिक्षा—सर्वांगीण शिक्षा—ही अुसकी साधना है।" यह है भविष्यका ब्राह्मधर्म, यही प्रार्थना-समाज है। अिस नूतन शिक्षामे पाच बातोका समावेश होना चाहिये प्रार्थना, बोध, धैर्य, सेवा और बलिदान — Prayer, Persuasion, Patience, Service and Sacrifice

शिक्षाका प्रथम क्षेत्र मनुष्यका हृदय है। हृदयका यदि पूरा विकास हुआ होगा, तो ही बुद्धिका विकास व्यक्ति और समाजके लिअे हितकर, आशीर्वाद-रूप सिद्ध होगा। हृदयका यदि सुन्दर विकास हुआ हो, बुद्धि प्रगल्भ बनी हो और शरीर नीरोग और कसा हुआ हो, तो ही धर्मका जीवन जीना मनुष्यके लिअे सभव होगा। जब अैसी शुद्ध धर्म-प्रधान शिक्षा प्रत्येक मनुष्यको मिलेगी तभी व्यक्ति और समाजका परस्पर सम्बन्ध मगलमय बनेगा। समाजकी सर्वांगीण सेवा ही आत्मोन्नतिका अेकमात्र अुपाय है।

अब हम भलीभाति यह समझ सकेंगे कि आदर्श सोशियालिज्म ही जगतका भावी धर्म है। सोशियालिज्मका अर्थ है समाज-सेवाका धर्म। आज जिस सोशियालिज्मकी चर्चा अनेक देशोंमें होती है और अुसके सम्बन्धमें जो प्रयोग होते है, अुनमे अनेक पहलुओंसे सशोधन और परिवर्धन करना आवश्यक है। आजके सोशियालिज्मने **तीन** गलतिया की हैं। अुसने केवल सपत्तिशास्त्रका आधार लिया, यह अुसकी पहली गलती है। अुसकी दूसरी गलती है राजनीतिक सस्थाओं पर अुसका अपार विश्वास। और अुसकी तीसरी गलती यह है कि धर्म-व्यवस्थाको तोडनेके प्रयत्नमें अुसने मूल धार्मिकताके प्रति ही घृणा बढाअी है और अुसका विरोध किया है। सोशियालिज्म मानता है कि ये अुसकी गलतिया

थे। अिसलिअे अुन्ही सिद्धान्तोके आधार पर जीवन-क्रम रचनेका आग्रह रखनेके कारण ये दो पथ सनातनियोके जीवन-क्रमसे थोडे अलग पड गये।

जो लोग आत्मामें अथवा किसी अतीन्द्रिय अमर शक्तिमें विश्वास रखते है और अुसके सम्बन्धमें पुनर्जन्मकी कल्पना करके अुसके द्वारा कर्म-धर्मकी व्यवस्था करते है, वे सब आर्य अथवा हिन्दूधर्मी ही है। मै नही मानता कि दार्शनिक वाद-विवादमें अुतरनेसे यह बात अधिक समझमे आयेगी।

१९३०

२९

सुधारक धर्ममें सुधार*

आपका आमत्रण स्वीकार करके मैं यहा आया, अिसमें अेक अुद्देश्य यह था कि अिस निमित्तसे अेकाध दिन परमानन्द भाअीके साथ रहनेका आनन्द मिलेगा। अभी अभी अुनके अहमदाबादके भाषणके विरुद्ध अेक बडा झगडा खडा हुआ है। मुझे बार बार आश्चर्य होता है कि परमानन्द भाअीके समान सौम्य और सतुलित व्यक्तिके भाषणमें लोगोको अैसा क्या मिल गया कि वे अुन्हे मार्टिन ल्यूथर बनानेके लिअे तैयार हो गये है! तीव्र विचार रखनेवाले प्रत्येक मित्रको वस्तुका दूसरा पहलू बताकर अुसे सौम्य और जिम्मेदार बनाना ही आज तक परमानद भाअीका प्रिय कार्य रहा है। अुनका पूरा भाषण पढे विना ही मैं कह सकता हू कि अुसमें अुत्पात मचानेवाला अथवा विनाशक कोअी तत्त्व नही है। अुसका अर्थ अितना ही है कि क्रातिकारी या सुधारक युग परमानद भाअीके समान सौम्य मूर्तिके द्वारा भी अपनी आवाज प्रकट कर सकता है।

मैं सुनता हू कि अमुक समाजने अथवा समुदायने अुनका वहिष्कार कर दिया है। अिसलिअे मै पहले अिस वहिष्कारके वारेमें ही दो शब्द कहूगा।

वहिष्कार प्रत्येक सुसस्कृत और सगठित समाजका स्वाभाविक अधिकार है। वह सभ्य समाजके हाथमें अेक प्रभावशाली और सात्त्विक शस्त्र है। लेकिन यह शस्त्र दुधारी तलवार है। जिनके खिलाफ अिसका अुपयोग किया जाता है अुन्हे तो जब यह मारेगा तब मारेगा, परन्तु जो लोग अिस शस्त्रका अुपयोग करते है वे यदि अुचित अवसर, अुचित पद्धति और स्वाभाविक मर्यादाको न जानें, तो यह पहले अुन्हीका नाश करता है। अेक समय हमारी जातिके अेक सयाने वृद्ध पुरुषने वहिष्कारकी जो मीमासा की थी, अुसे अिस समय मैं अपनी भाषामें

* सवत् १९९२ के पर्युषण-पर्वके अवसर पर बम्बअीमें दिया गया भाषण।

जाय। अुन्हे हम अपना बनाये, हम अुनके बन जाय और अुन्हे अपने साथ लेकर अुन्नतिके पहाड पर चढे। अिस तरहकी वीरवृत्तिके बिना धार्मिकता सभव ही नही हो सकती। वीरत्व ही सच्चा धर्म है। हमें केवल दूसरोको मार कर वीर नहीं बनना है, परन्तु निर्वैर वृत्तिसे स्वार्थी सकुचितताको मार कर वीर बनना है।

यहा हमने जिस ब्राह्मधर्मके और धर्म-समाजके दर्शन किये है, वह तो अेक अलग-थलग धर्मकी तरह रहनेसे अिनकार ही करेगा। वह धर्ममात्रमें ओतप्रोत होकर रहेगा। विभिन्न सब धर्म समाजकी अुन्नतिके लिअे ही प्रवृत्त हुअे है। अिन सब धर्मोको अूचा अुठानेवाले 'लीवर' की — अुन्नयन-दडकी गरज पूरी करेगा यह ब्राह्मधर्म। अिसके आधार पर धर्ममात्रकी अुन्नति होगी। यह ब्राह्मधर्म किसी भी धर्मका नाश किये बिना सर्वत्र अपना साम्राज्य स्थापित करेगा।

यह श्रद्धा रखकर हम प्रार्थना करे कि परम-मगल परमेश्वरकी कृपासे प्रत्येक हृदयमें अैसा धर्म प्रकट हो और अुसीका विकास हो।

२८

दोनों धर्म अनादि

मेरी मान्यताके अनुसार जैन-धर्म और वैष्णव धर्म दोनो अनादि है। अर्थात् दोनो धर्म वेदोके जितने ही प्राचीन है। दोनो धर्मोके मुख्य-मुख्य सिद्धान्त अुसी कालके हैं जब मनुष्यके हृदयमे धर्मकी स्फुरणा जागी थी। भागवतमे तो अृषभदेवका वर्णन है ही। लेकिन मैं अहिंसा-धर्म अर्थात् जैन धर्मको अृग्वेदमें भी देखता हू। आज जिस रूपमें जैन धर्म हमारे देशमें विकसित हुआ है, अुसका निर्माण तो महावीरसे आरभ हुआ था। यह अितिहाससे सिद्ध होता है। महावीर गौतम बुद्धके समकालीन थे, यह भी सब कोअी जानते है।

मैं मानता हू कि महाभारतके युद्धमे जो महान सहार हुआ अुसीके फलस्वरूप आर्य जातिके मन पर यह बात जम गअी है कि हिंसा व्यर्थ है, हिंसासे किसी भी पक्षका भला नही होता, हिंसासे कोअी भी स्थायी कार्य सिद्ध नही होता। विजयी धर्मराज पश्चात्तापसे जलकर कहते हैं कि 'जयोऽपि अजयाकारो भगवन् प्रतिभाति मे।' भगवन्, यह विजय तो मुझे पराजय जैसी ही लगती है। महाभारतके युद्धका यह कडवा अनुभव राष्ट्रके हृदयमे गहरा अुतरा, अुसके बाद ही भारतमे बौद्ध धर्म और जैन धर्मका अधिक प्रचार हुआ।

वैसे तो दोनो ही धर्म व्यापक सनातन हिन्दू धर्मकी ही शाखाये हैं। दोनो धर्मोके मुख्य सिद्धान्त बीजरूपमें पहलेसे ही हिन्दू धर्ममें मौजूद हैं। परन्तु ये सिद्धान्त राष्ट्रके हृदय पर व्यापक रूपमें अकित तो महाभारतके युद्धके बाद ही

चाहिये। जिन लोगोके पास हजारो वर्षोंका अनुभव और अितिहास है, वे यदि धर्म-विकास और जीवन-परिवर्तनका शास्त्र न रचे, तो वे ऋषि-मुनियोकी परपराको कलकित कर देंगे। हमारे स्मृतिकार समय समय पर धर्म-व्यवस्थामें परिवर्तन करते ही आये है। अब हमें अैसे परिवर्तनोका अेक सपूर्ण शास्त्र बनाना चाहिये। तभी हम अपने समाजका जहाज जीवन-सागरमें सुरक्षित रूपमें चला सकेंगे। अिस प्रकार जीवन-व्यवस्थाकी बार-बार परीक्षा करके जीवनके तत्त्वज्ञानको नये सिरेसे रचनेवाले लोगोमें भगवान महावीर अेक अग्रगण्य महापुरुष थे। अब हम देखें कि अुनका युग कैसा था।

*

महाभारतके युद्धकी घटना आर्योंके जीवनमें बडीसे बडी क्राति करनेवाली सिद्ध हुअी। अग्रेजो और जर्मनोके बीचके भ्रातृद्वेषका विग्रह जिस तरह विश्वव्यापी बनकर आजकी दुनियाको अभी भी परेशान कर रहा है, अुसी तरह कौरव-पाडवोके बीचका वह सर्वनाशी महायुद्ध भारतकी प्राचीन सस्कृतिके लिअे घातक सिद्ध हुआ। अिस भारतीय युद्धके पहले रतिदेव जैसे सम्राट् अिस प्रकारके महायज्ञ करनेमें जीवनकी सार्थकता मानते थे, जिनमें प्रतिदिन पचीस पचीस हजार पशुओका वध होता था। अुस समयके राजा लोग सम्राट् बननेके लिअे प्रतिस्पर्धा करके अेक-दूसरेका नाश करते थे और अेक दिग्विजय सिद्ध करनेके लिअे किये गये राज-सहारका पाप धोनेके लिअे अुतना ही हिंसक दूसरा यज्ञ करते थे। अिसी कारणसे भीष्माचार्य तथा धर्मराजके समान पुण्य-पुरुषोने क्षात्रधर्मको पापपूर्ण मानकर अुसे धिक्कारना चाहा। मनुष्यकी अखड सेवाके कारण अुसके कुटुबी बने हुअे असख्य पशुओका — गाय, बैल और घोडोका — यज्ञके नाम पर सहार करनेकी सिफारिश करनेवाले वेदोसे सत्रस्त होकर अेक ऋषि यह विद्रोही वचन बोल अुठे 'धिग् वेदा।' वैदिक सस्कृतिके सुवर्ण-कालमें अैसा वचन कहना अुतना ही साहसपूर्ण था जितना बरड्रनका युद्ध लड रहे हिंडनवर्गके समक्ष युद्धका निषेध करना। हमारे वैदिक धर्मके अभिमानी पूर्वजोने यह वचन भी लिख रखा है। यह बात अुनकी अैतिहासिक प्रामाणिकताको सूचित करती है, साथ ही यह अुस कालकी अूबी हुअी धर्मबुद्धिकी भी द्योतक है।

भारतीय युद्ध, काठियावाडकी भूमि पर परस्पर लडा गया यादवोका सहारक युद्ध तथा आस्तिक ऋषि द्वारा बद कराया हुआ राजा जनमेजयका सर्पसत्र — अिस सारे वातावरणका जिन लोगोको स्मरण था, अुन्होने सपूर्ण जीवन-दृष्टिमें परिवर्तन करनेका निश्चय किया।

यह विचार धीरे धीरे परिपक्व और दृढ होता गया, छह सौ वर्ष तक यह प्रक्रिया चलती रही और अुसमें से आर्य-परम्पराके दो पन्थोका जन्म हुआ। अिन पथोको हम बौद्ध धर्म और जैन धर्मके नामसे पहचानते है।

आपको सुना दू। सत्याग्रहाश्रममें जाकर मैंने हरिजनके हाथका खाना खाया था। अिसलिअे जब मै अपने गाव गया तो मैंने अपने जातिवालोसे कहा कि मै अिस तरह व्यवहार करता हू। गुजरातके जैसी जातियोकी रचना और जातियो द्वारा खडी की जानेवाली परेशानी हमारे प्रदेशमें बिलकुल नही है। फिर भी जातिके लोग चाहते तो मेरा बहिष्कार कर सकते थे। मैंने हरिजनोके साथ भोजन करनेकी बात अुनके सामने कबूल की, तो कुछ भाअी बोल अुठे "बैठो, बैठो। हम पूछने आये तब तुम अैसी बातें हमसे कहना।" अिसी रुखके समर्थनमे अेक वृद्ध पुरुषने कहा "कोअी बडा अमीर आदमी होता है तब तो अुसका बहिष्कार करनेकी हम बात भी नही करते। दभी आदमी समाजमें पाखड चलाते है, लेकिन हम अुन्हे अपने शिकजेमें पकड नही सकते। तब यदि अेकाध मनके शुद्ध और सज्जन आदमीका ही हम बहिष्कार करे, तो क्या यह हमें शोभा देगा? अैसा करनेसे समाजका कल्याण भी नही होगा। अिनके जैसे लोग रूढ आचारको जरूर तोडते है, परन्तु वे अनाचार नही करते। अिसलिअे जाति अुनके खिलाफ हो जाय, तो भी अुनकी प्रतिष्ठाको कोअी धक्का नही पहुचता। अुलटे बहिष्कार करनेवाले लोगोकी ही बदनामी होती है। यदि निर्मल और शुद्ध-हृदय लोगोका बहिष्कार करके हम अुन्हे खो देंगे, तो फिर जातिमें रह ही क्या जायगा? अिसलिअे समझदारीका मार्ग यही है कि अैसे लोगोका हम नाम ही न लें। यह कलियुग है, अिसमें जो कुछ हो अुसे हम चुपचाप देखते रहें।" अिन वृद्ध पुरुषकी मुख्य दृष्टि सच्ची थी, यद्यपि कलियुगकी अुनकी दलील निरर्थक थी।

यह जरूरी है कि समाजके आचारोकी (रहन-सहनकी) प्रत्येक युगमे जाच की जाय। अुनमें आवश्यक परिवर्तन होना भी जरूरी है। शरीरको हम रोज नया पोषण देते है और गदगी भी रोज शरीरसे बाहर निकालते रहते है, जिससे शरीर नीरोग रहकर अच्छी तरह अपना काम करता है। यही बात समाज-शरीरको भी लागू होती है। जिस प्रकार खाये हुअे आहारका कुछ समय बाद रक्त बनता है और अुसका निकम्मा भाग गदगीके रूपमे शरीरसे बाहर निकल जाता है, अुसी प्रकार अच्छीसे अच्छी प्राचीन व्यवस्था अपने अपने समयको पोषण देनेके बाद सड़ाधके रूपमें बची रहती है। अुसे यदि हम समाजसे निकाल न फेंकें, तो समाज-शरीर बदबू करता है और रोगी हो जाता है। प्रतिदिन होनेवाले विकासको जब हम रोक देते है, तो किसी समय सन्निपातकी तरह समाजमें अेकाअेक क्राति फूट पडती है। विकासको रोकनेका अर्थ है क्रातिको निमत्रण देना, फिर यह क्राति विदेशी आक्रमणके रूपमे हो या भीतरी विद्रोहके रूपमे।

सामयिक सुधारोके बिना धार्मिक जीवन टिक ही नही सकता, अिसलिअे सामाजिक सुधार — सामाजिक प्रगति — के सार्वभौम नियमोको हमें जान लेना

जिस प्रकार यज्ञके जैसे भव्य जीवन-सिद्धान्तको अुस समयके लोगोने पशु-हत्या करके भ्रष्ट कर दिया, अुसी प्रकार अुसके बादके लोगोने तपके सर्वमगलत्व-को भूलकर अुसे निरर्थक देह-दमनका रूप दे दिया। सचमुच हमारे देशके लोगोने महानसे महान धर्म-सिद्धान्तोको अर्थ-विहीन यान्त्रिक क्रियाका रूप देकर बहुत बडा बुद्धिद्रोह और समाज-द्रोह किया है।

आहारशास्त्र, जीवनशास्त्र, प्राणीशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानस-शास्त्र, तर्कशास्त्र आदि मनुष्योपयोगी शास्त्रोका जिन्होने अुत्तम और अद्यावधि (up-to-date) अध्ययन किया है, अुन समाज-हितैषी लोगोको धर्मशास्त्रो पर बार-बार विचार करना चाहिये और अपने जमानेके स्वजनोका मार्गदर्शन करना चाहिये।

यदि यह सनातन आवश्यकता न होती तो भगवान बुद्ध और महावीर जैसे महापुरुषोको पुरुषार्थ करके जनताको सनातन धर्मकी नये सिरेसे दीक्षा देना आवश्यक नही लगता। धर्म कितना भी अुज्ज्वल क्यो न हो, मानवीय बुद्धि अथवा अबुद्धिकी जडताके कारण अुस पर राख चढ ही जाती है। अिस राखको हटाकर तथा प्राचीन धर्मतत्त्वोका सस्कार करके धर्मको नये सिरेसे गति देनेका कार्य प्रत्येक युगमें होता आया है, अिसीलिअे धर्म टिका है। धर्मके ग्रन्थ, धर्मके मदिर तथा अहिसा, सत्य और क्षाति सबको भूलकर धर्मका ही द्रोह करनेवाले धर्मान्ध आचार्य धर्मकी रक्षा नही कर पायेंगे। क्षाति, तितिक्षा और अुदारता जिनमे है, विरोधी पक्षके तर्कमें रहे सत्याश और शुभ हेतुको समझने और स्वीकारने जितना स्याद्वाद जिनके गले अुतर गया है, अैसे धर्म-परायण लोग ही धर्मके रक्षक होते हैं। अुच्च धर्ममें जन्म पानेसे मनुष्य अुच्च नही होता, परन्तु अुच्च जीवनसे ही वह अुच्च बनता है, यह बुद्ध और महावीरने अनेक बार कहा है।

धर्मका अर्थ ही है जीवन-सुधार। प्राकृत मनुष्यका जीवन सामान्यत आहार-निद्रादि आवश्यकताओके, राग-द्वेषादि वासनाओके तथा दभ-मत्सरादि विकृतियोके अनुसार ही बहता रहता है। अिसमें सुधार करके जीवनको सु-सस्कृत बनाना ही धर्मका मुख्य कार्य है। जिस प्रकार जीवन पर जग चढता है अुसी प्रकार धर्म-वचनो और धार्मिक सस्थाओ पर भी जग चढता है। अिस जगको दूर करनेका कार्य यदि धर्म स्वय न करे, तो दूसरा कौन करेगा? सामाजिक सुधार ही धर्मका प्रयोजन है। यदि कोअी यह कहे कि बुद्ध और महावीरके बाद समाज-सुधारकोकी आवश्यकता नही रही, तो अिससे यही सिद्ध होगा कि बुद्ध और महावीरकी भी अुनके जमानेमें कोअी आवश्यकता नही थी। प्रत्येक धर्म-सस्थापकको यही न्याय लागू होता है, भले ग्रन्थ-वचन कुछ भी कहें। 'अैसा अेक भी देश नही है और अैसा अेक भी युग नही है, जिसे समाज-सुधार करनेके

नहि वेरेण वेराणि सम्मन्तीध कुदाचन।
अवेरेण च सम्मन्ति अेस धम्मो सनन्तनो ।।

अिस प्रकार कहकर बुद्ध भगवानने अवैरका सन्देश दिया। 'दुख सेते पराजितो' — प्रजाका यह अनुभव होनेमे अुमने अिस सन्देशको अपना लिया। बुद्ध भगवानने मासाहारका निषेध भले ही न किया हो, किन्तु यह अुन्होने स्पष्ट कहा है कि जब मानव-जाति यज्ञके नाम पर पशुहत्या नही करती थी अुस समय मनुष्योमे रोग नही-जैसे ही थे। पशुहत्याके फलस्वरूप ही मानव-जातिको अनेक रोग लग गये है।

और, ज्ञातृपुत्र वर्धमान महावीरने तो अहिसाको ही परम धर्म कहकर मानव-जीवनके सम्पूर्ण आधारको ही बदल डाला। वैदिक कालमें अवैर, अहिसा और गौरक्षाकी कल्पना थी ही नही अैसा नही, परन्तु धर्मका पूर्ण साक्षात्कार भी तो अनुभवसे ही होता है। बुद्ध और महावीरके समयमे ही अृषि-दृष्ट अहिसा-का प्रेमधर्म लोक-दृष्ट हुआ। यह तो नही कहा जा सकता कि अुनके समयके बाद भारतमें यज्ञ हुअे ही नही, परन्तु राष्ट्रधर्मके हृदयमें यज्ञ अप्रतिष्ठित बन चुके थे। वे प्राचीन सस्कृतिकी गूजकी तरह सुने गये और अनादरके मौनमें विलीन हो गये। जहा तहा जन-हृदय पूछने लगा कि वृक्षोका सहार करनेसे, पशुओकी हत्या करनेसे और रक्त-मासका कीचड फैलानेसे यदि स्वर्गमें जाया जाता हो, तो फिर नरकमें जानेका मार्ग कौनसा है?

जब अनुकूल और प्रतिकूल तटो पर बसनेवाले किसानोमें बीचकी नदीके पानीके लिअे युद्ध होनेका अवसर खडा हो गया, तब बुद्ध भगवानने दोनोके नेताओको अिकट्ठा करके पूछा 'पानी कीमती है या भाअियोका खून? पानीके लिअे भाअियोका खून बहाना कहाकी बुद्धिमानी है?'

राजा ययातिने अपने और अपने पुत्रके यौवनका अनुभव करके सम्राट्-के लिअे सुलभ सारे भोग भोग लेनेके बाद यह अनुभव-वचन कहा कि जगतमें जितने भी चावल और तिल है, जितने भी अैश-आरामके साधन हैं, अुन सबको कोअी अपना बना ले, तो भी अेकके सुखोपभोगके लिअे वे पर्याप्त नही होगे, वे अुसके मनमें तृप्ति अुत्पन्न नही कर सकते। अिसलिअे स्वयं वासनाका ही त्याग करके सतोष माननेमें जीवनकी सफलताकी कुजी है। भगवान महावीरने भी लोगोसे यही कहा। हिसाके द्वारा दूसरोको दबानेकी अपेक्षा तपके द्वारा अपनी वासनाओंको दबाना ही विश्वजित् यज्ञ है। अिसीमें जीवनकी सफलता और कृता-र्थता है। मनुष्यका जीवन अपने आसपासके लोगोके लिअे शापरूप और त्रासरूप बननेके बदले आशीर्वाद बने, अिसीमें धर्म निहित है। तपके मूलमें यही बात है। तपके बिना मनुष्यका जीवन निष्पाप नही बन सकता।

है। समाज-व्यवस्था प्रत्यक्ष अनुभव, अुस अनुभवके आधार पर होनेवाला
र, समाजकी भावनायें और समाजमें विकसित होनेवाली सनातन श्रद्धा —
सब पर आधार रखती है। अिनमें से श्रद्धा प्रत्येक समाजका मूल धन है।
धनकी रक्षा करना सामाजिक शक्तिका मूल मंत्र है।

यदि हम प्रतिक्षण परिवर्तन करते रहेंगे, तो समाज बालूके ढेर जैसा हो
गा। अुसमें धृति (cohesion) का गुण आयेगा ही नही। और यदि हम
ी भी तरहका परिवर्तन न करनेका निश्चय कर लें, तब तो समाज मुर्देकी
ह सडने लगेगा।

समाजमें आवश्यक परिवर्तन करने पर भी कोअी परिवर्तन नही किये गये
अैसा मानने-मनवानेमें प्रत्येक समाज अपना श्रेय समझता आया है। न्याया-
श प्रत्येक मुकदमेमें अपना निर्णय देते समय कानूनमें परिवर्तन करते हैं, परन्तु
का प्रयत्न यह दिखानेका होता है कि कानूनमे कोअी परिवर्तन नही किया
ा है। अिसे 'legal fiction' कहते हैं। समाज-व्यवस्थाको धर्मशास्त्रोके हाथोमें
पनेके बाद अुसमें कोअी परिवर्तन नही किया गया, अैसा दिखाना पडता है।
सके लिअे भाष्यकार भाष्य रचते हैं और अेक ही शास्त्रमें श्रद्धा रखते हुअे भी
लग अलग भाष्यकारोके अर्थके अनुसार लोगोके गुट बन जाते हैं। लोग शास्त्र-
वनके प्रामाण्यकी रक्षा करके अपने स्वीकृत भाष्यकारके वचनको अधिक महत्त्व
े है। सब देशोके आज तकके अितिहासको देखते हुअे प्रगतिका यह भी अेक
र्वभौम नियम कहा जा सकता है।

सामाजिक प्रगतिका अेक दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त भी सर्वत्र देखा गया है।
ेक जमाना धर्म-व्यवस्थाके बाह्य आकारकी रक्षा करके अुस आकारमें पूरे या
रे जानेवाले मसालेमें परिवर्तन करता है। पशुके मांसका यज्ञ करनेके बदले वह
ाशका (अुडदका) पशु बनाकर अुसकी बलि देता है और मानता है कि मास-
ज्ञकी रक्षा हो गअी। अिस प्रकार भीतरका मसाला पूरी तरह बदल जानेके
बाद नये लोग तर्क करते हैं कि मुख्य चीज मसाला है, आकार तो गौण चीज
है। अिसलिअे भीतरकी चीजकी रक्षा करके अुसे कैसा भी आकार देनेमें धर्मद्रोह
नही होता, तत्त्वकी रक्षाका ही वास्तविक महत्त्व है। अिस प्रकार आकारके
बदल जानेके बाद नये आकारको ही महत्त्व प्रदान किया जाता है। अुडदके
आटेके पशु बनानेके बदले गेहूके आटेके पिंड बनाये जाते है और फिर अुसमें नया
मसाला स्वीकार करनेकी तैयारी हो जाती है। अेक प्राचीन वचन है 'चलत्ये-
केन पादेन तिष्ठत्येकेन पण्डित।' अेक पैरको उठाकर आगे रखनेके लिए दूसरा
पैर अडिग और स्थिर रखना होता है। अुठाया हुआ पैर आगे स्थिर हो जाय
अुसके बाद पीछेके अडिग पैरके डिगनेकी या अुसे डिगानेकी बारी आती है। अिसी

लिअे धर्म-सस्थापक प्राप्त न हुअे हो।' अिसलिअे हमें धर्ममे ही समाज-सुधारके सिद्धान्त मिल सकते हैं। और अिन सिद्धान्तोका अुपयोग सर्वप्रथम हमें प्रगति सिद्ध करने, धर्मसस्थाको सुधारनेके लिअे ही करना चाहिये।

प्रगतिका अर्थ क्या है?—यह प्रश्न हमेशा अुठता है। जहा जीवनके आदर्श वार-वार वदलते है वहा प्रगतिकी दिशा निश्चित करना आसान नही होता। सामान्यत यह कहा जा मकता है कि प्रत्येक समयके लोगोको तात्कालिक जो कुछ वाछनीय मालूम हो अुसकी ओर जानेके लिअे आवश्यक परिवर्तन करना प्रगति है। लोगोको जो दिशा पसद होगी अुसी दिशामें वे जायगे। अेक ममय हमारे लोगोने मगीत और नृत्यकी निन्दा की थी। अुन्होने अिन दोनो कलाओको सामाजिक वुराअी मान लिया था। अुस समयके कुछ लोगोने अिन कलाओंके खिलाफ जोरोका आदोलन किया था। आज अुसी सगीत और नृत्यको अपनी मस्कृतिकी विशेषताओके रूपमें हम सीखते है और अुनका विकास करते है तथा दुनियाको अुनकी कदर करनेके लिअे निमत्रित करते है। अेक जमानेमे अपने वालकोको खेलकूदमें समय विगाडनेके लिअे हम सजा देते थे, आज खेलकूदमें जो विद्यार्थी भाग नही लेते अुनसे हम नाराज होते हैं। हमारी पोशाकके वारेमें भी यही वात लागू होती है। हमारे देशमे अेक अैसा जमाना भी हो गया है, जो मास और मदिराके सेवनमे ही प्रगति मानता था। आदर्श सदा झूलेकी तरह दो सिरोके वीच झूलते रहते है। फिर भी प्रगति जैसी कोअी स्थायी चीज अवश्य है। और सभी जमानोको वाछनीय लगे अैसे कुछ तत्त्वोका भी विकास होना चाहिये। अिसका विचार हम आगे करेगे।

सामान्यत यह देखा गया है कि समाजको स्थिरता और प्रगति दोनो तत्त्वोकी रक्षा करनी होती है। यदि स्थिरता न हो, तो सामाजिक सद्गुणोकी पूजी अेकत्र नही हो सकती, चरित्रका विकास नही हो सकता और मनुष्यका सामाजिक जीवनमें विश्वास भी नही वैठ सकता। अुलटे यदि हम अपरिवर्तन-वादी वन जाय, तो जीवनको जग लग जायगा, जीवन सड जायगा और सारे जीवन-रस सूख जायगे। स्थिरता और प्रगति ये अेकसाथ रहनेवाले तत्त्व कभी कभी श्रम और विश्रामकी तरह अेकके वाद अेक आते है। यह भी प्रगतिका अेक वडा सिद्धान्त है। अिन दोनोकी अपरिहार्यताको ध्यानमे रखकर ही सामाजिक जीवनके नियम वनाये जाने चाहिये। धर्मशास्त्रोने समय समय पर सामाजिक नियमोकी रचना की है। हमारे समाजकी मान्यता अैसी वना दी गअी है कि नियम अीश्वरके दिये हुअे है अथवा सामान्य वुद्धिसे परे रहनेवाले अलौकिक दृष्टिके लोग ही नियम वना सकते हैं। प्रत्यक्ष व्यवहारमें तो सभी लोग परिवर्तन करते हैं, किन्तु मान्यतामें सव लोग अिस विचारको ही प्रोत्साहन देते हैं कि धर्मकी दी हुअी समाज-व्यवस्थामें कोअी परिवर्तन करनेका अधिकार समाजको

जो मनुष्य दीर्घकालीन अितिहासके अध्ययनसे भूतकालके स्वरूपको अच्छी तरह जानता है और लोकस्थितिका सूक्ष्म और व्यापक निरीक्षण करनेके फल-स्वरूप वर्तमान कालकी वस्तुस्थितिसे पूर्ण परिचित होता है, अुसे — यदि अुसने शास्त्रीय वृत्तिका विकास अपने भीतर किया हो तो — समाजशास्त्रकी रचना करना आता है और अिस शास्त्रके वल पर वह आसानीसे यह समझ सकता है कि भविष्यका प्रवाह — विचार-प्रवाह तथा घटना-प्रवाह — किस दिशामें वहेगा। अैसे शास्त्रीय दृष्टिवाले मनुष्यको हम त्रिकालज्ञ कहते है। प्रत्येक देशके और प्रत्येक युगके सर्वोच्च नेता अिस प्रकार कम या अधिक मात्रामें त्रिका-लज्ञ होते ही हैं। और जो लोग अिस अर्थमे त्रिकालज्ञ रहे हैं, वे ही समाजकी नौकाको जीवन-सागरमें भलीभाति चला सके है।

अैसे मनुष्यमें अेक विशिष्ट शक्तिकी आवश्यकता होती है। वह है भविष्य-के आदर्शकी झाकी करनेकी शक्ति। जिस प्रकार जहाजका कप्तान अपने पासके नकशेके अनुसार जहाजको चलाता है, जिस प्रकार मकान बनानेवाले लोग अपने नकशेके अनुसार मकानकी सारी रचना करते है, जिस प्रकार महाकाव्यका कोअी कवि निश्चित किये हुअे अुद्देश्यके अनुसार अपने काव्यका विस्तार करता है, अुसी प्रकार समाजकी धुराको धारण करनेवाला, समाजका नेता अपने मनमें निश्चित किये हुअे आदर्शकी दिशामें समाजको नि शक भावसे ले जाता है। अुसके सामने अपने आदर्शका चित्र जितना स्पष्ट और जीवत होगा, अुतने ही विश्वासके साथ वह समाजका मार्गदर्शन करेगा। बुद्ध और महावीर अैसे ही समाज-सुधारक थे, अिसीलिअे वे अपने पीछे अितनी समर्थ सस्कृति छोड गये हैं।

लेकिन वादके लोग धर्मके रहस्यको भूलकर केवल रूढि और अपनी प्रतिष्ठासे चिपटे रहते है। अहिंसा-धर्मकी सर्वत्र विजय देखनेकी अिच्छा रखनेवाले जैनोमे जव धर्मके नाम पर मार-पीट होती है तव धर्म कलकित होता है। शम-दमका अुपदेश करनेवाले आचार्य जव क्रोधित होते है और किसीका सर्वनाश करनेकी प्रतिज्ञा लेते है, तव जिस धर्मके नाम पर अुनको प्रतिष्ठा मिली है वह धर्म गहरे सोचमें पड जाता है कि 'अव मै कहा जाअू ? जिनके आधारको मैने मुख्य माना था वे मेरे रक्षक होनेका दावा तो करते हैं, परन्तु अपने जीवनसे ही मेरा गला घोटते है!' महाराष्ट्रमें नागपुरके पास रामटेक नामक अेक स्थान है। वहाका अेक जैन मदिर देखने मै गया था। अुसके द्वार पर वदूक, तलवार आदि शस्त्र रखे गये थे और सिपाही अुस मदिरकी रक्षा करते थे। जिस तरह मदिरमें अेकत्र की हुअी धन-दौलतकी रक्षा जरूर होती थी, लेकिन अहिंसा-धर्मकी तो निरन्तर विडवना ही होती थी।

धन-दौलतके भडार और अहिंसाका मेल कभी वैठ ही नही सकता। यूरोपमे अहिंसावादी क्वेकरोको और भारतमें अहिंसावादी जैन लोगोंको

तरह समाजकी प्रगति होती आओी है। जो लोग अिस सिद्धान्तको जान लेते है, अुनकी समाज-सेवा करनेकी शक्ति खूब वढ जाती है।

आजका जमाना चर्चाका है। प्राचीन नियम यह था कि जिस वातके लिअे मनमे परम आदर हो, अुसकी चर्चा नही की जा सकती। माता, पिता या गुरुकी आज्ञा पर कोओी विचार किया ही नही जा सकता था—'आज्ञा गुरूणा ह्य-विचारणीया।' गुरुजनोके आचरणके काजी हम न वने, वे जो कुछ करते है वह अुत्तम ही है, 'वृद्धास्ते न विचारणीयचरिता' अिस वृत्तिका भी खूव विकास हुआ था। आज अेक भी वस्तु अितनी पवित्र नही रही, जिसकी चर्चा ही न की जा सके। सभी लोग सभी वस्तुओंकी चर्चा करे, अिसमे अेक प्रकारकी शिक्षा भी है और अनधिकार चेष्टा भी है। अिससे समाजका नेतृत्व क्षुद्र वृत्तियोको अुत्तेजित करनेवाले गैर-जिम्मेदार लोगोके हाथमे आसानीसे चला जाता है। परन्तु अिस दोपसे वचनेके लिअे यदि यह नियम वना दिया जाय कि 'अधिकारी पुरुष ही चर्चा करने योग्य माने जाने चाहिये', तो अिसके भी अपने अलग गुण-दोष है ही। अैसा करनेसे समाज-हितका विचार अेक तरहसे परिपक्व रूपमें होता है, लोगोमे वुद्धिभेद अुत्पन्न नही होता, स्थिरता वनी रहती है और समाज प्रचण्ड सामर्थ्यका विकास कर सकता है। परन्तु अैसी स्थितिमें लोक-शिक्षण वहुत वार रुक जाता है और नेताओकी ही अेक जाति खडी हो जाती है। समाजकी कार्यशक्ति वढने पर भी अुसकी सूझ-वूझकी शक्तिको जग लग जाता है और नेतावर्गका नैतिक अध पतन होने पर सारा समाज टूट जाता है।

*

धार्मिक सुधार करनेवाले लोग परम धार्मिक और त्रिकालज्ञ होने चाहियें। जो लोग धर्मके विधि-विधानमें और वाह्य प्रथाओमे क्राति कर सकते है, अुनके पास धर्मकी आत्मा अखण्ड जागृत होनी चाहिये। अुन्हे धर्मतत्त्वका आकलन स्वय करना चाहिये। अैसे लोग हर जमानेमें और हर देशमे अथवा समाजमें अुत्पन्न होते ही है, यह धर्मग्रन्थोमें लिखा हुआ है और अितिहासमें देखा गया है।

त्रिकालज्ञ शब्दका अर्थ हमें भलीभाति समझ लेना चाहिये। 'लाखो वर्ष पहले कौन-कौनसी घटनाये घटी है और लाखो वर्ष वाद कौन-कौनसी घटनायें घटनेवाली है, प्रत्येक व्यक्ति क्या क्या कर चुका है और आगे क्या करनेवाला है, यह सव विस्तारसे जाननेवाला मनुष्य त्रिकालज्ञ है'—अैसी जड मान्यता समाजमें फैली हुओी है। अीश्वरकी ओरसे सन्देश प्राप्त करनेका दावा करनेवाले मुहम्मद पैगम्वर कहते है कि दूसरे क्षण क्या होनेवाला है यह न तो खुदाने अपने नवियोसे कह रखा है और न अपने फरिश्तोसे। भविष्य-सम्वन्धी ज्ञान खुदाने अपने पास ही रखा है। कहनेका मतलव यह है कि सर्वोच्च मनुष्यको भी भविष्यका व्योरेवार ज्ञान प्राप्त नही हो सकता। तव त्रिकालज्ञका अर्थ क्या है?

धर्म-संस्करण : १

कुछ लोग कहते है कि हमारा धर्म प्राचीनसे प्राचीन है, अिसलिअे वह अच्छा है। कुछ लोग कहते हैं कि हमारा धर्म अतिमसे अतिम है, अिसलिअे वह ताजा है। कुछ और लोग कहते है कि अमुक पुस्तक आद्य धर्मग्रन्थ है, अिसलिअे अुसमें सब कुछ आ जाता है। दूसरे लोग कहते है कि अमुक ग्रन्थ अीश्वरके द्वारा जगतको दिया हुआ अतिमसे अतिम धर्मग्रन्थ है, अिसलिअे अुसे स्वीकार करना चाहिये।

सनातन-धर्मी अिस बारेमें दूसरी ही दृष्टिसे विचार करते है। आजकी सृष्टिका आदि और अत हो सकता है। धर्मग्रथोका भी आदि और अत हो सकता है। परन्तु धर्म अनादि और अनत है, अिसीलिअे वह सनातन कहलाता है। सनातनका अर्थ क्या है? जो अिस सृष्टिके आरभसे पहले भी था और अिस सृष्टिके अतके बाद भी रहेगा वह सनातन है। अिस अर्थमे केवल आत्मा और परमात्मा ही सनातन माने जायगे।

लेकिन सनातनका अेक दूसरा अर्थ है। जो स्वभावसे ही नित्य-नूतन है, वह सनातन होता है। जो जीर्ण होता है वह मर जाता है, जो बदलता नही वह सड जाता है, जिसकी प्रगति नही होती अुसकी अधोगति होती है। रुधी हुअी हवा बदबू करती है। न बहनेवाला पानी स्वच्छ नही रहता। पहाडके पत्थर बदलते नही, अिसीलिअे धीरे धीरे अुनका चूरा हो जाता है। घास बार बार अुगती है, अिसलिअे वह ताजी रहती है। जगलकी वनस्पति हर साल सूख जाती है और हर साल फिरसे अुगती है। बादल खाली होते हैं और फिर पानीसे भर जाते हैं। प्रकृतिको नित्य-नूतन बननेकी कला प्राप्त हो गअी है, अिसीलिअे प्रकृति सदा नवयौवना दिखाअी देती है।

अिस सिद्धान्तको जाननेके कारण ही सनातन धर्मके व्यवस्थापकोने युगधर्मके अनुसार भिन्न-भिन्न धर्मोकी व्यवस्था की है। कालकी महिमा जाननेके कारण ही वे कालको जीत सके है। धर्मके आध्यात्मिक सिद्धान्त अचल और अटल है। परन्तु अुनके व्यवहारको देश-कालके अनुसार बदलना पडता है। अिसका ज्ञान होनेके कारण धर्मकारोने हिन्दू धर्मकी बुनियादी रचनामें ही परिवर्तनका तत्त्व रख दिया है। अिसीलिअे वह धर्म सनातन पद प्राप्त कर सका है। अनेक बार क्षीणप्राण होने पर भी वह निष्प्राण नही हुआ है। मनुष्यकी जडताके कारण अनेक बार अिस धर्ममें सडाघ पैठी है, फिर भी किसी प्रकारके विप्लवके बिना अुसका पुनरुद्धार हुआ है।

धनी देखकर मेरे मनमें शका होती है कि अिन लोगोकी समझमे अहिंसा-धर्म अच्छी तरह आता होगा या नही? गरीबोका वृत्तिच्छेद किये बिना कोअी धनवान हो ही नही सकता। और वृत्तिच्छेदमे शिरच्छेदसे कम हिंसा नही है। यदि धर्माचार्य धर्मकी विजय देखना चाहते हो, तो अुन्हे समाजकी अन्याय-मूलक व्यवस्थाको बदलना ही होगा और अैसी स्थिति लानेका प्रयत्न करना होगा जिसमें प्रत्येक मनुष्यको अुसकी मेहनतका पूरा फल मिले।

यह अच्छा ही हुआ कि प्राचीन कालमें आहारशास्त्रके सूक्ष्म नियम बनाये गये। परन्तु आज वे नियम बदलने ही चाहिये। नया आहारशास्त्र बडी तेजीसे विकास कर रहा है। धर्मकी दृष्टिसे अुसका लाभ अुठाकर धर्माचार्योको चाहिये कि वे अपने समाजको नया रास्ता दिखायें। मेरी समझमें यह बात नही आती कि प्याज, आलू, बैंगन या टमाटर न खानेमें धर्म माननेवाले लोग कीडोको अुबाल कर तैयार किये हुअे रेशमके कपडोका घरमें और अुपाश्रयमें कैसे अुपयोग करते होंगे। लेकिन यह तो तुलनामें अेक गौण बात हुअी। आज स्त्रियो, हरिजनो, गरीबो, किसानो और मजदूरोके प्रति जो जीवन-व्यापी अन्याय चल रहा है, अुसे रोकनेके लिअे धर्मवीरोको कटिबद्ध होना चाहिये।

जैनका अर्थ है वीर। अुसे तो सदा लडनेकी तैयारी रखनी ही चाहिये। अुसका शस्त्र अहिंसा है, लेकिन अिस कारण कम वीरतासे अुसका काम नही चल सकता। जिस धर्मकी स्थापना अेक महान सुधारकने की अुसके अनुयायी स्वय ही सुधारका विरोध करे, यह अेक आश्चर्यजनक घटना है। बुद्ध और महावीरने जातिभेदका विरोध किया था, अस्पृश्यताकी अवगणना की थी, फिर भी अुनके अनुयायी जातिके अभिमानसे ओतप्रोत है और अस्पृश्यताको टिकाये रखनेमें धर्म समझते है!

यह स्थिति देखकर ही अेक मित्रने कहा है 'सत लोग धर्म चलाते हैं और रूढि-पूजक आचार्य अुस धर्मका खून करते हैं और बादमे अुसकी 'ममी' (सुरक्षित शव) की पूजा करते हैं।' मैं नही मानता कि अैसा होना ही चाहिये। अिसीलिअे मेरी यह आशा है कि धर्माचार्य अपनी प्रतिष्ठाको नही परन्तु धर्मको जीवत रखनेके लिअे अपना सर्वस्व न्योछावर कर देंगे।

३०

धर्म-संस्करण : १

कुछ लोग कहते है कि हमारा धर्म प्राचीनसे प्राचीन है, अिसलिअे वह अच्छा है। कुछ लोग कहते है कि हमारा धर्म अतिमसे अतिम है, अिसलिअे वह ताजा है। कुछ और लोग कहते है कि अमुक पुस्तक आद्य धर्मग्रन्थ है, अिसलिअे अुसमें सब कुछ आ जाता है। दूसरे लोग कहते है कि अमुक ग्रन्थ अीश्वरके द्वारा जगतको दिया हुआ अतिमसे अतिम धर्मग्रन्थ है, अिसलिअे अुसे स्वीकार करना चाहिये।

सनातन-धर्मी अिस बारेमें दूसरी ही दृष्टिसे विचार करते हैं। आजकी सृष्टिका आदि और अत हो सकता है। धर्मग्रथोका भी आदि और अत हो सकता है। परन्तु धर्म अनादि और अनत है, अिसीलिअे वह सनातन कहलाता है। सनातनका अर्थ क्या है? जो अिस सृष्टिके आरभसे पहले भी था और अिस सृष्टिके अतके बाद भी रहेगा वह सनातन है। अिस अर्थमें केवल आत्मा और परमात्मा ही सनातन माने जायगे।

लेकिन सनातनका अेक दूसरा अर्थ है। जो स्वभावसे ही नित्य-नूतन है, वह सनातन होता है। जो जीर्ण होता है वह मर जाता है, जो बदलता नही वह सड जाता है, जिसकी प्रगति नही होती अुसकी अधोगति होती है। रुधी हुअी हवा बदबू करती है। न बहनेवाला पानी स्वच्छ नही रहता। पहाडके पत्थर बदलते नही, अिसीलिअे धीरे धीरे अुनका चूरा हो जाता है। घास बार बार अुगती है, अिसलिअे वह ताजी रहती है। जगलकी वनस्पति हर साल सूख जाती है और हर साल फिरसे अुगती है। बादल खाली होते हैं और फिर पानीसे भर जाते है। प्रकृतिको नित्य-नूतन बननेकी कला प्राप्त हो गअी है, अिसीलिअे प्रकृति सदा नवयौवना दिखाअी देती है।

अिस सिद्धान्तको जाननेके कारण ही सनातन धर्मके व्यवस्थापकोने युगधर्मके अनुसार भिन्न-भिन्न धर्मोकी व्यवस्था की है। कालकी महिमा जाननेके कारण ही वे कालको जीत सके है। धर्मके आध्यात्मिक सिद्धान्त अचल और अटल हैं। परन्तु अुनके व्यवहारको देश-कालके अनुसार बदलना पडता है। अिसका ज्ञान होनेके कारण धर्मकारोने हिन्दू धर्मकी बुनियादी रचनामें ही परिवर्तनका तत्त्व रख दिया है। अिसीलिअे वह धर्म सनातन पद प्राप्त कर सका है। अनेक बार क्षीणप्राण होने पर भी वह निष्प्राण नही हुआ है। मनुष्यकी जडताके कारण अनेक बार अिस धर्ममें सडांध पैठी है, फिर भी किसी प्रकारके विप्लवके विना अुसका पुनरुद्धार हुआ है।

सामाजिक व्यवस्थामें अथवा धार्मिक विधियोके रिवाजोमे समयके अनुकूल परिवर्तन होना चाहिये, परन्तु जबसे हिन्दू समाजमें अबुद्धिने जड जमाओ है तबसे अैसे परिवर्तनोकी ओर हिन्दू लोग शकाकी दृष्टिसे देखने लगे है। पूर्वजोकी अपेक्षा हमारा सयानापन बढ ही नही सकता, पूर्वज तो त्रिकालका विचार करनेवाले थे, अुनकी रची हुअी व्यवस्थामे यदि हस्तक्षेप करेगे तो पता नही कौनसे सकटमें हम पड जायगे — अैसा कायर भय अथवा नास्तिकता हमारे भीतर घुस गओ हैं। सच पूछा जाय तो परिवर्तनका भय सनातन धर्मके स्वभावके विरुद्ध है। गहरे विचारके विना चचलताके कारण किये जानेवाले परिवर्तनकी कोअी हिमायत नही करेगा, परन्तु अज्ञानताके कारण प्रगतिसे डरकर निष्प्राण स्थिरता खोजनेमें पुरुषार्थ नही बल्कि मृत्यु ही है।

अपने धर्मको त्याग कर दूसरोका धर्म ग्रहण करना अेक बात है, और अपने तथा दूसरोके धर्मकी जाच करके अपने धर्ममें आवश्यक परिवर्तन और सुधार करना दूसरी बात है। अीश्वर प्रत्येक युगमें हमारे सामने नअी नअी परिस्थितिया खडी करके हमारी बुद्धिशक्तिको सक्रिय बनाये रखता है और अिस प्रकार धर्मके मूल सिद्धान्तोके हमारे परिचयको जाग्रत रखता है। यदि धर्मके बाह्य आकारमें परिवर्तन न हो, तो अुसके भीतरी तत्त्वका शुद्ध आकलन हो ही नही सकता। हमारे जमानेमें यदि पूर्वजोकी ही नकल करनेका काम रह जाय, नया कुछ भी करना, जानना अथवा खोजना बाकी न रह जाय, तब तो कहा जायगा कि हमारी शताब्दी निरर्थक और वध्या ही सिद्ध हुअी है।

हमारे देशमें प्राचीन कालसे हर तरह अेक-दूसरेसे अलग पडनेवाले धर्म और वश साथ साथ रहते आये हैं। अैसे सहवासके कारण हमें हर समय धर्म-प्रवचन अलग अलग ढगसे करना पडा है। जिस प्रकारकी शका दूर करनी हो, जिस प्रकारके दोष मिटाने हो, अुसीके अनुसार हमें अेक ही धर्म-सिद्धातको नअी नअी भाषामें और नअे नअे रिवाजोके रूपमें प्रस्तुत करना पडता है। अिसीलिअे हमारा धर्म अनेक पहलुओवाले तेजस्वी रत्नके समान दिव्यसे दिव्यतर बनता रहा है।

जब हम विदेशी सत्ताके अधीन रहते है तब धर्मको अत्यत कृत्रिम और हीन वातावरण सहन करना पडता है। जब किसी देश पर विदेशी लोगोका आक्रमण हो रहा हो अुस समय धर्म-सस्करणमें स्वाभाविक विकास नही रहता। हम कोअी परिवर्तन करने जाय और हमारे विरोधी हमारी कमजोरी देखकर मर्मस्थान पर आघात करे तो? — यह भय हमेशा बना रहता है। विदेशी सत्ता स्वभावत समभावसे शून्य होती है। वह रूढियोको तो टिके रहने देती है, लेकिन हमारी शक्तिको बरदाश्त नही कर सकती। अिसीलिअे विदेशी सत्ताके कानून कहते हैं 'तुम्हारे जो रीति-रिवाज परम्परासे चले आये हैं अुन्हीको सरक्षण मिलेगा। तुम नये रिवाज चालू नही कर सकते। तुम जहा हो वहासे हट नही सकते। पुराने

कलेवरको हमारा अभय-दान है। लेकिन यदि हम तुम्हारे प्राणको, तुम्हारी शक्तिको राज्यकी मान्यता दें, तव तो हमारा प्रभुत्व तुम्हारे देशमें टिक ही नही सकता।' अैसी समभाव-शून्य तटस्थतामें सडी-भुसी रूढिया भी कानूनकी कृत्रिम सहायतासे टिक सकती हैं।

ब्रिटिश राज्यके कारण हमारे यहा 'हिन्दू लॉ' के अमलमें यह स्थिति कदम कदम पर बाधक सिद्ध हुअी है। न्यायमूर्ति तेलग अकसर अिस स्थितिके विरुद्ध अपनी नाराजी और खीज प्रकट किया करते थे। प्रत्येक धर्म और प्रत्येक समाज-को अपनी व्यवस्थामें चाहे जैसा परिवर्तन करनेका अधिकार होना ही चाहिये। परन्तु अैसा करनेके लिअे जो स्वतत्रता, अेकता और योजना-शक्ति आवश्यक है, वह अुस अुस समाजमें होनी चाहिये। वडीसे वडी कीमत चुका कर भी हमे अिन गुणोका विकास करना चाहिये। हिन्दू धर्मको यदि टिकाये रखना हो और जगतमें अुसका स्वाभाविक स्थान अुसे फिरसे दिलाना हो, हिन्दू धर्मको यदि समाजके लिअे कल्याणकारी वनाना हो, तो हमें साहसके साथ अुसका मैल धो डालना चाहिये। अैसे कितने ही रिवाज और अधविश्वास हमारे समाजमें घुस गये हैं, जो धर्मके सनातन सिद्धान्तोके विरोधी हैं और जिनकी वजहसे समाजकी सारी प्रगति रुक जाती है। अिन सबको तुरन्त जलाकर भस्म कर देना चाहिये।

अस्पृश्यता अेक अैसी ही वुराअी है। जातिके विषयमें अुत्पन्न होनेवाला अहकार और प्रेमकी सकुचितता, व्यापक आत्मीयताका अभाव — यह दूसरी वुराअी है। जहा रूढिके नाम पर दयाधर्मका खून होता है, जहा आत्मा अपमानित होती है, जहा धर्मप्रीतिके स्थान पर लालच और भयको स्थान दिया जाता है, वहा धर्मको अिन सबके खिलाफ अपनी अधिकारपूर्ण बुलद आवाज अुठानी चाहिये। हर जगह सरकारी अधिकारियो और कर्मचारियोको रिश्वत देकर अपना मतलव निकालना सीखे हुअे लोग अेक अीश्वरको छोडकर अुसके स्थान पर अनेक भयानक शक्तियोको प्रलोभन देनेमें अपना धर्म समझने लगे। निरकुश, क्रोधी, तरगी और खुशामद-पसद अधिकारियोके जुल्ममें रहकर नामर्द और कायर वने हुअे लोगोने देवी-देवताओके स्वभावके बारेमे भी वैसी ही निरकुशता, क्रोध आदिकी कल्पना करके अुनके प्रति भी अपने भीतर डरपोककी वृत्ति वढा ली। अिस प्रकार हमने धर्ममे ही अधर्मका साम्राज्य स्थापित कर दिया। सत्यना-रायणसे लेकर शीतला माता तकके सब देवी-देवताओको हमने डरानेवाले गुडो (bullies) का रूप दे दिया। आकाशके तारे और ग्रह, जगलके पेड-पौधे और वनस्पतिया, हमारे भाअीवद जैसे पशु और पक्षी, अुषा और सध्या, ऋतु और सवत्सर — सवमें हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि परम मागल्यकी प्रेममय विभूतियोके दर्शन करते थे और अुनके साथ आत्मीयता तथा अेकताका अनुभव करते थे, लेकिन हमें आज अिन सवमें शापका और कोपका भय ही भय दिखाअी देता

है। धर्मके शुद्ध और अुदात्त स्वरूपको जाननेवाले लोग हमारी धार्मिक विधियोंमें निहित काव्यको समझ सकते है, परन्तु अज्ञानी जन-समुदाय अुस काव्यको सनातन सिद्धान्त अथवा वास्तविक स्थिति मानकर विचित्र अनुमान लगा लेता है और धर्मके कार्यको विफल वना देता है।

आज हिन्दू धर्मका अुत्कर्ष चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यका पहला कर्तव्य यह है कि वह अपने समाजमें धर्मका शुद्ध स्वरूप प्रकट होनेकी आतुरतासे प्रतीक्षा करे। अिस वातको हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और दूसरोको समझाना चाहिये कि जिस धर्ममे सत्यकी निर्भयता और प्रेमकी अेकता नही है, जिसमे नि स्वार्थ त्यागकी भावना नही है, जिसमें अुदारताकी सुगध नही है, वह धर्म नहीं है। अव हिन्दू धर्मके सस्करण और परिष्करणका समय आ गया है, क्योकि अुसके अूपर जमी हुअी अशुद्धिकी परते अव अुसका दम घोटने लगी है।

२६–१०–'४२

३१

धर्म-संस्करण : २

१

अेकमात्र धर्म ही मानव-जीवनका सव पहलुओंसे और समग्र रूपमें विचार करता है। जीवनका स्थायी अथवा अस्थायी अेक भी अग अैसा नही है, जिस पर विचार करना धर्म अपना कर्तव्य नही मानता।

अिसलिअे धर्म मनुष्यके सनातन जीवन जितना ही अथवा अुससे भी अधिक व्यापक होना चाहिये, और चूकि समस्त जीवन अुसका क्षेत्र है, अिसलिअे अुसे अत्यत अुत्कट रूपमें जीवत और प्राणवान होना चाहिये।

आज जगतके जितने भी प्रसिद्ध धर्म है, वे अधिकाश अैसे व्यापक धर्म हैं। अपनी स्थापनाके समय तो वे सव जीवत थे ही। परन्तु धार्मिक पुरुषोंने अुनकी चेतनाको वार-वार जगाकर अुन्हे जीवत वनाये रखा है। सिगडीकी आग जिस प्रकार स्वाभाविक रूपमें ही वार-वार मद पड जाती है और अिसलिअे वार-वार अुसमे कोयले डालकर और फूककर अुसका सस्करण करना पडता है, अुसे प्रज्वलित रखना पडता है, अुसी प्रकार समाजमें धर्मतेजको जाग्रत रखनेके लिए धर्म-परायण समाज-पुरुषोंको अुसे फूकने और अुसमें जीवन डालनेका काम करना पडता है। यह काम यदि समय समय पर न किया जाय, तो धर्म-जीवन क्षीण और विकृत हो जाता है, और धर्मका क्षीण और विकृत रूप अधर्मके जितना ही हानिकारक होता है। धर्मको चेतनावान और

पज्वलित रखनेका कार्य केवल धर्म-परायण व्यक्ति ही कर सकते हैं। यह शक्ति न तो धर्मग्रन्थोमे होती है, न धार्मिक रीति-रिवाजो या सस्कारोमे होती है, न धार्मिक सस्थाओमें होती है और न धर्मको सहारा देनेवाली राज्य-व्यवस्थामें होती है। शास्त्रग्रन्थ, सस्कार, रीति-रिवाज और धार्मिक तथा राजकीय सस्थायें धार्मिक जीवनके लिअे कम-अधिक मात्रामे अुपयोगी है जरूर, यह भी सच है कि धार्मिक वातावरणको स्थिर बनानेमें अुनकी सेवा बहुमूल्य सिद्ध हुअी है। परन्तु मूल शक्ति तो धर्मप्राण अृषियोकी, सतोकी और महात्माओकी ही होती है। पवित्र मनुष्य-हृदय ही धर्मका अन्तिम आधार है। अुपनिषद्का यह वचन बिलकुल यथार्थ है 'धर्मशास्त्र महर्षीणा अत करण-सभृतम्।'

धर्म-जिज्ञासा और धर्म-चिन्तन मनुष्यका स्वभाव ही है। अिस कारणसे प्रत्येक युगमें और प्रत्येक प्रदेशमे अुन्नतिकी कक्षाके अनुसार मनुष्यके हृदयमें धर्मका आविर्भाव होता ही रहा है। यह हृदय-धर्म कितना ही कलुषित, कितना ही मलिन क्यो न हो जाय, फिर भी मूल वस्तु तो शुद्ध ही रहती है। अशुद्ध सोना पीतल नही है, और पीतल चाहे जितना शुद्ध, चमकीला और सुडौल हो, फिर भी वह सोना नही है। अिसी प्रकार केवल बुद्धिके जोर पर खडा किया गया, लोगोके हृदयमे रहनेवाले राग-द्वेषसे लाभ अुठाकर आरभ किया गया और थोडे या बहुतसे सामर्थ्यवान लोगोके स्वार्थका पोपण करनेवाला धर्म सच्चा धर्म नही है। असस्कारी हृदयकी क्षुद्र वासना और दभसे अुत्पन्न होनेवाली विकृतिको ढकनेवाला शिष्टाचार अथवा चतुराअीसे भरे तर्क द्वारा किया हुआ अुसका समर्थन भी धर्म नही है। अज्ञान (अर्थात् अल्पज्ञान), भोलापन और अधश्रद्धा —अिन तीन दोपोसे कलुषित बना हुआ धर्म अधर्मकी कक्षाको पहुच जाय, यह अेक बात है, और मूलमें ही जो धर्म नही है वह केवल चालाकीसे धर्मका रूप धारण कर ले, यह दूसरी बात है। मनुष्य-समाज अब जितना प्रौढ और अनुभवी हो गया है कि मानव-अितिहासमें धर्मके अूपर कहे गये दोनो प्रकार व्यापक रूपमे पाये जाते हैं। परन्तु अिन दोनो प्रकारोका पृथक्करण करके अिनके सच्चे स्वरूपको पहचाननेका कष्ट अभी तक मनुष्यने नही किया है।

हृदय-धर्म जब बुद्धि-प्रधान लोगोमें अपना कार्य आरभ करता है, शिष्ट लोगो द्वारा मान्य किया हुआ धर्म बनता है और अिसलिअे जब वह सस्थाबद्ध हो जाता है तब अुसके शास्त्र रचे जाते हैं, शास्त्रोका अर्थ लगानेवाली मीमासा-पद्धति अुत्पन्न होती है और अतिम निर्णय देनेवाले शास्त्रज्ञोका अेक वर्ग खडा होता है, अथवा पोप या शकराचार्यके समान अधिकार-रूढ व्यक्तियोको मान्यता प्राप्त होती है।

धर्मको शास्त्रबद्ध और सस्थाबद्ध बनानेका कार्य बुद्धि-प्रधान और व्यवहार-कुशल लोगोके हाथो होता है, अिसलिअे धर्मकी स्वाभाविक भविष्योन्मुख दृष्टि

क्षीण हो जाती है और अुस पर भूतकालकी ही परतें चढ जाती है। भूतकालमें सदा अग्निकी अपेक्षा भस्म ही अधिक होती है, अिसलिअे धर्मतेज मद पड जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक धर्मका समय समय पर सस्करण या परिष्करण करना जरूरी हो जाता है।

सत तुकाराम जव वाजार जानेको निकलते थे तव अुनकी सज्जनताका लाभ अुठानेके लिअे कअी लोग अपनी अपनी तेलकी नली तेल लानेके लिअे अुन्हें सौंप देते थे और तुकाराम भी सतोपके साथ अुन नलियोकी भारी मालाको गलेमें डालकर सौंपा हुआ काम नियमित रूपसे पूरा कर देते थे। जन-स्वभाव ही अैसा होता है। कोअी वालक या कोअी आदमी किसीकी वात सुनता है, यह मालूम होते ही निकम्मे लोगोका समाज अुससे अपना काम करवानेके लिअे तैयार हो जाता है। कोअी नाव या जहाज नियमित रूपसे और तेजीसे अपने नियत स्थान पर पहुचता है, अैसा पता चलने पर लोग अुसीमें अपना माल भरनेका आग्रह रखते है—और वह भी अिस हद तक कि अुसकी गति मद पड जाय और अत्यधिक वोझसे वह डूवने लगे! धर्मकी भी अिसी तरहकी सार्वभौम अुपयोगी शक्तिको देखकर हर गरजमद आदमीने अपनी गरजको किसी न किसी रूपमें धर्मके गलेमे लटकाया है। अिस कारणसे भी धर्मका तेज वार-वार हीन और क्षीण होता आया है।

जिस प्रकार कोअी चालू दुकान अपनी तरक्कीको वनाये रखने और वढानेके लिअे पुराना और निकम्मा हो चुका माल वार-वार हटाया करती है और केवल पडे रहनेके कारण विगडे हुअे मालको साफ-स्वच्छ करके अुजला और चमकीला वना देती है, अुसी प्रकार धर्मका भी वार-वार सस्करण और परिष्करण करना चाहिये। परन्तु यह सस्करण अैसे कुशल और धर्मज्ञ समाज-सेवको द्वारा ही होना चाहिये, जिनमे खरे सोनेको परखने और अुसे सुरक्षित रखनेकी शक्ति है। आज दुनियामें वढी हुअी अधिकतर प्रचलित नास्तिकताका मुख्य कारण धर्म-सस्करणका अभाव ही है।

२

किसी भी समाजके वृद्ध अथवा क्षीणवीर्य होनेके मुख्य कारण दो हैं अिन्द्रियपरायण विलासिता और धर्म-जडता।

समाज जव विलासी वन जाता है तो अुसके पासकी धन-दौलत अुसके लिअे पर्याप्त नही होती, अुसका पुरुषार्थ अपने आप घट जाता है और 'अैसा हो तो भी क्या और वैसा हो तो भी क्या? किसीमें कुछ नही है' अिस तरहकी निष्क्रियता और आलसीपन अुस पर सवार हो जाता है। अुसके वाद नये नये अनुभव लेनेके वजाय वह प्राचीन अनुभवोके वारेमें कृत्रिम तथा दभपूर्ण आदर और आग्रहको वढाकर अुन्हे ढालके रूपमें अपने सामने रखता है।

दूसरी ओर जब मनुष्यमें बौद्धिक जागृति मद पड जाती है और प्रयोगकी अपेक्षा प्रामाण्य पर ही अधिक भार देनेकी वृत्ति बढ जाती है, तब समाजमें अेक प्रकारकी धर्म-जडता अुत्पन्न होती है। यह धर्म-जडता दिखती तो है धर्माभिमान जैसी ही, परन्तु वास्तवमें अुसका रूप लापरवाहीका होनेसे वह अेक प्रकारकी नास्तिकता ही होती है। अनुभव यह नही बताता कि अभिमान और आग्रहके मूलमें सच्चा आदरभाव अथवा सच्ची श्रद्धा होती ही है।

आज भारतमे ग्रामीण समाजकी दुर्दशाका कोअी पार नही है। शहरोसे विदेशी माल और मौज-शौककी चीजें गावोमें पहुचती है, लेकिन अुद्योग-धन्धे नही पहुचते। शहरोका अुडाअूपन, असस्कारिता तथा अन्य समाज-घातक दुर्गुण गावोमें तेजीसे फैलने लगे है। लेकिन शहरोमें जो धार्मिक विचार-जागृति, राजनीतिक प्रगति और समाज-सुधार कुछ अशोमें दिखाअी देता है, अुसका प्रभाव बहुत ही कम मात्रामें गावोमें पहुचता है। जिस हिन्दू धर्मसे और आर्य तत्त्वज्ञानसे आज हम जगतको प्रभावित और चकित कर देते है, वह धर्म और वह तत्त्वज्ञान जिस विकृत रूपमें आजके ग्राम-समाजमें प्रचलित है अुसे देखकर यही कहना पडेगा कि 'नेद यदिदमुपासते।' देश-देशान्तरमे प्रशसा पानेवाला हमारा धर्म और गावोमें पाला जानेवाला धर्म अेक है ही नही। गावोमे कल तक सच्ची धर्मनिष्ठा, पवित्र आस्तिकता और अूचा चरित्र-बल था, आज भी कही कही अिनके अवशेष दिखाअी पडते हैं। परन्तु अबुद्धि, जडता और छिपी नास्तिकताका ही साम्राज्य वहा सर्वत्र फैलता दिखाअी दे रहा है। अिस कारणसे गावके समाज-मानसमे वृद्धत्व अधिक मालूम होता है। गावोमें अज्ञान है, रोग है, गरीबी है। अिन तीनोको यदि गावोसे हटाया नही गया, तो ग्राम-समाज अब टिक ही नही सकेगा। परन्तु प्रश्न यह है कि ज्ञान, स्वास्थ्य और अुद्योग बाहरसे गावके लोगो पर कहा तक लादे जा सकते है? बाहरसे लादे जानेवाले अुपायोकी अेक मर्यादा होती है। अिस तारक त्रिपुटीका स्वीकार गावके लोगोको स्वेच्छासे ही करना चाहिये। और तीनोका स्वेच्छासे स्वीकार हो अिसके पूर्व ग्राम-समाजका वृद्धत्व दूर होना चाहिये। अुस समाजमें अुत्साह और जागृति आनी चाहिये। धर्म-सस्करणके बिना यह बात सभव नही होगी। अत दूसरी सब बातोसे पहले गावोमे धर्म-सस्करणका समुचित प्रयत्न होना चाहिये।

गावोमें जिस धर्मका पालन होता है अुसमें भय, रिश्वत, दैववाद और जतर-मतरका कर्मकाड ही मुख्य होता है — फिर वह धर्म हिन्दुओंका हो, मुसलमानोका हो या औसाअियोका हो। गावके लोगोको अपनी दुर्बलताका, अज्ञानका, भोलेपनका और अनाथ स्थितिका अनुभवसे अुत्पन्न अितना कडवा ज्ञान होता है कि वे स्वाभाविक रूपमे ही शक्तिके अुपासक बन जाते है, फिर भले वे लोग जैन हो या लिंगायत हो। अिस अज्ञान-मूलक शक्तिपूजासे ही जादू-टोने और

जतर-मतर पर लोगोकी आस्था जमती है। धर्म यानी वलवानकी आराधना अथवा खरीदा हुआ अुनका सरक्षण — सामान्य जनता धर्मका यही अर्थ समझती है।

धर्मके द्वारा मागल्य पर मनुष्यकी श्रद्धा वढानी होती है, चरित्रकी तेजस्विताको स्वाभाविक वनाना होता है। ससारके अनुभवमें पद-पद पर जो विषाद प्राप्त होता है अुसे दूर करनेमे समर्थ दैवी आश्वासन प्राप्त करना होता है और जीवनके अगभूत प्रत्येक तत्त्वका नूतन दृष्टिसे नया ही मूल्याकन करना होता है। सफलता और निष्फलताके खयालोको ही वदल कर अिस भौतिक जगतमे आध्यात्मिक स्वातत्र्य सिद्ध करना होता है।

सैद्धान्तिक विवेचनकी दृष्टिसे यह दृष्टिभेद वहुत कठिन मालूम होगा। लेकिन जहा हृदयके साथ हृदय वात करता है वहा अुन्नत भूमिकाका आमत्रण हृदय पर गहरा असर करता है, और अेक वार हृदयमे परिवर्तन हो गया कि फिर किसी भी अुपायसे अुससे पीछे नही हटा जा सकता। हृदयका अैसा आमत्रण देनेवाले व्यक्तिके अपने हृदयमें किसीके वारेमें तुच्छताका भाव नही होना चाहिये। हमारा आमत्रण अमोघ है, अैसी अमर आस्तिकता अुसमें होनी चाहिये। साथ ही मनुष्यमात्रके हृदयके वारेमें अुसके दिलमें प्रेम और आस्था — आदर होना चाहिये।

[धर्मज्ञान देते या लेते समय अुसे ग्रहण करनेवालेके अधिकारके विपयमें आज तक अपार चर्चा हुअी है। लेकिन अव धर्मज्ञान देनेवाले व्यक्तिके अधिकारकी गहरी चर्चा करनेके दिन आये है। अूपर वताअी हुअी आस्तिकता जिन लोगोमें हो, अुन्हींको धर्मवोध और धर्म-सरक्षणका कार्य अपने सिर लेना चाहिये।]

आज गावोमे धर्मान्धताके रूपमें नास्तिकता कितनी फैली हुअी है, अिसका सच्चा खयाल होने पर मनको गहरा आघात ही लगना चाहिये — और लगता भी है।

प्रत्येक धर्म अनेक तरहके जीवन-काव्यसे भरपूर होता है। सच पूछा जाय तो धर्मज्ञानका समर्थ वाहन दलील या युक्ति और तर्क नही है, अुसका सच्चा वाहन काव्य है। अिसलिअे काव्य-विहीन धर्म हो ही नही सकता। परन्तु जहा जहा समाजमे अज्ञान और जडताका साम्राज्य होता है वहा धार्मिक काव्यके शब्दार्थको ही सच्चा मान लिया जाता है। और अपने अज्ञानके कारण मनुष्य जहा न हो वहा भी गूढता और जादूका आरोपण करने लगता है। अिस वृत्तिसे अधिक धर्मविघातक वृत्ति कोअी हो सकती है या नही, अिसमें मुझे शका ही है। अिसके विपरीत, धर्मके विपयमे वढनेवाले अिस पागलपनसे अूवे हुअे लोग अैसे मौको पर धर्ममें भरे हुअे काव्यको जडसे मिटा देनेका निरर्थक और निष्फल प्रयत्न करते है। सच्चा अुपाय तो यह है कि लोगोकी वुद्धिको तीव्र वनाया जाय और अुनकी काव्यरसिकताको विवेकपूर्ण वनाकर धर्ममें काव्यकी वृद्धि की जाय। लोगोकी काव्यरसिकता वढने पर वे धर्मको आसानीसे समझ सकेंगे और धर्ममे घुसे हुअे अधविश्वासोको भी पहचान सकेंगे।

परन्तु यह सब करनेके लिअे ज्ञानवान लोगोको शहरी आदतें छोडकर गावोकी जनताके श्रमसे पवित्र और प्रकृतिसे मधुर बने हुअे दैनिक जीवनमे ओतप्रोत हो जाना चाहिये। ग्रामवासियोके जीवनसे अलग रहकर अुनके सरपरस्त, आश्रयदाता बननेसे अब काम नही चलेगा।

कोअी भी समाज युग-कल्पनासे पीछे रहकर सफल नही हो सकता। आजका युग केवल सैद्धान्तिक मानव-समानताका युग नही है। स्त्री-पुरुषकी समानताको और जातियोकी समानताको आज अमली रूपमें स्वीकार करना होगा। अितना ही नही, सब धर्मोंको भी समान प्रतिष्ठा और समान आदर मिलना चाहिये। आज सब धर्मोंके प्रति अेकसे अनादरकी समानता पसद की जाती है; और अुनके प्रति अेकसी अनास्था अथवा अेकसे अज्ञानको भी समानताका अेक मार्ग समझा जाता है। लेकिन यह मार्ग घातक है। आजके युगमें समाजमें रहनेवाले प्रत्येक मनुष्यको मुख्य मुख्य धर्मोंका सामान्य ज्ञान होना चाहिये। परन्तु अैसा ज्ञान लेने या देनेमें केवल तार्किक, आलोचनात्मक अथवा अैतिहासिक दृष्टि रखनेसे काम नही चल सकता। प्रेम, आदर और सहानुभूतिके साथ जाग्रत जिज्ञासा-वुद्धिसे सब धर्मोका परिचय प्राप्त करना चाहिये। गावोका धर्मज्ञान बहुत पिछडा हुआ होता है, अुनकी दृष्टि सकुचित होती है और अुनका जीवनका हेतु बहुत अुन्नत नही होता। आजके जमानेमें दुनियाके विभिन्न धर्मोंके सत्पुरुषोने और चरित्र-परायण सघोने जो प्रयत्न किये है, अुनकी जानकारी अुन्हे बडे प्रेमसे देनी चाहिये। अिसमें ध्येय धर्म-जागृतिका और लोक-कल्याणका होना चाहिये, केवल पडिताअू वहुश्रुतताका नही।

आजके समाजका अेक महान दोष है वर्ग-विग्रह। लोगोको अीर्ष्या, द्वेष या मत्सर करनेके लिअे कोअी ध्यानमूर्ति चाहिये। स्त्रियोको पुरुषोके खिलाफ, नौजवानो-को वृद्धोके खिलाफ, गरीबोको अमीरोके खिलाफ, हिन्दू-मुसलमानोको अेक-दूसरेके खिलाफ और गोरे लोगोको काले और पीले लोगोके खिलाफ लडना है। अिस प्रकार सर्वत्र विग्रहका — लडाअीका वातावरण फैला हुआ है। कम या ज्यादा लोगोको सगठित करके अुनका नेतृत्व ग्रहण करनेकी नीयत हो, तो अिसके लिअे अुन सबकी द्वेषवुद्धिको केन्द्रित करके अुन्हे द्वेषके आलम्बनके लिअे अेक ध्यानमूर्ति देकर सशयका और परायेपनका वातावरण खडा करना बहुत आसान है।

यह रोग धर्ममे बडी जल्दीसे घुस सकता है। आजकल अिस दिशामे प्रबल प्रयत्न भी चल रहे हैं। अिन सबका परिणाम परस्पर हत्या और अतमें आत्म-हत्यामें ही आयेगा। हम जिस धर्म-सस्करणका विचार करते है, अुसमें अिस रोगसे मुक्त रहनेकी पूरी सावधानी रखनी चाहिये।

धर्मके बुरे तत्त्वोको दूर करते समय अितना ध्यानमे रखना चाहिये कि अुनके स्थान पर शुभ, सात्त्विक और ठोस तत्त्वोका धर्ममें प्रवेश हो। केवल शून्यता, रिक्तता भयकर सिद्ध होती है।

व्यवहार-कुशल लोग कहेंगे कि यह सारा विवेचन सुन्दर और अुद्‌बोधक है, परन्तु अिसमें योजना जैसा कुछ भी दिखाओी नही देता।

विधान-सभामे कोओी कानून वनाते समय पहले अुसके अुद्देश्योका व्यवस्थित निरूपण किया जाता है और अुसके वाद ही अुस कानूनकी धारायें आती है। परन्तु व्यवहारमे देखा जाता है कि कानूनकी धारायें हाथमे आते ही अुसका हेतु और अुद्देश्य गौण वन जाता है और अन्तमे भुला दिया जाता है। समाजको अैसी धारावद्ध योजनाकी आदत पड गओी है। परन्तु अिससे जीवन यान्त्रिक वन जाता है। भावनाका स्थान योजना कैसे ले सकती है? भावनाका क्षेत्र शिक्षासे नव-पल्लवित होता है, जवकि योजना अतमें व्यवस्थाका रूप ले लेती है। यहा मैंने जिस परिवर्तनकी वात कही है, वह किसी सत्ताके वल पर नही हो सकेगा। वह शिक्षाके द्वारा और प्रत्यक्ष अुदाहरण द्वारा लोगोका हृदय-परिवर्तन करानेसे ही हो सकेगा। अिसके लिअे कोओी सार्वजनिक योजना तैयार करनेकी जरूरत नही है। यदि भावना मूलमें शुद्ध होगी और सुरक्षित तथा जीवत रहेगी, तो हमारी आवश्यकताके अनुसार अनेक योजनायें अुत्पन्न होगी और वदलती रहेंगी।

१९३३

३२

जैन समाजके साथ मेरा परिचय*

श्री परमानन्द भाओीने मुझे वहुत कठिन विपय दिया है। अमुक आदमी हमारे वारेमें कैसा मत रखता है, यह जाननेमें सवका रस होता है। मैं मानता हू कि आप सव अिसीलिअे अितनी वडी सख्यामें यहा अुपस्थित हुअे हैं। परन्तु जैनोके सामने खडे होकर जैन समाज या जैन धर्मके साथका अपना परिचय वताना कोओी सरल काम नही है। मैं तो अग्रेज मनीषी अेडमड वर्कके मतका हू कि किसी भी जाति, समाज अथवा राष्ट्रके वारेमें सार्वत्रिक सिद्धान्त वनाये ही नही जा सकते। प्रत्येक सस्कृतिकी विशेपतायें हो सकती हैं, परन्तु समाजमे तो अनेक प्रकारके लोग होते है। अमुक जाति या वर्गके सव लोग अच्छे और अमुकके वुरे, अैसा भेद किया ही नही जा सकता। मनुष्य-जाति सव जगह अेकसी ही है।

और, जैन समाजके साथ मेरा परिचय भी कहा अितना व्यापक है? मैं तो कुछ मित्रोको ही पहचानता हू। मैंने मुसाफिरी खूव की है, लेकिन वह तो नदियो और पर्वतोको, तीर्थों और मदिरोको, गावो और अुनकी परेशानियोको देखनेके

* ता० २७-८-'२९ को जैन युवक-सघ, वम्वओीमें दिया हुआ भापण।

लिअे की है। समाजकी विविध प्रवृत्तियोके साथ मेरा परिचय सीमित ही है। जो है वह ज्यादातर विद्यार्थियो और अध्यापकोके साथ है। अीश्वरने मुझे बडे अच्छे मित्र दिये है। परन्तु अितने परिचयके आधार पर मै सपूर्ण समाजके बारेमें कैसे बोल सकता हू ?

मनुष्यका परिचय कम हो या अधिक, अुसके साथ अुसे अपना अभिप्राय तो बनाना ही पडता है, क्योकि अभिप्राय बनाये बिना जीवनमें व्यवहार सभव ही नही होता। परन्तु अैसा अभिप्राय शब्दोमें व्यक्त नही किया जा सकता। अपने मनमें भी अुसका विश्लेषण नही किया जा सकता। अभिप्राय निश्चित हो तो भी वह अव्यक्त ही रह सकता है।

अपने अनुभवके आधार पर मै अितना कह सकता हू कि कोअी भी समाज अपने लिअे श्रेष्ठ होनेका दावा नही कर सकता। मै तो यहा तक कहूगा कि अन्य जातियोसे अधिक अहिसक होनेका दावा भी जैनोको नही करना चाहिये। तफसीलोमें या रीति-रिवाजोमें भले ही भेद हो, लेकिन गुजरातकी सभी जातिया समान रूपसे अहिसक है। आप चाहें तो अितना दावा जरूर कर सकते हैं कि जैन धर्मके प्रचारके कारण और आपके सहवासके कारण लोगोमें अितनी अहिसा आअी है। अैसे दावेमें तथ्य जरूर है।

किसी भी व्यक्ति या समाजके बारेमें बोलते समय अेक और असुविधा भी बाधक होती है। अगर गुण बताये जाय तो वह खुशामद अथवा अूपरी शिष्टाचार माना जाता है, मानो मनुष्य दूसरोके दोष बताते समय ही सच बोलता हो। और, दोष बताते समय मनुष्य तटस्थ बुद्धि रखे, तो भी कोअी अुस पर विश्वास नही करता। मेरे जितने भी जैन मित्र है अुनकी अुदारता और सहिष्णुता पर मैं मुग्ध हू। कट्टर जैन समाजमें अुनकी प्रतिष्ठा कितनी है, यह मै नही जानता। किन्तु मेरी दृष्टिमें वे मित्र अहिसाके सच्चे अुपासक है। जैनोकी सकुचितताके बारेमें मैने बहुत कुछ सुना है वे दान करेंगे तो वह अुनकी अपनी जाति तक ही मर्यादित रहेगा, मदद करेगे तो वह अपनी जातिके नौजवानोकी शिक्षाके लिअे ही होगी, फड अेकत्र करेगे या छात्रालय खोलेगे तो भी वह अपनी जातिके प्रति रही भावनाके कारण ही होगा। अिस विषयमे मै अितना ही कह सकता हू कि मेरा अनुभव अिससे भिन्न है। मैं जिस राष्ट्रीय विद्यापीठमें काम करता हू, अुसका विशाल भवन अेक जैन सज्जनने बनवाया है। समस्त धर्मोके धर्मग्रन्थोसे अहिसा-शास्त्रकी शोध करनेकी सुन्दर सुविधा अेक अन्य जैन सज्जनने वहा कर दी है। देशकी दुर्दशाकी दवाके रूपमे हमने अभी अभी ग्राम-सेवाकी जिस योजना पर अमल शुरू किया है, अुसका आर्थिक बोझ भी अेक अुदार हृदयवाले जैन सज्जनने ही अुठा लिया है। अैसे कितने ही अुदाहरण मै आपके सामने रख सकता हू।

परन्तु आप कहेंगे कि 'प्रत्येक जातिमें अैसे अुदार सज्जन हो सकते हैं, आप अेक जातिके नाते हमारे कुछ दोष तो बताअिये।' मैं दोष बता सकूँ अितना निकट परिचय अभी जैन समाजके साथ मेरा नहीं है। किन्तु जो शकायें मेरे मनमें अुठी हैं, अुन्हें ही यहां प्रश्नके रूपमें पूछ लूं।

गुजरातके जैन अधिकतर गांवोंमें रहते हैं या शहरोंमें? यदि वे शहरोंमें ही रहते हों, तो आपको अिस विषयमें गहरा विचार करना चाहिये। जैन लोग अधिकतर खेती करते ही नहीं। क्या यह बात सच है? यदि सच हो तो मुझे कहना चाहिये कि यह स्थिति गंभीर है। यदि अैसा ही हो तो मैं कहूंगा कि आपको अपने अस्तित्वके बारेमें और अपनी प्रतिष्ठाके बारेमें जितनी सावधानी रखनी चाहिये अुतनी आप नहीं रखते। अितना ही नहीं, मैं तो यह भी कहूंगा कि आप अहिंसा-धर्मके पालनकी पूरी तैयारी नहीं करते। आहार पर जीनेवाला मनुष्य खेतीसे विमुख रहे, यह कोअी साधारण दोष है?

समाजशास्त्रके आज तकके अपने अध्ययनके आधार पर मैंने अेक अचूक नियम ढूंढ निकाला है। जिस जातिने जमीनके साथ अपना सीधा सम्बन्ध नहीं रखा है, अुसने अपनी जड़ें कमजोर बना ली हैं। मैं यह मानता हूं कि जो अनाज हम खाते हैं वह कैसे और कहां अुत्पन्न होता है, यह हमें अनुभवसे जानना चाहिये। कहीं कहीं खेतीमें होनेवाली हिंसाके कारण खेतीसे दूर रहनेकी बात कही जाती है। लेकिन मेरा अनुमान है कि जैन लोग अैसा तर्क नहीं कर सकते, क्योंकि जैनमतने तो किये हुअे, कराये हुअे और अनुमोदित कार्यमें समान दोष बताया है। जो अनाज खाया जाता है अुससे सम्बन्धित खेतीका दोष खानेवालोंको लगता ही है। अितने पर भी यदि आपका धर्म अिससे भिन्न कुछ कहता हो, तो मैं लाचार हूं। मुझे जो कुछ अुचित लगता है अुसे आपके सामने रखना मैं अपना धर्म मानता हूं।

धनी होनेके दो ही मार्ग हैं (१) व्यापार-अुद्योग और (२) लूटपाट। व्यापारी व्यापार करते हैं और खूब धन अिकट्ठा करते हैं। सरकार कानूनन् लूटपाट करती है और धनके भंडार भरती है। सरकारसे मेरा मतलब केवल अंग्रेज सरकारसे ही नहीं, आजकी प्रत्येक सरकार यही काम करती है। वह व्यक्तियोंको चूसती है और पशुबलसे सर्वत्र राज्य चलाती है। व्यापारसे समाजमें पैसा आता है, परन्तु जमीनके साथ सम्बन्ध रखे बिना समाजमें स्थिरता नहीं आती। पैसा शहरकी चीज है। अिसमें कोअी शंका नहीं कि हमने शहरमें ही रहनेके कारण अपने अनेक गुण खो दिये हैं। कुदरतके साथ सीधा सम्बन्ध तो गांवमें रहनेसे ही स्थापित हो सकता है। जो मनुष्य गांवमें रहता है वह ऋतुके परिवर्तनोंका, खुली हवाका, खुली धूप, ठंड, गरमी और बरसातका, भव्य आकाश तथा पक्षियोंके मीठे कलरवका अनुभव कर सकता है। जिसे खेती करनी होती है वह आकाशकी

ओर टकटकी लगाकर बैठता है और रातके तारो तथा दिनके सूर्य-प्रकाशके साथ अेकरूप होकर जीवन बिताता है। आत्म-रक्षक वृत्तिका विकास करनेके लिअे भी खेती अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि किसानको कुदरतके तथा पशु-पक्षियोके अनेक आक्रमणोके सामने निरन्तर जूझना पडता है। अिसी दृष्टिसे मै कहता हू कि क्षत्रिय और क्षेत्रिय (किसान) मे मै वहुत भेद नही करता। गावके किसानोने सदा ही आत्म-रक्षक वृत्ति दिखाअी है। शिवाजीने और बारडोलीके किसानोने यह बात सिद्ध कर दिखाअी है। जब सत्ताधारीका आदेश निकलता है कि 'you shall yield' (तुझे झुकना ही पडेगा) तब किसान ही यह अुत्तर दे सकता ह कि 'I shall neither break nor bend' (मै न तो टूटूगा और न झुकूगा)।

अिस विश्वमें अहिंसाके समान दूसरा कोअी धर्म नही है। अिसे आप और मै दोनो मानते है। फिर भी अिस शरीरके साथ अिस जीवनमे सपूर्णतया अहिंसाका आचरण करना किसी भी मनुष्यके लिअे सभव नही हो सका। भविष्यमे भी कभी यह सभव नही होगा। हमारे जीवनका अुद्देश्य अपनी वर्तमान प्रवृत्तियोमें हिंसाको यथासभव कम करना ही हो सकता है। अिसका अर्थ यह हुआ कि जब तक हमारी सासारिक प्रवृत्तिया चलती रहें तब तक अहिंसा-धर्मियोको अहिंसाके नये नये प्रयोग चालू रखने ही होगे। अिसी प्रकार हमें यह भी देखना चाहिये कि खेतीके काममें अहिंसाकी ओर वढनेकी कितनी सभावना है, क्योकि खेतीको हम जितनी अहिंसक बना सकेंगे सपूर्ण जगत अुतना ही अहिंसक बनेगा। वाहरके जीवनमें हम अहिंसाकी चाहे जितनी वातें करे, परन्तु जिस अन्नके विना हमारा और जगतका जीवन अेक दिनके लिअे भी नही चलता, अुसे अुत्पन्न करनेवाली खेतीको जव तक हम विशुद्ध नही वनायेंगे तव तक अहिंसा-धर्म हमारे जीवनके मूलको स्पर्श नही कर सकता। सन्यासी समस्त प्रवृत्तियोसे दूर रहकर स्वय वडा अहिंसक होनेका दावा कर सकता है, परन्तु अुसके दावेकी बहुत कीमत नही है। अहिंसा-धर्म जीवित और जाग्रत विश्वधर्म है और अुसकी पूर्णता हम जीवनमे कभी सिद्ध कर ही नही सकते। अिस अहिंसा-धर्मका आचरण हिंसक मानी जानेवाली प्रवृत्तियोसे दूर रहकर तथा दूर रहते हुअे भी अुन प्रवृत्तियोके फलोका लाभ अुठाकर हम कभी करा ही नही सकते। मै अिस वातकी ओर जैन मित्रोका खास तौर पर ध्यान खीचना चाहता हू कि हमारा कर्तव्य ससारकी स्थितिके लिअे अनिवार्य प्रवृत्तियोसे हिंसाके तत्त्वको यथासभव दूर करनेमे निहित है।

अिस तरह विचार करने पर मैं यह मानता हू कि जैन समाजको आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, बौद्धिक, स्वास्थ्य-विषयक दृष्टि अथवा अतमें मोक्षकी दृष्टिसे भी जमीनके साथ अपना सम्वन्ध वढाना ही चाहिये। मै यह कहनेकी

अिजाजत लेता हू कि जब तक जैन लोग अैसा नही करेंगे तब तक अुनकी प्रतिष्ठा स्थिर भूमि पर टिकी हुअी नही मानी जा सकती।

जैन समाजके साथ मेरा बहुत गहरा अथवा विस्तीर्ण परिचय नही है। मेरा परिचय है पेड-पौधो और पशु-पक्षियोके साथ तथा जिन लोगोकी सेवाका मैं सदा लाभ अुठाता रहता हू, अुनमे से कुछ गरीब भाअियोके साथ। मेरे जीवनका मुख्य कार्य है: शिक्षा। विद्यापीठ, मेरे साथी, मेरे विद्यार्थी और मैं — यही मेरी दुनिया है। अिन सबके होते हुअे भी मुझे जो थोडेसे जैन मित्र मिले हैं, वे बडे अच्छे — प्रेमल, अुदार और पूरे सहिष्णु है और अुनके कारण मेरा जैन समाजके विषयमे हमेशा बहुत अूचा खयाल रहा है। मैंने तो अुन मित्रोमे अूचा जैनत्व और अहिंसक वृत्ति देखी है। यहा अहिंसकताका अर्थ मैं अुदार सहिष्णुता करता हू। मेरा विश्वास है कि यही अेक अैसी चीज है, जिसकी आजकी दुनियाको बडी आवश्यकता है, और जैन लोग यदि चाहें तो दुनियाको यह चीज दे भी सकते हैं। आज आप दुनियामे प्रचलित मासाहारको नही रोक सकते, क्योकि आज तो कुछ स्थानोमें अिसके विपरीत बडी विचित्र हवा बह रही है। जैन शास्त्रोका सर्वत्र खूब अध्ययन हो, अिसके लिअे जैन मित्र बहुत आतुर रहते हैं। मुझे कोअी भी जैन पुस्तक छपवानी हो तो अुसके लिअे पैसे प्राप्त करनेमें मुझे बहुत कठिनाअी नही हो सकती। लेकिन आज हमे यह काम नही करना है। आज तो हमें दुनियाकी पीडा जाननी है और अुसे दूर करनेका अुपाय सुझाना है। यह अुपाय अहिंसामे है, और यदि जैन धर्मका समुचित निरूपण किया जाय, तो दुनिया अुससे बहुत स्वस्थता प्राप्त कर सकती है।

आज जब मैं जैन शब्दका प्रयोग करता हू तब जैन नाम धारण करनेवालेको जैन मानकर मैं अिस शब्दका प्रयोग नही करता, अिस शब्दका प्रयोग मैं अैसे लोगोके लिअे करता हू, जिनमें जैन भावना ओतप्रोत हो गअी है। 'Hindu view of life' के लेखक श्री राधाकृष्णन्के शब्दोमें मैं भी यह मानता हू कि धर्म-परिवर्तन करानेका प्रयत्न जब तक रुकेगा नही तब तक जगतमें शाति नही होगी। प्रत्येक धर्ममें अपना विकास करनेकी पूरी गुजाअिश और पूरी सामग्री होती ही है। प्रत्येक धर्म कम या अधिक मात्रामें अहिंसा-परायण है और अुतने अशमें अुसमें जैनत्व है।

मुझे तो आपसे दो ही बाते कहनी है आप सहिष्णु बनिये, और जीवनकी जरूरतोको यथासभव कम कीजिये। आप अपनी जरूरते कम नही करेंगे तब तक आप सच्चे अहिंसक बन ही नही सकते। हमारा साधारण जीवन तरह तरहके द्रोहोसे भरा है। धन-सपत्ति सद्रोहसे मिल ही नही सकती। अपनेमें से कुछ लोगोके लिअे आप जप-तप करनेकी सुविधायें जुटा दें और बाकीके लोग जो

कुछ करते हो वही किया करे, तो अिससे समाज कभी अद्रोही अथवा अहिंसक बन ही नही सकता।

हिन्दू धर्मने अेक ही बात कही है—और जैन धर्म अुसमें आ जाता है, वह यह है कि कोअी भी धर्म झूठा है अैसा नही कहा जा सकता, प्रत्येक धर्मके सत्याशका आश्रय लेकर मनुष्य परम कोटिको प्राप्त कर सकता है और अिसलिअे धर्म-परिवर्तन करना व्यर्थ है। अिसी विचारमें स्याद्वादके तत्त्वका सार आ जाता है। 'दूसरे लोग जो कुछ कहते है वह बिलकुल झूठ कहते हैं', अैसा कहनेवाले लोग पहले तो स्याद्वाद-मूलक जैन धर्मका ही द्रोह करते है।

आप पैसा खर्च करके जो पडित अुत्पन्न करेंगे अुनसे आपका साहित्य तो खूब बढेगा, परन्तु धर्मका या जगतका अुद्धार नही होगा। गाधीजीको कितने ही लोग अुत्तम जैन—अुत्तम हिन्दू—के रूपमें स्वीकार करते हैं। अिसका कारण गाधीजीका पाडित्य नही है, परन्तु अुनका चारित्र्य, अुनका अनुभव और अुनकी तपस्या है। वे ही गाधीजी कहते हैं कि अिनमें से कुछ अच्छी अच्छी बातें मुझे श्रीमद् राजचन्द्रसे मिली हैं। और अिन राजचन्द्रमें भी असाधारण पाडित्य नही था, अुनमें था तपोमय जीवन और विश्वव्यापी विशाल भावना। अिन दोनो सद्गुणोको अपना कर आप जगतको जैन धर्मका सच्चा दर्शन करा सकते है। आज कुछ पाश्चात्य विचारक यह मानते हैं कि भारतने अपना सदेश जगतको सुना दिया है और जगतने अुसे ग्रहण कर लिया है। अब भारतके पास जगतको देनेके लिअे कुछ रहा नही है, और अिसलिअे अब भारतको जीनेका कोअी अधिकार नही है। यदि अब हमें जगतको कुछ नही देना है और यदि हम मृतप्राय बन गये हैं, तो हमें अूपरका अभिप्राय स्वीकार कर लेना चाहिये। यदि अैसा न हो तो हमें अपनेमें प्रेरणा, अुत्साह, ओजस्विता और नव-निर्माणकी शक्ति दिखानी होगी, अपनी विरासतको अुत्तरोत्तर बढाना होगा और अपने अस्तित्वसे जगतको समृद्ध तथा गौरवान्वित करना होगा।

३३
'प्रबुद्ध जैन'

यूरोपियन लोग अिस देशमें आये तबसे अुन्होने अिस देशको पहचाननेका प्रयत्न किया है। बडे बडे विद्वानोने भारतमे शोध करके हिन्दू धर्म और हिन्दू सस्कृति पर प्रकाश डाला है । अुसके बाद मैडम ब्लेवेट्स्की, कर्नल आल्कॉट और मिसेज़ अेनी बेसेट जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तियोने भारतकी ब्रह्मविद्याका अध्ययन करनेके लिअे थियॉसॉफिकल सोसायटीकी स्थापना की। परन्तु भारतको अपनी अस्मिताका, अपने स्वाभिमानका भान तो स्वामी विवेकानन्दकी अमेरिका-यात्राके बाद ही हुआ। स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिकासे भारत लौटे तब अुन्होने बिस्तर पर लोटते हुअे किन्तु नीदसे जागे हुअे भारतको देखा। जागे हुअे भारत-को खडा करने और अपने पैरो पर खडे रहकर चलने लायक़ बनानेके लिअे स्वामी विवेकानन्दने 'प्रबुद्ध भारत' नामक मासिक शुरू किया। अुसमे स्वामीजीने वेदात धर्मकी नीव पर सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक और सास्कृतिक जागृतिका नया भवन खडा करनेका प्रयास किया। वेदात वास्तवमे पडितोकी चर्चा-मडलीमें केवल छान-बीन करनेका विषय नही है, वह गुफामे पलथी मारकर, सीधे बैठकर और नाक पकड कर सो जानेकी सुविधा कर देनेवाला हठयोग नही है। अिसके विपरीत, वेदात अेक सार्वभौम जीवन-दर्शन है और जीवनके विषयमे अुठनेवाले सारे प्रश्न हल करनेकी गुरुकुजी (master-key) है — अैसा स्वामीजीने अनुभवसे देखा और अुसके अनुसार भारतको प्रेरणा दी। ब्रह्म-समाज और आर्य-समाजमें भी हमें यही प्रेरणा दिखाअी पडती है । यही प्रेरणा हमें अरविन्द घोषमें और रवीन्द्रनाथ ठाकुरमे दिखाअी देती है। और अिसी प्रेरणाके अद्वितीय विस्तारका अनुभव हम अहिसावादी गाधीजीके समस्त कार्योमें करते हैं।

जैन-दर्शन भी अैसा ही अेक जीवन-व्यापी सार्वभौम दर्शन है। स्याद्वाद-की भूमिका पर अहिसा और तपके साधनसे सारी दुनियाका स्वरूप बदलनेकी शक्ति और अभिलाषा जैन-दर्शनमे है अथवा होनी चाहिये । विनाशके किनारे पहुचे हुअे जगतको यदि अतिम क्षणमें अुससे बचना हो, तो अुसे स्याद्वाद-रूपी बौद्धिक अहिसा स्वीकार करनी ही चाहिये, सयम-रूपी नैतिक साधनाका आचरण करना ही चाहिये और तपके द्वारा सकल्पका सामर्थ्य बढा कर अुपरोक्त साधनाकी पूर्ण तैयारी करनी ही चाहिये।

रूढिग्रस्त शास्त्री और ग्रथ-परायण पडित दुनियाको यह सदेश नही दे सकते, क्योकि दुनियामें अुनसे अधिक बुद्धिशाली और कम पामर कितने ही लोग हैं।

ाब्दजड और ग्रन्थ-परतत्र बने हुअे साधु, मुनि और आचार्य यह सदेश नही दे
ाकते। अिसका कारण यह है कि वे अधिकतर अपने समाजके, अपने अज्ञानके तथा
अिन दोनोका पोषण करनेवाली रूढियोके अनुयायी होते है। वे पढी हुअी और
पुनी हुअी बाते कहते है, अनुभव की हुअी बाते नही कहते। अुन्हे सिद्धान्तोके
अर्थोका दर्शन भले ही हुआ हो, लेकिन विशाल और गभीर मानव-जीवनका
दर्शन अुन्हे शायद ही होता है।

भूतकालको यथार्थ रूपमें न समझनेवाले, भविष्य कालको न देख सकनेवाले
तथा वर्तमान कालके सकुचित स्थल और कालसे मर्यादित रहनेवाले आजकलके
लेखक और सपादक, जाति-भूपण और समाज-सुधारक भी यह सदेश नही दे
सकते, क्योकि अुनकी श्रद्धा अुनके जीवन जैसी ही शिथिल और छिछली
होती है। वे जीवनके विद्यार्थी तो बन सकते है, परन्तु जीवन-वीर नही होते।
प्रयोग-परायणतासे वे डरते हैं। वे महासागरमें अपना और अपने समाजका जहाज
चलानेवाले और अेकमात्र ध्रुवके आधार पर चाहे जैसे पानीमें अकुतोभय—
पूरी निर्भयतासे—सचार करनेवाले साहसी नाविक नही होते।

परन्तु यह सन्देश दुनियाके सामने रखा गया है। महावीरकी वाणीके प्रति
जिन लोगोकी निष्ठा है अुनका यह कर्तव्य है कि वे अिस सदेशको समझे, आच-
रणमें अुतारे और अुसका विस्तार करे। 'प्रबुद्ध जैन' जैन समाजको और अुसके
साथ भारतीय समाजको जगा हुआ देखकर अुसे बैठा दे और अुठकर चलनेकी
प्रेरणा दे, तो कहा जायगा कि अुसने जैन-दर्शनको जीवन-दर्शन बना दिया है।

अुस सदेशके मत्र जिन लोगोने सुने है, अुस सदेशकी आवाजसे जो लोग
अस्वस्थ और अशात हुअे है, अैसे लोगोको अेकत्र करनेवाला स्थान यदि यह
'प्रबुद्ध जैन' बन जाय, तो अुसका अस्तित्व सफ़ल होगा।

१–५–'३९

३४

महावीरका जीवन-सन्देश*

आज ससारकी विचित्र स्थिति है। हिंसासे यदि कोअी अधिकसे अधिक डरते हो, तो वे आजके यूरोपियन है। २५ वर्ष पहले प्रथम विश्वयुद्धमे हुअे सहार और नाशको वे आज भी भूले नही है। अुन्हे भय है कि यदि फिरसे युद्धकी ज्वाला भडक अुठी तो हमें अपने सारे वैभव, सारे मौज-शौक, भोग-विलास और अैश्वर्यसे हाथ धोने पडेंगे। यूरोपका मनुष्य यह सोचकर काप अुठता है कि आज सस्कृतिके नाम पर जिस वैभव-विलासका आनद हम भोगते है, वह युद्ध होने पर नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। युद्धको टालनेके लिअे वह सव कुछ करनेको तैयार है। अिसके लिअे वह दिये हुअे वचनोका भग करेगा, किये हुअे कौल-करारोको भुला देगा, अपमानोका कडवा घूट पी जायगा, अपने साथियोको धोखा देगा और कैसे भी अप्रिय लोगोके साथ मित्रता वाधेगा। युद्धको टालनेके लिअे वह अपने जीवन-सिद्धान्तोको भूसीकी तरह हवामें अुडा देगा। लेकिन अितना सव करनेके वाद भी वह युद्धको टाल नही सकेगा। अिन्द्रिय-परायण जीवन, भोग-विलास, वासनायें, लोभ, भय, महत्त्वाकाक्षा और परस्पर अविश्वास अुसे शातिसे वैठने नही देंगे। हिंसासे भयभीत वना हुआ यूरोपका मनुष्य सारी दुनियाको हिंसाकी दीक्षा दे रहा है और मारनेकी कलाका विकास करनेके लिअे जीवनकी कअी अच्छी शक्तियोको नष्ट कर रहा है। आज वह जिस युद्धको टालना चाहता है अुसी युद्धको जोरोंसे खीचकर अपने निकट ला रहा है।

अैसी विचित्र परिस्थितियोमें आज हम अेक वार फिर भगवान महावीरके सन्देशको अुज्ज्वल वनाना चाहते है।

अुस धार्मिक सदेशको ग्रहण करनेके लिअे आजकी दुनिया तैयार नही है। वह शातिका मार्ग तो है, किन्तु अुस मार्ग पर चलनेमे मनुष्यको अभी आनद नही आता। पहले वह दूसरे सारे मार्ग आजमायेगा और सव तरहसे हारनेके वाद ही लाचारीसे अिस सच्चे मार्ग पर आयेगा।

मनुष्यका यह स्वभाव है कि वह अैसे अुपायो पर विश्वास रखकर अुन्हे पहले आजमाता है, जिनमे कोअी सार नही होता। आज यूरोपमे जो अनेक मार्ग सुझाये जाते है, अुनसे हमे आश्चर्य होता है। हमारे यहाके पुराने लोग जव जव तर्क और न्याय, दर्शन और मीमासाकी वातको ले वैठते है और घटत्व तथा पटत्वका और अवच्छेदकावच्छिन्नका पिष्टपेषण करते हैं, तव हम अुन पर

---

* ता० १४-९-'३९ को वम्वअीमे दिये गये भाषणसे।

हसते हैं और कहते हैं कि जिनका जीवनके साथ कोअी सम्बन्ध नही, तत्त्वसे जो सर्वथा दूर है, अैसी निरर्थक बातोकी चर्चामें ये लोग क्यो पडते होगे ? हम कहते है कि अुनकी अिन बातोमें जीवनको स्पर्श करनेवाला थोडा भी अश नही होता। यूरोपमें भी जब लोग व्यक्तिवाद और समष्टिवाद, समाजवाद और साम्यवादकी चर्चा करते है तब मनमें विचार आता है कि अिन अनेक 'वादो' से क्या लाभ होनेवाला है ? मनुष्य जब तक अपने स्वभाव और जीवनमें परिवर्तन न करे तब तक हम कोअी भी 'वाद' (ism) क्यो न चलायें, अन्तमें हम वही आ पहुचेंगे जहा पहले थे। स्वामी विवेकानन्दने कहा था कि जगतका दु ख सधिवात (गठिया रोग) जैसा है। अूपरके लेपसे वह मिटनेवाला नही है। सिरसे अुसे निकालो तो वह पैरमें पैठ जाता है। पैरसे अुसे निकालो तो वह कधेमें घुस जाता है। वह अपना स्थान तो बदलता रहेगा, लेकिन शरीरको नही छोडेगा। आप यदि व्यक्तिवादको चलायेंगे तो दुनियाको अेक प्रकारका दु ख भोगना पडेगा। व्यक्तिवादके स्थान पर यदि आप समष्टिवादको स्वीकार करेंगे, तो पुराने दु ख मिटकर अुनके स्थान पर नये दु ख पैदा हो जायगे। जकातको टालनेके लिअे रातभर जगलमें भटकनेके बाद सबेरे गाडी जब रास्ते पर आअी तो ठीक जकात-नाकेके सामने ही! जकातके पैसे तो चुकाने ही पडे, अूपरसे रातभर जगलमें व्यर्थ भटके सो अलग! यही दशा आजकी दुनियाकी है। आचार्य अेल० पी० जैक्सने ठीक ही कहा है कि आजकी दुनिया सपत्तिको सामाजिक बनाना चाहती है, राज्यसत्ताको सामाजिक बनाना चाहती है, किन्तु मनुष्यको और अुसके स्वभावको सामाजिक बनानेकी बात अुसे नही सूझती। जब तक यह नही होता तब तक किसी भी 'वाद' की सच्ची स्थापना नही होगी, और यदि मनुष्यका चरित्र सुधर गया तब तो किसी भी 'वाद' से हमारा काम चल जायेगा। अिसका अेक सुन्दर अुदाहरण मैं आपके सामने रखता हू।

शराबकी बुराअीसे सारी दुनिया त्रस्त है। अमेरिकाने कानून बनाकर अिस बुराअीको दूर करनेका प्रयत्न किया। जिन लोगोने कानून बनानेकी सम्मति दी, अुन्हे स्वय शराबबदीकी कोअी परवाह नही थी। समाजमें प्रतिष्ठा भोगनेवाले बडे बडे स्त्री-पुरुष भी खुले आम कानूनका भग करनेमें बहादुरी मानने लगे और अेक-दूसरेके सामने अिस बातकी डीग हाकने लगे कि अुन्होने शराबबदीका कानून कैसे तोडा है। अिसी शराबबदीका हमारा अितिहास अमेरिकासे भिन्न है। हमारे देशमें बसनेवाली सारी ही जातियोके दिलमें शराबके लिअे नफरत है। नियमित रूपसे और खुले आम शराब पीनेवाले लोग भी यह स्वीकार करते है कि शराब बुरी चीज है। अुससे छूटनेकी शक्ति भले ही अुनके भीतर न हो, लेकिन अिसमें कोअी अुनकी मदद करे तो वे निश्चित रूपसे शराबकी लतसे मुक्त होना चाहते है। सपूर्ण राष्ट्रका चरित्र शराबबन्दीके पक्षमें होनेके कारण हमारे

देशमें शराबबन्दीका कानून बनाना आसान साबित हुआ। कुछ आधुनिक वृत्ति-वाले विकृत लोग शराबके पक्षमे दलील करते है सही। लेकिन अैसे लोग तो अिनेगिने ही है। और अुनमे से कुछ तो यह कहते भी है कि हमारी पार्टीकी नीतिके नाते ही हम अैसी दलील करते है।

अैसे लोगोकी बात हम छोड दे। मुझे कहना तो यह है कि यदि हम राष्ट्रके चरित्रका विकास कर सके, तो किसी भी 'वाद'की समाज-रचनामे हम मनुष्य-जातिको सुखी बना सकेंगे!

महावीर जैसे सत पुरुषोने ससारको यह मार्ग दिखाया है। चरित्र-बल बढाओ, सयम सिद्ध करो, वासनाओंको जीतो, असामाजिक वृत्तियोका नाश करो और राग-द्वेषमे निहित हीनताको पहचान कर दोनोको हृदयसे निकाल फेंको, तो हिंसाका मार्ग अपने आप क्षीण हो जायगा। यदि हिंसाको टालना है और अहिंसाकी स्थापना करनी है, तो केवल राज्यतत्रको बदलनेसे यह ध्येय सिद्ध नही होगा, राष्ट्रसघ रचनेसे यह समस्या हल नही होगी। अिसके लिअे तो मनुष्यके स्वभावमें सुधार करना होगा, सयम-रूपी तप करना होगा। यही सच्ची साधना है। कोअी पामर मनुष्य यह कार्य नही कर सकता। बाहरी शत्रुसे लडना आसान है, किन्तु भीतरके विकारोका नाश करना कठिन है। अिसके लिअे वीरत्वकी आवश्यकता होती है। महावीरने अपने भीतर अिस शक्तिका विकास किया और दुनियाको अुसे दिखा दिया।

महावीर स्वभावसे ही प्रयोग-वीर थे। अुन्होने जो अनेक प्रयोग किये थे अुन्हें हम तप कहते हैं। अुस तपका मार्ग सबके लिअे अेकसा नही हो सकता। प्रत्येक मनुष्यको अपना प्रयोग करना चाहिये और अपना मार्ग खोज लेना चाहिये। जो मनुष्य प्रयोग-वीर नही है वह यदि बिना सोचे-विचारे महावीरके वचनोके अनु-सार केवल बाह्य जीवन ही जीनेका प्रयत्न करेगा, तो अुसे महावीरकी सिद्धि नही मिलेगी। अिसके विपरीत, जो मनुष्य महावीरसे प्रेरणा लेकर और अुनके प्रयोगोके रहस्यको समझ कर अुनके मुख्य जीवन-सिद्धान्तोके अनुसार अपना जीवन बनानेके लिअे निजी ढगका स्वतत्र प्रयत्न करेगा, वही महावीरकी परम्पराका माना जायगा और भगवान महावीर अुसीको अपना आत्मीय जन समझेंगे।

आज जब ससार अनेक दृष्टियोसे व्याकुल हो अुठा है तब अिस व्यापक जीवनकी मुख्य अुलझनका हल ढूढना जरूरी हो गया है। अिसके लिअे महा-वीरोकी आवश्यकता है, प्रयोग-वीरोकी आवश्यकता है। अैसे लोग अपनी श्रद्धा-को दृढ बनानेके लिअे महावीरके जीवनको समझेंगे और स्वय ही अूचे अुठनेका प्रयत्न करेंगे। महावीरके स्मरण और चिन्तनसे हम अैसी प्रेरणा प्राप्त करे और अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवनका अुद्धार करे।

३५

जैनेतर*

अेक वार अेक पुस्तक मेरे हाथमे आअी। अुसका नाम था 'जैनेतर दृष्टिसे जैन।' अुसमें मेरे भी दो लेख थे। अनेक वडे बडे लोगोकी पक्तिमे अपना नाम देखकर मुझे अच्छा तो लगा, लेकिन विशेप शोव तो अुस दिन मैंने यह की कि हम जैनेतर है। अुसके पहले मै अैसा कुछ जानता नही था।

'अितर' शब्द वडे मजेका है। यह शब्द मैंने पहले-पहल सुना था कॉलेजमे पढाये जानेवाले तर्कशास्त्रमें। 'मनुष्येतर भिन्न मनुष्य'—अैसी शास्त्रशुद्ध, तर्कशुद्ध परन्तु ज्ञानमें शून्यकी वृद्धि करनेवाली व्याख्याये तर्कशास्त्रमें आती थी। 'जो मनुष्य नही है अुससे जो भिन्न है वह मनुष्य है।' अिसलिअे घानीके बैलकी तरह घूम-फिर कर जहासे चलते वही फिर आना होता था। तर्कशास्त्रकी भी कैसी वलिहारी है कि अिस प्रकारकी व्याख्याये देकर वह ज्ञानमे वृद्धि करना चाहता है।

अिसके बाद 'अितर' शब्द सुननेमे आया मद्रासकी ओरके 'ब्राह्मणेतर' पक्षके नाममें। मै यह मानता था कि ब्राह्मणेतर लोग हिन्दू तो होगे ही। अेक बार मैं मदुराके अेक ओसाओी मित्रके घर ठहरा था। मै अुनका मेहमान था, अिसलिअे घरके सब लोगोको शाकाहार करना पडता था। मैंने अुनसे मजाकमें कहा 'शाकाहारी वनकर आप कुछ समयके लिअे तो हिन्दू हो ही गये।' लेकिन वादमें पता चला कि वे वास्तवमे 'ब्राह्मणेतर' पक्षके माने जाते है। मैंने यह भी देखा कि वहाके ब्राह्मणेतर पक्षका नेता भी दूसरा अेक ओसाओी ही है। जो मनुष्य ब्राह्मण नही है वह ओसाओी हो या पारसी, ब्राह्मणेतर क्यो नही माना जा सकता? तर्ककी दृष्टिका अुपयोग करके मैंने पूछा 'यह टेवल ब्राह्मणेतर मानी जायगी या नही? यह लालटेन भी ब्राह्मणेतर है न?'

जो लोग हमसे भिन्न है अुनके वारेमे कुछ न जानना और अुन सबको अेक ही नामके नीचे लाना, यह मनुष्य-समाजका पुराना रिवाज है। वेदोमें भी यह दिखाओी देता है। जो आर्य नही है वह दास या अनार्य है। अिस प्रकार आर्येतरोमे आर्योसे भिन्न सपूर्ण सृष्टि आ सकती है। जो मनुष्य अिस्लामको स्वीकार नही करता, वह मुसलमानोकी दृष्टिमे काफिर है। जो मनुष्य यहूदी नही है अुसे यहूदी लोग 'जेन्टाअिल' मानते है। 'जेन्टाअिल' सव अपवित्र और अशुचि

* पर्युपण-पर्वके अुपलक्षमे अहमदावादमे आयोजित व्याख्यान-मालामें ता० १२–९–'३१ को दिया गया भापण।

माने जाते है। अीसाअियोकी दृष्टिमें जो अीसा मसीहकी शरणमे नही गया है वह 'हीदन' है, अुसका जीवन ही पापमय है। दक्षिण भारतमें लिंगायत लोग होते हैं। वे मदिर नही बनाते, लेकिन शिवलिंगको गलेमे बाधकर घूमते है। जो लोग अुनकी जातिके नही होते अुन्हे वे 'भवी' कहते है। 'भवी' मोक्षके अधिकारी नही होते। वे सब भव-सागरके प्रवाहमे वह जानेवाले है। ग्रीक लोगोमे भी यही वृत्ति पाअी जाती है। जो लोग ग्रीक नही है वे सब असस्कारी 'बार्वेरियन' हैं।

अिस सारी मनोरचनाके पीछे अेक प्रकारका समूह-धर्म है। आप समूहके धर्मको मानें, तो आपका अुद्धार होगा। समूहसे बाहरके सब लोग जगली, गदे, मैंले अथवा विचित्र है। अैसा समूह-धर्म यदि 'जन्मसे जाति' के सूत्रको माननेवाले हमारे सनातनियोमे हो, तो अुसे समझा जा सकता है। यहूदियोमे भी अुसे समझा जा सकता है। लेकिन जैन धर्ममे वह क्यो होना चाहिये? फिर भी जैनोको भी अिस समूह-धर्मकी छूत लगी है। महाराष्ट्रके जैन शुरू-शुरूमे तो सनातनियोकी तरह ही रहते थे। वे गणपतिकी पूजा करते थे और छुआछूत भी पालते थे। शास्त्रके जानकार किसी मुल्लाके मिलने पर जिस प्रकार मुसलमानोमें धर्मका जोश पैदा हो जाता है, अुसी प्रकार किसी जैन पडितके मिलने और कहनेसे हमारे यहाके जैनोने गणपतिका अुत्सव मनाना छोड़ दिया। तभी हमें पता चला कि जैन नामका कोअी स्वतत्र पथ है। अुस समय तक हम अितना ही जानते थे कि जो लोग रातमे भोजन नही करते और अपने मदिरमें दूसरोको जाने नही देते वे जैन हैं। यह जैन और जैनेतरका भेद 'जैनेतर दृष्टिसे जैन' नामक पुस्तक मेरे हाथमें आअी अुस समय फिरसे ताजा हो गया।

सामान्यत धर्म दो प्रकारके होते है सामाजिक धर्म और मोक्षधर्म। सामाजिक धर्ममें अिहलोक और परलोकका विचार तो होता है, किन्तु मोक्षका अितना आग्रह नही होता — अुतावली तो होती ही नही। सनातनियोमे केवल सन्यास-धर्ममें ही मोक्षकी अुत्कठा दिखाअी देती है। बाकी सबको भुक्ति (भोग) भी चाहिये और यथासमय मुक्ति (मोक्ष) भी चाहिये। सनातनी लोग दूसरोको अपने धर्ममें निमत्रित नही करते, पारसी भी नही करते और यहूदी भी नही करते। लेकिन जिन लोगोको मोक्षका, निर्वाणका अथवा कैवल्यका मार्ग मिल गया है, अुन्हे तो सभीको निमत्रित करना चाहिये। अुनके यहा सबका स्वागत होना ही चाहिये। किसी धर्मकी दीक्षा मिलने पर ही वास्तवमें मनुष्य अुस धर्मका अनुयायी माना जा सकता है। जिस धर्ममें सबका स्वागत होता है, अुसमें अस्पृश्यताके लिअे कोअी स्थान नही हो सकता। अिस्लाममें अस्पृश्यता नही है। अीसाअियोमें नही है, बौद्धोमें भी नही है। जैनोमें भी नही हो सकती। लेकिन निरीक्षण करनेसे पता चलता है कि सनातन धर्मका असर जैनो पर भी हो गया है। मुसलमानो और अीसाअियोको भी अिस बुराअीकी छूत लग गअी है।

सिन्धमें अेक मुसलमानसे मेरी बात हो रही थी। अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करनेके लिअे हिन्दुओके अनेक दोष दिखाकर अतमें अुसने मुझसे कहा "मै तो हिन्दुओके हाथका पानी भी नही पीता।" अुसकी बात चुपचाप सुन लेनेके बाद मैंने कहा "तब तो हिन्दू धर्मकी विजय ही हुअी न? सनातनियोमें यह रिवाज है कि वे अपनेसे नीची कक्षाके लोगोके हाथका पानी नही पीते। अिस बातको आप जिस हद तक स्वीकार करे अुस हद तक आप हिन्दू हो गये। मुझे आप नीची कक्षाका आदमी भले कहें, लेकिन यह अूच-नीचका भेद तो हिन्दू कसौटीसे ही मापा जायगा न? और अेक बार आपने हिन्दू कसौटी स्वीकार की फिर तो अूचा कौन और नीचा कौन, यह अपने आप सिद्ध हो जायगा।"

मजाककी बातको छोडकर मैं कहूगा कि जैनोको अिस अूच-नीच-भेद तथा अिस अस्पृश्यताको अपने समाजमें नही घुसने देना चाहिये था। मेरी दृष्टिमे तो जो अस्पृश्यतामें विश्वास रखता है वह जातिसे भले ही जैन हो, लेकिन वास्तवमे जैनेतर ही है। मोक्षधर्ममें अस्पृश्यता कैसे हो सकती है? जो मनुष्य अुत्साह-पूर्वक आत्माका विकास करना चाहे, केवल आत्माके कल्याणकी दृष्टिसे ही जीये, वह जैन है। दूसरोके प्रति जनूनी होनेके बजाय स्वय अपने प्रति जनूनी होना और तपोमय जीवन व्यतीत करना कितना अुत्तम है! सनातनियोने अेक आसान रास्ता खोज निकाला है। जो लोग मोक्षके लिअे आतुर हैं, अुन्हीके लिअे अुसने मोक्षधर्म रख छोडा है। सन्यास-धर्मकी दीक्षा लेकर यदि कोअी अुसके पालनमें शिथिलता दिखाये, तो सब कोअी अुसे धिक्कारते हैं। मोक्षकी लगन न हो तो कोअी सन्यासी बनेगा ही क्यो? मै तो मानता हू कि जिसे मोक्षकी, कैवल्य-पदकी लगन लगी है वही जैन है। बाकीके सब लोग जैनेतर हैं। अुन्हे सनातनी भले ही कह लीजिये। सनातनियोमें सबके लिअे स्थान है। समूह-धर्मकी कसौटीको सामने रखकर यदि जैन और जैनेतरका भेद हम करे, तब तो जैन धर्म टिक ही नही सकता।

अेक बार मैं नागपुरकी ओर रामटेककी पहाडी देखने गया था। अुसकी तलहटीमें अेक जैन-मदिर है। अुस मदिरके पास धन-दौलत होगी, अत अुसकी रक्षाके लिअे सिपाही, बन्दूक, तलवार सब कुछ रखा गया था। मै तो वह सब देखकर दग रह गया। मैंने पूछा. "क्या यह शाक्त मदिर है? यहा मै दुर्गापाठ करू?" मदिरके पुजारियोने मुझसे कहा "नही, नही, यह तो जैन मदिर है।" मेरी बात वे लोग समझे नही; और अुनकी बात मै नही समझा। मै वहासे लौट आया। मनमे विचार अुठा जहा धनका सग्रह है और अुसकी रक्षाके लिअे जहा राज्यसत्ताकी सहायता ली जाती है, जहा हिंसाके हथियार खुले तौर पर रखे जाते हैं, वहा जैन धर्म कैसे हो सकता है? आखिर समूह-धर्मने जैन धर्म पर विजय प्राप्त कर ली है। आत्माको भूल जानेके बाद और अनात्माको अूचा माननेके बाद छोटे-छोटे आचारोका पालन किया तो भी क्या और न किया तो भी क्या?

आजके दिनका अुपयोग हृदय-शुद्धिके लिअे किया जाना चाहिये। हृदय-शुद्धि तो होगी तब होगी, लेकिन हम विचार-शुद्धि तो कर लें। जो मनुष्य आत्मा और अनात्माका विवेक नही करता, जो मनुष्य केवल आत्माको ही पहचानने और अुसकी रक्षा करनेका प्रयत्न नही करता, वह धार्मिक नही है, जैन तो वह किसी भी हालतमे नही है।

अिस्लाममे अेक सिद्धान्तका बडे जोरोसे अुपदेश किया गया है। अीश्वर अेक है, अद्वितीय है, अुसके साथ किसी दूसरे मनुष्यको या पदार्थको मिलाया नही जा सकता, शरीक नही किया जा सकता, यह अिस्लामका अेक महान सिद्धान्त है। अीश्वरके साथ दूसरे किसीको मिलानेके गुनाहको 'शिर्क' कहा जाता है। जो मनुष्य शिर्कका गुनाह करता है, वह मुशरिक है — काफिर है। अिस्लामका यह सिद्धान्त मुझे अच्छा लगता है। हम अपनी परिभाषामे अिस सिद्धान्तका विचार करे। अतर्यामी परमात्मा ही हमारी शुद्ध आत्मा है। अुसके साथ हम अनात्माको मिला दें, तो यह 'शिर्क'का गुनाह होगा। जो मनुष्य केवल आत्माके प्रति ही सच्चा है, आत्माकी अुन्नतिके लिअे ही जीता है, अनात्माके मोहजालमे नही फसता, वही जैन है। बाकीके सब लोग जैनेतर है। अिस शुद्ध विचारकी दृष्टिसे क्या हम सभी जैनेतर नही है? कौन आत्म-परायण है और कौन नही है, यह तो मनुष्यका अपना अतर ही अुससे कह सकता है। बाहरी जीवनसे तो लगता है कि मै भी जैनेतर हू और आप लोग भी जैनेतर है। फिर भी यदि अिस समाजमें कोअी जैन हो, तो अुसे मेरे हजार-हजार प्रणा ।

३६

गायके साथ मधुमक्खी

वेदोमे गायको 'अघ्न्या' कहा गया है। सारे पशुओसे गायको अलग मानकर वेदकालमे ही यह नियम बना दिया गया था कि 'गायको कभी नही मारना चाहिये।' गायका दूध अत्यन्त पौष्टिक, सुपाच्य और निर्दोष आहार है। अुसका दूध मिलनेके बाद ही मनुष्यको मासाहार कम करनेकी बात सूझी। दूधकी प्राप्ति न हुअी होती तो मासाहार छोडना मनुष्यके लिअे कठिन हो गया होता। गाय-बैलको जगलसे लाकर मनुष्यने अुन्हे अपने पारिवारिक जीवनमे स्थान दिया। गायने दूध देकर और बैलने हल खीचकर मनुष्यके आहारमे बहुत बडी क्राति कर दी। हलकी मददसे मनुष्यने खेती शुरू की और अनाजका अुत्पादन बढाया। गायको पालकर मनुष्यने अुसे भयमुक्त बनाया और विशेष खुराक खिला-कर अुसका दूध बढाया। अिस प्रकार गाय और बैलने अपनी सेवासे मानवके लिअे आहारके विषयमे अहिंसा-धर्मकी सभावना पैदा की। जगली गायको गावका

पशु बनानेके लिअे मनुष्यको हजारो वर्ष तक प्रयत्न करना पडा होगा। गाय, बैल, घोडा, गधा, अूट, हाथी — अिन सब पशुओको मनुष्यने जब 'पालतू' बनाया अुस समय मानव-सस्कृति अेकदम अूची अुठ गअी।

अब अेक कदम और आगे बढानेका अवसर आया। घासका दूध बनानेका काम गाय करती है। अब घासके फूलोमे जो बिन्दुमात्र अमृत-रस रहता है और जिसे अेकत्र करके अुपयोगमे लेनेका काम मानवके लिअे असभव है, अुन सब बिन्दुओको अेकत्र करके अुनका शहद बनानेका काम मधुमक्खियोका रहा हे। मधुमक्खियोको मार कर या जला कर अुनके छत्तेको लूटनेका काम मनुष्य-जातिने जीवनके आरभसे ही किया है। शहद जैसी स्वादिष्ट और सुन्दर वस्तुको मनुष्य कैसे छोड सकता है? लेकिन अितनी मेहनत करके शहद लाने-वाली मधुमक्खियोको मार डालना, अुनके अडो-बच्चोका नाश करना और शहदके साथ अुनके अडोको भी निचोड लेना अत्यन्त क्रूर, मूर्खतापूर्ण, गदा और महगा काम है। आज भी हमारे देशमें यह प्रथा चालू है। परन्तु अब अुसमे अहिसक परिवर्तन हो रहा है। मधुमक्खियोकी अमुक जातिके समूहको पकड कर कृत्रिम घरोमे (छत्तोमें) रखना, अुनके लिअे आवश्यक खान-पानकी व्यवस्था करना और अुनके लिअे तथा अुनके बच्चोके लिअे जरूरी शहद रख लेनेके बाद बचा हुआ शहद अपने अुपयोगमें लेना — यह मानव-सस्कृतिका प्रगति-सूचक कदम है। शहद मनुष्यके लिअे अत्यत रुचिकर, लाभप्रद और सुन्दर आहार है। यदि हम मधुमक्खियोको पाल सकें तो कहा जायगा कि हमने गोरक्षाके बाद मानव-सस्कृतिके विकास-का अगला कदम अुठाया है। अिन मधुमक्खियोको पालनेका खर्च बहुत ही कम आता है। अुनके स्वभावको पहचाननेमे आनन्द आता है और अिस धन्धेसे कमाअी तो घीके धन्धेसे भी ज्यादा होती है। गायो और मधुमक्खियोके पालनका धन्धा अहिसावादियोके लिअे केवल लाभकारी ही नही परन्तु जीवनमे अहिसाकी नअी दिशा सूचित करनेवाला और धर्म-परायण बनानेवाला सिद्ध होगा।

शहद अिकट्ठा करनेमे हिसा होती है, अितना जानकर जैनोने यह निश्चित कर दिया कि हर तरहका शहद निषिद्ध आहार है। यह निश्चय अुस समयके लिअे ठीक रहा होगा। लेकिन हमें धर्मशास्त्रोको जीवत बनाये रखनेकी जरूरतको समझना चाहिये। यदि शहद न खायें तो हम मधुमक्खियोको मारनेकी हिंसासे बच जाते हैं। लेकिन मनुष्य-जाति मधुमक्खियोको छोडनेवाली नही है। और यदि मानवतापूर्ण ढगसे हम मधुमक्खियोका पालन नही करेंगे, तो मधुमक्खियोकी जगली ढगकी हिंसा टलेगी नही। अत जैनोको अपने शास्त्रोमें वृद्धि करनी चाहिये। अुन्हें शास्त्रोमें यह वचन जोड देना चाहिये कि न केवल मधुमक्खियोको पालकर अहिंसक ढगसे अेकत्र किया हुआ शहद निषिद्ध नही है, बल्कि अुसका सेवन करनेमें लाभ है और पुण्य भी है।

अिस धन्धेमें वहुत ही थोडी पूजीसे काम चल सकता है और खूब धन कमाया जा सकता है। यदि जैन लोग अिस धन्धेको स्वीकार करे, तो यह अुनकी धर्मवृद्धि और वाणिज्य-वृद्धि दोनोके अनुकूल सिद्ध हो सकता है।

अगस्त, १९३९

३७

जैन धर्म और अहिंसा*

धर्मकी अनेक व्याख्याये की गअी है। मेरे विचारसे धर्मकी अुत्तम व्याख्या यह है 'जीवन-शुद्धि और समृद्धिकी साधना जो दिखाये वह धर्म है।' प्रत्येक धर्ममे आत्मोद्धारके लिअे जो बातें बताअी गअी है, अुनके द्वारा ही मनुष्य अपनी अुन्नति कर सकता है। यह साधना दो प्रकारसे होती है। केवल अपना ही विचार करके आत्मशुद्धिसे आत्म-विजय प्राप्त करना और अतमें मुक्त होना, यह पहली साधना है। दूसरी सावना वह है जिसमें केवल व्यक्तिका विचार न करके समस्त समाजका विचार किया जाता है। सारे व्यक्तियोको मिलाकर समाज वनता है और वह समाज ही मुख्य माना जाता है। जैसे हम शरीरके अेक अेक अवयवका विचार नही करते, परन्तु समग्र शरीरका विचार करते है, वैसे ही मुख्यत विचारणीय प्रश्न यह है कि सगठन बनाकर रहनेवाली मनुष्य-जाति अहिंसाकी साधना कैसे कर सकती है।

मेरी मान्यताके अनुसार 'अभी तक मनुष्य-जातिकी वाल्यावस्था थी, अिसलिअे केवल व्यक्तिके लिअे मार्ग विचारने और बतानेसे हमारा काम चल जाता था। परन्तु अब जो कार्य हमारे सामने है वह विकट और व्यापक है। अव निश्चित तथा व्यवहार्य सामाजिक साधना बतानेके दिन आये है। आजकी साधना केवल आत्मशुद्धिकी नही परन्तु समाज-जीवनकी शुद्धिकी साधना है।

प्रत्येक बालकको कभी न कभी अैसा लगता ही है कि कल जो बात मेरी समझमें नही आती थी वह आज समझमें आ रही है। मनुष्यको भी अकसर अैसा लगता है कि अमुक महापुरुषके अिस जगतमें आनेके बाद ही अितनी बात हमारी समझमे आयी। प्रत्येक धर्ममें साधनाका मार्ग दिखानेवाले महापुरुष आते है। मुसलमानोका विश्वास है कि अिस्लामके नबी मुहम्मद साहबने जो कुछ कहा वह अतिम वचन है। सनातनी हिन्दू भी अीश्वरके अमुक सख्याके अवतारोमे विश्वास करते है। जैन भी चौवीस तीर्थंकरोमें विश्वास करते है। जैन लोग मानते है कि अतिम तीर्थंकर महावीर हुअे हैं, अब आगे कोअी तीर्थंकर नही होगे।

* ता० ८–८–'४० को बम्बअीमें हुअी सभामें अध्यक्ष-पदसे दिये गये भाषणका सारभाग।

लेकिन यह दलील मेरे गले नही अुतरती। कोअी अेक व्यक्ति चाहे जितना महान हो, फिर भी अुसके साथ धर्मशास्त्र पूर्ण नही हो जाता। तब तो माना जायगा कि मनुष्य-जातिकी प्रगतिका अत हो गया। अिससे तो यही माना जा सकता है कि विश्वकी रचनाको चलानेवाली अगम्य शक्ति या तो तृप्त हो गअी है या निराश हो गअी है। परन्तु वास्तवमें अैसा नही है। साधनाका सस्करण और परिष्करण बार-बार होना ही चाहिये। यह कार्य करनेवाले व्यक्ति भी बार-बार आने ही चाहिये। जिस समय चार व्रतोकी आवश्यकता थी अुस समय चार व्रतोसे काम चला। लेकिन जब अुनमे परिवर्तन करके व्रतोकी सख्या पाच करनेकी आवश्यकता हुअी तब अैसा कहनेवाले व्यक्ति निकल आये और चारके पाच व्रत हो गये। अिसी प्रकार समय समय पर मार्गदर्शन करनेवाले महापुरुष निकल ही आते है।

अहिंसा अेक सनातन तत्त्व है। अमुक समयके पहले अहिंसा नही थी, यह नही कहा जा सकता। समय समय पर अहिंसाका प्रचार करनेवाले पुरुष निकल ही आते है। मुझे सदा यह लगा है कि अहिंसाकी सच्ची साधना ब्रह्मचर्यमें, सयममें है। जो मनुष्य भोग-विलासमें डूबा रहता है और वैसा करके मरनेके लिअे बच्चे पैदा करता है, वह अहिंसक नही है। जीवनमें विलासिता, कामुकता कम हो तो ही सच्ची अहिंसाको जीवनमें अुतारा जा सकता है और समाजमें अुसे फैलाया जा सकता है।

पुण्य दु:खकर है, लेकिन अुसका फल सुखकर है, जब कि पाप बाहरसे अथवा प्रारभमें सुखकर होता है, लेकिन अुसका फल दु:खकर होता है। अिसलिअे भोग-विलासका सुखकर मालूम होना स्वाभाविक है। मनुष्य जिस हद तक विलासिताका त्याग करता है अुसी हद तक वह अहिंसा-धर्मके निकट पहुच पाता है। विलासिताको दूर करनेके लिअे अिन्द्रियोकी वृत्तियोको जीतना पडता है। अिसीको तप कहा जाता है। यह तप ही अहिंसा है। यह साधना व्यक्तिगत और सामुदायिक दोनो प्रकारसे होती है। अुसे बतानेवाले तीर्थकर समय समय पर आते ही रहने चाहिये। और अिस प्रकार सनातन अहिंसा-धर्मका विकास होना चाहिये।

अपराधके लिअे सजा देना मनुष्य-जातिका बडा अपराध है। दूसरोको सजा देनेवाले हम कौन होते है? अपराधके लिअे अपराधीको प्रायश्चित्त करना चाहिये। अपराधके लिअे सजा देकर तो हम हिंसाको घटानेके बदले प्रतिहिंसा करते है। सजा देनेसे मनुष्यका सुधार नही होता। सजा देकर हम भले ही सतोष अनुभव करे, परन्तु वास्तवमें अुससे हिंसा दुगुनी होती है। अपराध करनेवालेकी हिंसा अप्रतिष्ठित मानी जाती है। जब किसी अपराधीको सजा होती है तो लोग अुस कार्यको अच्छा मानते है, अिसलिअे यह प्रतिहिंसा प्रतिष्ठित मानी

जाती है। यह अुलटे मार्गकी साधना है। अितनी बात हम समझ लें, तो अहिंसाका मार्ग हमारी समझमे आ जायगा। भावी तीर्थंकर हमे अवश्य कहेंगे कि अपराधीको सजा देना भी अपराध ही है। क्रोधीके सामने अगर हम क्रोध न करे, तो अतमें अुसे शात होना ही पडेगा। 'अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोपशाम्यति'—तृण-रहित स्थानमे पडी हुअी आग अपने आप बुझ जाती है।

आज हम अहिंसाके बाल्यकालमे हैं। अहिंसाके विकासके लिअे बडे धीरज और अखूट साहसकी जरूरत है। मार्ग लबा है। समाजमे अहिंसाकी शिक्षाका कार्य करना आवश्यक है। अिसके लिअे अनेक महापुरुष आयेंगे और मार्ग दिखायेंगे।

केवल स्थूल हिंसाका त्याग पर्याप्त नही होगा। जहा धनके ढेर जमा हो गये हैं वहा अुनकी नीवमे शोषणका पाप है—हिंसा है। अमेरिकामे क्वेकर सप्रदायके लोग अहिंसक हैं और धनी भी हैं। भारतमे जैन लोग अहिसक होनेका सकारण दावा करते हैं, फिर भी वे धनाढ्य हैं। द्रोहके विना धन नही मिलता। अिसलिअे मेरी समझमें नही आता कि अहिंसा और धनका मेल कैसे बैठ सकता है। आप चीटियोके दरके सामने आटा डाले, रात्रि-भोजन न करे, आलू न खायें—यह सब तो अच्छा है। परन्तु यह आरभकी क्रिया है। हमें तो अहिंसा-धर्ममें आगे बढना है। जगतमे जब युद्ध चल रहा हो तब हम शात कैसे बैठ सकते है? हमे अुसे रोकनेका मार्ग खोजना चाहिये। हमारे विचारोमे परिवर्तनकी आवश्यकता है। कअी लोग कहते हैं कि युद्ध तो यूरोपमें लडा जा रहा है, हमारे देशमें तो गाधीजीके प्रतापसे सब ठीक चल रहा है। लेकिन मैं कहता हू कि हमारे देशमें प्रत्येक प्रान्तमे भीतर ही भीतर फूट फैली हुअी है, हर जगह अविश्वास फैला हुआ है। ये सब हिंसाके ही प्रतीक हैं। यूरोपके पास अस्त्र-शस्त्र है, अिसलिअे वहाके लोग युद्ध करते हैं। हम अेक-दूसरेके पैर खीचकर अेक-दूसरेको नीचे गिराते हैं। वृत्तिसे तो दोनो अेकसे ही हैं। वहा समर्थोंकी शस्त्रधारी हिंसा चलती है, यहा असमर्थोंकी अविश्वास, द्वेष, निंदा और द्रोह-मूलक हिंसा।

अदालतमें जानेके बदले पचके द्वारा अन्याय दूर कराना और अन्याय करनेवालेको अपना बनाकर अुसकी शुद्धिका प्रयत्न करना—अिस प्रकारकी अहिंसक साधनाका विकास विचारपूर्वक अभी तक हमने नही किया है।

सरकारी अन्यायके विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह करनेके बजाय सत्याग्रह करनेकी अहिंसक साधना हमारे जमानेमे गाधीजीने ही बताअी है। राज्यके विरुद्ध किये जानेवाले पुराने 'त्रागा' (धरना) या अैसे ही दूसरे विद्रोहमे अहिंसा नही थी। शायद अैसा कहा जा सकता है कि अुसमे अहिंसक पद्धतिके बीज थे।

राष्ट्रोके बीच जो युद्ध लडे जाते हैं अुनके बजाय चढाअी करनेवाले शत्रुका अहिंसक पद्धतिसे प्रतिकार कैसे किया जाय, यह सोचने या सुझानेका मौका गाधीजीको भी नही मिला है।

अमेरिकामें या अफ्रीकामें गोरे लोग काले लोगो पर जो जुल्म ढाते है, अुन्हे दूर करनेका अहिंसक मार्ग दिखानेकी जिम्मेदारी अहिंसाके अुपासको और आचार्योंकी है। परतु आज तो ये लोग शास्त्र-वचनोकी व्याख्या करनेमें और परम्परागत मार्गसे अपने तप या प्रतिष्ठाको बढानेमे ही मशगूल है।

आज दुनियामें बडीसे बडी हिंसा शोषणकी चल रही है। दूसरोकी कठिन परिस्थितियोका लाभ अुठाकर अुनकी सेवाओका दुरुपयोग करना और अुन पर अनुचित अत्याचार करना अर्थात् अुनके जीवनका शोषण करना वहुत बडी हिंसा है। अिस तरहकी हिंसा परिवारोमें भी चलती है। जमीदार और काश्तकार, खेतमें काम करनेवाले मजदूरोके मालिक और खेतीहर मजदूर, कारखानेदार और कारखानेके मजदूर, अुच्च वर्गोंके लोग और श्रमजीवी लोग — अिन सबके सम्बन्धोमे शोषणकी, दबावकी और जुल्मोकी हिंसा सतत चला ही करती है। साहूकार मनमाना व्याज लेकर कर्जदारको चूसता है, यह भी हिंसा ही है।

जैन समाज तथा जैन साधुओ और आचार्योंको यह सोचना चाहिये कि अिस सारी हिंसाका सामना कैसे किया जाय और अिस दृष्टिसे समाज-जीवनका परिवर्तन करनेके लिअे कौनसे कदम अुठाये जाने चाहिये।

जब हमारा समाज धर्मप्राण था अुस समय हमारे धर्माचार्य तत्कालीन विज्ञानकी मददसे साहसपूर्वक जीवन-परिवर्तन करनेमें हिचकिचाते नही थे और समाजकी पुरानी रूढियोका विरोध करनेमें भी डरते नही थे।

शरीर-शुद्धिके लिअे पचगव्यमे गोमूत्रका भी प्राशन करनेकी प्रथाके पीछे वैज्ञानिक साहस स्पष्ट दिखाअी देता है। पानीमे सूक्ष्म कीटाणु होते हैं अिसलिअे पानीको गरम करने और अुसे तुरन्त ठडा करनेकी जो प्रथा जैनोने चलाअी, अुसमें आजके डॉक्टरी आग्रहोसे कम हिम्मत नही थी। जैन साधुओका केश-लुचन तथा मुख पर बाधी जानेवाली 'मुहपत्ती' भी सामाजिक शिष्टाचारकी परवाह न करके अेक प्रकारके विज्ञानसे चिपटे रहनेकी हिम्मतका ही प्रतीक है। वहुवीज वनस्पति न खाना, रात्रि-भोजन न करना अित्यादि सुधारोका प्रचार जिन आचार्यों और साधुओंने किया, वे आजके जमानेमें विज्ञानका अनुसरण करके यदि चिन्तन करे और नये आचारका प्रचार करे, तो कोअी यह नही कह सकेगा कि आजके जैन आचार्य धर्म-परायण न रहकर रूढि-परायण हो गये है और आजके जैन साधु अध-परम्पराओका निष्प्राण जीवन जीते हैं।

जो चीज बुरी मानी जाती है वह कितनी ही सुखकर, प्रिय अथवा प्रति-ष्ठित क्यो न हो, तो भी अुसका त्याग करनेके लिअे तैयार होना और अद्यतन विज्ञान तथा धर्मज्ञान आज जो नअी दृष्टि प्रदान करे अुसका अनुसरण करनेके लिअे तैयार होना जीवत और प्राणवान रहनेका लक्षण है। जो व्यक्ति जीवन पर विजय प्राप्त करता है वह जिनेश्वर है। अब अैसे अनेक जिनेश्वर अुत्पन्न

होने चाहिये। अुनके आनेकी हम तैयारी करे और अुनके स्वागतके लिअे लोक-मानस तैयार करे।

३८

राजचन्द्र-जयन्ती *

१

आज हम अेक ज्ञानी और तपस्वी पुरुषकी जयती मनानेके लिअे यहा अेकत्र हुअे हैं। श्रीमद् राजचन्द्रका समय हमारा ही समय है। वे यदि जीवित रहते तो आज ६४ वर्षके होते। मनुष्यकी सामान्य आयुका विचार करे तो जिन्हे आज प्रत्यक्ष जीवित देखनेका हमारा अधिकार था अुनकी मृत्युको ३३ वर्ष हो जानेका अुल्लेख हमे करना पड रहा है, यह हमारे देशकी अर्थात् हमारी जनताकी दुर्गतिका सूचक है। सौ वर्षकी आयु मागनेवाले हमारे पूर्वजोने यह भी पहलेसे कह दिया है 'अतिदीर्घे जीविते को रमेत?' बहुत लम्बे जीवनमे क्या स्वाद है? 'मुहूर्तं ज्वलित श्रेय न च धूमायित चिरम्।' घडी भर ज्योति जलाकर बुझ जाना अच्छा है, वर्षों तक धुधुवाते रहना अच्छा नही। किन्तु यह तो केवल आश्वासन-की बात है। सपूर्ण पुरुष १०० वर्ष तक क्यो न जियें? श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्ण, महावीर और बुद्ध कम नही जिये थे, परन्तु हमारे भाग्यमें तो शकराचार्य अथवा ज्ञानेश्वर जैसे ३०–३५ वर्षके भीतर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त करनेवाले धार्मिक पुरुषोकी सख्या आअी है। स्वामी विवेकानद चालीस वर्ष भी पूरे न कर सके।

आजके दिन राजचन्द्रके विषयमे बोलनेका अधिकार अुन्ही लोगोका है, जिन्होने श्रीमद् राजचन्द्रको स्वय देखा हो, अुनसे बोध प्राप्त किया हो तथा अुनके तपस्वी जीवनसे प्रेरणा ग्रहण की हो। और, अैसे लोग बहुत हैं। लेकिन श्री पूजाभाअीने राजचन्द्र-जयतीका भार आज मेरे सिर पर डाल दिया है। अुनके अिस आग्रहका मै अनुग्रहके रूपमें स्वागत करता हू। राजचन्द्र कविको मैंने देखा नही। वे जीवित थे अुस समय मैंने गुजरातका दर्शन भी नही किया था। अुनके पर्कमें मैं आता तो अुनके प्रति आकर्षित होता या नही, अिस बारेमे भी मुझे सदेह है। अुस समय तो मेरे मनमे अिस शकाका अुदय हो रहा था कि धर्म, नीति, सदाचार आदिकी गूढ कल्पनाओका किस हद तक पालन करना चाहिये।

---

* ता० १५–९–'३१ को श्रीमद् राजचन्द्र-जयतीके अवसर पर अध्यक्ष-पदसे दिया गया भाषण।

अनुभवके विना प्रचलित वातोको स्वीकार करनेके लिअे मेरा मन तैयार नहीं होता था। अुस समय मनमें अिस प्रकारकी वृत्ति स्फुरित होती थी कि हर वातकी स्वय जाच करनी चाहिये, अनुभवसे हर वातकी छानवीन करनी चाहिये और अुलटे रास्ते जानेकी भी हिम्मत करनी चाहिये। सवसे पहले मैंने श्रीमद् राजचन्द्र-के विपयमें गाधीजीके मुहसे सुना था। १९१६ के अरसेमे आश्रमकी प्रार्थनामें श्रीमद् राजचन्द्रके वचन पढे जाते थे। गाधीजी अुनका अर्थ करके हमें समझाते थे। मूल गुजराती मैं समझता नही था, अुसमें भी कविकी भापा जैन पारिभाषिक शब्दोसे भरी होती थी, अिसलिअे गाधीजी अपने विवेचनमें जितना कहते थे अुतना ही समझमें आता था। गाधीजी जिस पुरुषको महापुरुष मानते हैं, रस्किन और टॉल्स्टॉयसे भी वडा समझते हैं, अुस पुरुषकी विभूति असाधारण होनी चाहिये, यह सोचकर मैंने श्रीमद् राजचन्द्रके पद्य और पत्र पढना शुरू किया। पद्योमें तो मेरा चचु-प्रवेश भी नही हो सका। वीच-वीचमें कोअी रत्न जैसा सुभाषित हाथ लग जाता, तो मनको आनद होता था। अुनके पत्र ही मुझे विशेष आकर्षक लगे। पत्र-साहित्य सदा ही आकर्षक लगता है, क्योकि वह व्यक्तिगत सभाषण जैसा पवित्र होता है, अुसमें अेक हृदय दूसरे हृदयसे बाते करता है। और जब कोअी अुन्नत हृदय मोक्षार्थी होकर सच्चे लोक-कल्याणकी भावनासे '**हित-काम्यया**' अन्य हृदयोके साथ वातें करता है, तव तो अिन पत्रोमें आध्यात्मिक भाव अितने स्वाभाविक रूपमे खिलता है कि कभी कभी ये पत्र दीक्षाकी गरज पूरी करते हैं।

राजचन्द्र-जयती पर गाधीजीने जो अुद्गार प्रकट किये थे, वे स्वाभाविक थे। अुन्हें मैंने अनेक वार पढा है और अुनका मनन भी किया है। लेकिन राज-चन्द्रके भक्त जब हर जगह अिन अुद्गारोको अिस तरह अुद्धृत करते हैं, मानो वे राजचन्द्रको गाधीजी द्वारा दिये गये प्रमाण-पत्र हो, तब मुझे जरा विचित्र लगता है। अुपनिषदोके विपयमें शोपेनहारके अुद्गार और शाकुतलके विषयमे **जर्मन** कवि गेटेके अुद्गार जग-विख्यात हैं। परन्तु हर अवसर पर जब अुन्हे अ रूपमें अुद्धृत किया जाता है, तो अुनका अलग ही असर होता है।

रस्किन और टॉल्स्टॉय आध्यात्मिक वृत्तिके पुरुष थे। आज लोग अुन आदर करते हैं अुनके साहित्यके कारण। परन्तु यह साहित्य अुनके जीवनसे अुत्पन्न हुआ था। राजचन्द्रके प्रति गाधीजीकी जो भक्ति है, राजचन्द्रके साहित्यकी अपेक्षा अुनके पारमार्थिक जीवनके प्रति अधिक चाहिये। रस्किनकी जीवन-साधनाके वारेमें अधिक कुछ कहने जैसा है ही टॉल्स्टॉयकी जीवन-साधना अवश्य ही आकर्षक है, परन्तु अुसमें जहा दुर्वलता और शायद धर्म-अधर्मके निर्णयके वारेमें अुलझन भी दिखाअी है।

होने चाहिये। अुनके आनेकी हम तैयारी करे और अुनके स्वागतके लिअे लोक-मानस तैयार करे।

३८

राजचन्द्र-जयन्ती*

१

आज हम अेक ज्ञानी और तपस्वी पुरुषकी जयती मनानेके लिअे यहा अेकत्र हुअे है। श्रीमद् राजचन्द्रका समय हमारा ही समय है। वे यदि जीवित रहते तो आज ६४ वर्षके होते। मनुष्यकी सामान्य आयुका विचार करे तो जिन्हे आज प्रत्यक्ष जीवित देखनेका हमारा अधिकार था अुनकी मृत्युको ३३ वर्ष हो जानेका अुल्लेख हमें करना पड़ रहा है, यह हमारे देशकी अर्थात् हमारी जनताकी दुर्गतिका सूचक है। सौ वर्षकी आयु मागनेवाले हमारे पूर्वजोने यह भी पहलेसे कह दिया है 'अतिदीर्घे जीविते को रमेत?' बहुत लम्बे जीवनमें क्या स्वाद है? 'मुहूर्तं ज्वलित श्रेय न च धूमायित चिरम्।' घडी भर ज्योति जलाकर बुझ जाना अच्छा है, वर्षो तक धुधुवाते रहना अच्छा नही। किन्तु यह तो केवल आश्वासन-की बात है। सपूर्ण पुरुष १०० वर्ष तक क्यो न जिये? श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्ण, महावीर और बुद्ध कम नही जिये थे, परन्तु हमारे भाग्यमें तो शकरा-चार्य अथवा ज्ञानेश्वर जैसे ३०–३५ वर्षके भीतर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त करनेवाले धार्मिक पुरुषोकी सख्या आअी है। स्वामी विवेकानंद चालीस वर्ष भी पूरे न कर सके।

आजके दिन राजचन्द्रके विषयमे बोलनेका अधिकार अुन्ही लोगोका है, जिन्होने श्रीमद् राजचन्द्रको स्वयं देखा हो, अुनसे बोध प्राप्त किया हो तथा अुनके तपस्वी जीवनसे प्रेरणा ग्रहण की हो। और, अैसे लोग बहुत है। लेकिन श्री पूजा-भाअीने राजचन्द्र-जयतीका भार आज मेरे सिर पर डाल दिया है। अुनके अिस आग्रहका मै अनुग्रहके रूपमें स्वागत करता हू। राजचन्द्र कविको मैंने देखा नही था। वे जीवित थे अुस समय मैंने गुजरातका दर्शन भी नहीं किया था। अुनके सपर्कमे मैं आता तो अुनके प्रति आकर्षित होता या नही, अिस बारेमें भी मुझे सदेह है। अुस समय तो मेरे मनमे अिस शकाका अुदय हो रहा था कि धर्म, नीति, सदाचार आदिकी गूढ कल्पनाओंका किस हद तक पालन करना चाहिये।

---

* ता० १५–९–'३१ को श्रीमद् राजचन्द्र-जयतीके अवसर पर अध्यक्ष-पदसे दिया गया भाषण।

अनुभवके बिना प्रचलित बातोको स्वीकार करनेके लिअे मेरा मन तैयार नहीं होता था। अुस समय मनमें अिस प्रकारकी वृत्ति स्फुरित होती थी कि हर बातकी स्वय जाच करनी चाहिये, अनुभवसे हर बातकी छानबीन करनी चाहिये और अुलटे रास्ते जानेकी भी हिम्मत करनी चाहिये। सबसे पहले मैंने श्रीमद् राजचन्द्रके विषयमे गाधीजीके मुहसे सुना था। १९१६ के अरसेमें आश्रमकी प्रार्थनामें श्रीमद् राजचन्द्रके वचन पढे जाते थे। गाधीजी अुनका अर्थ करके हमें समझाते थे। मूल गुजराती मै समझता नही था, अुसमें भी कविकी भाषा जैन पारिभाषिक शव्दोसे भरी होती थी, अिसलिअे गाधीजी अपने विवेचनमें जितना कहते थे अुतना ही समझमें आता था। गाधीजी जिस पुरुषको महापुरुष मानते हैं, रस्किन और टॉल्स्टॉयसे भी बडा समझते है, अुस पुरुषकी विभूति असाधारण होनी चाहिये, यह सोचकर मैंने श्रीमद् राजचन्द्रके पद्य और पत्र पढना शुरू किया। पद्योमें तो मेरा चचु-प्रवेश भी नही हो सका। बीच-बीचमे कोअी रत्न जैसा सुभाषित हाथ लग जाता, तो मनको आनद होता था। अुनके पत्र ही मुझे विशेष आकर्षक लगे। पत्र-साहित्य सदा ही आकर्षक लगता है, क्योकि वह व्यक्तिगत सभाषण जैसा पवित्र होता है, अुसमें अेक हृदय दूसरे हृदयसे बाते करता है। और जब कोअी अुन्नत हृदय मोक्षार्थी होकर सच्चे लोक-कल्याणकी भावनासे **'हित-काम्यया'** अन्य हृदयोके साथ बातें करता है, तब तो अिन पत्रोमें आध्यात्मिक भाव अितने स्वाभाविक रूपमे खिलता है कि कभी कभी ये पत्र दीक्षाकी गरज पूरी करते हैं।

राजचन्द्र-जयती पर गाधीजीने जो अुद्गार प्रकट किये थे, वे स्वाभाविक थे। अुन्हे मैंने अनेक बार पढा है और अुनका मनन भी किया है। लेकिन राजचन्द्रके भक्त जब हर जगह अिन अुद्गारोको अिस तरह अुद्धृत करते हैं, मानो वे राजचन्द्रको गाधीजी द्वारा दिये गये प्रमाण-पत्र हो, तब मुझे जरा विचित्र लगता है। अुपनिषदोके विषयमें शोपेनहारके अुद्गार और शाकुतलके विषयमें जर्मन कवि गेटेके अुद्गार जग-विख्यात हैं। परन्तु हर अवसर पर जब अुन्हे अचूक रूपमें अुद्धृत किया जाता है, तो अुनका अलग ही असर होता है।

रस्किन और टॉल्स्टॉय आध्यात्मिक वृत्तिके पुरुष थे। आज लोग अुनका आदर करते है अुनके साहित्यके कारण। परन्तु यह साहित्य अुनके अुदात्त जीवनसे अुत्पन्न हुआ था। राजचन्द्रके प्रति गाधीजीकी जो भक्ति है, वह राजचन्द्रके साहित्यकी अपेक्षा अुनके पारमार्थिक जीवनके प्रति अधिक होनी चाहिये। रस्किनकी जीवन-साधनाके बारेमें अधिक कुछ कहने जैसा है ही नही। टॉल्स्टॉयकी जीवन-साधना अवश्य ही आकर्पक है, परन्तु अुसमें जहा तहा दुर्बलता और शायद धर्म-अधर्मके निर्णयके बारेमें अुलझन भी दिखाअी पडती है। धर्म-विचिकित्सा तथा वृत्ति-विचिकित्साका निर्णय करते समय वे परेशानी

महसूस करते हैं। राजचन्द्र अपनी जीवन-साधनामें तेजीसे आगे बढते दिखाअी देते है। जितना कुछ जाने अुतनेको जीवनमें अुतारनेका आग्रह — यह भारतवर्षके सच्चे जीवनकी कसौटी है। अिस कसौटीको ध्यानमें रखकर ही अेक बार स्वामी अभेदानन्दने कहा था कि अमेरिकामे अेक ही अेमर्सन पैदा हुआ, लेकिन भारतमें तो दस-दस कोस पर अेक अेक अेमर्सन बैठा है।

धार्मिक जीवनके अितिहासकी जाच करनेसे हमें पता चलता है कि कुछ विशेष लोग ही अनुभव-परायण होते है, आम जनता तो श्रुति-परायण ही रहती है। शास्त्रोने लिखा है, पूर्वजोने माना है, बुजुर्ग कहते आये है, अिसी कारणसे अमुक मान्यतायें मजूर रखना, अमुक रिवाज पालना और अमुक समुदायमें रहना मानवके लिअे आसान और स्वाभाविक होता है। साधना, साक्षात्कार और मोक्ष चाहे जितने सामान्य और रोचक शब्द हो, परन्तु वे साधारण मानवके लिअे नही होते। जो लोग शास्त्रोको स्वीकार करते है वे और आजकल जो लोग शास्त्रोको स्वीकार नही करते वे भी अधिकतर रूढिग्रस्त ही होते है। जो लोग शास्त्रोको स्वीकार करते हैं वे परम्पराकी वजहसे अुन्हे स्वीकार करते है, और जो लोग शास्त्रोसे अिनकार करते है वे अधिकतर अेक नअी फैशन तथा बौद्धिक सहूलियत अथवा सरलताको देखकर अैसा करते है। अिन दोनोका जीवन बिलकुल छिछला तो नही होता, परन्तु अिन्हे प्रयोग-वीर नही कहा जा सकता। शास्त्रोमें मूल महत्त्वकी जो बातें लिखी है अुनका प्रयोग और अनुभव किये बिना रहा ही नही जा सकता, अिस तरहका आग्रह रखनेवाले जो थोडेसे लोग होते है वे ही वास्तवमे धर्मके विषयमें जीवत कहे जायगे।

श्रीमद् राजचन्द्र अिसी कोटिके पुरुष माने जायगे। अुनकी रचनाओसे स्पष्ट होता है कि अुनमें बचपनसे ही धार्मिक जीवन जीनेका आग्रह था, अुनका मनोमन्थन सतत चला ही करता था। अुनका यह विश्वास था कि अेक प्रयोग-वीरके नाते अपने प्रयोगोकी रिपोर्ट समय समय पर अपने मित्रोको तथा सहधर्मियोको देनेके लिअे वे बधे हुअे हैं। अिसलिअे राजचन्द्रके पत्रोमे अनेक बार अुनके सम्बन्धमें अुल्लेख आता है।

अध्यात्मशास्त्रके अनुभव विविध प्रकारके होते है और बहुत बार वे अेकागी भी होते है। शुद्ध भावसे अपने हृदयकी जाच करनेमे मनुष्यको अपने दोषो और विकारोका पता चल जाता है, अिसलिअे जब अिस जाचके फलस्वरूप अुसे मालूम होता है कि साधनाके अनुपातमें अुसकी प्रगति नही हुअी है, तो वह अपनी अयोग्यताको पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। दूसरी ओर, जहा विकारोके खिलाफ महान सघर्ष अनिवार्य होनेका भय रहता है वहा अुन्हे आसानीसे पार कर लेने पर मनुष्यको स्वाभाविक रूपमें अैसा लगता है कि मै मजिलके नजदीक

पहुच गया हू । जो मनुष्य अखड साधना करनेवाला है, अुसे आत्माका सतत भान रहना ही चाहिये ।

आत्माका भान भौतिक विज्ञानकी जानकारीकी तरह तटस्थ नही रह सकता । अुसका सारे जीवन पर प्रभाव पडता है। आत्माका भान ही हमारा यथार्थ जीवन है। अुसकी सतत तथा अखण्ड जागृति अेक अलौकिक रसायन (कीमिया)-है । जिस मनुष्यमें आत्माका भान जाग्रत है, विद्यमान है, अुसमे जीवनका नियत्रण देखते ही देखते बढ जाना चाहिये। निश्चयकी शाति तो अुसे सदा मिलनी ही चाहिये। अैसे जीवनकी आत्म-स्वीकृतिया अध्यात्मशास्त्रका आधार होती है । अध्यात्मशास्त्रीके व्यापक सिद्धान्त अैसी प्रामाणिक आत्म-स्वीकृतियोके आधार पर ही बनाये हुअे होते है । शास्त्रोका अर्थ करनेकी अतिम कुजी ये आत्म-स्वीकृतिया ही होती है। धर्मकी जागृति अतमें अैसे धार्मिक पुरुषो द्वारा किये जानेवाले जीवन-प्रयोगो पर ही निर्भर करती है।

जिस प्रकार कोअी जौहरी अपनी सधी हुअी आखोसे हाथके कीमती हीरेके सारे पहलुओका निरीक्षण-परीक्षण करता है, अुसी प्रकार ध्यानवीर और प्रयोग-वीर मनुष्य जीवनके सारे पहलुओको प्रत्यक्ष जीवनमें अथवा **'scientific imagination'**—वैज्ञानिक कल्पनामें अर्थात् ध्यानमें देखता है, अुनकी कसौटी करता है और अुनका मूल्य आकता है। जीवनके विस्तार और गहराओका अुसका दर्शन जितना अधिक होगा अुतना ही अुसका ध्यान, निरीक्षण और परीक्षण अचूक होगा। कवि राजचन्द्रकी रचनाओमे आरभसे ही जीवनके अनेक पहलुओ पर नजर डालनेकी जौहरी-वृत्ति दिखाअी देती है। आगे चलकर अुनकी दृष्टि अधिकाधिक अेकाग्र बनी हुअी मालूम होती है और तबसे सार्वत्रिक सिद्धान्त प्रतिपादित करनेकी ओर अुनकी रुचि अधिक दिखाअी देती है। मनुष्यको जब समग्र जीवनकी कुजी मिल जाती है तब वह अपने आनदमें अेक ही बातको बार-बार अनेक प्रकारसे कहता रहता है । यह प्रभाव भी हम कविकी रचनाओमें देखते है । अिसीलिअे राजचन्द्रका कविपद विशाल अर्थमें सार्थक होता है। कविका अर्थ है अनुभवी, कविका अर्थ है विजयी, कविका अर्थ है क्रान्तदर्शी, कविका अर्थ है वह व्यक्ति जिसे जीवनके सारे महत्त्वपूर्ण प्रश्नोका हल मिल गया है।

जिन लोगोकी दर्शनशास्त्रमें अभिरुचि नही है, फिलॉसफीके प्रति जिनकी अरुचि है, वे शायद लबे समय तक श्रीमद् राजचन्द्रकी रचनाओका आनद नही ले सकेंगे। परन्तु राजचन्द्रकी पारमार्थिकता, जीवनके तत्त्वोको खोजनेकी अेकाग्रता और जीवनके सत्यको सरल बनानेका आग्रह—ये तीन बातें अुन्हे आकर्षित किये बिना नही रहेंगी।

२

मानव-जीवनका अर्थ है श्रेय और प्रेयके बीच होनेवाला सग्राम। सामान्य मनुष्यको जो जो वस्तुअें प्रिय लगती है, जो जो वस्तुअे आकृष्ट करती है और अिसीलिअे जो वस्तुअें अुसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लगती हैं, वे जीवनकी दृष्टिसे वास्तवमें कीमती नही होती। आज यूरोप और अमेरिकामे असे कितने ही लोग है, जो विषय-सेवनको और अहकारकी तृप्तिको जीवनकी सार्थकता या जीवनका साक्षात्कार (expression of life) मानते है। वे अीमानदारीसे यह विश्वास करते है और कहते हैं कि अिसके आगे कुछ है ही नही। परन्तु वे समझते नहीं कि जीवनकी कृतार्थताके अतमे अुन्हे जो परम शाति मिलनी चाहिये, गन्तव्य स्थान पर पहुचनेका जो सतोष मिलना चाहिये, वह अुन्हे नही मिलता।

हमारे देशमे जीवन-विषयक कल्पना अिन्द्रिय-तृप्तिकी अपेक्षा कुछ अधिक है। अिन्द्रिय-तृप्ति द्वारा अथवा अिन्द्रिय-निग्रह द्वारा आत्माको पहचानना, चैतन्य-का विकास करना और अतमें अिन्द्रियो पर विजय प्राप्त करना यही हमारे देशके समस्त सम्प्रदायोका अुद्देश्य है। कुछ लोग अिन्द्रियोके साथ समझौता करनेकी बात सुझाते है, कुछ लोग यह मानते है कि अिन्द्रियो पर हमे विश्वास रखना चाहिये, स्वाभाविक परिस्थितियोमे वे स्वय ही हमे आत्मिक विकासकी दिशामे ले जायगी। कुछ लोग अिन्द्रियोके साथ कामचलाअू समझौता करनेकी बात सुझाते हैं, जब कि कुछ आत्मवीर निश्चयके साथ यह कहते है कि अिन्द्रियोके साथ कोअी समझौता किया ही नही जा सकता। 'अिन्द्रिया विफर कर विकृति अुत्पन्न न करे' अितनी सावधानी रखकर अिन्द्रियोके साथ सतत जीवन-युद्ध करना ही पुरुषार्थका मार्ग है। आत्मा और अनात्मा, जड और चेतन अेक-दूसरेसे अितने भिन्न है और अितने परस्पर विरोधी है कि अेकका विकास दूसरेका निश्चित विनाश है। अिसलिअे किसी प्रकारकी दया बताये बिना अिन्द्रियोको अकुशमे लाना ही चाहिये। अेक भी अिन्द्रिय शिथिल हुअी तो आत्मशक्ति अुसमे से वैसे ही निकल जायगी जैसे छेदवाली पखालमें से पानी निकल जाता है।

जीवनकी सार्थकता आत्माको पहचाननेमें, जीवनका सर्वांगीण विकास साधनेमें और सर्वत्र आत्माका ही साम्राज्य स्थापित करनेमें है। देहधर्मके नाम पर, जीवनके साक्षात्कारके नाम पर, कला-रसिकताके नाम पर अथवा आत्मदेवकी पूजाके नाम पर हम जो भी अिन्द्रिय-भोग करते है, वह हमें मोक्षकी ओर ले जानेवाला नही बल्कि अध पतनकी ओर ले जानेवाला होता है। अिसलिअे किसी भी कारणसे, किसी भी बहानेसे, हमें अिन्द्रियोके मोहमें नही फसना चाहिये। यही सावधानता है, यही अुद्धारका अेकमात्र मार्ग है। कवि राजचन्द्रका अिस सिद्धान्तमें दृढ विश्वास था। अिसलिअे अुन्होने अपना सपूर्ण जीवन अिसी मार्गमें निचो डाला, अैसा कहा जा सकता है।

आत्म-सयमके साथ अहिंसा — यह भी कवि राजचन्द्रके अचल विश्वासका अेक विषय था। अहिंसाका अर्थ कितना व्यापक है, यह गाधीजीने हमे बताया है। अब यह बात भी हमारी समझमें आती है कि ब्रह्मचर्यमें भी अहिसा ही समाअी हुअी है । यह अहिंसा कायरका धर्म नही परन्तु शूर-वीरका धर्म है, यह समझनेकी बडी आवश्यकता है । प्रत्येक फिलॉसफीके दो परस्पर विरोधी अुपयोग होते हैं। 'यह दुनिया फानी है, जगत नश्वर है, हमारे साथ कुछ भी आनेवाला नही है'— यह सनातन सत्य विराट्से विराट् अनुभव पर रचा हुआ है। अिस सत्यका आधार लेकर अेक मनुष्य कह सकता है कि 'तव तो अिस नश्वर जगतमे स्वराज्य और स्वातत्र्य सब व्यर्थ है । देश और देशकी दौलत, सगे-सम्वन्धी और अुनका सुख-सतोष सभी कुछ फानी है । जो जानेवाला है और अिसलिअे जिसकी कीमत कौडीकी भी नही है, अुसके लिअे लडनेमें, आध्यात्मिक साधनाके लिअे अुपयोगी शरीरको खतरेमें डालनेमे और अिस देशकी दौलत पर लोभकी नजर डालकर अुसे अपने अधिकारमें रखनेवाले पामर लोगोको दुःखी करनेमें क्या लाभ है?' दूसरा मनुष्य दुनियाके फानी होनेकी दलीलको ही सामने रखकर मनमे सोचेगा 'धन-दौलत और जमीन-जायदाद तो क्या, हमारा यह प्यारा शरीर भी फानी है। तब अिज्जतके लिअे, अैहिक मोक्षके लिअे लडनेका, शरीरका बलिदान करनेका, परम अहिंसा-धर्म हम क्यो चूके? शरीरको हम वचायेंगे भी तो आखिर वह कहा तक टिकेगा? बाल-बच्चोके लिअे धन-दौलत रखकर हम अुनका कौनसा कल्याण करेगे? गरीव समझें या न समझें, अुनके अज्ञानका या अुनकी विषम स्थितिका लाभ अुठानेमें स्पष्ट और भयानक हिंसा है। अिसके बजाय गरीबोको सुखी करनेके लिअे, अुनके हृदयकी जलनको दूर करके अुन्हे आत्मिक सतोष देनेके लिअे हम श्रमका जीवन क्यो न पसन्द करे? और देशका स्वातत्र्य — सामाजिक मोक्षकी पहली मजिल — सिद्ध करनेमें यदि अिस फानी शरीरका अुपयोग हो, तो अनित्य द्रव्यसे नित्य वस्तु प्राप्त करनेका परम लाभ होगा। यह लाभ अहिंसा-धर्मका अुत्तम फल है।

'अिस फलकी सिद्धिके लिअे हम श्रीमद् राजचन्द्रकी निष्ठासे सतत प्रयत्न करे।'
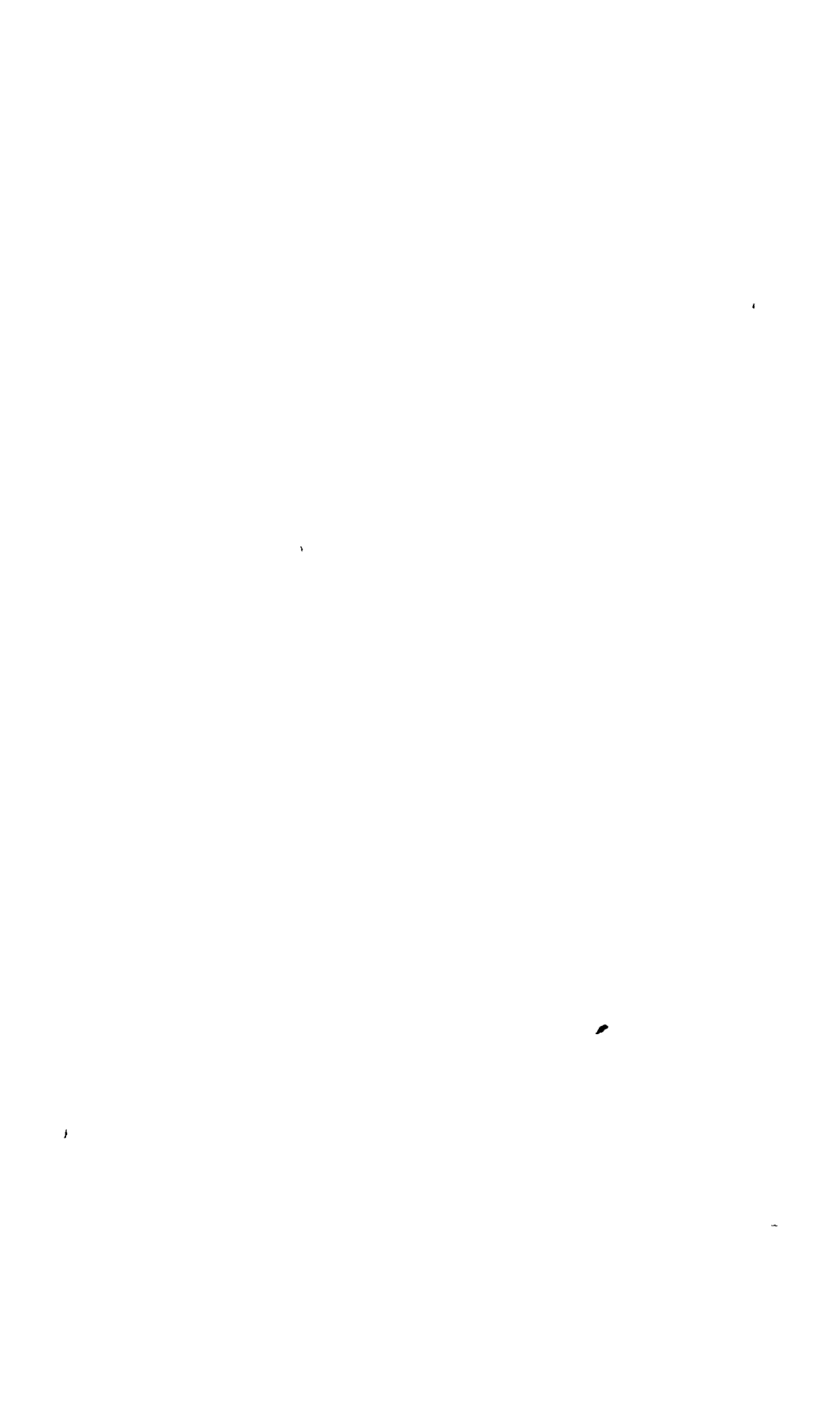
जीवन-व्यवस्था

तीसरा खण्ड

आस्तिक्य

३९

ओीश्वरकी कृपा

[अेक प्रवचन]

'दीनन दुखहरन देव, सतन हितकारी।'

ओीश्वरके नाम अनत हैं, परन्तु ओीश्वरको यदि अुनमे सबसे प्रिय कोओी नाम हो, तो वह 'दीनन दुखहरन' ही होगा, 'संतन हितकारी' ही होगा। दीन जनोका दुख दूर करनेमे ही परमात्माको आनद होता है। जिस प्रकार माताको अपने वालकोकी सेवामें सारा समय वितानेमे, अुनकी सेवामें स्वयको भूल जानेमें ही आनन्द आता है, अुसी प्रकार परमात्मा सदा सतोके हितमे लगे रहनेमें ही प्रसन्नता अनुभव करता होगा।

परमात्माके अिस स्वभावको किसने देखा? अेक अधे साधुने। दुनियाके प्रति जो अधा हो वही न अैसी दिव्य वस्तुको देख सकता है! दुनियावी दृष्टि खोये बिना अैसी दिव्य दृष्टि आ ही नही सकती। व्यावहारिक दृष्टि खोये विना पारमार्थिक दृष्टि खिल ही नही सकती। दिनमें अेक सूर्य अुगता है। अुसके आधार पर हमारा सपूर्ण व्यवहार चलता है। परन्तु अुसी कारणसे असख्य तारे और नक्षत्र हमारे लिअे लुप्त हो जाते हैं। व्यवहारका यह सूर्य डूवता है तभी अनेक तारे और अनेक सूर्य दिखाओी देने लगते हैं — अुसी समय हमें सृष्टिके अनत विस्तारका थोडा भान होता है और अुसके रहस्यका कुछ ज्ञान होता है।

व्यवहार कहता है 'स्वार्थमें और अुसके लिअे चलाये जानेवाले कलहमें ही जीवनकी सफलता है। जिसने स्वार्थको छोड दिया अुसे डूबा हुआ ही समझो, रसातलको गया हुआ ही समझो।' अनुभवका प्रकाश भी अिसका साक्षी बनकर कहता है 'हा, अैसा ही है। हमेशा अैसा ही होता देखा गया है। अिस सफल व्यवहार तथा अुसके ठोस अनुभवके वारेमें जो अधा बन गया, वही यह कह सकता है कि ओीश्वर परोपकारी सतोका पक्षपाती है, दीन जन ही अुसे प्रिय हैं। ओीश्वरकी कृपा अुन्हीके लिअे है।'

परन्तु ओीश्वरकी यह कृपा किसीको मुफ्त नही मिलती। ओीश्वर कोओी खैरात बाटनेवाला दानशूर सेठ नही है। याचककी कठिनाओी दूर करके अुसे भिखारी बनाना, अुसकी आत्मामें ग्लानि पैदा करना — ओीश्वरका ढग नही है। ओीश्वर तो कर्माध्यक्ष है। थोडा भी सत्कर्म यदि मनुष्य करे, तो भी ओीश्वर अुसे फल देता है। तपश्चर्याकी थोडी-बहुत परीक्षा किये विना वह पसीजता ही नही। सकटके समय भी वह शाक-सब्जीका अेक पत्ता ही मागनेके लिअे हमारे

द्वार पर खडा रहता है। और कर्मका नियम अैसा है कि थोडा भी शुभ कर्म करनेसे अुसका विशाल फल मिलता है। अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नही।

हम सदा पापको मानते आये हैं, पापका विस्तार ही देखना सीखे हैं, परन्तु सच पूछा जाय तो जो पाप असत्य-रूप है — मायारूप है, अुसकी शक्ति कितनी हो सकती है? पुण्य ही बलवान है। पुण्य ही वीर्यवान है। प्रकाशकी अेक किरण जैसे घने अधकारको चीर देती है वैसे पुण्य — शुभ कर्म — कर्म-राशिको चीर कर सात्विकताका अुदय कराता है।

यही बात कविने कही है कि अीश्वर 'सतन हितकारी' है, 'दीनन दुख-हरन' है। जो मनुष्य दुनियाकी दृष्टिसे अघा है, वही अिसे समझ सकता है, जो मनुष्य दुनियाकी दृष्टिसे अधा है, वही दुनियाको रास्ता बता सकता है।

फरवरी, १९२६

४०

आस्तिक कौन है?

जो कहता है कि 'है' वह आस्तिक है। जो कहता है कि 'नही है' वह नास्तिक है। आस्तिक और नास्तिककी यही सरल व्याख्या है। लेकिन किस चीजके अस्तित्व या नास्तित्वका प्रश्न है, यह हमें निश्चित करना होगा। धर्मशास्त्रके शब्दार्थ पर जो विश्वास रखता है वह आस्तिक है। 'धर्मशास्त्रके वचन मनुष्यके नही हैं किन्तु अीश्वरके कठसे निकले हैं, अैसा जो कबूल करता है वही आस्तिक है' — अिस तरहकी व्याख्या करनेके दिन अब नही रहे हैं।

'अीश्वरके अस्तित्वको जो मानता है वह आस्तिक है। अीश्वर नही है अैसी जिसकी श्रद्धा है वह नास्तिक है' — अैसी व्याख्या आजकल की जाती है।

श्रद्धासे ही अीश्वरका अस्तित्व माना जाता है। अीश्वर नही है अैसा विश्वासपूर्वक कहनेके लिअे भी अेक अुलटी किन्तु जबरदस्त श्रद्धा चाहिये।

जिसे किसीने देखा नही, जिसके कानूनका आज तक पता भी नही चला है, जिसकी अिच्छाके बारेमें कोअी भी दो भक्त अेकमत नही है, अैसे 'स्व-र्गीय अीश्वर'को माना तो क्या और नही माना तो भी क्या? स्वर्गीय अीश्वरके और अुसके राज्यके अितिहास-भूगोल हर धर्मके पुराणोमें पाये जाते हैं, लेकिन अुनमें भी अेकवाक्यता नही है।

दूसरा अेक अीश्वर है, जिसे अन्तर्यामी कहते हैं, आत्माराम कहते हैं, हृदयस्थ नारायण कहते हैं, जिसका अनुभव, जिसका साक्षात्कार हरअेक आदमी-

को अखण्ड रूपमें होता ही रहता है। आस्तिक भी अुसे पहचानता है और नास्तिक भी अुसीके बल पर अपनी खोज चलाता है।

जिस अन्तर्यामीकी प्रेरणाको जो प्रमाण मानता है वह आस्तिक है। अुस प्रेरणाको जो ठुकराता है वही नास्तिक है, द्रोही है।

अिस दुनियामें अेक परम मगल शक्ति अपना काम कर रही है और जहा तक अुसकी सफलता है वहा तक ही जीवनकी सफलता है — अैसी जिसकी श्रद्धा है वही आस्तिक है।

मार्च, १९४१

४१

अीश्वरकी आस्तिकता

अीश्वरके अस्तित्वके बारेमें बहुत कुछ लिखा जाता है। और हरअेक लेखक मानता है कि अुसने अीश्वरका अस्तितव निर्विवाद सिद्ध कर दिया है। यह हुआ अीश्वरके अस्तित्वके बारेमें। लेकिन अीश्वरके आस्तिक्यके बारेमें किसीने विचार ही नही किया है। 'आस्तिक' और 'नास्तिक' दोनो विशेषण मनुष्य-को ही लगाये जाते हैं। बोलचालकी भाषामें आस्तिक वही है जो अीश्वरको मानता है। अीश्वरके अस्तित्वके बारेमें जिसे विश्वास नही है वह नास्तिक है। अैसी हालतमें अीश्वरको आस्तिक कहना लोगोको अचम्भेमें डालना है। फिर भी अीश्वरका आस्तिक्य अेक सच्ची चीज है, और अुसीमें मनुष्यको सबसे बडा आश्वासन मिल सकता है।

भक्तोने आज तक अीश्वरको किसी बादशाहके जैसा माना है। अुन्होने अुसे सर्व-समर्थ बताया है। कर्तुम्, अकर्तुम् और अन्यथाकर्तुम् शक्ति तो अुसीकी है। वह जिस वक्त जैसा चाहता है वैसा हो जाता है, अुसकी अिच्छाको रोकनेवाली कोअी चीज है ही नही। भक्तोके मुहसे अैसे अैसे अुत्साह-वचन हम हमेशा सुनते रहते है। वे भूल जाते है कि भगवान सर्व-समर्थ होते हुअे भी अपने सामर्थ्यको कदम कदम पर काममें नही लाना चाहता। वह चाहता है कि मनुष्य अपना सामर्थ्य स्वय बढाये। विटो (veto) और सर्टिफिकेशन (certification) की सत्ता हमेशा हाथमें होते हुअे भी अुसे काममें न लानेमें ही अीश्वरका आनद है। वह सर्व-समर्थ तो है, लेकिन सर्वंसह रहनेमें ही वह अपने अैश्वर्यका अनुभव करता है। भगवान सब कुछ सहन करता है और धैर्यके साथ वह अनत काल तक राह देखता है। अनत-वीर्य होते हुअे भी, बल्कि अनत-वीर्य होनेके कारण ही, वह अनत धैर्य धारण करता है और मनुष्यको

वहुत कुछ स्वतत्र रखकर अुसे अुसकी अपनी सहूलियतके अनुसार अपने पास आने देता है।

जव कोअी साहूकार किसी सज्जनको कर्ज देकर देखता है कि अुसका पैसा निश्चित मुद्दतमें वापस आनेवाला नही है तव वह कहता है "मै जानता हू कि मेरी रकम खतरेमे नही है, लेकिन मुद्दत जरूर खतरेमें है। और तिजारतमे मूल धनकी अपेक्षा मुद्दतका मूल्य अधिक होता है। जो पैसा समय पर न मिला अुसे गया ही समझना चाहिये।" ओश्वरके यहा मुद्दतका सवाल ही नही होता। अुसके वहीखातेका हिसाव अनत कालका ही होता है। और हरअेक मनुष्यके वारेमें ओश्वरका यह दृढ विश्वास होता है कि मूल धनको कभी भी खतरा नही है। सचमुच मनुष्य अपने अूपर जितना विश्वास रख सकता है, अुससे अधिक विश्वास अुस पर ओश्वरका होता है।

अिस चीजको समझनेके लिअे मनुष्य-जीवनकी विचित्रताका जरा खयाल करना चाहिये

मनुष्यका अर्थ है 'देहधारी आत्मा'। विषयोकी ओर दौडनेवाला शरीर और ओश्वरकी ओर निरन्तर खिचनेवाली आत्मा — अिन दोनोका वेमेल पारिवारिक जीवन ही मनुष्य-जीवन है। अिस जीवनमे शरीर और आत्माके वीच, वासना और भक्तिके वीच, प्रवृत्ति और निवृत्तिके वीच सनातन कालसे गजग्राह* चलता ही आया है। अिस गजग्राहमें दुर्वल मनुष्य अकसर हार कर निराश हो जाता है। वह मानने लगता है "मेरे लिअे अुन्नतिका मार्ग है ही नही। मै अेक वार गिरा सो गिरा ही रहूगा। अव मेरे लिअे चढनेकी वात कहा है? और अुसका प्रयत्न भी मैं क्यो करू? अुसमें क्या लाभ है? अव तो अिन्द्रिय-सुख ही नजदीक दीख पडता है। अुसीको मै क्यो न स्वीकार करू?"

अिस तरह जव मनुष्य अपने अूपरका विश्वाम खो वैठता है, अुसकी श्रद्धाका दिवाला निकलता है, तव भी भगवान अुसे अपनाता है। भगवान कभी किसीसे निराश नही होता। मनुष्यकी आत्मशक्ति पर विश्वास रखकर भगवान कहता है: "मैं अव भी राह देखूगा। अव भी अिस आदमीमें किसी न किसी दिन अुपरति होगी ही। कितनी भी गहरी खाअीमे वह क्यो न पडा हो, वहासे वह किसी न किसी दिन वाहर निकल ही आयेगा और अुन्नतिकी पहाडीकी चोटी तक पहुचनेकी कोशिश करेगा ही। मेरे पास अनन्त धैर्य है। मै राह देखूगा — अिसके अनेक जन्मो तक राह देखूगा। आज यह मुझे भूल गया है। किन्तु अिसे मेरा

* गजेन्द्र मोक्षकी वात सव जानते ही हैं। गजका पाव पकड कर अुसे गहरे पानीमें खीचता था ग्राह यानी मगर। गज जमीनकी ओर खीचता था। अिस तरह गज और ग्राहके वीच 'Tug-of-war' चली। अिस परसे खीचातानीके लिअे 'गजग्राह' जैसे सुन्दर पौराणिक शब्दका यहा प्रयोग किया गया है।

स्मरण अवश्य होगा। आज जिस रास्ते वह जा रहा है अुसमें अुसे आनद आता है सही। लेकिन वह मजा हमेशाके लिअे टिकेगा नही। अुससे वह अूब जायेगा। अतमे मेरी ही शरणमें आयेगा। अिस समय वह सोता है। लेकिन मै सोया नही हू। मै जागता हू। अिस समय अुसके मनमें मेरे प्रति कोअी भक्तिभाव नही है। लेकिन मै अुसे चाहता हू। मेरे मनमें अुसके प्रति भक्ति है। (हा, भगवानका वात्सल्य अतमें अेक प्रकारकी भक्ति ही है।) वह मनुष्य अपने अूपर जितना विश्वास रखता है अुससे अधिक विश्वास अुसके बारेमे मेरे मनमे है। और यही मेरा विश्वास अुसका अुद्धार करेगा। अपनी हरअेक वासना द्वारा और हरअेक कृति द्वारा आज भले ही वह मुझे परास्त करता हो, किन्तु मै निराश नही होअूगा। आखिरकार वह है तो मेरा ही। वह किसी भी क्षण मुझसे दूर जानेवाला नही है और मै कभी भी अुसे खोनेवाला नही हू।"

अीश्वरकी यह वृत्ति, भगवानकी यह निष्ठा, ही अुसकी आस्तिकता है। अीश्वर आस्तिक है, अिसी कारण यह दुनिया टिकी हुअी है और अिसी कारण दुनियाके सामने अुन्नतिका साधना-क्रम मौजूद है। अगर सच पूछा जाय तो आस्तिकता ही अीश्वर है।

जनवरी, १९४१

४२

नास्तिकता

अमुक बात पर मनुष्यकी श्रद्धा न जमे तो वह बेचारा क्या करे? श्रद्धा न होने पर भी वह कैसे कहे कि मेरी श्रद्धा है? अैसा करना क्या असत्यके साथ-साथ कायरतापूर्ण दभ भी नही होगा? आप जिसे नास्तिक कहते है वह नम्र होकर आपसे कहता है·

'जिस बात पर आपकी श्रद्धा जमती है, वह मेरे हृदयको जरा भी स्पर्श नही करती। अिससे मै प्रसन्न नही हू। मुझे अिसका दुःख है। आपका समाधान और सन्तोष मुझे मिला होता, तो मुझे खुशी होती। मेरी परेशानीको समझ कर आप मुझ पर तरस खाअिये। आप प्रार्थना कीजिये कि मुझमें श्रद्धाका अुदय हो। आप मुझ पर चिढते क्यो है?

'आपका तो यह विश्वास है न कि मुझमें भी अमर आत्मा है? तो फिर मेरे बारेमें आप निराश कैसे हो सकते है? आत्मा यदि मेरे भीतर हो तो अुसका अुदय होना ही चाहिये। मुझमे यदि अज्ञान हो, तो किसी न किसी समय वह दूर होना ही चाहिये।

'ज्ञानकी शक्तिमें तो आपका विश्वास है न ? सर्वंकप — सर्वशक्तिमान — ज्ञान यदि मेरे अज्ञानका नाश न कर सके, तो वह ज्ञानका पराभव ही माना जायगा। यदि आप मेरी नास्तिकता पर क्रुद्ध हो, मुझसे द्वेष करें और मुझे त्याज्य मानें, तब तो यही कहा जायगा कि सनातन आत्मा और परम-मगल ज्ञानके विषयमें आप निराश हो चुके हैं। फिर आप आस्तिक कैसे माने जायेंगे ? अुस स्थितिमें तो आप भी नास्तिक ही कहे जायेंगे न ?'

नास्तिकता और आस्तिकता अैसे शब्द हैं, जिनका हम चलते-फिरते, बिना सोचे-विचारे प्रयोग करते रहते हैं। सच पूछा जाय तो ये शब्द अितने सरल नही हैं। अिन दो शब्दोंका मूल अर्थ अिस प्रकार है 'है' अैसा जो मानता है वह आस्तिक, 'नही है' अैसा माननेवाला नास्तिक। दुनियामें बहुतेरी वस्तुअें हैं और अुनसे भी अधिक सख्याकी वस्तुअें नही हैं। भूत नही हैं अैसा यदि मैं मानू, तो भूतोंके बारेमें मैं नास्तिक हू। हिंसासे किसी भी प्रकार मनुष्य-जातिका कल्याण नही होगा अैसा मेरा दृढ विश्वास हो, तो हिंसाके बारेमें मैं नास्तिक हू। विदेशी सरकारके शिक्षणसे ज्ञानका भार कितना ही क्यो न बढता हो, परन्तु चरित्र-बल अथवा देशप्रेमको दृढ बनानेमें वह जरा भी सहायक नही होता, अुलटे अिसमें वह शिक्षण विघ्नरूप ही सिद्ध होता है — अैसा मेरा दृढ मत हो, तो सरकारी शिक्षणके बारेमें मैं नास्तिक हू। मुझसे जिनका मत भिन्न है वे लोग जरूर कह सकते हैं कि मेरे विचारोमें दोष है, विकृति है। अुनकी आस्तिकताके बारेमें मेरी राय भी अैसी ही हो सकती है, और होनी चाहिये।

आस्तिकता और नास्तिकता अिन दो शब्दोका अैसा व्यापक अर्थ करनेके बाद नास्तिक कहनेसे न तो किसीको गाली दी जाती है और न आस्तिक कहनेसे किसीकी प्रशसा की जाती है। दोनों शब्द 'तटस्थ हैं।

परन्तु भाषामें नास्तिक शब्दका अर्थ अितना व्यापक नही है। प्राचीन लोगोने अिसका अर्थ अैसा किया था वेदोमें विश्वास न रखनेवाला मनुष्य नास्तिक है। 'नास्तिको वेदनिन्दक।' अुस कालमें नास्तिक शब्दकी कीमत म्लेच्छ, काफिर, हीदन शब्दो जैसी ही थी। नास्तिक शब्दका अधिक शास्त्र-शद्ध तथा व्यापक अर्थ है 'परलोकके विषयमें अश्रद्धा रखनेवाला।'

न सापराय प्रतिभाति बाल
प्रमाद्यन्तम् वित्तमोहेन मूढम्।
'अय लोको नास्ति पर' अिति मानी
पुन पुनर्वशमापद्यते मे ॥

सापराय अर्थात् परलोक नहीं है, परम-मगल तत्त्व नही है, अिन्द्रियातीत वस्तुको जाननेका साधन नही है, भोगैश्वर्यसे परे सतोष प्राप्त करनेका अन्य कोअी तत्त्व नहीं है — अैसा जिस मनुष्यका विश्वास है वह नास्तिक है।

सामान्य व्यवहारमें अुसी मनुष्यको नास्तिक कहा जाता है, जो खुले आम यह कहनेकी हिम्मत करता है कि अीश्वर नही है और जो हिम्मतके साथ समाज द्वारा मान्य की हुअी रूढियोको तोडता है। जो लोग अिस व्याख्यामें नही आते, वे सब आस्तिक कहलाते हैं। अिस मान्यताके अनुसार जितने लोग आस्तिक माने जाते हैं वे सब यदि वास्तवमें ही आस्तिक होते, तो यह कहनेमे जरा भी अतिशयोक्ति न होती कि आज सत्ययुग है। जैसा कि समर्थ रामदास स्वामीने कहा है

देवा वेगळें काही नाही। अैसेंचि बोलती सर्वही।
परन्तु त्याची निष्ठा काही तैसीच नसे।*

आज कुछ लोगोके लिअे धर्मनिष्ठा और अीश्वर-निष्ठा राजनिष्ठा जैसी ही औपचारिक बन गअी है। 'अीश्वर नही है' अैसा कहकर समाजमे बदनाम होने और अपने चित्तको अस्वस्थ बनानेके बजाय 'अीश्वर है' अैसा मानकर ही चलो न! अिसमें हमारा क्या बिगडता है? — यही वृत्ति आज हर जगह दिखाअी देती है। 'अीश्वर है' अैसा जो मनुष्य मानता है, अुसके जीवनमे अमुक परिवर्तन अवश्य ही दिखाअी देने चाहिये। अमुक गावमें प्लेग है, अमुक कमरेमें साप है, बैंकमे मेरे अितने रुपये है, अथवा कोर्टमें न्यायाधीश बैठे है — अिस मान्यताके साथ ही अिन स्थानोमें हमारे आचरणमें जैसा फर्क पडता है, वैसा ही फर्क 'अीश्वर है' यह विश्वास रखनेसे अिस पृथ्वीके हमारे जीवनमें पडे, तो ही हमारी यह श्रद्धा, निष्ठा या आस्तिकता सच्ची कही जायगी।

बहुत वार 'अीश्वर नही है' अैसा कहनेवाले प्रामाणिक और नम्र नास्तिकमें सामान्य आस्तिकोकी अपेक्षा अधिक निष्ठा होती है। अैसा कट्टर किन्तु शुद्ध नास्तिक जब कहता है कि अीश्वर नही है तब अुसका अर्थ अितना ही होता है कि 'मैंने अीश्वरकी खोज की है, अुसका स्वरूप अगम्य है, अुसकी माया अगाध है, अुसका आकलन करनेमें मानवीय शक्ति समर्थ नही है, मैं तो अुसके विषयमें कुछ नही कह सकता।' अीश्वरकी खोज करके जो मनुष्य अितना अनुभव प्राप्त कर सका, अुसे आस्तिक कहनेमें क्या आपत्ति हो सकती है? 'यस्यामत तस्य मतम्।'

परन्तु अीश्वर है या नही, अुसका स्वरूप कैसा है, अिस बातकी दार्शनिक चर्चामें अुतरनेकी जरूरत ही क्या है? हृदयमें निरन्तर स्फुरित होनेवाले आत्म-तत्त्व पर जिस मनुष्यका विश्वास है वह आस्तिक है। प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें आत्मारामका वास है, प्रत्येकके हृदयमें कम-ज्यादा सज्जनता रहती ही है, पापीसे पापी मनुष्य भी हृदयकी गहराअीमें पुण्य और पवित्रताकी ही रटन लगाये

* अर्थ — सभी लोग यह कहते है कि अीश्वरसे अलग कुछ नही है। परन्तु अुनकी निष्ठा भी अैसी ही होती है, यह नही कहा जा सकता।

रहता है -- अिस प्रकारकी श्रद्धा ही आस्तिकता है। दुनिया चाहे जितनी पीडित रहती हो, भले ही कदम कदम पर साधु-सतोकी हार होती हो, भले ही दुर्जन अुन्मत्त होकर अधिकार और सत्ता भोगते हो, फिर भी अतमें धर्मकी ही विजय होगी, प्रत्येक हृदयमें सज्जनताका ही अुदय होनेवाला है, अैसी श्रद्धा ही आस्तिकता है। पवित्रतासे प्रेम करना, हृदयकी शुद्धताका आदर करना और सदाचारसे प्राप्त होनेवाली स्थितिमे सतोप मानना प्रत्येक हृदयका धर्म है, अिस धर्मको चाहे जितने समय तक ग्रहण लग जाय, फिर भी वह खग्रास कभी नही होगा और अिस धर्मका सपूर्ण अस्त भी कभी नही होगा — अिस तरहके दृढ विश्वासका ही नाम आस्तिकता है। माके हाथमें जिस प्रकार बालक अपनेको सुरक्षित मानता है अुसी प्रकार सत्यकी गोदमें हम सदा सुरक्षित है, अैसी श्रद्धा ही आस्तिकता हे। सत्यका द्रोह किसीसे हो ही नही सकता, सत्य पगु नही है — दुर्बल नही है, सत्यकी सदा विजय ही होती है, सत्य किसीसे अपनी रक्षाकी आशा नही रखता, अपने अमोघ सामर्थ्यके कारण सत्यके पास अखूट धीरज है और अिस धीरजमे ही अुसकी विजय है -- अिस प्रकार सत्यके प्रति मनुष्यकी दृढ भक्ति परम आस्तिकता है।

भेड-बकरियोको मारकर खा जानेवाले बाघमे भी भूतदया सुप्त रूपमें रहती है, अैसी श्रद्धा आस्तिकता है। क्षणिक या हजार युग तक टिकनेवाले स्वार्थके वश होनेवाली मानव-जातिमें भी मुख्य प्रेरक तत्त्व तो प्रेम ही है और अतमे अिसी प्रेमका साम्राज्य विश्वमे चारो तरफ स्थापित होनेवाला है — अिस तरहकी सूक्ष्म रूपमे चमकती रहनेवाली तथा कडवेसे कडवे अनुभवोकी परम्पराके बाद भी बुझ न जानेवाली अद्भुत श्रद्धा ही मुख्य आस्तिकता है। यह श्रद्धा यदि आपमे है तो फिर सगुण अथवा निगुण अीश्वरमे विश्वास रखने या न रखनेसे कोअी फर्क नही पडता। आप अीश्वरकी विभूति अेक मानें या अनेक मानें, शास्त्रोकी मूर्तिपूजा करे अथवा अुन्हे जला डाले, अिसका अधिक महत्त्व नही।

सच पूछा जाय तो आस्तिकता और नास्तिकता जैसा भेद करना व्यर्थ है। प्रत्येक मानवके हृदयमे आस्तिकता रहती ही है। महत्त्वका प्रश्न यही है कि वह किस हद तक सुप्त है और किस हद तक जाग्रत है, व्यापक है, तीव्र है। शिक्षक जब किसी विद्यार्थीसे कहता है कि यह चीज तुम कभी नही सीख सकोगे, तब समझना चाहिये कि शिक्षक नास्तिक हो गया है। भय, लालच या बाहरी रस चखाये बिना लडके-लडकिया शुद्ध ज्ञान-पिपासासे जरा भी पढनेवाले नही है, अैसा शिक्षक और माता-पिता माने तो भी वे नास्तिक ही है। हम सैनिकोकी प्रशसा न करे, छाती पर लगानेके लिअे अुन्हे रग-बिरगी पट्टिया न दें, तो अुनमें शौर्य प्रकट नही होगा, अैसा माननेवाला सेनापति भी नास्तिक है। सेनापति बडा सेनापति बननेके लिअे युद्धमें लडता होगा, परन्तु सैनिक देशके

खातिर, स्वधर्मके पालनके लिअे लडते हैं, यह सेनापतिके ध्यानमें नही आता। वाहरी दभ और आचारका आडवर दिखाये बिना लोगो पर मेरी धार्मिकताका प्रभाव नही पडेगा, अैसा माननेवाला धर्मोपदेशक धर्म पर जीनेवाला होते हुअे भी नास्तिक है। अमुक लोगोमें कभी क्षात्र तेज पैदा ही नही होगा, अमुक प्रजा अथवा वर्ग सदा गुलामीमे ही रहनेके लिअे पैदा हुआ है, अैसी मूढ मान्यता भी नास्तिकताका ही अेक रूप है।

यह मायावी नास्तिकता कितने ही रूप धारण करती है। बीमार आदमी अपथ्यको जानते हुअे भी असका सेवन करके जब मनको समझाता है कि अितनेसे कोअी नुकसान नही होगा, तब वह नास्तिकताको ही बढाता है। गुप्त रखा हुआ पाप मुझे या दूसरोको कष्ट नही देगा, अैसा माननेवाला प्रतिष्ठित व्यक्ति नास्तिक ही है। सद्गुणो और योग्यताको प्रधानता देनेवाला कोअी कदरदान न मिला तो वे सद्गुण व्यर्थ जाते हैं, अैसा माननेवाला कृपण भी नास्तिकताका ही पुजारी है। और आज सारी दुनियामें सर्वत्र फैली हुअी नास्तिकता तो यह माननेकी वृत्ति है कि 'धूर्तता, लुच्चाअी, कपट और दुष्टताकी ही विजय होती है।' दुनियाकी दीन और सहनशील प्रजायें अनत काल तक अन्याय सहती ही रहेगी, वे कभी भी अन्यायका विरोध नही करेगी, अीश्वरके जो अवतार अब तक हो गये वे हो गये, अब अीश्वर मर गया है या कमसे कम कुभकर्णकी निद्रामें तो पडा ही है, अब असुसे डरनेका कोअी कारण नही है — अिस तरहकी जो व्यावहारिक मान्यता सत्ताधारियोमें घर कर बैठी है, वह भी नास्तिकताका ही नया अवतार है। सत्ययुगका अपने आप अुदय होगा, अिसके लिअे हमे कोअी प्रयत्न करनेकी जरूरत नही, अैसी आशा रखना भी अेक अलग प्रकारकी नास्तिकता ही है यह भूलना नही चाहिये, क्योकि वह मूढ विश्वास है।

अैसी सूक्ष्म अर्थात् शुद्ध दृष्टिसे देखने पर अिस बातकी थोडी कल्पना होगी कि मनुष्यके हृदयमें नास्तिकता कितनी व्यापक हो गअी है। परन्तु अिस बातकी पूरी पूरी कल्पना हो जानेके वाद भी 'ब्रिटिश साम्राज्यसे अधिक बडी अिस नास्तिकता'का आखिर अत होगा ही अैसा विश्वास यदि हममे न हो, तो हम आस्तिकताकी सेनाके सिपाही नही वन सकते। नास्तिकता अीधनके ढेरके समान है और आस्तिकता आगकी चिनगारीके समान है। अीधन गीला होगा तभी तक वह टिकेगा। मानव-जातिकी लापरवाही नास्तिकताका गीलापन है। अुसके मिटने पर अीधनकी होली जरूर जलेगी। अेक जलनेवाली लकडी दूसरीको जलाती है और अिस प्रकार अपने भीतरसे ही अग्निको भोजन देकर स्वयको भस्मसात् करती है।

श्रद्धा और धैर्य अग्निमें डाला जानेवाला घी है।

२३-१०-'२७

४३

हमारे ओश्वरका स्वरूप

"ओश्वर शताब्दियोसे हमे कष्ट देता आ रहा है, अब अुसे पेन्शन दे दें तो कैसा रहे? अब हम विज्ञान और अितिहासकी सहायतासे अपने जीवनका अच्छी तरह विकास कर सकेंगे। मनुष्य-जातिके बाल्यकालमे ओश्वररूपी 'चालन-गाडी' की जरूरत थी। अिस रूपमें ओश्वरने मनुष्य-जातिकी बहुत बडी सेवा की है। अिस सेवाके लिअे हम सदा अुसके कृतज्ञ रहेंगे। परन्तु अब हम अपना व्यवहार अपने ही हाथमें ले ले तो अच्छा होगा।

"ओश्वरके बारेमें अेक और कठिनाओ है। ओश्वर स्वतत्र नही है। शास्त्रकार, धर्मगुरु, अुपदेशक और हर प्रकारका झूठ चलानेवाले चालाक लोग ओश्वर पर अपना अधिकार करके बैठ गये है। अिसलिअे ओश्वरका अुपयोग आम जनताके लिअे न होकर प्राय अुन्ही लोगोके लिअे होता है, जिनका प्राचीन कालको टिकाये रखनेमे स्वार्थ है। जिस तरह गुलावके साथ अुसके काटे आये विना नही रहते, जिस तरह अमरूदसे अुसके बीजोको अलग करना कठिन है, अुसी तरह ओश्वरके साथ अुसके नाम पर रचे गये शास्त्र, अुसके नाम पर पेट भरनेवाले साधु और फकीर, अुस पर अेकाधिकार स्थापित करके बैठे हुअे पडित, मुनि, पादरी और मुल्ला, अुसके नशेसे जड बने हुअे सन्यासी और भक्त तथा अुसकी पूजी हडप कर जानेवाले मदिर और मठ — सभी आ जाते है। जिस प्रकार यज्ञमें तक्षककी बलि चढानेके लिअे अुसके साथी इन्द्रकी भी बलि चढानी ही पड़ती है, अुसी प्रकार मानव-जातिमे अज्ञान, अधविश्वास, सकुचितता, अबुद्धि और झगडे फैलानेवाले अिस समग्र चडाल-चक्रका नाश करनेके लिअे यदि ओश्वरकी बलि चढानी पडे तो जरूर चढा देनी चाहिये।

"ओश्वर है या नही, अिस सैद्धान्तिक चर्चामें भी हम पडना नही चाहते। यह विषय अुतना ही नीरस है जितनी धर्मशास्त्रोकी चर्चा। हम तो अिसी बातका विचार करेंगे कि ओश्वर अुपयोगी प्राणी है या नही। हमें यह प्रतीति हो गअी है कि अब ओश्वरका कोओी अुपयोग नही रह गया है। अत ओश्वरको अब हम अपने जीवनमें स्थान देनेके लिअे तैयार नही है। प्राचीन कालके अेक नास्तिकने कहा था 'ओश्वर न हो तो भी समाजको चलानेके लिअे हमें काल्पनिक ओश्वरकी योजना करनी चाहिये। वह सबसे सस्ता पुलिस है। अिसलिअे सत्यकी दृष्टिसे ओश्वर नही है यह सिद्ध होने पर भी अुपयोगकी दृष्टिसे हमें ओश्वरको खडा कर लेना चाहिये।'

लेकिन आज तो हमें अिसके ठीक विपरीत यह लगता है कि अीश्वरके होने न होनेके प्रश्नको अुठाया ही न जाय, और यदि अीश्वरका अस्तित्व सिद्ध हो जाय तो भी अुसका अिनकार करनेमें ही हमारा कल्याण है। मानव-जीवनके क्षेत्रमे अब अीश्वरको बाहर निकाल देना चाहिये। आज वह प्रजाका पुलिस नही है, परन्तु सामाजिक असमानता, लोगोकी अज्ञानता और बुद्धिनाशक जडता पर ही जीनेवाले विभिन्न वर्गोका अेकमात्र आश्रय बन गया है। अैसे तक्षकोके साथ अिस अिन्द्रकी भी बलि चढानी ही चाहिये।"

अूपर मैंने आजके जमानेको नये नये विचार देनेवाले कुछ विद्वानोके मतोका सार सक्षेपमें प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार रामायणी प्रजाके बीच देवी सीताकी शुद्धि बार-बार चर्चाका विषय बनती रहती थी, अुसी प्रकार बेचारे अीश्वरका अस्तित्व आज बार-बार खतरेमे पड जाता है। अेक यह कठिनाअी तो है ही कि अीश्वर दिखाअी नही देता, वह हो भी तो कभी घबराता या अकुलाता नही। लेकिन अितने ही कारणसे अीश्वर खतरेमें नही पड सकता था। जो लोग अीश्वरको जाननेका दावा करते है, जिन्होने अीश्वर पर अपना अधिकार जमा लिया है, वे अीश्वरके बारेमें जो साक्षी देते है, अीश्वरके बारेमें जो कल्पनाये हमारे सामने रखते है, अीश्वरका जो जीवन-चरित्र या रेखाचित्र प्रस्तुत करते है, वे सब अितने बेहूदे है कि अुनके आधार पर अीश्वरको स्वीकार करनेमे भारी आपत्ति खडी होती है। अैसे लोगोने ही अीश्वरके अस्तित्वको खतरेमे डाल दिया है। चेस्टरटन कहता है कि 'कैथोलिक धर्मके निन्दकोके ग्रन्थ पढ पढकर ही कैथोलिक धर्म पर मेरी श्रद्धा जमी है।' अिसी प्रकार अीश्वरका अिनकार करनेवाले 'पारमार्थिक' लोग यह कहते है कि अीश्वरका पक्ष लेनेवाले साहित्यको पढ पढकर ही हमारी नास्तिकता दृढ हुअी है।

अीश्वरका साक्षात्कार सिद्ध कर चुके अेक अृषिको अीश्वरका केवल समर्थन करनेवाले लोगोकी विडबनासे अीश्वरको बचानेकी अैसी ही आवश्यकता पडी होगी, अिसलिअे अुन्होने कहा था "अीश्वरके तत्त्वको मै जानता हू, तुम मुझसे वह तत्त्व जान लो। अुसका वर्णन कैसे किया जाय, यह मै नही जानता। परन्तु आज लोग जिसकी अुपासना करते है, वह तो अीश्वर है ही नही। सच्चे अीश्वरको अिस जन्ममे यदि तुमने जान लिया तो तुम बच गये, वर्ना तुम्हारे भाग्यमें महानाश ही लिखा हुआ है।"

तब यह सच्चा अीश्वर कैसा है? और हमारे जीवनके साथ अुसका क्या सम्बन्ध है? हमारे समस्त प्रिय आदर्शोका वह पोषण करता है या शोषण? क्या वह प्रजाका सहायक है? क्या वह प्रजाका रक्षक है? क्या वह प्रजाका तारक है? और यदि अीश्वर अैसा ही हो, तो अुसे पहचाना कैसे जाय? अुसका अुपयोग

हम कैसे करे? अीश्वरके अेकाधिकारियोसे हम अुसे बचा सके, तो ही वह हमें बचा सकता है।

तो अीश्वर है क्या चीज? अितना तो स्पष्ट है कि यदि अीश्वर जैसा कुछ है, तो वह हमारे हृदयमे ही है। अीश्वरका सर्वोत्कृष्ट नाम 'अतर्यामी' है। हमारे हृदयमे अनेक वार अनेक प्रकारकी मगल आकाक्षाये जन्म लेती है, वे हमे केवल कल्पना जैसी नही लगती, किन्तु व्यवहारकी अिस दुनियाकी अपेक्षा अधिक सच्ची और अधिक महत्त्वपूर्ण लगती हैं। 'खाना, पीना और राज करना' यह हमारे जीवनका मुख्य भाग नही है, परन्तु जो परम मगल कल्पनायें तथा आदर्श हमारे हृदयमे वसते हैं और हमारे जीवनका मार्गदर्शन करते हैं, वे ही हमारे जीवनका मुख्य भाग हैं। मनुष्य-जाति अनादि कालसे आदर्शोकी अुपासना करती आअी है। ये आदर्श भिन्न होते हुअे भी अेकरूप हैं, अैसा अनुभव होता है। जहा भेद दिखाअी देता है, जहा विरोध दिखाअी पडता है, वहा शुद्धीकरणकी क्रिया अेकदम प्रवेश करती है और फिर समन्वयकी वृत्ति अिन भिन्न भिन्न आदर्शोके बीच सुमेल करा देती है। ये आदर्श, शुद्धीकरणकी यह क्रिया और अिन सबका सुमेल — यह सब अेकरूप है, अैसा अनुभव होता है। हमें सतत यह प्रतीति होती रहती है कि यह सपूर्ण विश्व, अथवा दूसरे शब्दोमें कहे तो हमारा समग्र मनुष्य-जीवन, किसी सत्य पर रचा हुआ है। कोअी भी फिलॉसफी (तत्त्वज्ञान) वास्तवमे अिस प्रतीतिका अिनकार नही कर सकी है, फिर तार्किक भाषा कुछ भी क्यो न कहे? हमे अैसा लगा करता है कि अुस परम सत्य पर, अुस अमर अखड सनातन सत्य पर रचा हुआ जो कुछ भी है वह शुद्ध ही होना चाहिये, अुसके स्वभावमें मेल ही होना चाहिये और अुसमे अनत विविधता होनेके कारण जडता तो अुसके भीतर हो ही नही सकती।

यह जो हमारी अमर भावना है, अिसीमे हमे अीश्वरीय तत्त्व मिलनेवाला है। मनुष्यने अीश्वरकी रचना की है या अीश्वरने मनुष्यकी रचना की है, अिस सवालका कोअी अर्थ नही रहता, क्योकि दोनोमे भेद ही नहीं है। मनुष्यमें अीश्वर है और अीश्वरमें मनुष्य है। फिर किसे किसकी कृति माना जाय? हम तो अीश्वरका स्वरूप जानना चाहते है और अुसकी अुपयोगिता अपने लिअे सिद्ध करना चाहते हैं। यदि जीवन सत्य हो तो अीश्वर सत्य है। यदि जीवनमें कोअी सार या रहस्य है, तो अीश्वर परम मगलमय है। यदि जीवनमें तृप्ति और अतृप्ति दोनो ही तत्त्व हो, तो आदर्शोका अस्तित्व है। आदर्श वास्तविक वस्तु है। मनुष्य-जीवनका परम अुत्कर्ष, सब आदर्शोकी कृतार्थता, सब प्रकारके विरहका अत, सारी अशांतिकी शाति, समग्र यात्राकी अतिम मजिल और फिर भी समस्त आकाक्षाओंकी चिरतन अतृप्ति ही अीश्वर है। यदि

अीश्वरकी सपूर्ण प्राप्ति हो जाय, तो वह अीश्वर न रह जाय। अिसीलिअे अीश्वरका सच्चा नाम अनत है।

अैसे अीश्वरसे अिनकार करनेका अर्थ है अपने जीवनसे अिनकार करना, प्रत्येक अुच्चता और अुदात्ततासे अिनकार करना। और सारे प्रामाणिक अिनकारके पीछे जो सत्यकी शोध है, जो प्रामाणिकता है, जो अुत्कटता और अेकाग्रता है, अुससे भी अिनकार करना।

अिस अीश्वरका अपना कोअी नाम नही है, हमने अुसे मनमाना नाम दिया है, अिसी तरह अुसका अपना कोअी रूप भी नही है, हम अीश्वरको जो रूप देते हैं अुसे धारण करनेका सामर्थ्य अुसमें है। प्रत्येक शरीरमे जिस प्रकार परिवर्तन होता रहता है अुसी प्रकार अीश्वरके रूपमें भी सतत परिवर्तन होना ही चाहिये। वालक सूर्यकी किरणको अपनी मुट्ठीमें पकडनेका प्रयत्न करता है, फिर भी सूर्य-किरण अुसकी मुट्ठीमे कैद नही होती, अुसी तरह जब मनुष्य अपने स्वभावके कारण अपनी सुविधाके लिअे अीश्वरको अेक रूपमे बाधनेका प्रयत्न करता है तव अीश्वर अुस रूपमें बधनसे, रुध जानेसे अिनकार ही करता है। जब तक हम अुसे बाधनेका प्रयत्न नही करते तव तक वह हमारा ही है, और तभी तक हमारा है।

तव क्या मनुष्यका आदर्श ही अुसका अीश्वर है?

आदर्श ही अीश्वर है, अैसा कहनेसे अीश्वर बहुत सरल और सस्ता हो जाता है। अीश्वर अिससे अधिक बडा है। अीश्वर ही मनुष्यका आदर्श है, यह बात सच है। और आदर्शके बारेमें हम अपनी कल्पनाको शुद्ध और व्यापक बनाये, तो आदर्श ही अीश्वर है यह भी सच है। किन्तु परम आदर्श मनुष्य-कृत नही होता, वह स्वयभू होता है। वह मनुष्यका आदर्श अवश्य है, परन्तु अुस आदर्शके कारण ही मनुष्य मनुष्य है। मनुष्यके कारण आदर्शका जन्म नही हुआ है। आदर्शके कारण मनुष्य-जीवन सत्त्वपूर्ण होता है। परन्तु आदर्शका सपूर्ण आकलन कभी मनुष्यको हो ही नही सकता। जिस आदर्शका सपूर्ण आकलन हो जाय, वह आदर्श नही रह जाता, क्योकि वह सान्त हो जाता है। आदर्श तो अनत ही होना चाहिये।

२-८-'३१

'प्रभु जागत है तू सोवत है'

आत्माका कोअी लिंग नही होता, कोअी जाति नही होती। चाहे तो हम अुसे पुल्लिग कह सकते है और चाहे तो स्त्रीलिंग भी कह सकते है। दोनो ही लिंगोमें आत्मा समान है। सस्कृतमे या मराठी अथवा गुजरातीमें आत्माको पुल्लिग माना जाता है, जब कि ग्रीक भाषामे तथा अरबी-फारसी और अुर्दूमे भी अुसे स्त्रीलिंग माना गया है। हिन्दीमें कोअी आत्माको पुल्लिग बताता है तो कोअी स्त्रीलिंग।

वैष्णवोके भक्ति-सम्प्रदायमें परमात्माकी श्रीकृष्णके रूपमे और जीवात्माकी गोपीके रूपमें कल्पना करके भक्तिके स्वरूप और अुसकी अुत्कटताको स्पष्ट किया जाता है। यह देखा गया है कि अत्यत प्रेम, अेकाग्र निष्ठा तथा सपूर्ण आत्म-समर्पण ये तीन गुण स्त्रीजातिमें विशेष रूपसे व्यक्त होते हैं, अिसलिअे जीवात्माका परमात्माकी ओर होनेवाला आकर्षण गोपीकी कृष्णभक्तिके रूपक द्वारा ही भलीभाति व्यक्त हो सकता है।

अब पुरुष जिस प्रकार स्त्रीकी प्राप्तिके लिअे प्रयत्न करता रहता है अुसी प्रकार परमात्मा भी जीवात्माको अपने पास खीचकर अुसका अुद्धार करनेके लिअे अपनी ओरसे सतत प्रयास करता ही रहता है। अिसमे यदि कोअी भी रुकावट हो तो वह है जीवात्माकी अुत्कटताका अभाव, असावधानी या अज्ञानता। और प्रेममूर्ति परमात्मा जीवात्माकी स्वतत्रताकी रक्षाके लिअे अितना अुत्सुक रहता हे कि वह अपनी अलौकिक आतुरताको भी अेक ओर रखकर जीवात्माके हृदयमे मुमुक्षा जाग्रत होने तक धैर्यके साथ प्रतीक्षा करना ही पसद करता है। अुसकी दृष्टिमें अपनी आतुरताकी अुतनी कीमत नही होती जितनी जीवात्माकी स्वतत्रताकी होती है।

बहुत बार यह शका अुठती है कि अीश्वर-प्राप्तिके लिअे जीवात्माकी आतुरता अधिक होती है या जीवात्माको अपने पास खीचनेकी भगवानकी साधना अधिक होती है।

यहा कोअी मनमें यह शका न लाये कि पूर्ण-पुरुष, नि स्पृह और नित्य-तृप्त परमात्मा स्वय ही साधना करनेवाला साधक कैसे बन सकता है? परम कारुणिक और सब-कुछ सहनेवाला परमात्मा साधक ही है और अुसकी साधना अनत और अखड रूपमें चला करती है। अीश्वर यदि साधक न होता तो मनुष्यको साधना कैसे सूझती और अुसे करनेकी शक्ति भी कैसे मिलती? सोचनेसे

अिस बातका विश्वास हो जाता है कि जिस प्रकार बालककी मातृभक्तिकी अपेक्षा माताका अपत्य-प्रेम अधिक गहरा होता है अथवा शिष्यकी गुरुभक्तिकी अपेक्षा गुरुका शिष्य-वात्सल्य अधिक अुत्कट और अधिक ज्ञानपूर्ण होता है, अुसी प्रकार मनुष्यकी दर्शन-लालसाकी अपेक्षा अीश्वरकी भक्तनिष्ठा अधिक होनी ही चाहिये। असख्य बार अपने अनेक जन्म मनुष्यने अीश्वर-विमुख कर्म करनेमे विताये हो, तो भी अीश्वरका धैर्य कभी नही खूटता।

जीवात्मा घोर निद्रामे सोया हो तब अुसे अीश्वरके सान्निध्यका भान कैसे हो सकता है? परन्तु जब अुसकी घोर निद्रा दूर हो जाती है और जब वह प्रभातकी मीठी, गुलाबी और हलकी नीदमें होता है, तब अुसे अीश्वरके अस्तित्वकी और अुसकी प्रेमल साधनाकी अस्पष्ट झाकी समय समय पर होने लगती हैं। कविवर रविबाबूने नीचेके भजनमें अिस स्थितिका सुन्दर वर्णन किया है।

गोपी स्वयको लक्ष्य करके कहती है

"जब वह तेरे पास आकर बैठा तब तू जागी नही। हे हतभागिनी, तुझे कैसी नीद आअी थी? शात और स्तब्ध रात्रिकी वेलामे वह आया था। अुसके हाथमें वीणा थी। अुसका सगीत सुनकर मैं जागी नही, परन्तु मेरा स्वप्न केवल अुसके गभीर रागमें ओतप्रोत हो गया और मेरा स्वप्न असाधारण रूपमे सुखमय बन गया।

"जाग कर देखती हू तो अपनी सुगधसे पागल बना देनेवाला दक्षिणका मलयानिल अधकारकी रिक्तताको भर कर सन-सन बह रहा है।

"मेरा यह कैसा दुर्भाग्य है कि मेरी सब रात्रिया अिसी प्रकार व्यर्थ चली जाती है! वह मेरे पास होते हुअे भी मेरे पास नही होता! अुसका सगीत सुनाअी देता है, अुसकी सुगध मस्तिष्कको भर देती है, और फिर भी अुसकी मालाका स्पर्श मेरे हृदयको प्राप्त नही होता। मैं क्या करू? कैसी कालनिद्रा मुझे घेर लेती है!"

जिन लोगोको अीश्वरके अस्तित्वका भान ही नही है तथा जो लोग केवल अेक निरपवाद रिवाजके रूपमें ही अीश्वर पर विश्वास रखते हैं और अीश्वरके विषयमें बोलते हैं, वे अिस गायनके मर्मको नही समझ सकते। मनुष्य जब सब तरहसे हार जाता है तभी शायद अुसे अेकाध क्षणके लिअे अीश्वरका सच्चा स्मरण होता होगा। वर्ना प्रतिदिन नियमसे अीश्वरकी पूजा करने पर भी और सुबह-शाम अीश्वरका नाम जपने और गूजाने पर भी अैसे लोगोके जीवनमे अीश्वरका प्रवेश नही होता। अैसी घोर निद्राकी अवस्थामें यदि अुन्हे अीश्वरके सान्निध्यकी असख्य निशानिया मिले, तो भी अुनके किस कामकी? आगे चलकर जब मनुष्य अतर्मुख होता है और अुसके जीवनमें अीश्वरका थोडासा

प्रवेश हो जाता है, तभी सच्चा झगडा शुरू होता है। ओश्वरकी जडे यदि मनुष्यके जीवनमे थोडी भी पहुच जाय, तो फिर वहा वे भर किये विना रह ही नही सकती। साधनाके अभावमें मनुष्य कितना ही असावधान क्यो न रहे, ओश्वरके सान्निध्यकी निशानिया अुसकी नजरमें आये विना रह ही नही सकती, ओश्वरकी कृपाका अनुभव अुसे समय समय पर अवश्य होता है। बादमे तो मनुष्य यह सोचकर चिढने लगता है कि मैं अितना साधना-दुर्बल क्यो हू, और वह अपनी भर्त्सना करने लगता है, फिर तो यह आत्मनिन्दा ही अेक प्रकारकी साधना बनकर मनुष्यसे प्रगति कराती है।

जड जीवनको यदि रात्रिकी अुपमा दी जाय, तो अूपर वर्णित हलकी मीठी नीदके समयको ब्राह्म-मुहूर्त ही कहना चाहिये।

अब नीदका जोर कम हो गया है, अब थोडे ही समयमें हम जाग जायेगे और जागृतिका सुख भोगेगे, अिस विषयमे शका रखनेका कोओी कारण नही है।

२०–१०–'४०

४५

जीवनका शास्त्र

न जाने क्यो आजका जमाना धर्मसे घबराया हुआ रहता है। धर्मके नाम पर ससारके देश परस्पर लडे है। धर्मके नाम पर अेक वर्गने दूसरे वर्ग पर निरकुश सत्ता चलाओी है। धर्मके नाम पर ज्ञानके दीपको बुझा कर जाने और अनजाने दुनियामें अज्ञान और अधबिश्वासोका अधकार खूब फैलाया गया है। धर्मके नाम पर कभी कभी जीवनको सारशून्य और खट्टा बना दिया गया है। धर्मके नाम पर मनुष्यकी प्रगतिको सफलतापूर्वक रोका गया है। यह सच है कि शास्त्रधर्म और रूढिधर्मने षड्यत्र रचकर बहुत बार हृदय-धर्म, प्रेमधर्म, मानवताका धर्म तथा विश्व-मागल्यका धर्म — अिन सब अुच्च धर्मोका अुच्छेद कर डाला है। परन्तु यह सारा अुत्पात मचानेवाला 'धर्म' वास्तवमे धर्म नही है, मनुष्यकी सकुचितता, मनुष्यकी धर्मान्धता तथा मनुष्यका अज्ञान धर्मके नाम पर जो अधर्म फैलाते है, वही अिस सारे अुत्पातकी जड है। धर्म अितनी प्रभावशाली और तेजस्वी वस्तु है कि अुसकी शक्तिको देखकर प्रत्येक क्षुद्र वृत्तिवाला मनुष्य अुसके आश्रयमे अपना काम निकालनेका प्रयत्न करे तो आश्चर्य नही होना चाहिये। परन्तु मानव-द्रोही वृत्तिया धर्मका आश्रय लेती है अिसलिअे अुस आश्रयको ही नष्ट कर देनेसे सारी अशुभ वृत्तिया नष्ट हो जायगी या भूखो मरेगी, अैसा मान लेनेका कोओी कारण नही है। अिसका परिणाम तो अितना

ही होगा कि हम धर्मके जैसी कल्याणमय वस्तुको गवा बैठेंगे। ओीश्वर, आत्मा, परलोक, पुनर्जन्म आदिके वारेमे हम आज अेकमत नही हो सकते अिस कारणसे अिन सबका समावेश करनेवाला धर्म ही त्याज्य है, अैसा अनेक लोग सोचने लगते हैं।

धर्मके विषयमें अूपर जो अनर्थ-परम्परा अथवा सदिग्धता बताओी गओी है, वह सब तो विज्ञानशास्त्रको भी अच्छी तरह लागू होती है। परन्तु अिस कारणसे किसीने विज्ञानका त्याग नही किया है। जैसे जैसे विज्ञानके दोप मालूम होते गये वैसे वैसे अुन दोषोको सुधार लेनेकी ओर ही सयाने लोगोका प्रयत्न रहा है। विज्ञानका बचाव करनेवाले लोग कहते हैं कि विज्ञान किसी ग्रन्थसे चिपटा नही रहता। वह तो अनुभवसे सिद्ध हुओी वस्तुको ही ग्रहण करनेवाला सत्यनिष्ठ और सत्य-परायण शास्त्र है।

सच्चे धर्मको भी यही वात लागू होती है। आज तकके विज्ञानशास्त्रियोके ग्रन्थो पर विज्ञानका जितना आधार है अुससे जरा भी अधिक आधार सच्चे धर्मका धर्मशास्त्रो पर नही हैं। वह भी अनुभवसे सिद्ध हुओी वस्तुको पकडने-वाला, सत्य-परायण, सत्यनिष्ठ शास्त्र ही है। दोनोमें भेद ही देखना हो तो कहना होगा कि धर्मशास्त्रकी सत्यनिष्ठा भौतिक शास्त्रोसे कुछ अधिक है।

प्राचीन कालमें राजाओके नाम पर अनेक युद्ध हुओे हैं। राजाकी विषय-वासनाको तृप्त करनेके लिओे बडी बडी सेनाये किसी राजाकी राजकन्याको लूटनेके लिओे निकली है और दोनो सेनाओका सहार हुआ है। यह कोओी नही कह सकता कि राजा-महाराजा और राजवश सदा प्रजाके लिओे आशीर्वाद-रूप ही सिद्ध हुओे हैं। परन्तु अिस कारणसे कोओी यह नही कहता कि राज्यतत्र ही नही रहना चाहिये — समाज-व्यवस्थाका ही नाश कर देना चाहिये। अिसके विपरीत, शासन-सस्थामे अुत्तरोत्तर सुधार किये जाते है और अुसे अुच्च भूमिका पर पहुचानेके प्रयत्न किये जाते है। यही बात धर्मके विषयमे भी होनी चाहिये।

आत्मा, ओीश्वर, परलोक और पुनर्जन्म धर्मकी पूजी है — यह बात भले ही सच हो, किन्तु धर्म अधा बनकर अिन्हीसे चिपटे रहनेको नही कहता। धर्मका अर्थ है जीवन-व्यवस्था। सयाने लोग सदा यही कहते आये हैं कि जिससे प्रजाका धारण हो सके, जिससे प्रजा परस्पर सहयोग साधकर अपना अुत्कर्ष कर सके वही धर्म है। जिस किसी व्यवस्थासे, विचार-पद्धतिसे और आचार-व्यवहारसे प्रजाका सब प्रकारसे अुत्तम कल्याण हो सके, अुसे धर्म कहा जाता है। धर्मका अर्थ है जीवन-मीमासा, जीवन-व्यवस्था, जीवन-दृष्टि। जिस प्रकार वृक्षमें रहनेवाला जीवन-रस वृक्षको टिकाये रखता है, अुसे कृतार्थ करता है, अुसी प्रकार मनुष्य-समाजको टिकानेवाला और अुन्नतिके मार्ग पर ले जाने-

वाला जो तत्त्व होता है, जो सजीवनी-रूप जीवन-रस होता है, वही धर्म है। अिस हेतु या प्रयोजनके विरुद्ध जो कुछ भी सिद्ध हो वह धर्म नही है। वह यदि धर्मके नाम पर चलता हो, तो भी अुसे धर्मसे निकाल फेंकना चाहिये। 'प्रभवार्थाय भूताना धर्मप्रवचन कृतम्।' धर्मका अस्तित्व सारे प्राणियोके विकासके लिअे, अुदयके लिअे और प्रगतिके लिअे है। 'धारणाद् धर्मम् अित्याहु धर्मो धारयते प्रजा।' यही धर्मका सच्चा स्वरूप है। धर्मका अर्थ ही सस्कृति है। धर्मका अर्थ ही व्यापक समाजशास्त्र है।

जहासे मनुष्यमें समस्त सर्वोच्च वृत्तिया आती है वहीसे धर्म भी आया हुआ है। धर्म मनुष्य-मात्रके स्वभावमें वसी हुअी वस्तु है। धर्मका विरोध करके मनुष्य अुसके स्थान पर जो कुछ स्थापित करनेका प्रयत्न करता है, अुसमे भी धर्मके ही तत्त्व होते है। मनुष्य धर्मसे भाग कैसे सकता है?

यह सच है कि धर्मके नाम पर वोलनेवाले सभी लोगोकी दृष्टिमे धर्मका अितना विशाल और विशुद्ध अर्थ नही होता। आज धर्मके नाम पर समाजमें असख्य वल काम कर रहे है। अुनमें से अधिकतर वलोका नाश करना शुद्ध धार्मिकोका तथा प्रामाणिक धर्म-विरोधियोका समान कर्तव्य है। अत सवसे पहले धार्मिकोको चाहिये कि वे 'नास्तिक' शब्दसे चौकना छोड दें, और धर्मविरोधियोको भी यह भ्रम छोड देना चाहिये कि जितने भी लोग धर्मके हिमायती है वे सब अधविश्वासी है, स्वतत्रता और प्रगतिके विरोधी है, जनताके कल्याणके शत्रु है।

आजकी समाज-व्यवस्थामें जितने ढोग और पाखड चलते है और आजके समाजशास्त्रमें जितनी गडवडी है, अुतने ही ढोग, पाखड और गडवडी धर्मके विषयमें भी पायी जाती है। अत हम सवका मुख्य कार्य यह है कि अिन दोनोको शुद्ध वनाकर जीवनमें अिनका अधिकसे अधिक अुपयोग करे। और जिस किसी वस्तुको शुद्ध वनाना हो अुसका अुपयोग करना ही अुसकी शुद्धिका सच्चा प्रारभ है।

समाज क्या है, समाजकी व्यवस्था कैसी होनी चाहिये, वह व्यवस्था किन तत्त्वोके आधार पर हो और किन तत्त्वोके हाथमें वह व्यवस्था रहे, अिन सव वातोका प्रत्येक युगको स्वतत्र रूपसे विचार करना चाहिये। परन्तु यह सव निश्चित करनेसे पहले अिस वातका निश्चय होना चाहिये कि जीवन क्या है, जीवनका अुद्देश्य क्या है, मनुष्य-जातिको कहा जाना है और क्या प्राप्त करना है। कुछ लोग कहते हैं कि यह सव निश्चित किये विना भी हम जी सकते है। जीना और जीनेमें सफल होना ही हमारा जीवन-हेतु है। पशु आज तक अिसी तरह रहते आये है। लेकिन पशुओका और मनुष्योका मार्ग अेक नही है। पशु अपने आप विगडते भी नही और सुधरते भी नही। मनुष्यमे ये दोनों

शक्तिया हैं। और यदि सोचने-विचारनेके अतमें, खोजके अतमें, यह निश्चित हो कि जीना और सफल होना ही मनुष्य-जातिका भी आदर्श है, तब तो यही हमारा पुरुषार्थ होगा। अिसके आधार पर जो जीवन-क्रम निश्चित हो वही हमारा धर्म होगा। व्यक्ति, परिवार और समाज अिन सबका विचार करके जो भी पुरुषार्थ हमने निश्चित किया हो, अुसे सिद्ध करनेका अुपाय ही हमारा धर्म है। जिस जगतमे हम आये है अुसका समग्र परिचय करा कर अुसमे हमारा स्थान और अतिम प्राप्तव्य जो निश्चित कर दे तथा वहा तक पहुचनेका मार्ग बताये वही धर्म है।

धर्मकी इस कल्पनाके अनुसार अनेक धर्मोका विचार करना होगा। कार्ल मार्क्सने भी अेक धर्म बताया है। लेनिनने अुसी धर्मका रूपान्तर कर दिया है। गाधीजी अिससे सर्वथा भिन्न धर्म बताते है। दोनो धर्मोके आदर्शमें बहुत साम्य है, परन्तु दोनोके साधनमें बडा भेद है। जर्मन दार्शनिक नित्शेने भी अेक धर्मका ही विस्तार कर दिखाया है। अिन सब धर्मोकी जाच करके मनुष्य-को पहले यह देखना चाहिये कि कौनसा धर्म मानव-जातिके लिअे हर दृष्टिसे पोषक है, कौनसा धर्म मानव-जीवनमें अुतर सकता है और सबका कल्याण कर सकता है। हमें धर्म ही नही चाहिये, अैसा कहकर भी धर्मसे भागा नही जा सकता। यह कथन या नीति भी अेक प्रकारका धर्म ही बन जाता है। और चूकि यह भूमिका अुतावलीमें और घबराहटमें ग्रहण की हुअी होती है, अिसलिअे डर रहता है कि यह धर्म कही अधूरा, कच्चा, असुविधापूर्ण और मूल अुद्देश्यका नाश करनेवाला सिद्ध न हो। धर्म जीवनका सपूर्ण शास्त्र है, अिसलिअे अुस पर गहरा विचार होना चाहिये।

३०-६-'३३

वाला जो तत्त्व होता है, जो सजीवनी-रूप जीवन-रस होता है, वही धर्म है। अिस हेतु या प्रयोजनके विरुद्ध जो कुछ भी सिद्ध हो वह धर्म नही है। वह यदि धर्मके नाम पर चलता हो, तो भी अुसे धर्मसे निकाल फेंकना चाहिये। 'प्रभवार्थाय भूताना धर्मप्रवचन कृतम्।' धर्मका अस्तित्व सारे प्राणियोके विकासके लिअे, अुदयके लिअे और प्रगतिके लिअे है। 'धारणाद् धर्मम् अित्याहु धर्मो धारयते प्रजा।' यही धर्मका सच्चा स्वरूप है। धर्मका अर्थ ही सस्कृति है। धर्मका अर्थ ही व्यापक समाजशास्त्र है।

जहासे मनुष्यमें समस्त सर्वोच्च वृत्तिया आती है वहीसे धर्म भी आया हुआ है। धर्म मनुष्य-मात्रके स्वभावमें वसी हुअी वस्तु है। धर्मका विरोध करके मनुष्य अुसके स्थान पर जो कुछ स्थापित करनेका प्रयत्न करता है, अुसमे भी धर्मके ही तत्त्व होते है। मनुष्य धर्मसे भाग कैसे सकता है?

यह सच है कि धर्मके नाम पर बोलनेवाले सभी लोगोकी दृष्टिमे धर्मका अितना विशाल और विशुद्ध अर्थ नही होता। आज धर्मके नाम पर समाजमे असख्य वल काम कर रहे है। अुनमें से अधिकतर वलोका नाश करना शुद्ध धार्मिकोका तथा प्रामाणिक धर्म-विरोधियोका समान कर्तव्य है। अत सबसे पहले धार्मिकोको चाहिये कि वे 'नास्तिक' शव्दसे चौकना छोड दे, और धर्मविरोधियोको भी यह भ्रम छोड देना चाहिये कि जितने भी लोग धर्मके हिमायती हैं वे सब अधविश्वासी है, स्वतत्रता और प्रगतिके विरोधी है, जनताके कल्याणके शत्रु है।

आजकी समाज-व्यवस्थामें जितने ढोग और पाखड चलते है और आजके समाजशास्त्रमें जितनी गडवडी है, अुतने ही ढोग, पाखड और गडवडी धर्मके विषयमे भी पायी जाती है। अत हम सबका मुख्य कार्य यह है कि अिन दोनोको शुद्ध बनाकर जीवनमे अिनका अधिकसे अधिक अुपयोग करे। और जिस किसी वस्तुको शुद्ध बनाना हो अुसका अुपयोग करना ही अुसकी शुद्धिका सच्चा प्रारभ है।

समाज क्या है, समाजकी व्यवस्था कैसी होनी चाहिये, वह व्यवस्था किन तत्त्वोके आधार पर हो और किन तत्त्वोके हाथमे वह व्यवस्था रहे, अिन सब वातोका प्रत्येक युगको स्वतत्र रूपसे विचार करना चाहिये। परन्तु यह सब निश्चित करनेसे पहले अिस वातका निश्चय होना चाहिये कि जीवन क्या है, जीवनका अुद्देश्य क्या है, मनुष्य-जातिको कहा जाना है और क्या प्राप्त करना है। कुछ लोग कहते हैं कि यह सब निश्चित किये विना भी हम जी सकते है। जीना और जीनेमें सफल होना ही हमारा जीवन-हेतु है। पशु आज तक अिसी तरह रहते आये है। लेकिन पशुओका और मनुष्योका मार्ग अेक नही है। पशु अपने आप विगडते भी नही और सुधरते भी नही। मनुष्यमें ये दोनों

शक्तिया हैं। और यदि सोचने-विचारनेके अतमें, खोजके अतमें, यह निश्चित हो कि जीना और सफल होना ही मनुष्य-जातिका भी आदर्श है, तब तो यही हमारा पुरुषार्थ होगा। अिसके आधार पर जो जीवन-क्रम निश्चित हो वही हमारा धर्म होगा। व्यक्ति, परिवार और समाज अिन सबका विचार करके जो भी पुरुषार्थ हमने निश्चित किया हो, अुसे सिद्ध करनेका अुपाय ही हमारा धर्म है। जिस जगतमें हम आये हैं अुसका समग्र परिचय करा कर अुसमे हमारा स्थान और अतिम प्राप्तव्य जो निश्चित कर दे तथा वहा तक पहुचनेका मार्ग बताये वही धर्म है।

धर्मकी इस कल्पनाके अनुसार अनेक धर्मोका विचार करना होगा। कार्ल मार्क्सने भी अेक धर्म बताया है। लेनिनने अुसी धर्मका रूपान्तर कर दिया है। गाधीजी अिससे सर्वथा भिन्न धर्म बताते हैं। दोनो धर्मोके आदर्शमे बहुत साम्य है, परन्तु दोनोके साधनमे बडा भेद है। जर्मन दार्शनिक नित्शेने भी अेक धर्मका ही विस्तार कर दिखाया है। अिन सब धर्मोकी जाच करके मनुष्य-को पहले यह देखना चाहिये कि कौनसा धर्म मानव-जातिके लिअे हर दृष्टिसे पोषक है, कौनसा धर्म मानव-जीवनमें अुतर सकता है और सबका कल्याण कर सकता है। हमें धर्म ही नही चाहिये, अैसा कहकर भी धर्मसे भागा नही जा सकता। यह कथन या नीति भी अेक प्रकारका धर्म ही बन जाता है। और चूकि यह भूमिका अुतावलीमे और घबराहटमें ग्रहण की हुअी होती है, अिसलिअे डर रहता है कि यह धर्म कही अधूरा, कच्चा, असुविधापूर्ण और मूल अुद्देश्यका नाश करनेवाला सिद्ध न हो। धर्म जीवनका सपूर्ण शास्त्र है, अिसलिअे अुस पर गहरा विचार होना चाहिये।

३०-६-'३३

वाला जो तत्त्व होता है, जो सजीवनी-रूप जीवन-रस होता है, वही धर्म है। अिस हेतु या प्रयोजनके विरुद्ध जो कुछ भी सिद्ध हो वह धर्म नही है। वह यदि धर्मके नाम पर चलता हो, तो भी अुसे धर्मसे निकाल फेकना चाहिये। 'प्रभवार्थाय भूताना धर्मप्रवचन कृतम्।' धर्मका अस्तित्व सारे प्राणियोके विकासके लिअे, अुदयके लिअे और प्रगतिके लिअे है। 'धारणाद् धर्मम् अित्याहु धर्मो धारयते प्रजा।' यही धर्मका सच्चा स्वरूप है। धर्मका अर्थ ही सस्कृति है। धर्मका अर्थ ही व्यापक समाजशास्त्र है।

जहासे मनुष्यमें समस्त सर्वोच्च वृत्तिया आती हैं वहीसे धर्म भी आया हुआ है। धर्म मनुष्य-मात्रके स्वभावमें वसी हुअी वस्तु है। धर्मका विरोध करके मनुष्य अुसके स्थान पर जो कुछ स्थापित करनेका प्रयत्न करता है, अुसमें भी धर्मके ही तत्त्व होते हैं। मनुष्य धर्मसे भाग कैसे सकता है?

. यह सच है कि धर्मके नाम पर वोलनेवाले सभी लोगोकी दृष्टिमें धर्मका अितना विशाल और विशुद्ध अर्थ नही होता। आज धर्मके नाम पर समाजमें असख्य वल काम कर रहे हैं। अुनमें से अधिकतर वलोका नाश करना शुद्ध धार्मिकोका तथा प्रामाणिक धर्म-विरोधियोका समान कर्तव्य है। अत सवसे पहले धार्मिकोको चाहिये कि वे 'नास्तिक' शब्दसे चौकना छोड दे, और धर्मविरोधियोको भी यह भ्रम छोड देना चाहिये कि जितने भी लोग धर्मके हिमायती हैं वे सव अधविश्वासी हैं, स्वतत्रता और प्रगतिके विरोधी हैं, जनताके कल्याणके शत्रु हैं।

आजकी समाज-व्यवस्थामे जितने ढोग और पाखड चलते हैं और आजके समाजशास्त्रमें जितनी गडवडी है, अुतने ही ढोग, पाखड और गडवडी धर्मके विषयमें भी पायी जाती है। अत हम सवका मुख्य कार्य यह है कि अिन दोनोको शुद्ध वनाकर जीवनमें अिनका अधिकसे अधिक अुपयोग करे। और जिस किसी वस्तुको शुद्ध वनाना हो अुसका अुपयोग करना ही अुसकी शुद्धिका सच्चा प्रारभ है।

समाज क्या है, समाजकी व्यवस्था कैसी होनी चाहिये, वह व्यवस्था किन तत्त्वोके आधार पर हो और किन तत्त्वोके हाथमें वह व्यवस्था रहे, अिन सव वातोका प्रत्येक युगको स्वतत्र रूपमे विचार करना चाहिये। परन्तु यह सव निश्चित करनेसे पहले अिस वातका निश्चय होना चाहिये कि जीवन क्या है, जीवनका अुद्देश्य क्या है, मनुष्य-जातिको कहा जाना है और क्या प्राप्त करना है। कुछ लोग कहते हैं कि यह सव निश्चित किये विना भी हम जी सकते हैं। जीना और जीनेमें सफल होना ही हमारा जीवन-हेतु है। पशु आज तक अिसी तरह रहते आये हैं। लेकिन पशुओका और मनुष्योका मार्ग अेक नही है। पशु अपने आप विगडते भी नही और सुधरते भी नही। मनुष्यमें ये दोनो

जो चीज — फिर वह दूसरोसे सुनी हुअी हो या अनेक लोगोके मतोका अेकत्र विचार करके निष्कर्ष रूपमे प्रस्तुत की हुअी हो — हमारे गले अुतर गअी हो, अुसे अपनी कहनेमें कोअी हर्ज नही। युक्लिडने हजारो वर्ष पूर्व अपने भूमितिके सिद्धान्तोको सिद्ध कर दिखाया था, फिर भी प्रत्येक विद्यार्थी जब अपने आप अुन सिद्धान्तोकी शुद्धताको स्वीकार करता है तब कोअी अुसे युक्लिडका अध अनुयायी नही कहता। हा, जैसे-तैसे मैट्रिककी परीक्षा पास करनेके लिअे युक्लिडके प्रमाणोको बिना समझे ही घोट डालनेवाले किताबी कीडेको आप चाहे तो अध अनुयायी मान सकते है।

शास्त्रमें अमुक वचन है अिसलिअे अुसे मानना ही चाहिये, यह कहनेवाला अध अनुयायी है। शकराचार्यके मुखसे अमुक सिद्धान्त निकला है अिसलिअे अुसकी मीमासा हो ही नही सकती, अैसा माननेवाला मनुष्य अध अनुयायी है। शास्त्रोकी चर्चा हो ही नही सकती, यह प्रतिपादन करनेवाला अध अनुयायी है। राजाकी गद्दी पर कोअी मनुष्य चढ बैठा अिसलिअे अुसमें सपूर्ण राजत्व आ गया, यह माननेवाले लोग अध अनुयायी है। सरकारने कोअी कानून पास किया अिसलिअे वह न्यायपूर्ण होना ही चाहिये, अिस तरह माननेवाले अध अनुयायी है। गोरी चमडीवालोने कोअी वचन दिया है अिसलिअे अुसका पालन किया ही जायगा, अैसा माननेवाले अध अनुयायी है। सरकारी रिपोर्टमें छपी हुअी हकीकतोमे गलती हो ही नही सकती, अैसा जो मानता है वह अध अनुयायी है। स्मृतियोमे जो जो लिखा हुआ है वह सब त्रिकालके लिअे है, अिस तरहकी दलील करनेवाला भी अध अनुयायी है। गोखलेने, तिलकने, शकराचार्यने अथवा गाधीने कोअी बात कही है, केवल अिसीलिअे अुसे स्वीकार करनेवाला भी अध अनुयायी ही है। आद्य शकराचार्यने कभी यह नही कहा था कि मै कहता हू अिसीलिअे मेरी बात मान ली जाय। वर्ना अपनी प्रस्थानत्रयीके प्रत्येक वाक्यमे अुन्होने तर्क न किया होता। 'अग्नि शीतल है अैसा सौ श्रुतिया कहे, तो भी हम अुसे कैसे मान सकते है?' यह स्वय शकराचार्यने ही स्पष्ट कहा है।

मत्स्यपुराण कहता है 'जिज्ञासा नास्ति नास्तिक्यम्।' तिलक और गाधीने भी हमेशा यही कहा है कि आप हमारे विचारोके दास न बनें। हम जो कहते हैं अुस पर पूरा विचार करनेके बाद यदि वह आपके गले अुतरे, तो ही आप अुसे स्वीकार करे। देश, काल और वर्तमानका विचार करनेके बाद जो सिद्धान्त आपके गले अुतरे, अुसीको आचरणमें अुतारिये। आपके विचार और आपके आचारमें कोअी भेद नही होना चाहिये। आप अैसा नही करेगे तो आपमें कायरता आ जायेगी, आप दीन बन जायगे, आप अधर्मी हो जायगे।

श्रेष्ठ पुरुष, ज्ञानी पुरुष अथवा तपस्वी पुरुष जो कुछ कहते है वह आसानीसे अुडा देने जैसा नही होता, अिस प्रकारकी मान्यता श्रद्धा है।

४६
अंधभक्ति

जब कोओी राजनीतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक चर्चा चलती है अुस समय विरोधी पक्षके किसी भी आदमीको देने लायक अेक गाली बोलचालमें खूब जैठनेवाली है। कोअी आदमी दूसरेका समर्थन करे या अमुक रूढिसे चिपटा रहे, तो फिर अुसके व्यवहारके पीछे चाहे जितना चिन्तन हो, चाहे जितनी स्वतत्र दलीले हो, तो भी अुसे अधभक्त कहनेमें कोअी बाधा नही आती। जितने अनुयायी होते है अुतने सब अध है, जितने धर्मका कट्टरतासे पालन करनेवाले होते है अुतने सब अध है, और शास्त्रोमे विश्वास करनेवालोको तो अधोका भी अध माना जाता है। यह शब्द सुधारवादियोने भाषामें दाखिल किया है, परन्तु प्राचीन मताभिमानी लोग भी अिस शब्दका कम अुपयोग नही करते। तर्कका अुपयोग करे वे नास्तिक और भावनाको प्रधान मानें वे श्रद्धाजड। टीका करनेकी अैसी सरल युक्तिकी खोज होनेके बाद हमारा सार्वजनिक जीवन यदि निष्फल सिद्ध हो, तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नही। आमने-सामने अेक-दूसरेको 'तू अधा', 'तू अधा' कहकर आज तक हमने क्या पाया? स्वार्थ, द्वेष या मत्सरके कारण देशमें फैली हुअी फूटमें अेक यह डर और बढ गया है कि अधेपनका आरोप कही मुझ पर न लग जाय। और समाजका तो मानो यह अेक नियम ही बन गया है कि 'नासौ मुनिर्यस्य मत न भिन्नम्'। जो मनुष्य अपना अलग मत न प्रकट करे वह बुद्धिमान कभी कहा ही नही जा सकता।

तब क्या अिस दुनियामें अधभक्ति अथवा अध-अनुयायित्व जैसी कोअी चीज है ही नही? नही, अैसा नही है। हमारे देशमे अथवा किसी भी देशमें अधभक्ति अितनी ज्यादा है कि जहा अधभक्ति न हो वहा भी लोगोको अधभक्तिका आभास होने लगता है। छापनेकी कलाका आविष्कार हुआ अुस दिनसे दुनियामे लेखको और विचारकोकी अेक बडी फौज निकल आअी है। लेकिन अुनके विचारोकी हम बारीकीसे जाच करे, तो पता चलेगा कि किसी अेक युगमें अधिकसे अधिक दो-तीन ही नअी कल्पनाओका अुद्भव हुआ है। बाकीके सामान्य लोग तो पुरानी कल्पनाको अथवा दूसरेकी कल्पनाको लेकर स्वय जिस रूपमे अुसे समझे हो अुस रूपमे प्रस्तुत कर देते है। मनुष्य यदि अपने मनको निर्मल बनाकर अपने विचारो और मतोकी जाच करे, अुनका मूल खोजनेका प्रयत्न करे, तो यह देखकर वह लज्जित हुअे बिना नही रहेगा कि अुनमे अुसका 'अपना' हिस्सा कितना कम है।

४७

अंधविश्वास और श्रद्धा

अेक लोककथा कहती है कि 'काली चौदसकी रातमें — ठीक आधी रातके समय यदि नाक काटी जाय, तो दूसरे दिन सुबह सोनेकी नाक निकल आती है।' भगवद्गीतामें कहा गया है कि 'जो मनुष्य कल्याणकारी है अुसकी दुर्गति नही होती।' सामान्य मनुष्यका अिन दोनो वचनो पर अेकसा अविश्वास होता है, क्योकि दोनो वचनोका प्रत्यक्ष अनुभव किसीको भी नही होता। भोला-भाला आदमी बचावमें कहेगा कि 'नाक न निकले तो दोष हमारा है। ज्योतिषके अनुसार काली चौदसकी तिथि निश्चित करनेमें भूल हुअी होगी या ठीक आधी रातका क्षण पकडमें नही आया होगा, अिसीलिअे सोनेकी नाक नही निकली। पूर्वजोके वचन तो कभी झूठे हो ही नही सकते। हमारी ही कोअी भूल हो गअी होगी।' श्रद्धालु मनुष्य कहेगा 'यह ठीक है कि कल्याणकारी धर्मराज पर आपत्ति आ पडी थी। परन्तु वह सच्ची आपत्ति ही नही थी। बाहरी लाभालाभकी कीमत ही क्या है? धर्मराजको निरन्तर भगवानका सहवास मिला। अिससे भिन्न सद्गति भला क्या हो सकती है? कष्ट-सहनको तो कायर लोग ही विपत्ति मानेंगे। भगवानने यह वचन दिया है कि कल्याणकारीकी दुर्गति कभी हो ही नही सकती।'

प्राकृत मानव अिन दोनो बचावोसे असतुष्ट रहता है। अुसकी दृष्टिमें अिन दोनो वचनो पर रखा जानेवाला विश्वास समान रूपसे अधश्रद्धाकी निशानी है। दभका आवरण हटा दें और औपचारिक धर्मनिष्ठाको दूर कर दे, तो आजकी दुनियामें अैसे प्राकृत लोगोकी सख्या ही अधिक दिखाअी पडेगी।

फिर भी क्या अुपर्युक्त दोनो वचन और अुन पर रखी जानेवाली श्रद्धा अेकसे ही माने जा सकते है? पहला वचन भौतिक जगतके बारेमें अेक झूठा नियम प्रस्तुत करता है, जब कि दूसरा वचन अेक आध्यात्मिक सिद्धान्तका प्रतिपादन करता है। पहले वचनकी सत्यताकी जाच करनेके लिअे जिस प्रकारकी कसौटी आवश्यक है वैसी दूसरे वचनके लिअे आवश्यक नही है। मनुष्यको नअी नाककी जरूरत ही क्यो होनी चाहिये? वह नाक सोनेकी क्यो होनी चाहिये? काली चौदसके साथ सोनेकी नाकका क्या सम्बन्ध? आधी रातमें अैसा कौनसा जादुअी प्रभाव है? ज्योतिषके अनुसार काली चौदसका दिन निश्चित करना और आधी रातके क्षणको बराबर पकडना, ये दोनो बातें कठिन भले ही हो, किन्तु असभव बिलकुल नही। प्रत्यक्ष अनुभवके बिना अैसी बातको सत्य माना

सत्यवादी सज्जन अपने अनुभवके रूपमे जो कुछ कहते है अुस पर आदरपूर्वक विचार करना श्रद्धा है। हमारी मन स्थिति जब विकार और मोहसे मुक्त हो अुस समय अतरकी शुद्ध आवाज जो कहे अुसका अनुसरण करनेकी वृत्ति श्रद्धा है। सत्यको कोअी आच नही आती, शुद्ध प्रेम और शुद्ध करुणासे किसीका कभी नुकसान नही होता, अीश्वर किसी भी समय किसीका त्याग नही करता — अैसी अैसी मानव-हृदयकी जो विश्वजनीन तथा सार्वभौम भावनायें है अुनकी दृढ प्रतीति श्रद्धा है।

आद्य धर्माचार्योकी वाणीको आगे-पीछेका विचार किये बिना अर्थ करनेके लिअे केवल व्याकरणके हाथमे सौप देनेकी वृत्ति अधश्रद्धा है। रूढियोको युक्ति अथवा नीतिकी कसौटी पर कसनेसे अिनकार करना अधश्रद्धा है। देशसेवाका मार्ग नीतियुक्त होते हुअे भी वह राजमान्य है या नही, अिस विचारमें अुलझना अधश्रद्धा है। जो आज तक नही हुआ वह भविष्यमे भी कभी नही होगा, अिस तरह मनमे गाठ बाध लेना अधश्रद्धा है। हम कुछ भी न करे, स्वार्थत्याग अथवा पुरुषार्थका नाम भी न ले, तो भी स्वराज्य-सूर्यका अपने आप अुदय होगा — यह मान लेना अधश्रद्धा है। बाजारमें, कोर्ट-कचहरीमे, होटलोमे या सरकारी स्कूलोमे अन्त्यजोको छूनेमे कोअी हर्ज नही, परन्तु राष्ट्रीय शालाओमें अत्यजोके साथ पढनेमे सनातन धर्मका सनातनत्व मिटकर वह डूब जाता है — अैसा मानना भी अधश्रद्धा है। हमारे अखबारोमे शराब आदि मादक पदार्थों और काम-विलासमे मदद करनेवाली दवाअियोके विज्ञापन धनलोभसे छपते रहने पर भी यदि हम यह माने कि हमारे लिखे हुअे सयम और ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी लेखोका समाज पर प्रभाव पडेगा, तो यह हमारी अधश्रद्धा है। दिनोदिन देशकी आर्थिक अवनति होने पर भी यह मानना कि देश समृद्ध और सम्पन्न हो रहा है, अधश्रद्धा है। और, गोरोके अधिकाधिक अुद्धत बनते जानेका प्रतिक्षण अनुभव होने पर भी यह मानना अधश्रद्धा ही है कि धारासभामे बैठकर देशका हित किया जा सकता है तथा स्वराज्य भी प्राप्त किया जा सकता है।

अिस प्रकारकी अधश्रद्धाओसे मुक्त होना प्रत्येक मनुष्यका सर्व-प्रथम कर्तव्य है। समाजके नेताओ, राजनीतिज्ञो तथा धर्मगुरुओका अैसी अधश्रद्धामे मुक्त होना विशेष आवश्यक है, क्योकि यदि वे अध बने रहे तो समाजकी दशा 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा ' जैसी होगी। अितिहास और तर्क ये शास्त्रोकी दो आखें है। अिनके अध्ययनके बिना यदि कोअी धर्मोपदेशक बन जाय, तो वह अध कहा जायगा, और अैसे धर्मोपदेशकके पास धर्म-निर्णयके लिअे जानेका अर्थ होगा 'दृष्टिकी खोजमें निकलते समय अधापन स्वीकार कर लेना'।

१९२१

४७

अंधविश्वास और श्रद्धा

अेक लोककथा कहती है कि 'काली चौदसकी रातमें — ठीक आधी रातके समय यदि नाक काटी जाय, तो दूसरे दिन सुबह सोनेकी नाक निकल आती है।' भगवद्गीतामें कहा गया है कि 'जो मनुष्य कल्याणकारी है अुसकी दुर्गति नही होती।' सामान्य मनुष्यका अिन दोनो वचनो पर अेकसा अविश्वास होता है, क्योकि दोनो वचनोका प्रत्यक्ष अनुभव किसीको भी नही होता। भोला-भाला आदमी बचावमें कहेगा कि 'नाक न निकले तो दोष हमारा है। ज्योतिषके अनुसार काली चौदसकी तिथि निश्चित करनेमें भूल हुअी होगी या ठीक आधी रातका क्षण पकडमें नही आया होगा, अिसीलिअे सोनेकी नाक नही निकली। पूर्वजोके वचन तो कभी झूठे हो ही नही सकते। हमारी ही कोअी भूल हो गअी होगी।' श्रद्धालु मनुष्य कहेगा 'यह ठीक है कि कल्याणकारी धर्मराज पर आपत्ति आ पडी थी। परन्तु वह सच्ची आपत्ति ही नही थी। बाहरी लाभालाभकी कीमत ही क्या है? धर्मराजको निरन्तर भगवानका सहवास मिला। अिससे भिन्न सद्गति भला क्या हो सकती है? कष्ट-सहनको तो कायर लोग ही विपत्ति मानेगे। भगवानने यह वचन दिया है कि कल्याणकारीकी दुर्गति कभी हो ही नही सकती।'

प्राकृत मानव अिन दोनो बचावोसे असतुष्ट रहता है। अुसकी दृष्टिमें अिन दोनो वचनो पर रखा जानेवाला विश्वास समान रूपसे अधश्रद्धाकी निशानी है। दभका आवरण हटा दें और औपचारिक धर्मनिष्ठाको दूर कर दें, तो आजकी दुनियामें अैसे प्राकृत लोगोकी सख्या ही अधिक दिखाअी पडेगी।

फिर भी क्या अुपर्युक्त दोनो वचन और अुन पर रखी जानेवाली श्रद्धा अेकसे ही माने जा सकते है? पहला वचन भौतिक जगतके बारेमें अेक झूठा नियम प्रस्तुत करता है, जब कि दूसरा वचन अेक आध्यात्मिक सिद्धान्तका प्रतिपादन करता है। पहले वचनकी सत्यताकी जाच करनेके लिअे जिस प्रकारकी कसौटी आवश्यक है वैसी दूसरे वचनके लिअे आवश्यक नही है। मनुष्यको नअी नाककी जरूरत ही क्यो होनी चाहिये? वह नाक सोनेकी क्यो होनी चाहिये? काली चौदसके साथ सोनेकी नाकका क्या सम्बन्ध? आधी रातमें अैसा कौनसा जादुअी प्रभाव है? ज्योतिषके अनुसार काली चौदसका दिन निश्चित करना और आधी रातके क्षणको बराबर पकडना, ये दोनो बातें कठिन भले ही हो, किन्तु असभव बिलकुल नही। प्रत्यक्ष अनुभवके बिना अैसी बातको सत्य माना

ही नही जा सकता। और अैसा विचित्र अनुभव करनेसे पहले तो अिस वातकी जाच करनी चाहिये कि अिस वचनमे कोअी वुद्धि-प्रयोग या सचाअी है या नही । अिस तरहका वचन सुनते ही अुसका प्रयोग करनेको तैयार हो जाय, अितना बेवकूफ तो अिस वास्तविक जगतमें कोअी नही मिलेगा।

दूसरा वचन आध्यात्मिक है। सामनेवाला आदमी अुपकार करे या न करे अथवा अपकार करे, तो भी अिस वातका कोअी विचार किये बिना सभी लोगोके साथ जो सज्जनताका व्यवहार करते है अुन कल्याणकारी आर्य पुरुषोको आतरिक सतोष मिलता है, यह प्रत्यक्ष अनुभवकी वात है। बाहरी आपत्तिया अुन पर कितनी ही क्यो न आ पडे, अपने हृदयकी महत्ता ही अुन्हे अपार आनद देती है। यही कारण है कि वे कभी अस्वस्थ नही होते । समाज भी जानता है कि अैसे पुरुष आपत्तिमें भी चमक अुठते है। अुनके चरित्रका असर समाज पर अधिकाधिक होता रहता है। अुनकी वुद्धि सदा प्रसन्न और निर्मल रहती है, अिसलिअे अुनकी दुर्गति नही होती । मान लीजिये कि अैसा प्रत्यक्ष अनुभव अुन्हे नही हुआ, तो भी अुससे क्या ? कौनसा आर्य हृदय दुराचरणको पसद करेगा ? बडेसे बडे प्रलोभनोमें भी वे दुराचरणकी ओर नही मुडे, यह सतोष ही अुन्हे अपार शाति प्रदान करता है। जव मनुष्य वदला लेनेके लिअे भी कोअी हीन कृत्य करता है तव अुसकी आत्म-प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है। समाज भले ही अुसकी प्रशसा करे, लेकिन हृदयकी अप्रसन्नताके सामने अुस सामाजिक प्रतिष्ठाका कोअी मूल्य नही होता। आत्म-प्रतिष्ठा खोकर मनुष्य सामाजिक प्रतिष्ठा पाता है तव अुसके लिअे वह लाभदायी सिद्ध नही होती। मनुष्य कितने ही आवेशसे अपना बचाव क्यो न करे, परन्तु वह बचाव अुसे स्वय ही पोला और पगु मालूम होता है। अिसीलिअे कल्याणकारीकी दुर्गति नही होती । यह वस्तु स्वयसिद्ध है, अिसे अुसका हृदय स्वीकार करता है। अिस वचनका भावार्थ हृदय-धर्मके साथ अितना अधिक समरस हो जाता है कि हृदय अिस वचनको हर वार अनुभवकी कसौटी पर भी चढाना नही चाहता।

धार्मिक श्रद्धासे कहे गये वचनो और अधविश्वासके वचनोमे आकाश-पातालका अतर होता है। आजका प्राकृत युग कभी कभी धार्मिक श्रद्धाके साथ धर्मके नाम पर चलनेवाले तमाम अधविश्वासोको भी टिकाये रखना चाहता है, और वादमें अिसके कडवे फलोके अनुभवसे घवरा कर अधविश्वासोके साथ धार्मिक श्रद्धाको भी अेक ही झटकेमें अुडा देना चाहता है।

'हाथकी कोहनीसे दो वालिश्त जमीन खोदनेसे पाताल दिखाअी देता है,' तथा 'आदर्श ब्रह्मचारी पूर्ण नीरोग और प्रसन्न प्रजावाला होता है'— अिन दोनो वचनोकी प्राकृत लोग अेकसी कदर करते है। लेकिन अिससे ये दो वचन समान कोटिके नही हो सकते । आज कायिक ब्रह्मचर्यके साथ मानसिक ब्रह्मचर्यका

अनुभव करनेवाले लोग अितने कम हैं कि ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी अुपरोक्त वचनका अतिशयोक्तिपूर्ण लगना आश्चर्यजनक नही होगा। परन्तु जिन लोगोने अिस दिशामें कुछ ठोस और लवा अनुभव प्राप्त किया है, वे अपने अनुभवसे अनुमान लगाकर अिस वचनको पूर्ण रूपसे स्वीकार करनेके लिअे तैयार होते हैं। वे कहेगे कि जिस प्रकार घर्पण-रहित यत्र तैयार करना कठिन है, परन्तु कमसे कम घर्षणवाले नये नये यत्र अधिकाधिक सफलतासे तैयार किये जा सकते हैं, अुसी प्रकार सपूर्ण ब्रह्मचर्यकी कोटिको पहुचा हुआ मनुष्य दुर्लभ होने पर भी ब्रह्म-चर्य-सम्वन्धी अुपर्युक्त वचनको कोअी आच नही आ सकती। जिस प्रकार गणितमें अनत-श्रेणी सम्वन्धी सिद्धान्त निर्विवाद सत्य होते हैं, अुसी प्रकार सरल कोटि विपयक आध्यात्मिक सिद्धान्त भी सत्य ही होते हैं।

अधविश्वास तथा श्रद्धाके बीचकी समानता और विरोधको ध्यानमें रखकर हमे धर्मका सस्करण और परिष्करण करनेमें प्रवृत्त होना चाहिये। जिस प्रकार मद अग्नि पर राख जमने लगती है और वह राख धीरे-धीरे अुस अग्निको बुझा देती है, अुसी प्रकार धर्ममें घुसे हुअे असख्य अधविश्वास धीरे धीरे धर्मका गला घोट देते हैं। अधविश्वास अज्ञानसे अुत्पन्न होते हैं। ज्ञानके विषयमें, सत्यके विषयमें प्रखर जिज्ञासा न होनेसे ही वे टिकते हैं। अधविश्वास निरी नास्तिकता है। जिस प्रकार असावधान वैद्य या डॉक्टर वेवकूफी या लापरवाहीसे चाहे जैसी दवा चाहे जिस वीमारको दे देता है, अुसी प्रकार सत्यकी, सच्ची धार्मिकताकी परवाह न करनेवाले मूर्ख लोग ही अधविश्वासोको चलाते हैं और झूठे आश्वा-सनोमें शाति पानेके अिच्छुक दुर्वल-हृदय मानव अैसे अधविश्वासोको टिकाये रखते हैं। जिस आदमीको अपनी तबीयत सुधारना है वह अपनी तवीयतके साथ दवाके गुण-दोपोकी भी पूरी जाच करता है, अुसी प्रकार जिसे धार्मिकता-का विकास करना है, सत्यरूपी स्वास्थ्य प्राप्त करना है अैसा प्रत्येक मनुष्य हरअेक मान्यताको बुद्धि और अनुभवकी कसौटी पर कसे बिना नही रहता।

हमारा समाज धर्मके विषयमे अितना लापरवाह हो गया है कि न तो लोगोको सनातन श्रद्धाओका विकास करनेकी कोअी चिन्ता है और न समाजकी ज्ञानशक्ति और प्राणशक्तिको घुनकी तरह धीरे धीरे नष्ट करनेवाले असख्य अध-विश्वासोकी निन्दा करनेकी चिन्ता है। समाजमें और खास करके निष्पाप और मेहनती सामान्य लोगोमे जो अकर्मण्यता, निराशा और वृद्धत्व आ गये हैं, अुनका कारण जितनी भुखमरी है अुतनी ही अश्रद्धा और अधविश्वास भी हैं। अिन सबको दूर करके जब तक धर्मकी शुद्धि नही की जाती तब तक समाजको सजीवन प्राप्त नही होगा। भुखमरीको हम मिटायेंगे तो ही लोग हमारी बात सुननेको तैयार होगे। परन्तु जब वे हमारी बात सुननेको तैयार हो अुस समय हमे अुन्हे

अंधविश्वासोका नाश करनेवाली और श्रद्धा अुत्पन्न करनेवाली सत्यकी अमृत-वाणी सुनानेको तैयार रहना चाहिये। अंधा अंधेको रास्ता नही दिखा सकता।

२४-७-'२७

४८

चिट्ठीका निर्णय ?

धर्मनिष्ठ और जिम्मेदार मनुष्यके लिअे भी कभी कभी किसी प्रश्न पर स्पष्ट निर्णय करना कठिन हो जाता है। कोओ समय अैसा भी आता है जब मनुष्यको वह चीज, जिसके बारेमे वह निर्णय करना चाहता है, अपने जीवनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण लगती है। अैसे समय मनुष्य संभवत यह व्याकुलता भी अनुभव कर सकता है "अितनी महान वस्तुका आधार ओश्वरने मुझ जैसे अल्प शक्तिवाले सामान्य मानव पर क्यो रखा होगा ?"

जिस विषयमें मनुष्यकी अपनी बुद्धि नही चलती अुसमें अपनेसे श्रेष्ठ विभूतिकी सलाह लेनेके लिअे अुसका प्रेरित होना स्वाभाविक और अुचित है। जिसके पास श्रेष्ठ बुद्धिमत्ता और निष्पक्ष हृदय होता है, अुसकी सलाह लेनेके लिअे अनेक लोग दौडेंगे ही। अैसे आर्य लोग सलाह देते समय या तो अपना अधिकारपूर्ण निर्णय स्पष्ट शब्दोमे देकर शात और अलिप्त हो जाते हैं अथवा यदि अुनमें शिक्षककी वृत्ति हो तो अपने निर्णयके साथ वे निर्णय करते समय किये हुअे साधक अथवा बाधक विचार भी कह सुनाते हैं। कभी कभी वे दोनो पक्षोके विचार प्रस्तुत करके अतमे अपना निर्णय देनेसे अिनकार भी कर देते हैं। अैसे आर्य पुरुष शब्दकोशकी तरह सदा हमारे पास नही रहते। अिसलिअे बहुत बार मनुष्यको अपनी ही बुद्धिका — फिर वह कैसी भी हो — अुपयोग करके किसी प्रश्नके विषयमे निर्णय करना पडता है।

कभी कभी निर्णय करते समय कष्टदायी दुविधा मनुष्यके सामने खडी हो जाती है। और वह दूर होती ही नही! किसी समय निर्णयमें दो पक्ष अैसे खडे हो जाते हैं कि मनुष्यका मन दोनो ओर समान रूपमे झुकने लगता है। दोनो ओरकी दलीले अेकसी अहम होती हैं, लाभ और हानि अेकसे दीखते हैं, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष परिणाम भी अेकसे ही महत्त्वपूर्ण लगते हैं। अैसी परिस्थिति जब खडी हो जाती है तब मनुष्य लाचार बनकर चिट्ठिया डालनेका अुपाय आजमाता है। मै मानता हू कि यह अुपाय मनुष्यकी बुद्धिको, महत्ताको और अुसकी ओश्वर-निष्ठाको शोभा नहीं देता।

बुद्धिका काटा बिलकुल सतुलित रहे, सर्वथा मध्यस्थ रहे, अैसा क्वचित् ही होता है। लेकिन अुसके तटस्थ हो जानेके कारण ही मनुष्य बुद्धिशून्य, अकस्मात्-मूलक चिट्ठियोकी शरण ले तो यह ठीक नही है। अमुक निश्चित परिस्थितियोमें मनुष्यको स्पष्ट निर्णय करना आना ही चाहिये। गहरा विचार करके किसी निश्चित अभिप्राय पर पहुचनेके लिअे बुद्धिकी अेकाग्रता और निर्णय करनेका साहस दोनोकी जरूरत होती है। यह बात बहुतसे लोगोके ध्यानमें नही आती कि विचार करनेमें भी श्रमकी आवश्यकता होती है। कुछ लोग विचार करनेमें ही आलसी होते है। जिस प्रकार विदेशी तैयार माल आसानीसे मिल जानेके कारण ही मनुष्य दुकानसे अुसे खरीद लेता है, अुसी प्रकार सोचने-विचारनेकी झझटके कारण मनुष्य येन-केन-प्रकारेण किसीके भी मतको अपना मत बनाकर काम चलानेके लिअे प्रेरित होता है।

निर्णयकी जिम्मेदारी लेनेकी हिम्मत न करनेवाला मनुष्य भी दूसरे मनुष्यकी, और दूसरा कोअी मनुष्य न मिले तो चिट्ठीकी, शरणमें जाता है। विचार करनेका आलस्य और जिम्मेदारीसे कम-ज्यादा बचनेकी नीयत — दोनो ही धर्मके विरुद्ध है। अिन दोनोको श्रद्धा, भक्ति अथवा नम्रता जैसे दैवी गुणोके साथ मिला देना ठीक नही है। चिट्ठीकी शरणमें जानेवाला मनुष्य अीश्वरकी शरणमे नही जाता, परन्तु अकस्मात्की शरणमें जाता है। दैव और अकस्मात् अेक ही चीज है। दोनो अदृष्ट होते है। जिसका कारण दृष्ट नही होता वह अदृष्ट है, अ-कस्मात् है।

मान लीजिये कि बुद्धिका काटा बिलकुल तटस्थ है, परन्तु अेक ओर या दूसरी ओर कोअी न कोअी निर्णय करना अनिवार्य है। अैसे समय मनुष्यको अपने हृदयकी शरणमें जाना चाहिये। अृषि कहते है 'हृदयेन हि सत्य जानाति।' मनुष्यकी निर्णय-शक्ति, साहस, जिम्मेदारी और स्वतत्रता हृदयमे ही प्रतिष्ठित होते है, और हृदय कभी तटस्थ नही रह सकता।

'सता हि सदेहपदेषु वस्तुपु प्रमाणम् अन्त करणप्रवृत्तय ।'

अवसर कितना भी गभीर और महत्त्वपूर्ण क्यो न हो, मनुष्यको अुतना अूचा अुठना या अुडना ही चाहिये। अपने हृदय पर विश्वास रखकर मनुष्यको प्रसगानुसार बडा बनना ही चाहिये।

चिट्ठियोके खिलाफ हमारी मुख्य दलील यह है कि वे मनुष्यको अपनी जिम्मेदारीसे मुक्त करके अुसे नास्तिक और कायर बनाती है। चिट्ठी डालकर मनुष्य जो कदम अुठाता है, अुसके लिअे कौन जिम्मेदार है ? समाजके सामने तो वह खुद ही जिम्मेदार है। परन्तु मनमें वह दैवकी शरणमे गया है, मनके सामने वह खुद जिम्मेदार नही है। अैसी स्थितिमें आध्यात्मिक दृष्टिसे अुसके

अिस निणयकी कीमत शून्यसे भी कम है। अितनी हद तक अुसका मानव-जीवन व्यर्थ गया।

अेक तर्क यह है कि औश्वरकी दुनियामे अकस्मात् जैसी कोअी चीज है ही नही, हरअेक चीजके लिअे कार्य-कारण-भाव होता है और अिसलिअे चिट्ठीके निकलनेमें या अुछाले हुअे पैसेके गिरनेमें औश्वरकी अिच्छा अवश्य ही प्रकट होती है। पहली दृष्टिमें यह तर्क सच्चा मालूम होता है, परन्तु वह निरा भ्रम है। दुनियामें अकस्मात् जैसी कोअी चीज नही है। प्रत्येक घटना कार्य-कारण-सम्बन्धसे जुडी हुअी है, यह भी सच है। परन्तु अिसके लिअे हम भ्रमवश चाहे जैसे कार्य-कारण-सम्बन्ध स्थापित करने बैठ जाय, तो यह कैसे चल सकता है? मेरी बात तू मानेगा तो तू बुद्धिमान है, वर्ना तू मूर्ख है — अैसा हम किसी आदमीसे कहे, तो भी अुसकी बुद्धिमानी या मूर्खता अुसकी आज्ञाकारितामे नही समा जाती, जिसकी जीभ नाकके सिरे तक न पहुचे अुसे अपने माता-पिता प्रिय नही है — अैसा बालकोसे हम कहें, तो अुसके आधार पर बालकोके प्रेमकी परीक्षा नही होती, आज मेरे मित्रका पत्र आयेगा तो ही मै मानूगा कि वह जिन्दा है, वर्ना मानूगा कि वह मर गया है — अैसा निर्णय करके बैठ जानेवाले आदमीके सकल्प पर अुसके मित्रकी आयु अवलबित नही होती, अुसी प्रकार चिट्ठिया डालनेमे बुद्धिमानी अथवा शुद्ध निर्णय नही आ सकता। मनुष्यके शराब पीकर धर्मबुद्धि या डरपोकपनको मिटानेमें जितनी बुद्धिमानी या बहादुरी है अुतनी ही बुद्धिमानी और औश्वर-निष्ठा चिट्ठिया डालकर मनका सशय अथवा दुविधा मिटानेमें है।

अेक बार अेक सज्जनने किसी अवसर पर कोअी निर्णय न कर सकनेके कारण चिट्ठिया डाली। चिट्ठीका अुत्तर ही औश्वरकी प्रेरणा है, अैसा वे मानते थे। चिट्ठीका अुत्तर अुन्हे मिला। अुस निर्णयके अनुसार चलनेकी तैयारी अुन्होने की, अितनेमे अपने अेक बुजुर्गका पत्र अुन्हे मिला। अुसमे लिखी तफसील और सलाहके मुताबिक अुन्हे अपना चिट्ठीका निर्णय बदलना पडा। अिस मामलेमे यदि यह कहा जाय कि 'घटे भर पहले चिट्ठीका निर्णय ठीक था, लेकिन अब अधिक तफसील और सलाह मिल गअी है, अिसलिअे त्रिकाल-दर्शी सर्वज्ञ औश्वरने पहलेका निर्णय रद कर दिया है', तो वह हास्यास्पद ही माना जायगा।

कुछ लोग यह मानते हैं कि 'पैसेके सिक्केको हम जैसेका वैसा अुछाले, तो भौतिक शास्त्रके नियमके अनुसार वह गुलाट खाकर बिना चूके शास्त्रसिद्ध रीतिसे ही अुलटा या सुलटा जमीन पर गिरेगा। अुछालते समय दी गअी मूल प्रेरणा यानी जोर, हवाकी गति आदि निश्चित कारणोके फलस्वरूप अुसका अमुक ही पहलू अूपर आयेगा। अनिश्चितता मुख्यत पैसेको अुछालते समय काममें ली गअी शक्तिके माप और दिशामे ही रहती है। परन्तु जब मनुष्य विशेष सकल्पके साथ

शरणागत होकर सिक्का अुछालता है तब कोअी दैवी शक्ति बीचमें पडकर अुसकी अगुलियोको विशेष प्रेरणा देती है।'

भोलेभाले लोगोको अपनी बात सिद्ध करनी है अथवा मनवानी है, अिसलिअे अुन्हे बुद्धि पर अत्याचार करके अैसी दलीलें करना सूझता है। मान लीजिये कि दो भाअियोको किसी गाव जाने या न जानेका निर्णय करना है। स्थिति अैसी है कि दोनो साथ जायें तो ही अुनका काम हो सकता है। किसी अेकके जानेसे काम नही चल सकता। अैसे मौके पर मान लीजिये कि दोनो अेक-दूसरेसे कहे बिना स्वतत्र रूपसे अपने अपने कमरेमे जाते हैं और अीश्वरकी शरणमें जाकर चिट्ठियो द्वारा जाने या न जानेका प्रश्न हल करते हैं। अिसमें अेक भाअीको अुत्तर मिलता है कि 'जाओ' और दूसरेको अुत्तर मिलता है कि 'मत जाओ'। अब वह दैवी या अदैवी गूढ शक्ति कहा गअी ? भोले लोग अिसका अुत्तर देंगे कि 'अीश्वरने जान-बूझकर अुन्हे अुलझनमे डाला था, अीश्वर चाहता था कि दोनो मिलकर अेक ही चिट्ठी डालें और अपना निर्णय प्राप्त करें'। 'स्थितस्य गतिश्चिन्तनीया'। अिसलिअे किसी भी चीजको दलीलोकी टागो पर खडा किया जा सकता है। परन्तु अैसी दलीलें बुद्धि और आस्तिकताका दिवाला सूचित करती हैं। अपने हृदयके विश्वासको खोकर हम अीश्वर पर कभी अपना विश्वास बढा नही सकते। थोडी देर सोचकर और समय न हो तो क्षणभरके लिअे बुद्धि और हृदयको योगयुक्त बनाकर निर्णय प्राप्त करना चाहिये और अुसके अनुसार 'सुख-दु खे समे कृत्वा' आचरण करना चाहिये तथा यह समझना चाहिये कि सच्चा फल बाहरी बातोमे नही है, किन्तु हृदयके विकास और बुद्धिके अुपयोगमें है, अिसीमें मानव-जीवनकी सार्थकता है।

हम यह नही कहना चाहते कि चिट्ठी डालनेका कोअी लाभ ही नही है। जहा दोनो पक्ष समान रूपसे महत्त्वरहित हो, कोअी न कोअी निर्णय देना अनिवार्य हो तथा किसी अेक पक्षके निर्णयको दूसरा पक्ष स्वीकार न करे, वहा चिट्ठिया डाली जा सकती हैं। अुदाहरणके लिअे, खेल-कूदमे कौनसा पक्ष पहले खेलना आरभ करे यह तय करनेके लिअे यदि चिट्ठिया डाली जाय या पैसा अुछाला जाय, तो पक्षपातकी शका न रहे और खेल-कूद शुरू हो जाय। दो अेकसी पुस्तकोमें से अेकका पुट्ठा लाल है और दूसरीका हरा है। दो लडके अिनमे से कोअी पुस्तक पसद नही कर पाते और आपसके समझौतेसे भी किसी निर्णय पर आना नही चाहते। अैसे मौके पर कोअी आदमी आखे बद करके दोनो पुस्तकोको अपने हाथोमे ले और दोनो लडकोसे आख बद करके अेक अेक पुस्तक ले जानेको कहे, तो पुस्तकोका बटवारा हो सकता है। यह मजेकी बात है। रगके साथ पुस्तकोका कोअी सम्बन्ध नही है, और लडकोका झगडा निबट जाता है। परन्तु जिस मामलेमें निर्णयका थोडा भी महत्त्व हो अुसमे बुद्धि

और हृदयका अुपयोग करना चाहिये और जिसका अधिकार हो अुसे ही जिम्मेदारीके साथ निर्णय करना चाहिये। अिसीमें मानव-जीवनकी महत्ता है और बुद्धिदाता अंतर्यामी प्रभुके प्रति हमारी निष्ठा है।

१९३१

४९

धर्म-संकटमें क्या किया जाय?

हमारे सामने धर्म-सकटके अनेक अवसर आते है। अुस समय हमें सूझता नही कि क्या किया जाय? अिस वारेमें गहरा विचार करनेके बाद मै अेक निर्णय पर पहुचा हू।

जव तक मनुष्य निचली भूमिका पर रहता है तब तक दो मार्गोंमें से अेक ही मार्ग विहित होता है, परन्तु ज्यो-ज्यो मनुष्य अूपर अुठता जाता है त्यो-त्यो कर्मकी बाहरी सूक्ष्मता-असूक्ष्मता (योग्यायोग्यता) का महत्त्व घटता जाता है। अनेक मार्ग समान रूपसे अुचित होते है। अुस समय किस वृत्तिसे प्रेरित होकर हम कोअी अेक मार्ग पसद करते है, अिसी बात पर सारा आधार रहता है, क्योकि अैसे समय प्रेरक वृत्ति ही कर्मका सार होती है। अिस मायावी जगतमे कर्मका परिणाम अच्छा क्या और बुरा क्या?

यहा मुझे हिमालयके अेक सन्यासीका वचन याद आता है 'सत करे सो छाजे'—सत करे सो अच्छा। नीतिकी मीमासा अिससे अधिक गहराअीमें नही जा सकती।

अूची कला, अूची रसिकता और अूची नीतिमत्ताको कलाकारसे, रसिकसे और सतसे अलग किया ही नही जा सकता। जिस कला-रसिक पर हमारी श्रद्धा हो अर्थात् जिस कला-रसिकने हमारी श्रद्धा प्राप्त करनेके लिअे पर्याप्त तपस्या की हो, वह जब कहता है कि 'यह चित्र सुन्दर है' तब हम तुरन्त ही किसी प्रयत्न अथवा विलम्बके बिना अुस चित्रमें सुन्दरताका दर्शन कर सकते हैं। स्वादमें अिष्ट क्या है और अनिष्ट क्या है—अर्थात् कौनसे स्वादको रुचिकर मानना चाहिये और कौनसे स्वादको रुचिकर नही मानना चाहिये—यह बात जितनी हम कुदरतसे सीखते है अुतनी ही मासे भी सीखते है।

[मुझे अेक घटना याद है। अुस समय मै बच्चा ही था। हम लोग रामदुर्गमें रहते थे। मेरी माने गुलाबका अेक सुन्दर सुगंधित फूल मुझे सूंघनेको दिया। मुझे अुसकी गध अच्छी नही लगी! माने मुझे अुलाहना दिया और, कहा "तू अिसकी सुगधको अनुभव नहीं कर सकता? तुझे अिसकी सुगध प्यारी

नही लगती? कैसा 'वनमानुष' है!" बस, अुसी क्षणसे मैं गुलाबको हृदयसे सुगधित फूल माननेवाला बन गया, गुलाबको सूघकर मुझे अपूर्व आनद आने लगा। मैं आशा करता हू कि आप लोग मुझे दुनियासे निराला (freak) आदमी नही मानेगे।]

सत — जीवित सत हमें जो मार्ग बतायें वही योग्य मार्ग है। जिस हद तक हमारे भीतर सतके गुण आये होंगे अुस हद तक हमारी जागृति ही धर्माचरण है। अिस मान्यतामें अराजकता नही है, अव्यवस्था नही है। बाहरी बधन न होनेका अर्थ यह नही कि व्यवस्था नही है। जीवनमें सभी जगह कहा बाह्य नियमन और नियत्रण होता है?

जीवनकी व्याख्या करना असभव है। जीवनको नियम-बद्ध करना असभव है। जैसे जीवन स्वतत्र (स्वबद्ध) है वैसे नीतिधर्म भी स्वतत्र है। नीतिको मनुष्यसे कभी अलग नही किया जा सकता। 'Morality is subjective' अिस वचनका यह नया अर्थ है।

तब क्या सामाजिक नीति जैसी कोअी चीज है ही नही? अैसी बात नही। समाज अेक अर्ध-जीवत रचना है। जिस हद तक अुसमें आत्माका प्रवेश होता है अुस हद तक अुसकी अपनी नीति अवश्य होती है। परन्तु व्यक्तिगत् नीति, सतोकी नीति और सभ्य समाजकी नीति परस्पर विरोधी नही होती — अेक ही होती है।

नीतिकी यह मीमासा पाश्चात्यो द्वारा विकसित की हुअी नीति-मीमासा जैसी लगती है, परन्तु तत्त्वत यह अुससे सर्वथा भिन्न है।

पाश्चात्य नीतिके पीछे द्वैत है। 'द्वितीयाद्वै नीतिस्सभवति' यह अुनका सूत्र है। अद्वैतमें नीतिके लिअे कोअी स्थान नही है।' 'Morality is the law of conduct towards others' यह पाश्चात्य तत्त्वज्ञानकी व्याख्या है। हम कहें: 'Morality is the law of self-realisation.' अिस व्याख्याको ध्यानमे रखे और आत्मानुभूतिके स्वरूपको समझे, तो धर्म-सकट कभी नही आयेगा।

सता हि सन्देहपदेपु वस्तुषु।
प्रमाण अन्त करणप्रवृत्तय ॥

३०-१२-'२०

५०

मरणोत्तर जीवनकी स्पष्ट कल्पना

स्वर्ग-नरकके अितिहास और भूगोल पुराणोंमें खूब पढनेको मिलते है। जैसे भारतके अुस पार तिब्बत है, दक्षिणमे लका है, सात समुद्रोके पार अग्रेजोके श्वेत-द्वीप है, वैसे ही बादलोके अुस पार आकाशमें स्वर्गभूमि अर्थात् कोअी देश होगा और वहा देवगण रहते होगे यह कल्पना पुराणोंके वर्णनोंके आधार पर मनमें पैदा होती है। पृथ्वी पर स्थित देश अुसकी सतह पर पास-पास है, जब कि स्वर्गके अिन्द्रलोक, चन्द्रलोक, गोलोक, विष्णुलोक आदि जहाजोके डेक या केबिनोंकी तरह अथवा रेलगाडीके अिन्टर क्लासके डिब्बोंमें लगी सीटोंकी तरह या बम्बअी-की चालोंकी मजिलोंकी तरह अूपर-नीचे है, अितना ही फर्क है।

नागलोककी बात अिससे जरा अलग और विचित्र है। पानीमें डुबकी लगाकर नागलोक पहुचा जा सकता है। यह कैसे होता होगा, कुछ समझमें नहीं आता। और नरक पृथ्वीके नीचे तो है, परन्तु कहा होगा और वहा कैसे पहुचा जाता होगा, अिसकी कोअी कल्पना ही नहीं आती। पृथ्वी गोल है, अैसा निश्चित हो जानेके बाद हम कहने लगे कि अमेरिका पातालकी भूमि है। तब फिर यमलोककी स्थापना कहा की जाय?

ये सब लोक काल्पनिक है, अैसा बार बार सिद्ध करनेके दिन अब लद चुके है। ये सारे लोक विचारशील लोगोके मनसे कभीके अुड चुके है। किन्तु अिस बातका स्पष्टीकरण हमारा मन रोज-रोज मागता है कि मरणोत्तर जीवन कैसा होगा। यह कहनेमें कोअी हर्ज नहीं कि सामान्य विलासी लोगोंको अिहलोकमें जो सुखोपभोग चाहिये अुसीका सशोधित सस्करण हमारे पुराणोंका स्वर्गलोक है। आखिर मनुष्यकी कल्पना भी बेचारी जा-जाकर कहा तक पहुचनेवाली थी? जो कुछ आखोंसे देखा हो, अनुभव किया हो, अुसीके विभिन्न अशोंको अेकत्र करनेसे स्वर्गादि लोकोंकी बाह्य रूपरेखा तैयार होती है। पृथ्वी पर मनुष्य तरह तरहके मधुर पेय — शरबत और आसब पीता है, स्वर्गमे अिन सबके प्रतिनिधि-के रूपमें मनुष्यने माधुर्यकी पराकाष्ठा जैसे अमृतकी कल्पना की। पृथ्वी पर विलासी लोग यदि सर्वभोग्य वारागनाओंका अुपभोग करते है, तो स्वर्गमें अुनके स्थान पर अप्सराओंकी योजना की गअी है। पृथ्वी पर विषय-सेवन करनेवाले मनुष्योंको व्याधि, जरा और मरणका शिकार होना पडता है। स्वर्ग काव्य-प्रदेशके समान काल्पनिक होनेके कारण वहा ये तीनो झझटे नहीं है, अैसा स्वर्ग-विधाता कल्पकोंने निश्चित किया है। पौराणिक भूगोलशास्त्र-वेत्ता कहते है

कि स्वर्गमें व्याधिया नही है और आधिया अर्थात् मानसिक चिन्तायें भी नही है। परन्तु वहाका अितिहास अिसके विरुद्ध प्रमाण देता है। स्वर्गका राजा अिन्द्र भोगक्षीण नृपालोकी तरह सदा डर-डर कर जीता है। किसीने भी तपस्या आरभ की कि अुसका सिंहासन डोलने लगता है। कोअी भी बलवान व्यक्ति अुठ कर खडा हुआ कि अुसके सामने अिन्द्रका यह प्रस्ताव तैयार ही रहता है 'तू ही अिन्द्र बन जा!' और गुप्त रूपमे अपने सुकुमार शस्त्रो (अप्सराओ) को भेजनेके लिअे भी अिन्द्र सदा तैयार ही रहता है। रोज नये नये दाव-पेच चलाकर स्वर्गमे अुसे अपना स्थान सुरक्षित रखना पडता है। अिससे बडी आधि दूसरी क्या हो सकती है?

और, बाकीके देव भी क्या किसी हद तक निश्चिन्त रहते है? नही। वे अमृतका पान करते है और अप्सराओका नृत्य देखते है। गाना-बजाना और सारी अिन्द्रियोको तृप्त रखना यही स्वर्गका अखड क्रम है। परन्तु अैसी मिठाससे बिगड जानेवाले मुहको फिर स्वादवाला बनानेके लिअे ही मानो स्वर्गमे मोठके तीखे चरपरे लड्डू भी रखे गये है। स्वर्गके देवोमे अेकसा दर्जा नही है। प्रत्येक देवको अपने अपने पुण्यके अनुसार 'अ', 'ब' या 'क' वर्ग मिलता है और स्वर्ग नामके होटलमें जिसका जितना पुण्याश जमा होता है अुसके अनुसार अुसे सुख भोगनेको मिलता है। बैंकमे जमा रकम खतम हुअी कि स्वर्गके मालिक प्राणीको नीचे धकेल ही देते हैं। देवोको सबसे बडी चिन्ता अपने दरजेकी होती है। जिनका पद अपनेसे नीचा हो अुनकी ओर तुच्छतासे देखना और जिनका पद अूचा हो अुनसे ओर्ष्या करना — अिस तरहकी मत्सरका पोषण करनेवाली तीखी चरपरी व्यवस्था यदि स्वर्गमें नही होती, तो स्वर्गका अखड सुखमय जीवन बिल्कुल अूबानेवाला बन जाता!

राजा-महाराजाओके दरबारी भोग-विलासोको देखकर जैसे मनुष्यको स्वर्गकी कल्पना सूझी, वैसे ही कारावासकी यातनाओके अनुभवसे अुसे नरककी कल्पना सूझी। नरकके बारेमें भी मनुष्यकी कल्पना प्रत्यक्ष अनुभवसे बहुत आगे नही जा सकी। कष्ट पहुचाने या बदला लेनेके लिअे जो जो अुपाय अिस लोकमें किये जाते है, अुन्हीका आरोपण सशोधन और परिवर्धनके साथ नरकमे किया गया है। अिस लोकके सुखोपभोगमें जिस प्रकार रोग, बुढापे और मृत्युकी अेक बडी कठिनाअी है अुसी प्रकार यातना देनेकी अुमग पूरी करनेमें भी अेक कठिनाअी है। मारनेवाला आदमी कब थक जायगा या अुसके मनमे कब दया अुमड पडेगी, यह कहा नही जा सकता। यह अेक बडी कठिनाअी तो है ही। फिर भी यातना देनेमें मनुष्यका मन और शरीर बेरहम और दृढ बन सकते है। परन्तु मारपीट और तिरस्कारके अतिरेकसे जिसे पीडा पहुचानी है वह बेसुध होकर गिर जाय अथवा मर भी जाय, तो अुसका क्या अिलाज हो सकता है? दोनो ही

सूरतोमे वह हमारी पहुचसे बाहर जा सकता है, और अिसका कोअी अिलाज नही हो सकता। परन्तु नरकमे अैसी कोअी कठिनाअी नही है। वहाके यमदूतोका यह धन्धा ही होता है, अिसलिअे अुन्हे थकान, अुकताहट या दया छू भी नही सकती। और वहाकी यातनायें कितनी भी भयकर क्यो न हो, मनुष्य न तो बेसुध होकर नीचे गिरता और न कभी मरता। मर कर ही नरकमें जाया जाता है, अिसलिअे वहा यातनाओसे दुबारा मरनेकी बात ही नही रहती।

अिस प्रकार स्वर्ग और नरककी लोगोमें रूढ बनी हुअी कल्पना मनुष्यके अनुभवके आधार पर ही खडी की गअी है, अितना समझ लेनेके बाद अुसकी बहुत कीमत नही रह जाती। फिर भी मनकी यह वृत्ति बनी रहती है कि मनुष्य-जीवनसे अधिक अुच्च जीवन अवश्य होना चाहिये और मनुष्य-जीवनसे अधिक हीन, अधिक अर्थशून्य और अधिक सताप देनेवाला जीवन भी होगा ही।

अत मरणोत्तर जीवन, पारलौकिक जीवन, स्वर्गलोक, मृत्यु आदि क्या है, अिस पर पुन अेक बार अपने मनमें विचार करनेकी अिच्छा मानव-जातिको बार-बार होती है। अेक देहका त्याग करनेके बाद तत्काल अथवा कालान्तरमें, अिसी पृथ्वी पर अथवा अन्यत्र, मनुष्य-योनिमें या अन्य किसी योनिमें जन्म लेकर जीव नअी देह धारण करता है और नया अनुभव लेना आरभ करता है। अिस सर्वमान्य लोक-कल्पनाका किसी तरह विरोध किये बिना हम सर्वथा भिन्न दृष्टिसे अिन बातो पर विचार करेगे।

कोअी भी मनुष्य जब अपने पूर्वजोका श्राद्ध करता है तब किसका श्राद्ध करता है, किस चीजका श्राद्ध करता है? क्या वह आत्माका श्राद्ध करता है? नही। आत्मा सर्वव्यापी अर्थात् विभु है। अुसके लिअे मरण नही है, स्थानान्तर अथवा लोकान्तर नही है। अिसलिअे आत्माके श्राद्धका तो प्रश्न ही नही अुठता। तब क्या मनुष्य देहका श्राद्ध करता है? नही, देहका भी नही। देहकी तो राख या मिट्टी हो जाती है। कदाचित् देह अन्य प्राणियोका आहार बनकर अुनके साथ अेकरूप भी हो गअी हो। मृत देहको खानेवाले सियारो, भेडियो या गिद्धोका हम श्राद्ध नही करते। अथवा सभव है कि देहमें कीडे पड गये हो और अुनका ही अेक बडा देश बस गया हो, लेकिन अुनकी तृप्तिके लिअे भी हम तर्पण नही करते अथवा पिंड नही रखते।

अब बाकी बचता है मरनेवाले मनुष्यकी वासनाओका समुच्चय अथवा पीछे रहनेवाले लोगोके मनमें रही मृतक-सम्बन्धी भावनाओका समुच्चय। अिन दो वासनात्मक और भावनात्मक देहोके द्वारा मनुष्य मृत्युके बाद शेष रहता है। अिन दोमे से अेक देहका अथवा दोनो देहोका श्राद्ध सभव तो है।

लोक-कल्पना यह है कि मरा हुआ पूर्वज महाशूर, क्रूर, पेटू या आलसी हो, तो अुसका वासना-समुच्चय अथवा लिंग-शरीर बाघ या भेडियेके शरीरमें

जन्म लेता है। यदि वह मिलनसार न होगा, तो बाघकी योनि प्राप्त करेगा। समान शीलवालोका सघ बनानेकी वृत्तिवाला होगा, तो भेडियेकी योनि असके लिअे अधिक अनुकूल सिद्ध होगी। परन्तु श्राद्ध अिन बाघो या भेडियोका नही होता। अैसा हो तब तो अुनके नाम पर खीर और लड्डू अर्पण करनेके लिअे किसी वेद-शास्त्र-सपन्न ब्राह्मणको बुलाने पर यह तमाशा हो सकता है कि हमारे पूर्वज खीर और लड्डूके बदले अुस ब्राह्मणको ही पसन्द करे और चट कर जाय, और श्राद्धमें अेक समय जो पशुहत्या होती थी अुसके बदले ब्रह्महत्या हो जाय!

[मानव-पिता मनु भगवानने कहा है कि 'मा स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मास इहाद्म्यहम् अिति मासस्य मासत्वम्।'—जिसका मास मैं यहा खाता हू वह (स) मुझे (मां) परलोकमे खायेगा, अिसलिअे मासको मास कहते है। अिस न्यायसे यदि हम श्राद्धका विचार करे, तो कहना होगा कि दुनियामें सब जगह श्राद्ध ही चल रहा है।]

पूर्वजोमें से कोअी अपने कर्मो, वासनाओ और सस्कारोके अनुरूप किसी भी योनिमें गया हो और वहा अपनी पुरानी वासनाओकी तृप्ति करते करते नअी वासनाओका बधन रचता हो, तो अुससे हमारा कोअी वास्ता नही। हमारा कोअी पूर्वज अपना शरीर छोडकर चला गया हो, तो भी अिस लोकमे अुसका सपूर्ण नाश नही होता। अुसके द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्म, अुसके द्वारा प्रेरित अच्छी-बुरी प्रवृत्तिया और अुसके द्वारा मानव-स्वभावके विकासमे की गअी वृद्धि —यह सब अुसके चले जानेके बाद भी अिस लोकमें मौजूद रहता है।

अुसके साथ जिनका सम्बन्ध था अुन सगे-सम्बन्धी, शत्रु-मित्र आदि लोगोकी स्मृति और भावनामे वह पहलेकी तरह ही जीवित रहता है, अितना ही नही, अुसके बाकी रहे स्मृतिगत जीवनमें दिन-प्रतिदिन परिवर्तन भी होते है। मृत्युके बाद अुसका निवास अेक ही शरीरमे नही रहता, स्मृतिके रूपमें, कार्यके रूपमें अथवा प्रेरणाके रूपमें वह जितने समाजमे व्याप्त होगा अुस समस्त समाजमे अुसका निवास होता है, और अुसके अिस जीवनको लक्ष्यमें रखकर ही अुसका श्राद्ध सभव हो सकता है। शिवाजी महाराज जैसे पुण्यश्लोक राजाने मोक्ष प्राप्त किया हो या अिस देश अथवा दूसरे देशमें राष्ट्र-पुरुषका जन्म लिया हो, अुनकी अिस नयी यात्रा—'केरियर'—का हम श्राद्ध नही करते। आज हम अुन शिवाजी महाराजका श्राद्ध करते है, जो हमारे हृदयमे बसकर जीते है, वहा बडे होते है—विभूतिके रूपमें बढते है। श्राद्ध मरे हुअे जीवोका नही होता, परन्तु देहत्याग करनेके बाद अुनका जो अश समाजमें जीवित रहता है, समाजके द्वारा प्रवृत्ति करता है, विकसित होता है और पुरुषार्थ करता है, अुसीका श्राद्ध हो सकता है। यह मरणोत्तर सामाजिक जीवन ही सच्चा पारलौकिक जीवन है। शास्त्रकारोने मनुष्यकी जीवित अवस्थाके छह लक्षण गिनाये हैं, 'अस्ति,

जायते, वर्धते, अपक्षीयते, परिणमते, म्रियते।' ये सव लक्षण अिस पारलौकिक जीवनको भी लागू होते हैं। अिस कारण यह जीवन काल्पनिक नही, परन्तु वास्तविक है, व्यापक है, दीर्घजीवी है और परिणामकारी है। यही पारलौकिक जीवन है। यह जीवन यदि सुन्दर, अुन्नतिकर, शुभकर होगा, तो वही जीवका स्वर्ग होगा। वही जीवन यदि समाजका अध पतन करनेवाला होगा, आर्यत्वका ध्वस करनेवाला होगा, तो वह जीवका नरक होगा। अिस प्रकार सोचे तो प्रत्येक जीवका स्वर्ग-नरक अुसकी मृत्युके वाद आरभ होता है, परन्तु वह जीव तो अिस लोकमे ही ओतप्रोत रहेगा।

मुसलमान लोग मानते है कि मृत्युके वाद मनुष्य 'वरज़ख' नामके अेक स्थानमे रहकर कयामतकी — अतिम न्यायके दिनकी — राह देखता है। सव प्राणी जव तक मरे नही और यहाका सारा विराट् नाटक पूरा न हो तव तक अतिम न्यायके लिअे सव प्राणी हाजिर नही रह सकते और हिसावकी वहिया भी वन्द नही हो सकती। हिसाव पूरा हो, सव लोग (नट) नाटकके अतमे अिकट्ठे होते है वैसे अिकट्ठे हो और सारा भेद खुले, तो ही सबके सामने न्याय दिया जा सकता है। न्यायके अतमें जिनके भाग्यमे स्वर्ग (वहिश्त) आये वे हमेशा स्वर्गमे आनद भोगेगे और जिनके भाग्यमें नरक — जहन्नुम (दोज़ख) आये वे हमेशा वेदनामें डूवे रहेंगे। यह फैसला हो तव तक मरे हुअे सभी लोगोको वरज़खके वेटिंग रूममे वैठे रहना होगा। वरज़ख कर्मभूमि भले न हो, परन्तु वहा मनुष्यकी स्थितिमे परिवर्तन तो होता ही रहता है, क्योकि अुसके पाप-पुण्यका हिसाव वैंकमे रखी हुअी अमानतकी तरह अथवा व्यापारमें लगाअी हुअी पूजीकी तरह वढता-घटता रहता है।

मैंने यदि अेकाव कुआ अपने जीते-जी वनवाया होगा तो जैसे जैसे लोग अुस कुअेका अुपयोग करेगे वैसे वैसे वरज़खमें मेरे नाम अुसका पुण्य (सवाव) वढता जायगा। यदि मैंने कोअी विलकुल नये ही प्रकारका सत्कार्य किया होगा और लोग अुसका अनुकरण करने लगे होगे, तो सत्कृत्यके नूतन क्षेत्रकी खोज करनेवालेके नाते भी मेरा अनुकरण करनेवालोके पुण्यमें से कुछ अश (रॉयल्टी) मुझे वरज़खमें मिलता रहेगा। अेवल और केन नामक दो भाअियोकी लडाअीके फलस्वरूप मनुष्य-जातिमे प्रथम वन्धुहत्या हुअी थी। अिसलिअे अव मनुष्य-जातिमें कोअी भी खून करता है तो खूनका रास्ता दिखानेवाले वन्धुघाती केनके नाम पर हर वार खूनके पापका कुछ अश जमा होता ही है। परलोकमे 'पेटेंट अेक्ट' भले न हो, किन्तु न्यायका वहीखाता हमेशा जाग्रत रहता है।

अुपरोक्त वरज़खकी कल्पना और हमारी पारलौकिक जीवनकी कल्पना लगभग अेकसी है।

हम जिसे कीर्ति कहते हैं वह वास्तवमे अिस पारलौकिक जीवनका प्रति-विम्व है। पारलौकिक सुदीर्घ जीवनके साथ तुलना की जाय, तो जन्म-मरणके दो छोरोके वीचका हमारा सुख-दु खसे भरा अैहिक जीवन बहुत छोटा या सक्षिप्त कहा जायगा। परन्तु पुरुषार्थकी दृष्टिसे देखा जाय, तो यह जीवन बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योकि यही कर्मभूमि है। भोगकी दृष्टिसे देखें तो यह देहगत जीवन अत्यत अल्प और तुच्छ है। अिसीलिअे जो मनुष्य अपने नफे-नुकसानका हिसाब कर सकता है, अुसे अैहिक सुखो पर अधिक दृष्टि न रखकर पारलौकिक यश शरीरकी, अुसमें मिलनेवाले कीर्तिरूपी सुखोपभोगकी और लोगो द्वारा निरन्तर प्राप्त होनेवाली कृतज्ञताकी ही अधिक चिन्ता करनी चाहिये। अिस लोकमे हम यदि सत्कर्म करेगे, लोगोको सत्प्रेरणा देंगे और पीछे रहनेवालोका सर्वांगीण विकास करेंगे, तो मृत्युके वाद अिन सबमें वृद्धि होती रहेगी और हमारा मरणोत्तर जीवन परिपुष्ट तथा लोगोकी अुन्नति करनेवाला वनेगा।

अैसे पारलौकिक जीवनका प्राकृत लोगोको खयाल नही होता, अिसीलिअे अुन्हे स्वर्ग-नरकके काल्पनिक अितिहास और भूगोलका प्रलोभन दिखाया गया है, अथवा प्रलोभनके स्थान पर यह भी कहा जा सकता है कि अुनके सामने वस्तुस्थितिका ही अेक बालग्राह्य चित्र प्रस्तुत किया गया है।

तव मरणोत्तर जीवन अर्थात् सापराय क्या है?

१ मनुष्य मृत्युके बाद भी अपने विचारो, अपनी भावनाओ, अपने सकल्पो तथा अपने द्वारा प्रेरित पुरुपार्थोंके योगसे समाजमें जीवित रहता है। मृत्युके वादका यह जीवन अुतना ही महत्त्वपूर्ण होता है जितना कि मृत्युसे पहलेका जीवन। वह परिपुष्ट भी होता है और क्षीण भी होता है। वह जीवन समाज-की अुन्नति करनेवाला हो तो वही मनुष्यका स्वर्ग है। और यदि वह जीवन समाजको नीचे गिरानेवाला हो तो वही मनुष्यका नरक होता है। पच महा-भूतामे वने शरीरमें वास करनेकी अपेक्षा समाजरूपी शरीरमे वास करके मनुष्य अत्यन दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है और अैसे जीवनकी सफलताका अधिकारी बनता है। अिस मरणोत्तर जीवनका व्यक्तिरूपी दर्पणमें, अहकार-रूपी दर्पणमें जो प्रतिबिम्व पडता है, वही कीर्ति है, वही यश है।

२ मनुष्यको मृत्युके बादके समाजगत जीवनका खयाल नही होता, अिसीलिअे कीर्ति, यश, पुण्य, स्वर्ग, नरक आदि कल्पनायें रची जाकर मनुष्यके सामने प्रस्तुत की गअी हैं। परलोक कोअी पृथ्वीसे बाहर है, अैसी वात नही। परलोकका अर्थ है मृत्युके वादकी स्थिति। अिसी स्थितिको अुपनिषदोमें 'सापराय' नाम दिया गया है। वालको जैसी वुद्धि रखनेवाले मूढको अिस सापरायकी पहचान नही होती। 'न सापराय प्रतिभाति वालम्।' मूढ लोग यह मानते हैं कि शरीर, अुसके सुख-दु ख, अुन सुख-दु खोका साधन वननेवाली

स्थावर और जगम सपत्ति, अिन सुख-दु खोका भोक्ता अहकार (अस्मिता) और शरीर टिके अुतने समयमे मर्यादित आयु — अिन सवमें ही अुनका सारा जीवन समा जाता है। परन्तु अिन सबको मिलाकर हमारा जो व्यक्तित्व वनता है, वह हमारे जीवनका केवल अेक अल्प अश है। वास्तवमें काल, देश (व्याप्ति) और आधारका विचार करने पर मालूम होगा कि हमारा जीवन अत्यन्त विशाल है। यह सत्य जिसने समझ लिया है और जिसके गले अुतर गया है, वह निश्चित रूपसे निष्पाप और अमर होगा।

३ अैसा मनुष्य यदि सत तुकारामके शब्दोमें कहे कि 'मरण माझे मरोनि गेलें, झालो मी अमर' — मेरी मृत्यु मर गअी और मै अमर हो गया हू, तो अिसका अर्थ समझना कठिन नही है। जीवनकी दृष्टिसे शारीरिक मृत्यु विलकुल तुच्छ है, अितना तो आसानीसे हमारी समझमें आ जाना चाहिये।

१९३३

५१

सृष्टिकी संहार-लीलाका बोध

राजा रूठे नगरी रक्खे अपनी
मैं हर रूठ्या कहा जाना?

— मीराबाअी

यूरोपमे अेक भयकर सहार-लीला विश्वनाशका सकल्प करके केवल मुहूर्तकी ही प्रतीक्षा कर रही हे। अेविसीनिया, चीन, स्पेन वगैराके अनुभव अभी ताजे ही है। मनुष्य जव नाश करनेके लिअे तैयार हो जाता है अुस समय प्रत्यक्ष हिंसासे जितना नुकसान होता है अुसके वनिस्वत हिंसावृत्तिके वढनेसे हृदय-नाशके रूपमें जो नुकसान होता है वह कही अधिक होता है। फिर भी ये सव मानवीय आपत्तिया है। मनुष्य चाहे तो अिनसे वच सकता है। शत्रुकी शरणमे जाकर, युद्धसे भाग कर या दूसरे देशमें जाकर मनुष्य अिन आपत्तियोसे खुदको वचा सकता है। परन्तु यह मार्ग कायरोका है, वीरोको यह पसद नही आता।

वीरोको भी मानवीय सहारसे वचनेका अुपाय मिल सकता है। शत्रुसे अधिक तैयारी करके और अनेक वहादुरोका वलिदान देकर वाकीके लोग वच सकते है। मनुष्य सत्याग्रहके द्वारा भी युद्धका अिलाज कर सकता है, और वहुतसी प्राणहानिको टाल सकता है।

परन्तु जव कुदरतका कोप होता है, जव हरि रूठता है, अुस समय वचनेका कोअी अुपाय नही रह जाता। भूकप, वाढ, कॉलरा, प्लेग वगैरा रोग और

अकाल वगैरा कुदरती आपत्तिया जब टूट पडती हैं, अुस समय जो मानव-सहार होता है अुससे कोओी कैसे बच सकता है? जो लोग वीर है वे ही बच सकते हैं, अैसा हम नही कह सकते। और जो लोग कायर है वे ही बच सकेंगे, अैसा भी कोओी नियम नही है। कुदरती आफत वीरोको खा जायेगी और स्त्रियो तथा बालकोको छोड देगी, अैसा नियम भी कही नही है। यह भी कही देखनेमें नही आता कि पवित्र लोग अैसी आफतोसे बच जाते हैं और अपवित्र लोग ही मरते हैं। जब द्वारका डूबनेवाली थी तब भगवान श्रीकृष्णने अपने कुछ श्रेष्ठ भक्तोको द्वारका छोडनेका आदेश देकर बचाया था। सज्जनोके प्रति बताये गये भगवानके अिस पक्षपातको हम अुचित माने या न मानें, परन्तु भगवानने दुबारा अैसा पक्षपात कभी नही किया। आज तो जब जब भी कुदरती आफत आती है तब तब वह किसी तरहके भेदभावके बिना अपना अघकार्य कर ही डालती है।

अभी अभी तुर्कोंके अगोरा नगरमें भयानक — जिससे भय भी भयभीत हो जाय अितना भयानक — कुदरती कोप हुआ है। महायुद्ध कितना ही भयकर क्यो न हो, अुसमें अेक दिनमें, अेक ही क्षणमें ४५,००० मनुष्योका सहार आसानीसे नही हो सकता।* युद्धमें लोग कमसे कम अेक-दूसरे पर क्रोध करते हैं। शूर-वीर लोग शत्रुसे बदला लेते हैं, सकट कहासे आया यह जानकर अुसका उपाय करते हैं। प्राचीन कालके धर्मयुद्धमें क्षत्रिय योद्धा सोये हुअे शत्रुको जगाकर, अुसके हाथमे शस्त्र न हो तो अुसे शस्त्र देकर और अुसके पास रथ न हो तो स्वय रथसे अुतर कर पहले समानता पैदा करते थे और फिर अुसके साथ युद्ध करते थे। लेकिन कुदरतने धर्मयुद्धका यह नियम न तो कभी माना और न कभी पाला। भूकप कभी यह नही देखता कि दिन है या रात, लोग घरमें हैं या बाहर घूमते हैं। वह तो अेक ही क्षणमे बडे बडे, अूचे अूचे महलोको जमीदोस्त कर देता है। शहरके छोटे-बडे सभी मकानोको अिस तरह जडसे हिला देता है, मानो वे सब ताशके महल हो!

भूकपके कारण कभी कभी कितने ही मकान अपना मुह घुमाकर अुलटी दिशामे देखने लगते हैं। नदीका पाट अूचा होकर नदीको कहाकी कहा धकेल देता हैं। कभी कभी जहा जगल होता है वहा तालाब बन जाता है और जहा तालाब होता है वहा हिमालयके जैसा पर्वतराज खडा हो जाता है। कहा जाता है कि अिसी प्रकार प्राचीन कालमे अेक पूराका पूरा महाद्वीप अटलाटिक महासागरके पेंदेमें विलीन हो गया था। भूमध्य समुद्रके बारेमें भी अैसी ही बात कही जाती है।

---

* यह लेख लिखा गया अुस समय हिरोशिमा और नागासाकी जैसे शहरोको पलभरमें नष्ट करनेवाले अणुबमका जन्म नही हुआ था।

परन्तु अिस समय तुर्कों पर जो आफत आ पडी है वह तो बेजोड है। अ-पूर्व भूकपके कारण वहा हजारो मकान बैठ गये है और हजारो लोग जमीनमें दब गये हैं। अितनेमें पानीने सोचा कि 'मैं थोडे ही किसीसे कम हू। मैं भी अपना चमत्कार दिखाअूगा!' और पानीकी अैसी भयकर बाढ आअी कि रहे-सहे अनेक मनुष्य और ढोर अुसमे बह गये। अगोराके लोग प्राण बचानेकी चिन्तामे पडे थे, अितनेमे वहा पागल कुत्तोकी अेक फौज खडी हो गअी!

पुराणोमे दी गअी महान आपत्तियोकी सूचीमें चूहोका अुल्लेख है, टिड्डियोका अुल्लेख है और अनाजके खेतोको बरबाद कर डालनेवाले तोतोका भी अुल्लेख है

अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभा, मूशका, शुका,।
प्रत्यासन्नाश्च राजान, षडेता औतय स्मृता ॥

पाठान्तरमे कहा गया है

स्वचक्र, परचक्र च, सप्तैता अीतय स्मृता।

स्वचक्रका अर्थ है आतरिक विद्रोह और परचक्रका अर्थ है विदेशियोका आक्रमण। अिन अीतियो, आपत्तियोमे अीश्वरने अब कुत्तोकी अेक आपत्ति और जोड दी है!

अगोराके अुत्तरमे काला समुद्र है। अुस पर भी यह पागलपन सवार हो गया। अुसने अैसा तूफान मचाया कि जीवन (पानी) पर विहार करनेवाली अनेक नौकाओको मृत्युकी शरणमें भेज दिया।

अब अिस भयकर प्राणनाशके लिअे किस पर क्रोध किया जाय? अिसका अिलाज भी क्या हो सकता है? जिस मानव-सस्कृतिके हम अितने अभिमानी भक्त हैं और जिसकी रक्षाके लिअे हम प्राणोकी बाजी लगानेको तैयार हो जाते हैं, अुस सस्कृतिकी कुदरतकी नजरमें कोअी कीमत नही। मधुमक्खियोका छत्ता, दीमककी बाबी, समुद्रमें होनेवाले प्रवालके कीडोके वृक्ष जैसे घर और मानवीय महासाम्राज्य — अिन सबका मूल्य प्रकृतिकी दृष्टिमें समान है।

ग्वालेका लडका मधुमक्खियोके छत्तेको जितनी आसानीसे तोड देता है अुतनी ही आसानीसे अितिहास-विधाता बडे बडे साम्राज्योको अेक क्षणमे मिट्टीमे मिला देता है। अितिहास कहता है कि समरकद और बुखाराके प्रदेशमे अमु-दरिया और सिरदरियाके किनारे तीनो महाद्वीपोका व्यापार चलता था और महान आतर-राष्ट्रीय सस्कृतिका वहा विकास हुआ था। परन्तु जहा भगवानने अेक फूक मारी और भयकर आधी आअी कि रेतकी बाढ आकर सारी आबादी — सपूर्ण सस्कृति — अेक क्षणमे अुसके नीचे दब गअी! पॉम्पी शहर जिस प्रकार ज्वालामुखीकी अग्निमे जलकर भस्मीभूत हो गया, अुसी प्रकार मध्य अेशियाका अेक समृद्ध शहर रेतके समुद्रके सूखे तलमें डूब गया और सदाके लिअे नष्ट हो गया। वहाका अत्याचारी राजा भी रेतके नीचे दबकर मर गया

और लोकहितके लिअे लडनेवाले लोकनेना भी दवकर मर गये। न्यायी और अन्यायी, प्रामाणिक और अप्रामाणिक, स्वपक्षी और परपक्षी सब कोअी धरतीमें समा गये। समूचा आनद और समूचा दु ख, सदाचार और अनीति, जीवन और कलह — सब अेकदम शात हो गये। हजारो वर्षोंसे मनुष्य-जातिने जो पुरुपार्थ किया था वह साराका सारा देखते देखते स्मृतिशेष बन गया। परन्तु स्मृति भी कैसे रह सकती थी? स्मृतिको रखनेके लिअे भी कोअी मनुष्य जीवित तो रहना चाहिये न? वह महान सस्कृति रेतके समुद्रमें डूब कर विस्मृतिकी खाअीमें लुप्त हो गअी।

हजारो वर्षोंके वाद भगवानने फिर अेक फूक मारी और आधी अुलटी चलने लगी। रेतके समुद्रमें भाटा आया और सब तरहके प्राचीन अवशेष प्रकट हो गये। जिस सस्कृतिकी स्मृति भी नष्ट हो गअी थी, अुसके वहुतसे बचे हुअे अवशेप खुले होकर हाथ लग गये।

जो भूकप अगोरामें हुआ वही यदि भूमध्य समुद्रमे हुआ होता, तो शायद अुस सागरके तलकी भूमि अूची हो जाती, मुसोलिनीका अिटली, अतातुर्कका टर्की, फ्रासका अल्जीरिया और नेगसका अेबिसीनिया सब पानीमे डूब जाते और आज जहा सहाराका रेगिस्तान है वहा फिरसे अेक विशाल समुद्र गर्जना करता होता। अुस स्थितिमे तो यूरोपके सारे प्रश्न ही अेकदम बदल जाते। और यदि सारे यूरोपमें अैसी कुदरती अुथल-पुथल हो जाती, तो फासिस्टवाद और नाज़ीवाद, साम्यवाद और पूजीवाद — सभी वाद चिरकालके लिअे निद्राधीन हो जाते। मनुष्य-जीवन अितना ज्यादा कुदरतके अधीन है, अितना क्षणभगुर है कि अुसमें क्षुद्र लाभ-हानिके लिअे राग-द्वेषके ज्वरमे फसे रहना मनुष्यके लिअे कहा तक अुचित है, अिस वातका विचार करनेका समय अव आ गया है। यूरोपके महायुद्धके साथ ही मानो विश्व-नियताने अपना अुपहासपूर्ण व्यग तथा लोक-क्षयकृत् विकट हास्य करनेके लिअे अगोराका भूकप भेज दिया। मनुष्यने जो युद्ध छेडा है अुस पर भगवानने मानो अपना यह भाष्य कर दिया है।

मानव-पिता मनु भगवान कहते है कि 'न चैन देहमाश्रित्य वैर कुर्वीत केनचित्।' अैसी क्षण-भगुर कायाके सहारे रहकर अभिमान करनेका और किसीके प्रति वैर रखनेका कोअी अर्थ नही रह जाता।

प्राचीन लोग असख्य महायुद्ध लडनेके बाद जो बोधपाठ सीखे थे अुसे पुन सीखनेके लिअे मनुष्योको प्राचीनोके जितनी या अुससे कही अधिक कीमत चुकानी पडेगी! यही है मनुष्यकी बुद्धिमत्ता!!

"अिस सृष्टिमे नीतिका साम्राज्य है या केवल अधे अदृष्टका? मनुष्यको जो दु ख सहना पडता है वह अुसके दुराचारका परिणाम है या केवल आकस्मिक घटना है? निरा सयोग है?" ये प्रश्न वार-बार मेरे मनमें पैदा होते

हैं और जब अगोरा जैसे भीषण सकट अकस्मात् टूट पडते हैं तब तो ये प्रश्न अधिक तीव्रतासे मेरे मनमें अुठते हैं। बिहारके भूकपके बाद जब गाधीजीने कहा कि "अिस भयानक प्रकोपके पीछे मैं भारतके महापापकी सजा देखता हूँ," तब सारे बुद्धिवादी लोगोंने आश्चर्य प्रकट किया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुरको भी दु खके साथ कहना पडा था कि 'गाधीजीका यह कथन युक्ति-सगत नही है। मैं अैसे अधविश्वासके साथ सहमत नही हो सकता।' अितना ही नही, गाधीजी जैसे महापुरुषके अिस प्रचारका जनता पर जो अनिष्ट असर होनेकी सभावना थी, अुसे दूर करनेके लिअे अुन्हे (रवीन्द्रनाथ ठाकुरको) अपना मत सार्वजनिक रूपमें प्रकट करना आवश्यक मालूम हुआ। गाधीजीने अिन सब लोगोंसे अेक ही प्रश्न पूछा . "क्या दुनियामें अशत नीतिका राज्य है और अशत अदृष्टका राज्य है? जो भी कुछ होता है अुसका यदि कोअी न कोअी कारण होना ही चाहिये और प्रत्येक कारणका कोअी न कोअी परिणाम होना ही चाहिये, तो क्या अिस महान प्रकोपके पीछे भी मानवीय अपराधका कोअी न कोअी कारण नही हो सकता?"

बिहारके भूकपने आकर गाधीजीसे यह नही कहा था कि मैं अस्पृश्यता-रूपी पापका ही फल हू। गाधीजी भी यह नही मानते थे कि अस्पृश्यता केवल बिहारमें ही है और दूसरे प्रान्तोंमें नही है—और न वे यह मानते थे कि बिहारका भूकप बिहारके ही पापोका फल है। कुदरतमें सारी बातें अेक-दूसरेसे जुडी हुअी होती हैं। पेट ठीक न हो तो सिरमें दर्द होता है। राज्यकर्ताओंकी नीयत बिगडनेसे प्रजाको दु ख भोगना पडता है। महामारीके अेक रोगीके सपर्कमें आनेसे सारे शहरको कॉलरा या अैसी दूसरी किसी बीमारीका शिकार बनना पडता है। हाथसे चोरी करने पर भी कोडे पीठ पर पडते हैं, क्योकि हाथ और पीठ अेक ही शरीरके अग हैं। कुदरतकी सजायें भी मानो हमें सार्वत्रिक सम्बन्धका पाठ सिखानेके लिअे ही कही भी प्रकट हो सकती हैं। कुदरतकी अिस रचनाको हम पूरी तरह समझ नही सकते। फिर भी नीतिके सार्वभौम तत्त्वोंमें हमारी श्रद्धा होनेके कारण जिस बातको हम अनुभवसे सिद्ध नही कर सकते तथा जिसे विरोधी तर्कसे हम काट भी नही सकते, अुसे श्रद्धासे मान लेते हैं।

गाधीजीने समझ लिया कि बिहारका भूकप अेक असाधारण सकट है। अुसका सम्बन्ध देशके सैकडो वर्षोंसे चले आ रहे किसी पुराने और असाधारण व्यापक पापके साथ हो सकता है। अिसीलिअे अुस समय गाधीजीने अपनी अैसी श्रद्धा प्रकट की।

और, हम जरा सोचे कि अदृष्टका अर्थ क्या होता है? अकस्मात्का अर्थ क्या होता है? दैव किसे कहा जाता है? जिसका कारण तो है, परन्तु जो दिखता नही, वह अ-दृष्ट है। जिस घटनाका 'कस्मात्' अथवा कारण हम

नही खोज सकते, परन्तु जिसका कोओी न कोओी कारण तो होना ही चाहिये, अुस घटनाको हम अ-कस्मात् कहते है।

अिस घटनाके मानवीय और कुदरती कारणोका विचार करनेके बाद भी कुछ कारण बाकी रह जाते है। 'अधिष्ठान', 'कर्ता', 'नाना प्रकारके करण' और 'विविध व्यापार' — अिन चारो प्रकारके कारणोका हिसाब हो जानेके बाद जो कारण बाकी रहता है, अुसे दैव कहा जाता है। अूपर बताये चार कारणोमें कोओी न कोओी नैतिक प्रयोजन तो रहता ही है और केवल 'अज्ञात' कारणमें ही 'नैतिक हेतुका अभाव है' अैसा निश्चित रूपसे कहना युक्ति-सगत नही है। परन्तु यदि किसी कारणके बारेमें हम अितना भी नि सन्देह कह सके कि वह सर्वथा 'हेतुहीन' है, तो फिर वह पूर्णतया 'अज्ञात' नही रहता।

खैर। बुद्धिमानी तो अिसमें है कि हम प्रत्येक महान घटनासे कोओी न कोओी बोध सीखें और अधे तथा अज्ञान बने रहनेमे ही बुद्धिकी सफलता न माने। जब यूरोपमें महायुद्ध चल रहा है, जब पचास पचास हजार लोग कुदरती दुर्घटनासे वैसे ही मर जाते हैं, तब अिसमें मनुष्यके लिअे कोओी भी बोध नही है अैसा मानना कसाअीखानेके पास आनदसे घास चरनेवाले जानवरोकी स्थितिमें रहने जैसा है। मनुष्यको अिन सब बातो पर विचार करके कमसे कम अपने युद्ध-ज्वरको तो दूर करना ही चाहिये।

मार्च, १९४०

५२

कालकी महिमा

"कालके माहात्म्यसे सब कुछ समय पर अपने आप होगा, आप क्यो जल्दबाजी करते है? और, रूढियोसे चिपटी रहनेवाली जनतामे बुद्धिभेद क्यो पैदा करते है?" अिस तरह समाजके कुछ लोग सुधारकोके सामने दलील करते है। "काल बडा बलवान है। दुनियामें जो परिवर्तन होना चाहिये अुसे काल स्वय करा लेता है। आप सब कुछ अुसी पर छोड दीजिये। अकारण जल्दबाजी दिखा कर आप सुधारका मिथ्या प्रयत्न क्यो करते है? अस्पृश्यता आज जिस रूपमें है अुस रूपमें वह टिकनेवाली नही है, यह हम भी जानते है। हम यह भी नही कह सकते कि आज अस्पृश्यताका जो रूप है, वही सौ दो सौ वर्ष पहले था। यह सब कालबलसे बदलनेवाला ही है। अिसलिअे कालको आप अुसकी अपनी गतिसे चलने दीजिये। व्यर्थमें समाजको छेड कर आप टूटे हुअे समाजके और अधिक टुकडे क्यो करते है, और नये नये झगडे क्यो

अपने सिर लेते हैं?" अिस तरहकी दलील आजकल कितने ही लोग करते हैं। परन्तु थोड़ा सोचनेसे भी समझमें आ जायगा कि अिस दलीलमें कोअी सार नहीं है। वह जड़ताका ही लक्षण है।

लेकिन अिस दलीलके पीछे भी सनातन हिन्दू धर्मका अेक विशिष्ट लक्षण जरूर मालूम होता है। सनातन हिन्दू धर्मने कालकी महिमाको पहचाना है। 'जैसे जैसे काल बदले वैसे वैसे हमारा कलेवर बदलना चाहिये,' यह जीवन-धर्म है। यदि अिस सिद्धान्तके अनुसार हम न चले, तो कालके शिकार बन जाते हैं। यह सब जाननेके कारण ही सनातन हिन्दू धर्म नित्य-नूतन और चिरंजीवी बना है। सनातन धर्म जानता है कि 'अेक दिनमें आम नहीं पकते।' सनातन धर्म यह भी जानता है कि 'जो रुक गये अुन्हें मरा हुआ ही समझना चाहिये।' सायकल चलती है तभी तक वह सीधी खड़ी रह सकती है। अुसकी गति रुकी कि वह गिरी। देवोंके राजा इन्द्रने कहा है कि 'जो मनुष्य बैठा रहता है अुसका भाग्य भी बैठा रहता है, जो अुठता है अुसका भाग्य भी अुठता है; जो सोया रहता है अुसका भाग्य भी सोया रहता है, जो चलने लगता है अुसका भाग्य भी चलने लगता है। अिसलिअे तुम चलो, चलो, चलने लगो। जो चलता है वही अपने स्थान पर पहुंचता है।' हमारे ऋषि-मुनियोंने जीवनको यात्रा कहा है, क्योंकि जीवनमें जाना, चलना ही जरूरी होता है। सनातन हिन्दू धर्म गंगा नदीके समान निरन्तर बहता आया है। अिसी कारणसे वह नया ताजा, वेगवान और चिरंतन रहा है। सनातन हिन्दू धर्म वेदोंको प्रमाण मानता है, आधार मानता है, परन्तु वह वेदोंके पास ही रुका नहीं रहता। वेदोंका ही नया संस्करण जो स्मृतियां अथवा धर्मशास्त्र हैं अुनको भी वह स्वीकार करता है। लेकिन वहां भी वह ठहरता नहीं। अितिहास-पुराणोंको पांचवें वेदके रूपमें स्वीकार करके अिन्हें भी अुसने धर्मकी नअी प्रेरणा देनेका काम सौंपा। पुराणोंके बाद जो तंत्र आये अुनको भी हिन्दू धर्ममें स्थान है। अिन सब परिवर्तनोंमें बहुतसे परिवर्तन अच्छे थे, तो कुछ बहुत बुरे भी थे। हर जमानेकी परेशानियां और कठिनाअियां अेकसी नहीं होतीं। बुद्धि भी अेकसी नहीं होती। और अिलाज भी अेकसे नहीं होते। कभी कभी किसी रोगको मिटानेके लिअे हम जो दवा करते हैं वह दवा ही मूल रोगसे अधिक बुरी साबित होती है। और बादमें तो अुस दवाकी दवा करते करते ही हमारा दम निकल जाता है। तंत्रमार्गमें अितनी सड़ांध घुस गअी कि अिस बातका बहुत बड़ा भय पैदा हो गया कि धर्म और सदाचारका ही कहीं अिसकी गंदगीमें दम न घुट जाय। अिस सारी सड़ांधको दूर करनेका काम धर्म-सुधारक संतोंने किया। वैष्णव धर्मकी सारी प्रवृत्ति पुरानी सड़ांध और गंदगीको जड़से मिटा कर धर्मको भक्तिके अुज्ज्वल आसन पर बैठानेके लिअे थी। अिसीलिअे संतवाणी भी सनातन हिन्दू

धर्ममें आधार-रूप मानी जाने लगी। जिस किसी सतको धर्मानुभव हुआ है वह हिन्दू धर्मके लिअे प्रमाण है। और प्रत्येक अनुभव किसी भी समय और किसी भी स्थान पर अेकसा ही होना चाहिये। अत जब कोअी नया व्यक्ति अनुभवकी बात लेकर आता है, तो सनातनी लोग पुराने अनुभवके साथ अुसकी तुलना करके देख लेते हैं। हर जमानेकी भाषा अलग होती है, विचार-पद्धति अलग होती है, किसीका अनुभव कच्चा हो सकता है, किसीका अधूरा हो सकता है — अेकागी हो सकता है। कुछ लोगोमें अपने अनुभवको शब्दोमें अच्छी तरह रखनेकी क्षमता नही होती और कुछ लोग तो श्रोताओकी शक्तिको समझ कर ही अपनी बात कहनेवाले होते हैं। अिसी कारणसे अेक अनुभव और दूसरे अनुभवमें भेद दिखाअी देता है। अिस भेद तक अनुभवोकी समानता दिखानेकी, अुनकी अेकवाक्यता सिद्ध करनेकी जिम्मेदारी धर्मज्ञ भाष्यकारोकी है।

जिस प्रकार सृष्टिमें विकासका तत्त्व सर्वत्र लागू होता है, अुसी प्रकार धर्मके साक्षात्कारमें भी विकास जैसी वस्तु अवश्य है। अीश्वर हमे, मनुष्यको जो ज्ञान देता है वह क्रम-क्रमसे ही देता है। मुक्ति भी मनुष्यको क्रम-क्रमसे ही मिलती है। क्रमके अिस महान तत्त्वको ही काल-माहात्म्य कहा जाता है।

जो लोग यह कहते हैं कि अीश्वरने हमारे पुरखोको सारा ज्ञान दे दिया था, वे सर्वज्ञ थे, अिसलिअे हम अपने पुरखोसे आगे बढ ही नही सकते, वे सनातनी नही हैं। जो लोग सच्चे सनातनी होते हैं वे गतिशील धर्म-प्रवाहमें विश्वास रखते हैं। वे यह माननेसे अिनकार करते हैं कि अीश्वरने अेक बार अृषि-मुनियो और पैगबरोको प्रेरणा दी और फिर अीश्वर सो गया। अीश्वर सबके हृदयोमें प्रतिष्ठित है। सच्चे सनातन धर्मका यह विश्वास है कि अीश्वरकी आवाज सुनने जितनी अत करणकी शुद्धि कर ली हो, तो कोअी भी मनुष्य अीश्वरकी आवाज सुन सकता है। अिसीलिअे धर्मशास्त्रोके अक्षरार्थसे चिपटे न रहनेवाले पुरुषोको नास्तिक या भ्रष्ट कहकर सूली पर चढाने, जला डालने या अीट-पत्थर चला कर मार डालनेकी भूल हमारे सनातन धर्मने कभी नही की। सनातन धर्ममें कालकी महिमाका बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। काल-महिमा सनातन धर्मकी विशिष्टता ही है।

*

अत जो लोग काल-माहात्म्य पर निर्भर रहनेकी बात कहते हैं, वे सनातन धर्मकी नाडीको समझ कर सनातन वृत्तिसे ही बोलते हैं। परन्तु काल-माहात्म्यके अूपर रहनेवाला यह विश्वास दो प्रकारका होता है अेक आस्तिक, दूसरा नास्तिक। अेकका विश्वास आत्मा पर होता है, दूसरेका जडता पर। मनुष्य यदि कोअी पुरुषार्थ न करे और केवल कालके प्रवाहमें बहता रहकर कहे कि मैं कालका अुपासक हू, कालके प्रति वफादार हू, तो वह अनात्मवादी नास्तिक

है, जडताका अुपासक है, मरण-धर्मी है। लकडीका जो टुकडा पानीमें वहता जाता है वह प्रवाह-धर्मी है, जीवन-धर्मी नही। नदीके प्रवाहमें दो पत्थर पडे हो और अुनके बीच वह टुकडा फस जाय, तो वह वहीका वही पडा रहता है और सडा करता है। सडनेमें अुसे कोअी आपत्ति नही होती, लेकिन अपने आप वह प्रवाहमें आगे नही वढ सकता। किसीको अुस पर दया आ जाय और पानीमें तैरते तैरते अुसके पास जाकर अुसे लात मार दे या हाथका धक्का दे दे, तो प्रवाहमे आकर वह फिरसे आगे वढेगा और वोल सके तो कहेगा कि 'देखो, कालका माहात्म्य, मै कैसी प्रगति कर रहा हू!' कोअी लोभी आदमी अुसी प्रवाहमें तैर रहा हो और अुसे अपनी शक्तिका सग्रह करना हो, तो वह लकडीके अुस टुकडेको देखकर खुश होगा। वह अुस पर सवार हो जायगा और अपनी सुविधाके अनुसार अुसे प्रगतिके पथ पर ले जायगा। अिसमें प्रगति तो सवार होनेवाले जिन्दे आदमीकी ही मानी जायगी। लकडीका निर्जीव टुकडा नदीके अुद्गमके पास पडा हो तो क्या, नदीके वीचोवीच पडा हो तो क्या और नदीके मुख पर ज्वार-भाटेके धक्के खाते खाते दुर्दशा भोगता रहे तो भी क्या? मुर्देकी प्रगति कैसी? अुसका अेकमात्र नसीव यही है कि या तो वह स्वय सड जाय और जहर वनकर दूसरोको मारे अथवा खाद वनकर दूसरोका पोषण करे।

पुरुषार्थ-हीन समाज, मरा हुआ समाज, परतत्र वना हुआ समाज अूपर कहे लकडीके टुकडेकी तरह काल-माहात्म्यकी रक्षा करता है। वह जडधर्मी होनेकी वजहसे नास्तिक है, अुसका जीवन व्यर्थ है। अुसे देखकर अीश्वर भी रोयेगा।

काल-माहात्म्यके विषयमे पुरुषार्थी आस्तिक व्यक्तिका विश्वास अिससे भिन्न होता है। वह अीश्वरको पहचानता है। अीश्वर मगलमय है, अीश्वरकी सृष्टि सप्रयोजन है, अिस सृष्टिका क्रम चैतन्यके विकासके लिअे है — अैसा समझ कर वह काल-प्रवाहका अुपयोग विचार-पूर्वक चैतन्यके विकासके लिअे करता है।

अुस पारके मदिर तक जानेके हेतुसे नदीके प्रवाहमें कूदनेवाला कुशल तैराक जानता है कि वह सीधा सामनेके किनारे पर नही पहुचेगा। पानीका प्रवाह अुसे नीचेकी ओर ही खीच ले जायगा। सामनेके किनारे पर पहुचनेमें शायद अुसे अेक-दो मील प्रवाहके साथ खिचकर वहना भी पडे। परन्तु अुसका यह दृढ सकल्प होता है कि भले ही नीचेकी ओर खिच जाअू, लेकिन सामनेके किनारे तो मै पहुचने ही वाला हू। वह कोअी लकडीका टुकडा या मुर्दा नही है, जो प्रवाह-धर्ममे पडकर अपने चैतन्य-धर्मको और प्राप्तव्य स्थानको भूल जाय। रास्तेमें पत्थर आये तो वह अुनसे वचकर निकल जायगा। भूलसे अिसी किनारे पर पहुच गया तो फिर पानीमें कूदेगा और फिरसे अुस किनारे जानेका प्रयत्न करेगा। नीचेकी ओर खिचकर अधिक दूर न चला जाना पडे, अिसके लिअे वह कुछ हद तक प्रवाहके विरुद्ध भी अपनी शक्तिका अुपयोग

करेगा, लेकिन अपनी अधिकाश शक्तिका अुपयोग वह सामनेवाले किनारे पर पहुचनेके लिअे ही करेगा और अतमें अुस किनारे पर पहुच कर ही आराम लेगा। वह सोचता है कि प्रवाहमें हू तब तक आराम लिया ही नही जा सकता, थकान अुतारी ही नही जा सकती, आगे बढते बढते ही जो आराम मिलता है, अुसका लाभ उठाकर मुझे आगे ही बढना है। अेक बार सामनेका किनारा हाथमें आया कि मनचाहा आराम लिया जा सकता है और अूपरकी ओर चलकर मोक्ष-मदिर तक पहुचा जा सकता है। कुशल तैराककी कालोपासना अलग होती है, अुसका धीरज (धैर्य) भी अलग होता है; और शवकी कालोपासना या धीरज बिलकुल अलग होता है।

प्राचीन कालसे सभी धर्म-सुधारक कालके माहात्म्यको पहचानते आये ह और धर्मको नये सस्कार देते रहे है। वे कालसे लाभ अुठाते है, कालकी शरणमे नही जाते।

पश्चिमी देशोमें काल-पुरुषकी बडी सुन्दर कल्पना की गअी है। वह अेक युवा पुरुष है। अुसके सारे शरीर पर चरबी या मक्खन लगा हुआ है। वह सतत दौडता ही रहता है। कोअी अुसे पकड नही सकता। अुसकी चोटी कोअी पकड न ले अिस खयालसे अुसने अपने सिरको अच्छी तरह मुडवा लिया है। अीश्वरकी आज्ञासे अुसने कपालके अूपर बालोकी केवल अेक अच्छी लट रख छोडी है। कालको पकडना हो तो वह हमारे पास आये अिसके पहले ही हाथ लम्बा करके अुसकी अिस लटको पकडा कि काल हमारे हाथमें आया। अेक क्षणकी भी गफलत हुअी तो अुसे हाथसे छूटा ही समझिये। अुसके बाल कोअी पीछेकी ओर नही अुडते कि हम अुन्हे पकड ले। अिस खूबीको अग्रेजीमें 'To catch Time by the forelock' कहते है।

जो मनुष्य कालके अिस स्वरूपको जानता है, वही कालके माहात्म्यको जानता है, वही कालको अपना बनाता है और कालसे सारे वरदान प्राप्त करता है।

अग्रेज सरकारने रेलगाडी चलाअी, तो अुसमें ब्राह्मणके साथ भगीको भी बैठनेकी छूट दी। ब्राह्मणका रेलसे लाभ अुठानेका लोभ छूटता नही; और भगीसे दूर बैठनेके लिअे कहा जाय तो वह मानता नही। अिसलिअे लाचारीसे ब्राह्मणने छुआछूतके विचारको कुछ हद तक छोड दिया है। चिढता-कुढता भी वह भगीके साथ बैठ जाता है, घर जाकर स्नान करनेका पुरुषार्थ भी अब अुसमें नही रह गया है। दूसरे लोग डाटेंगे, अिसका डर कम रहता है। ब्राह्मण रेलगाडीका लाभ अुठानेकी लालचमें पडा और कहने लगा कि कलिकाल आ गया है, अिसलिअे अब धर्मका पालन कठिन हो गया है। व्यास मुनिने कहा ही है कि कलिकालमें म्लेच्छ लोग बलवान हो जायगे। व्यास जैसे त्रिकालज्ञ मुनिका वचन

गलत कैसे हो सकता है? अिस तरह काल-माहात्म्यको समझ कर रूढिसे चिपटे रहनेवाले ब्राह्मणने कुछ हद तक अस्पृश्यताको छोडा, और वह अिसका अभ्यस्त हो गया। अैसी आज तककी हमारी प्रगति रही है। अिसमें हिन्दू धर्मकी विजय कहा है, यह समझमें नही आता। 'जिसकी लाठी अुसकी भैंस', बलवानकी ही सत्ता सब जगह चलेगी — यही अगर सनातन हिन्दू धर्म हो तब तो बात अलग है। सच पूछा जाय तो अिसमें लज्जाजनक दब्बूपनकी नास्तिकता ही कूट-कूट कर भरी है। सरकारी अधिकारीके अन्यायके सामने झुकना पडे तब यह दलील सामने रखना कि 'राजा विष्णुका अवतार है', कोअी धनी व्यक्ति या देशी राजा स्वेच्छाचारसे समाजको बिगाडे तब 'समरथको नहि दोस गुसाअी' वाला वचन अुद्धृत करना और धर्माभिमानी लोगोके दोपोको छिपानेके लिअे यह कहना कि धर्मकी विजयके लिअे अधर्म करनेमें दोष नही — ये सब नास्तिकताके ही लक्षण है। अिस प्रकार लाचारीसे जो परिवर्तन करने पडे, स्वार्थके कारण, भयके कारण या झूठे अभिमानके कारण जो परिवर्तन किये जाय, अुनका श्रेय धर्मको नही दिया जा सकता, अिसे काल-माहात्म्य भी नही कहा जा सकता। मनुष्य-समाज कोअी जड पचभूत नही है। वह कोअी वनस्पति-सृष्टि नही है, पशुयोनि भी नही है कि कुदरतके जोर पर लाचारीसे अपने आप जो परिवर्तन हो अुन्हीसे सतोष मान ले।

ओश्वरने मनुष्य-जातिको स्थल और काल दोनोमे दूर तक देखनेकी दृष्टि प्रदान की है। पशु-पक्षियोको, तिर्यक्-योनिको कुदरतने दिशादृष्टि प्रदान की है, किन्तु अधिक कालदृष्टि प्रदान नही की है। कालदृष्टि केवल मनुष्यको ही मिली है, अिसलिअे मनुष्यको कालके वश न रखकर ओश्वरने अुसे कालका सहयोगी, कालका साथी बनाया है। मनुष्य कालकी अवगणना हरगिज नही कर सकता, यह बात जितनी सच है अुतनी ही यह भी सच है कि मनुष्य शवकी तरह कालके अधीन भी नही रह सकता। अत मनुष्यके भाग्यमे यह लिखा गया है कि वह कालग्रस्त या कालत्रस्त न होकर कालज्ञ बने, काल-सहायक बने और अतमें कालकृत् (कालका निर्माण करनेवाला) बने। मनुष्यकी महिमा काल-महिमासे ग्रस्त नही है। मनुष्य-महिमाका अधिकार काल-महिमासे अधिक है।

समस्त मनुष्य-जातिके चैतन्य-रूप नारायणने — समस्त मनुष्य-जातिके परम आदर्श-रूप भगवान पुरुपोत्तमने — स्वय कहा है कि मै काल हू। परन्तु वह काल अलग है और नामर्द आदमीको पशुकी तरह घसीट कर ले जानेवाला बलवान काल अलग है। अेक काल पर विजय प्राप्त करनी होती है, जब कि दूसरे कालकी अुपासना करनी होती है।

१६–७–'३३

जीवन-व्यवस्था

चौथा खण्ड

मंदिर-भावना

५३
हमारे मन्दिर
१

मन्दिरोकी सस्था बहुत पुरानी है। वैदिक कालमे शायद मूर्तिपूजा नही थी। महाभारत-कालमे भी नही रही होगी। मन्दिरोमे जाकर परमात्माकी अुपासना करनेकी प्रथा शायद हमने बौद्ध सप्रदायसे सीखी होगी। यह भी सभव है कि वाल्हीक देशसे आकर भारतमें बसे हुअे रोमनो अथवा यवनोसे हमने मूर्तिपूजाकी प्रथा अपनाअी हो। अितिहासके अन्वेषक अिस प्रश्नका निर्णय कभी भी करे, परन्तु अितना तो निर्विवाद है कि हिन्दुओके सामाजिक और धार्मिक जीवनमें मन्दिरोको दीर्घकालसे महत्त्वपूर्ण स्थान मिला हुआ है।

मनुष्यको मन्दिरकी कल्पना कैसे आअी होगी? किसी भक्त या साधकने हृदयको अुन्नत बनानेवाला कोअी स्थान पसन्द करके वहा अपने ध्यान और भक्तिके लिअे कोअी आलबन पसद किया होगा अथवा रखा होगा? वहा भक्तको अपनी श्रद्धाके अनुसार अथवा अीश्वरके अनुग्रहके अनुसार धर्मकी प्राप्ति हुअी होगी या अुसकी कामना सिद्ध हुअी होगी। फिर लोगोको अिस बातका पता चला होगा। अब तो पूछना ही क्या? जिस तरह किसी वैद्यके हाथके गुणकी (निदानकी) ख्याति फैलते ही सारे रोगी दौड कर अुसके पास पहुच जाते हैं, अुसी तरह किसी स्थानकी 'जाग्रत देवस्थान' के नामसे ख्याति फैली कि सारे आर्तजन अुसी स्थान पर दौडे चले गये होगे और अपने भक्तिभावसे अुन्होने अुसे ओतप्रोत कर दिया होगा।

जब सच्चे हृदयका अेकाग्र समर्पण न हो सके तब मनुष्य क्या करे? तब तो हृदयके बदलेमें अपनी सपत्तिका समर्पण करना ही अुसे सूझेगा। हमें राजाके पास अरजी लेकर जाना होता है तब हम खाली हाथ अुसके सामने नही जा सकते। राजा तो रोज भूखा ही रहता है। अुसे तृप्त करनेके बाद ही वह हमारी प्रार्थना सुनता है। सस्कृतमे राजा और परमात्मा दोनोको अीश्वर ही कहते है। तब तो परमात्माका स्वभाव भी राजाके समान ही होना चाहिये। राजा जिन चीजोसे सतुष्ट होता है वे ही चीजें अीश्वरको भी अर्पण करनी चाहिये। राजा भव्य मन्दिरमें अर्थात् महलमें रहता है। भाट-चारण अुसका बिरुद गाकर प्रात काल अुसे जगाते है। भोग-विलासकी सामग्री सदा अुसके चारो ओर तैयार रहती है। पालकी जैसे सुखदायी वाहनमें बैठकर वह सैर करता है। मिष्टान्न अुसका रोजका भोजन है। पत्र-पुष्प-फल, धूप, पचामृत — ये

सब अुसकी दैनिक जरूरते है। अिन्ही चीजोसे मदिरके देवको भी सतुष्ट करना चाहिये। सचमुच मनुष्यकी कल्पना जिस हद तक पहुच सके अुस हद तक दयालु परमात्माको नीचे अुतरना ही चाहिये। हमारी जो कल्पना है अुससे अधिक अुन्नत कल्पना भगवानने हमे नही दी, अिसमें हमारा क्या दोष?

अिस प्रकार शायद मूर्तिकी षोडशोपचार पूजा करनेके लिअे ही मन्दिरोंकी रचना की गअी होगी। बुद्ध और महावीर जैसी विरक्त विभूतियोके मन्दिरमे भोग-विलासके लिअे कोअी स्थान नही होना चाहिये। स्मशानवासी योगीराज महादेवके मन्दिरमें भी वैभवका कोअी स्थान नही होना चाहिये। परन्तु भगवान तो बेचारा भक्तोके अधीन होता है। जब महात्माओंको भी लोगोकी भक्तिसे परेशान होना पडता है तब भगवानको यदि भक्तोका दिया हुआ रूप और स्थिति स्वीकार करनी पडे, तो अिसमे आश्चर्य कैसा? गरमीके दिनोमे लोग मन्दिरकी मूर्ति पर पखा झलते हैं, जाडेमे भगवानको रजाअी ओढनी पडती है, चौमासेमें जुकामसे बचनेके लिअे दूधके साथ सोठ भी पीनी पडती है!

किन्तु जब मूल सस्थापकके अनुयायी बढ जाते है तब मन्दिरमे जाकर पूजा करने, दर्शन करने और प्रसाद लेनेका अधिकार अुन सबका हो जाता है। जिन लोगोको हम अपना मानते है अुन्हे हम मन्दिरमें ले जाते है और दर्शन तथा प्रसादके भागी बनाते है। साथ ही अैसे स्थान पर जिस प्रकार हम मूर्तिका दर्शन करके कृतार्थ होते है अुसी प्रकार साधकोकी भक्तिपूर्ण आखे देखकर भी हम कृतार्थ होते है।

यह तो कर्मकाण्ड और अुपासना-काण्डकी बात हुअी। साधु-सतोने मन्दिरकी अुपयोगिताको अिससे भी आगे बढाया। अुन्होने मदिरोको धर्मोपदेश और भक्ति-प्रचारका धाम बना दिया और अिस प्रकार मन्दिरोको सामाजिक जीवनके केन्द्रका रूप दे दिया। अिसकी मीमासा भी आज हमें जाननी चाहिये।

२१-११-'२९

२

कर्मकाण्डी लोग जब पूजा करते है तो अकेले ही करते है। अनेक आदमी अेकत्र होकर जब कर्मकाण्डी पूजा करते हैं तो बडी असुविधा होती है। पूजा-विधिकी जटिलताकी अेक कठिनाअी तो रहती ही है। फिर कर्मकाण्डी प्राय सकाम पूजा करते है। प्रत्येककी कामना भिन्न होनेके कारण सामुदायिक पूजा करनेमे अुन्हे बडी कठिनाअी होती है। बडे बडे होम-यज्ञोमे, अिष्टियो और समाराधनाओमे सामुदायिक विधिका पालन जरूर होता है, परन्तु अब अिन सबके दिन चले गये।

काशी-विश्वनाथके मन्दिरमें जाकर आप देखिये। अेक भक्त आता है, विश्वनाथकी पूजा करता है, अभिषेक करके लिंग पर फूल तथा बिल्वपत्र चढाता है और चला जाता है। वह पूजा करके मन्दिरके बाहर निकले अिसके पहले ही दूसरा भक्त आता है, वह पहले भक्तकी सारी पूजाको फेंक देता है और नया अभिषेक और नया पत्र-पुष्प भगवान विश्वनाथको अर्पण करता है। फिर अिसकी पूजाकी भी वही दशा होती है, जो अिसने पहले भक्तकी पूजाकी की थी। सवेरेसे दोपहर तक यही क्रम चलता रहता है। आटा पीसनेकी चक्की पर अेक आदमी आता है और अपना अनाज पिसवा लेता है। फिर दूसरा आता है और अपना अनाज पिसवा लेता है। प्रत्येक आदमीका चक्कीके साथ सम्बन्ध होता है, लेकिन पिसवानेवाले लोगोमें परस्पर कोअी सम्बन्ध नही होता। आदर-वुद्धिकी मदताके दुर्भाग्यपूर्ण क्षणमे मेरे मनमे यह विचार आया कि होटलमे अेक आदमी किसी टेबल पर चाय पीकर चला जाता है। फिर टेबल साफ कर दी जाती है और दूसरे लोग वही आकर चाय-कॉफी पीते हैं। फिर टेबल साफ की जाती है, और फिर चाय-कॉफीके नये भक्त आते है। क्या यही दशा हमारे मन्दिरोकी नही है? लेकिन मनको धमका कर मैंने समझाया कि अिस तरह सोचना अनुचित है। भगवान तो निरपेक्ष है। वह भक्तोके सतोषके लिअे सब तरहकी विडबनाको भी पूजा मानकर ग्रहण कर सकता है। क्या भगवानने स्वय यह नही कहा है

ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्।
पत्र पुष्प फल तोय यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदह भक्त्युपहृत अश्नामि प्रयतात्मन ।।

भगवानका अुपहास करना ठीक नही कहा जायगा। शर्मके कारण मेरा मन दव तो गया, लेकिन धीमी आवाजमे कहने लगा 'हम भगवानका अुपहास कहा करते हैं? हम तो सकाम पूजासे होनेवाले भगवानके अुपहासको देखकर मनुष्य-वुद्धिका आदर करते है!'

साधु-सतोने कर्मकाण्डका महत्त्व घटा कर भक्ति तथा अुपासनाका महत्त्व वढा दिया। भक्तोमें अेकात अुपासना भी होती है और सामुदायिक पूजा भी होती है। अिस प्रकार साधु-सन्तोने हमें मन्दिरोका नया अुपयोग सिखाया। अुन्होने कहा कि मन्दिरोमें पूजाकी विधि भले ही हो, राज-वैभवकी शोभा भले ही वढे, परन्तु वहा जन-समुदायको अेकत्र करके भगवानका गुणगान करना चाहिये और नीति, सदाचार तथा भक्तिका अुपदेश करना चाहिये। यही मन्दिरोकी मुख्य प्रवृत्ति होनी चाहिये। सब लोग मन्दिरमें आओ, हिल-मिल कर रहो, अेक-दूसरेकी मदद करो और सीधे मार्ग पर चलो, यही सतोका सदेश था। वस, फिर तो कर्मकाण्ड और शोभाकाण्ड मदिरोमे गौण वन गये और भक्ति

द्वारा धर्म-प्रचारका काण्ड बढने लगा। परमात्माके सभी बालक प्रेमसे अेकत्र हो और सब प्रेमपूर्वक हिल-मिलकर साथ साथ 'परस्पर भावयन्त' अुन्नतिके मार्ग पर चले। यही हो गअी नयी प्रेरणा।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्त परस्परम्।
कथयन्तश्च मा नित्य तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।

यही सतोका मार्ग है।

निर्मान-मोह साधु-सन्तोके मनमें अूच-नीच-भावके लिअे कोअी स्थान हो ही नही सकता। सब मनुष्य परमात्माके बालक है, सब समान है और सब भाअी-भाअी है। वैश्य तुकारामने गाया है- 'आम्ही जातीचे ब्राह्मण, आमचे मोयरे मुसलमान'—हम जातिमे ब्राह्मण है और मुसलमान हमारे सगे-सम्बन्धी है। अैसे सतोके घरमे प्रत्येक मनुष्यका प्रेमसे स्वागत हो सकता है। जिन्हे सत्पुरुषोके अुपदेशकी जरूरत नही है, वे मन्दिरमे न जाय। जिन लोगोकी आस्था ओश्वरका नाम लेनेमें है, वे सब मन्दिरमे अिकट्ठे हो। यही सतोका नियम—सतोका कानून है।

मदिरके तीन विभाग होते है (१) गर्भगृह जहा पूजाके लिअे मूर्ति रहती है। अिसके अूपर ही मन्दिरका शिखर होता है। (२) सभा-मडप जहा पुराण-कीर्तन और अुपदेश-प्रवचन होता है। (अिस विभागको नाटय-मन्दिर भी कहते हैं, क्योंकि अिसी स्थान पर भगवानकी लीलाका अभिनय भी किया जाता है।) (३) गर्भगृह तथा सभा-मडपके बीच जो छोटोसी जगह होती है, अुसे अन्तराल कहा जाता है।

कर्मकाडियोने मदिरके गर्भगृहका बीज बोया, ध्यानमार्गियोने अतरालको पसद किया, और भक्तिमार्गी तथा पुराण-प्रिय लोगोने अपने प्रेमसे सभा-मडपको भर दिया। अिस तरह हिन्दू धर्मका सपूर्ण स्वरूप अेक मन्दिरमे समा जाता है। अिनमें से ज्ञान और भक्तिके प्रतिनिधिके समान सभा-मडप ही हिन्दू समाजका सार्वजनिक स्थान माना जाता है। सभा-मडप तक सारे हिन्दू केवल मूर्तिके दर्शनके लिअे ही नही किन्तु धर्मकथा सुनने-सुनानेके लिअे भी जा सकते हैं।

कर्मकाडियोने गर्भगृहमे चलनेवाली पूजाविधिको अपने हाथमें रखा और सर्व-साधारणको केवल दर्शनका अधिकारी ठहराया, और अुसमें भी 'तर-तम' भाव (अूच-नीच-भाव) को जोडकर हिन्दू धर्मके टुकडे-टुकडे कर डाले। मुसल-मानोने मदिरोकी मूर्तिया तोडकर हिन्दू समाजका अपमान किया, सपत्ति और कलाका नाश किया, परन्तु अिससे हिन्दू धर्मको किसी प्रकारकी तात्त्विक हानि नही पहुची, अिसके विपरीत, हमारे अभिमानी कर्मकाडियोने समाजको तोडकर छिन्न-भिन्न कर दिया, हिन्दू धर्मको बडी हानि पहुचायी और अिस प्रकार ओश्वरसे

अिनकार किया। अिस छिन्न-भिन्न हिन्दू समाजको पुन सगठित और अेकजीव बनाकर धर्मको प्रतिष्ठित और शोभान्वित करना ही आज मन्दिरोका युगकार्य है।

१९-१२-'२९

२

आजकल अस्पृश्योके लिअे नये मन्दिर बनवानेकी सूचना की जाती है। अिस सूचना पर थोडा अधिक विचार करना जरूरी है।

देशमे पुराने मन्दिर अितने अधिक है कि अुन सबकी व्यवस्था करना हिन्दू समाजके लिअे अशक्य नही तो कठिन जरूर है। विधवाओका प्रश्न जितना जटिल है अुतना ही मन्दिरोका प्रश्न भी जटिल है। हमने अैसे अनेक अनाथ मन्दिर देखे है जो कहलाते तो विश्वनाथके मन्दिर है, परन्तु जिनमें वर्षोसे किसीने झाडू भी नही लगाओ है। जो नियम मिट्टीकी मूर्तियोके लिअे ठीक है वही मन्दिरोके लिअे भी होना चाहिये। मिट्टीकी जिस मूर्तिकी पूजा नही होती अथवा जो मूर्ति खडित हो गअी है, अुसका दर्शन अशुभ होता है। अुसका किसी तीर्थ या जलाशयमे विसर्जन कर देना चाहिये। कुछ अैतिहासिक मन्दिरोको अितिहास-रक्षाकी दृष्टिसे खडित अवस्थामें ही रखना हो तो बात अलग है। परन्तु सामान्य रूपमें प्रत्येक मन्दिरका अच्छे अखड रूपमें ही अुपयोग होना चाहिये। और यदि अैसा न हो सके तो विधिवत् अुसका विसर्जन ही कर दिया जाना चाहिये। यदि हम पुराने मन्दिरोकी अिस तरह व्यवस्था नही करना चाहते, तो नये मन्दिर बनवानेका हमें कोअी अधिकार नही है। जितने मन्दिर है अुतनोकी रक्षा और सेवा करनेकी शक्ति हममें होनी चाहिये। अैसा न हो सके तो जितनोकी रक्षा और सेवाकी शक्ति हममें हो तथा जितनोकी अुपयोगिता हमें मालूम हो अुतने ही मन्दिर रखे जाय।

हम देखते है कि समाजको नये नये मन्दिरोकी जरूरत है। जिस तरह कर्म-काडी साधकोके मन्दिरोमे ही परिवर्धन करके भक्तिमार्गी अुपासको तथा साधु-सतोने अुनमें नये मन्दिर बना दिये, अुसी तरह समाज-हितैषी सेवकोके हाथो नये मन्दिरोकी रचना होना अुचित है। और समाजकी आवश्यकताओमें जैसा परि-वर्तन होता है वैसा ही परिवर्तन मन्दिरोकी रचना और व्यवस्थामे भी होना चाहिये।

१ सबसे पहले यह बात होनी चाहिये कि आज पूजास्थान और पूजा-मूर्ति जो 'गुहा प्रविष्ट'—अधेरेमें होते हैं, अुसके बदले मूर्तिके लिअे 'विवृत सद्म' बनाया जाय। मूर्ति अैसे स्थानमें अूचाअी पर प्रतिष्ठित होनी चाहिये कि हजारो और लाखो लोग अेकसाथ अुसके दर्शन कर सकें।

२ मूर्तिका मूल अुपयोग दर्शनके लिअे है। मूर्तिको साफ करना, अुसका शृंगार करना किसी वेतन पर काम करनेवाले पुजारीका काम है। प्रत्येक भक्त खडा होकर मूर्तिको स्नान कराये, भोजन कराये या अन्य कोअी सेवा अुसकी करे, यह सार्वजनिक मन्दिरोके लिअे वाछनीय नही है। नित्य-तृप्त परमात्माके सामने भोग लगानेकी कोअी जरूरत नही। अुसके समक्ष नैवेद्य रखनेसे ध्यानमे कोअी सुविधा नही होती। बेशक, पत्र-पुष्प, होम, धूप-दीप हो सकते है, सगीत हो सकता है, कला-विधान भी हो सकता है। यह सब सात्त्विक रूपमे होता है तव प्रसन्नताको बढाता है और ध्यान-दर्शनमें सहायक होता है। भोग और नैवेद्यके कारण स्पर्शास्पर्शका झगडा वहुत ज्यादा बढ जाता है। यदि भोग लगाना ही हो तो अुसके लिअे अच्छे ताजे फल, सूखा मेवा और गायका ताजा दूध ही पसद किया जाना चाहिये। मूर्तिकी सेवा तो निरर्थक है — अुसका मूल अुद्देश्य तो ध्यानके लिअे ही है। यदि हम अितनी बात समझ ले और बच्चोकी तरह पूजाका खिलवाड करना छोड दे, तो मन्दिरोसे सम्बन्धित अनेक झगडे मिट जाय।

यदि मूर्तिपूजा हिन्दू धर्मका आवश्यक अग न हो, तो फिर मन्दिरमें मूर्तिकी प्रतिष्ठा करनेका आग्रह क्यो रखना चाहिये? अैसे कितने ही हिन्दू मन्दिर हो सकते हैं, जिनमे भक्तिकी गभीरता हो, पवित्र और शात वातावरण हो, परन्तु मूर्ति या मूर्तिपूजाका नाम न हो। अैसे मन्दिर भी हो सकते है, जिनमे किसी अेक मूर्तिकी स्थायी स्थापना न की जाय, परन्तु त्योहारके अनुसार किसी भी अिष्ट मूर्तिकी स्थापना पूजाके स्थान पर की जा सके।

जिन लोगोका अैसी पूजासे विरोध न हो, वे सब अिन मन्दिरोमे प्रवेश कर सकते हैं। अैसे मन्दिरोमें धर्मचर्चा, समाज-चर्चा, अितिहासका अध्ययन-अध्यापन और सब धर्मोका अध्ययन आदि हो सकता है।

यदि हम समस्त समाज या धर्मको केन्द्रस्थानमे रखकर अपने समग्र जीवनको सगठित करना चाहे, तो यह कार्य मन्दिरो द्वारा अच्छी तरह हो सकता है। मन्दिरोके साथ समाज-हितकी अनेक प्रवृत्तिया जोडी जा सकती हैं जैसे, पाठशाला, रुग्णालय, पशु-चिकित्सा, सार्वजनिक स्नानागार, वाचनालय, पुस्तकालय, नाटयगृह, वैंक, प्रदर्शनी आदि। अैसे मदिरोकी व्यवस्था धर्मनिष्ठ, चरित्र-वत्सल लोक-प्रतिनिधियोके द्वारा ही होनी चाहिये। पुजारीका कार्य किसी अेक जातिके हाथमे नही रहना चाहिये और मन्दिरमे आये हुअे दानका अुपयोग दूसरे किसी विलासके कार्यमे नहीं होना चाहिये। मन्दिरका स्थान सर्वोच्च सदाचारका पोषक होना चाहिये। मन्दिरका सगीत अुच्च कोटिका तथा सस्कारी होना चाहिये, कोलाहल मचानेवाला नही। अेक भी मन्दिर व्यवस्थाहीन नही होना चाहिये।

आज अैसे नये मन्दिरोकी वडी जरूरत है। मन्दिर और मसजिदके झगडोने अब तक कितने ही लोग मन्दिरोके विरोधी हो गये हैं। किन्तु वे समाजके

हृदयको नही पहचानते। मन्दिर सामाजिक और धार्मिक जीवनका केन्द्र है। अुसने हिन्दू समाजकी बहुत बडी सेवा की है और अपने नये रूपमे आगे भी वह खूब सेवा करेगा।

२-१-'३०

४

हमे दु खके साथ कहना पडता है कि दक्षिण भारतके कुछ विशाल मन्दिरोको और अुनके नमूने पर बने हुअे वृन्दावनके दो-तीन भव्य मन्दिरोको छोड दे, तो हमारे बाकीके सब मन्दिर बहुत ही छोटे होते है। और किसी मन्दिरके थोडीसी भी लोकप्रियता प्राप्त करते ही अुसके आसपास पडोके मकान और बाजारकी दुकानें खडी हो जाती हैं। हम ट्रेनमें हो, नावमे हो या गावमें हो, भीड करके बैठना और भीड करके बसना हमारा जाति-स्वभाव हो गया है। नि शस्त्र और अहिसक होनेके कारण हमने आत्मरक्षाकी दृष्टिसे भीड पसद की हो, या शहरकी मक्खियो जैसा अपना स्वभाव होनेके कारण हमने भीड पसद की हो, या किसी अन्य कारणसे हमने यह रीति अपनाअी हो, परन्तु अितना सच है कि हम लोग सदा भीडमें ही रहते है। यह भीड व्यक्तिके विकासके लिअे अच्छी नही है। अेक काम करना हो तो दस आदमियोको पूछना और अितना पूछनेके बाद भी दृढ निश्चयसे वह काम करनेके लिअे कटिवद्ध न होना यह अच्छा स्वभाव नही है। और अितना पूछनेके बावजूद हमने पूछनेकी प्रथा या रीति अच्छी तरह निश्चित नही की है। अिसका कारण भी हमारी यह भीड ही है। बडे बडे धार्मिक मेलोमे जो व्यवस्था रहती है वह तो सैकडो वर्षोके रिवाजसे अुत्पन्न हुअी स्वयभू व्यवस्था है। अपने अहिसक, सहिष्णु और मिलनसार स्वभावके कारण हम लोग अितनी अव्यवस्थाको पचा सकते है। अिसी कारणसे हम अपने मन्दिरोमें दान, भक्ति, धर्म-श्रवण और अखड जागरणके होते हुअे भी अुसका सच्चा अुपयोग नही कर सकते। हमारे मन्दिरोमें खूब भीड होती है। परन्तु वह 'समाज' नही होता, केवल जमाव ही होता है। किसीका किसीके साथ कोअी सम्बन्ध ही नही होता। कोअी किसीको पूछता नही, कोअी किसीकी सुनता नही। यह स्थिति असामाजिक कही जायगी। मन्दिरमे प्रसाद बाटने या बेचनेकी प्रथा अत्यन्त अव्यवस्थित होती है। सुसगठित हिन्दू समाज अिसमे भी बहुत-कुछ सुधार कर सकता है। सिक्खोने जैसे गुरुद्वारा-प्रबन्धक मडल बनाया है अुसी तरह हिन्दू मन्दिर-प्रबन्धक मडल बनानेकी जरूरत है। अिस तरहका प्रबन्ध हो जानेसे थोडे खर्चमे बडी समाज-सेवा हो सकती है। सबसे पहला काम हमें यह करना चाहिये कि मन्दिरके आसपास जितनी भी खुली जमीन रखी जा सके अुतनी रखे। मन्दिर अेक सामाजिक सस्था

है । अुसमे हजारो लोग आयेंगे और अेकसाथ बैठकर कुछ विचार-विमर्श भी करेगे । मन्दिरमें आनेके लिअे चारो ओर चौडे रास्ते होने चाहिये । गाडियो और घोडो जैसी सवारियोको मन्दिरके निकट आनेसे रोकना चाहिये । और मन्दिरोके आसपास कही अस्वच्छता या गदगीका नाम भी नही होना चाहिये ।

मन्दिर हिन्दू धर्मकी रक्षाके लिअे होते है । अत नये मन्दिरोके द्वारा गोरक्षाका प्रबन्ध भी होना चाहिये। प्रत्येक मन्दिरके द्वारा आसपासके समाजको चाहिये अुतना गायका शुद्ध, ताजा और सत्त्वपूर्ण घी-दूध मिलनेका प्रबन्ध अवश्य किया जाना चाहिये। मन्दिर किसी अेक व्यक्तिकी सस्था नही होता, अिसलिअे वहासे केवल स्वार्थ और अुससे पैदा होनेवाली धोखेबाजी दूर होनी चाहिये । दूधसे जो आय हो वह गोरक्षाके लिअे ही खर्च की जानी चाहिये । गायके दूधसे होनेवाली आय गोवशको बचाने और अुसे सुधारनेके लिअे ही खर्च की जानी चाहिये। यदि गो-ब्राह्मण-प्रतिपालन हिन्दू धर्मका अेक विशिष्ट लक्षण हो, तो फिर मन्दिरोके द्वारा केवल ब्राह्मणोकी ही रक्षा क्यो होनी चाहिये ? गायकी भी रक्षा होनी चाहिये। और सारे ब्राह्मणोकी रक्षा भी कहा हो पाती है ? केवल अिने-गिने पडोकी ही बन आती है। कभी कभी लगडी-लूली गायोकी रक्षा भी हो जाती है । लेकिन अिसमें हिन्दू समाजकी शोभा नही है। मन्दिरोके द्वारा गोवशकी और ब्राह्मणोकी यानी धर्म-सेवकोकी आदर्श रूपमें रक्षा होनी चाहिये।

५

अच्छे और बडे मन्दिरोके साथ छोटी या बडी अच्छी अथवा नामकी अेक सस्कृत पाठशाला कभी-कभी चलाअी जाती है। अुसमें सस्कृत भाषाकी और धर्मकी शिक्षा दी जाती है। हमारे समाजमें धर्मशास्त्रका अर्थ बहुत सकुचित हो गया है। अिस पाठशालामे मन्दिरोके सेवक पुजारियोका (अथवा पुरोहितोका) कर्मकाण्ड और वेदान्तियोका तर्क और ज्ञानकाण्ड अथवा वेदान्त ही मुख्यत पढाया जाता है। किन्तु धर्मशास्त्र तो जीवन-व्यापी सार्वभौम शास्त्र है। अुसमे प्राचीन पुराणोके साथ आधुनिक अितिहास भी होना चाहिये और आचारशास्त्रके साथ आरोग्य-शास्त्र तथा सपत्तिशास्त्र भी होना चाहिये। सामाजिक धर्ममें अर्थशास्त्रका भी समावेश होता है । मन्दिरोको दानकी जरूरत हमेशा रहती है । तब मन्दिर दाताओकी आर्थिक सुस्थितिका विचार क्यो न करे ? जैसे रेलवेको तीसरे दरजेके मुसाफिरोसे ही अच्छी आय होती है, अुसी तरह मन्दिरोको गरीब लोगोके दानसे ही अच्छी आय होती है। और जिस प्रकार रेलवे तीसरे दरजेके मुसाफिरोको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखती है, अुसी प्रकार हमारे मन्दिरोमे गरीबोकी भक्तिकी कोअी कदर नही होती।

यह देखना प्रत्येक मन्दिरका कर्तव्य है कि अुसके द्वारा गरीब लोगोको राष्ट्रव्यापी अुद्योगोकी अच्छी शिक्षा मिले। मन्दिरके धनमे से गरीब कारीगरोको अपने धन्धेके लिअे अुधार पैसा मिलना चाहिये। सोने-चादीके पाट लाकर या गहने बनवा कर अुन्हे तालेमें बन्द रखना सामाजिक द्रोह है। मन्दिरके धनको शहरोके बैंकोमे रखना या प्रॉमिसरी नोटोके रूपमे रखना भी लोकहितका द्रोह करना है। मन्दिरका धन लोकनाथ परमेश्वरका है। गरीब लोगोकी सहायतामें ही अुसका अुपयोग होना चाहिये। गावके किसान सरकारी लगान या साहूकारके कर्जके हमेशा देनदार बने रहते हैं। यदि चरित्रवान किसानोको जरूरतके समय मन्दिरकी ओरसे अुधार पैसा मिलता रहे, तो वे सर्वनाशसे बच सकते हैं। कुछ प्राचीन मन्दिरोके पास कल्पनातीत धन है। यह सारा पैसा लोकहितमे ही लगना चाहिये। स्वार्थी दलो और साधुओने कही कही यह प्रचार शुरू किया है कि मन्दिरका पैसा समाज-हितके कार्योमें खर्च करना पाप है। यह गलतफहमी दूर की जानी चाहिये। जिस प्रकार मन्दिरके खेत और बाग लगान पर दूसरोको दिये जाते है, अुसी प्रकार मन्दिरका पैसा भी मन्दिरके भक्तोको मिलना चाहिये। नही तो मन्दिरोको लूटनेका जमाना आनेवाला ही है।

१६-१-'३०

५४

देव-मन्दिर: सार्वजनिक जीवनका केन्द्र

१

प्यासोको पानी पिलाना, भूखोको और खास करके ब्राह्मणोको भोजन कराना, गायोको घास खिलाना, अनाथ ब्राह्मणोके पुत्रोको यज्ञोपवीत कराना, अुनके लडके-लडकियोकी शादी कराना, तीर्थयात्रा करना, कुअे खुदवाना, धर्मशालायें और मन्दिर बधवाना — ये सब पुराने जमानेके दानधर्मके मुख्य प्रकार है। अतिथि-सत्कार करना, विद्याध्ययन करनेवाले ब्राह्मण बटुकोको मधुकरी (भिक्षा) देना और पशुओको गोग्रास अथवा काकवलि जैसा कुछ देना — ये क्रियायें नित्यकर्ममे मानी जाती थी। अिसलिअे अिन्हे दानधर्म जैसा बडा नाम नही दिया जाता था।

आजके जमानेमें अिन सब बातो पर लोगोकी श्रद्धा कुछ घट गअी है। दानके ये प्रकार बिलकुल बन्द तो नही हुअे हैं, परन्तु पुराने जमानेके विचारोमे पले-पुसे लोगोसे ही अिन प्रकारोको थोडा-बहुत प्रोत्साहन मिलता है। समाजका

मार्गदर्शन करनेवाले नेताओंने दानधर्मको समाज-सेवाका रूप प्रदान किया है। शिक्षण-सस्थाये खोलना, दवाखाने चलाना, आरोग्य-भवन बनवाना, वाचनालय खोलना, छात्रवृत्तिया देना, पुस्तके लिखवाना, प्रचार और आन्दोलनके लिअे पैसा अेकत्र करना और जातिकी अुन्नतिके लिअे बोर्डिंग हाअुस चलाना — यह आजकी नअी रीति है। समाजकी अुन्नतिकी कल्पना और चर्चा ज्यो ज्यो आगे बढेगी त्यो त्यो नये क्षेत्र भी मिलेंगे। अुदाहरणके लिअे, अिस विचारको फैलाना आवश्यक है कि मद्य-निषेध तथा सामाजिक स्वच्छताके लिअे दानधर्म करनेसे आजके जमानेमे अधिकसे अधिक पुण्य प्राप्त होगा।

परन्तु यह विचार करना आवश्यक है कि हमारी पुरानी सस्थाओंको, जिनकी अुपयोगिताके बारेमें रूढिवादी समाजको जरा भी शका नही है, पुनर्जीवन प्रदान किया जा सकता है या नही। दस वर्ष पहले सनातनी लोगोंमें अैसी अेक हवा चल पडी थी कि नये मन्दिर बनवानेकी अपेक्षा पुरानोका जीर्णोद्धार करनेमे अधिक पुण्य है। काशीके प्रसिद्ध तैलग स्वामीने काशीमे यही मुख्य कार्य किया था। जिन पुराने मन्दिरोको अच्छी आय होती हो अुन मन्दिरोके प्रबन्धको सुधार कर मन्दिरोका पैसा समाज-सेवामे खर्च किया जाना चाहिये, सुधारका यह अेक महत्त्वका विचार भी सारे देशमें खूब फैला था। सिक्ख लोगोंका गुरुद्वारा-प्रबन्धक आन्दोलन अिसका अेक नया रूप है। दक्षिणके कुछ मन्दिरोकी आय छोटे-बडे देशीराज्योकी आयके बराबर होती है। दक्षिणमें मन्दिरोकी आयकी व्यवस्थासे सम्बन्ध रखनेवाला अेक कानून भी पास हुआ है। मन्दिरोके व्यवस्थापक अपने पदके कारण (ex-officio) सत्पुरुषोके रूपमे पूजे जाते है। अुन लोगोका चरित्र कैसा होता है, यह तो वे ही जाने। प्रत्येक मन्दिरके व्यवस्थापकके बारेमें कोअी न कोअी किवदन्ती, अफवाह समाजमें चलती ही रहती है। सभी बातें निराधार नही हो सकती। और सभी बाते सच है यह विश्वास भी कैसे दिलाया जाय? कुछ मन्दिरोके व्यवस्थापक-ब्रह्मचारियोंके मैंने बाल-बच्चे देखे है। शिष्टाचारको अेक ओर रखकर अुनसे पूछा जाय तो वे निर्लज्ज होकर कहते है 'ब्रह्मचारीको आप हमारा अुपनाम समझिये।' अैसे लोगोकी सख्या अधिक तो नही है, लेकिन समाजमे अुनका निभ सकना ही दु खकी बात है।

यह सच है कि मन्दिरोके अनेक व्यवस्थापक अपढ, पिछडे हुअे, डरपोक और लोभी होते है, और योग्यताकी अपेक्षा अधिक सत्ता अर्थात् पैसेका अुपयोग करनेकी सुविधा होनेके कारण जितने भी शक्तिशाली सत्ताधारी या दुर्जन अिनके सपर्कमें आते है अुन सबकी खुशामद करना, अुन्हे प्रसन्न रखना, अिन व्यवस्थापकोका जीवन-धर्म बन जाता है। सरकारी अधिकारियोंकी तो अुन्हे दिन-रात खुशामद करनी पडती है। 'राजा विष्णुका अवतार है और राजाके साथ अुसके

छोटे-बडे अधिकारी भी आ जाते है।' पत्थरके विष्णुकी अपेक्षा अिस जीते-जागते विष्णुकी या अिन काल-भैरवोकी अुपासना अुपासकोके लिअे प्रत्यक्ष फल देनेवाली सिद्ध होती है। कुछ मन्दिरोकी ओरसे पुजारी ब्राह्मणोके सिवा बाजे बजानेवालो, नृत्यनारियो आदि तरह तरहके गुणीजनोको भी वार्षिक वृत्ति (सालियाना) मिलती है। वहा धर्मके नाम पर सब-कुछ चलता है। अैसी सस्थाओका सुधार अग्रेजोके राज्यमें असाध्य नही तो दु साध्य अवश्य है। मन्दिरोके सम्बन्धमें अैसे अनुभवके बाद कौन धर्मनिष्ठ या नीतिवान देशप्रेमी अैसा होगा, जो अुसी ढगके नये मन्दिरोकी स्थापनासे प्रसन्न होगा?

अिस सबके बावजूद अस्पृश्यता-निवारणके सम्बन्धमें नये मन्दिर स्थापित करनेकी बात हमारे लोगोको सूझी है। अत्यज, भील आदि पिछडी हुअी जातियोंको धर्मज्ञान और धर्मके अनुकूल शिक्षा देना जरूरी है। अुन्हे शुभ सस्कारोकी तालीम मिले, यह भी अुतना ही जरूरी है। पिछडी हुअी जातियोको मन्दिरोमे, अुत्सवोमें तथा पूजा, अर्चा आदि बाह्य विधियोमे अूची जातियोसे जरा भी कम रस नही होता। अैसा भी कहा जा सकता है कि पिछडे हुअे लोगोको अुत्स-वादि बाह्य प्रकारोकी आवश्यकता अूची जातिके लोगोसे अधिक होती है। अिस सारी वस्तुस्थितिका विचार करने पर लगता है कि अुनके लिअे मन्दिर बनवाना जरूरी है। परन्तु हमारा नया आन्दोलन, नूतन प्रेरणा, शुद्ध हिन्दू धर्म-विषयक हमारा आदर्श और भविष्यके हमारे स्वप्न — अिन सबको दृष्टिमे रख कर अिन नये मन्दिरोकी रचना, व्यवस्था, पूजाविधि, अन्य प्रथाये, त्योहार आदिका विचारपूर्वक तथा अुपयुक्त रूपमें निर्णय किया जाना चाहिये। अेक बार परम्परा बन गअी कि फिर अुसे बदलना मुश्किल होगा। आदि-सस्थापकोमें विचारका जो बीज होगा, वही आगे चल कर फलका रूप लेगा।

किसी मन्दिरके आसपास अितनी सारी चीजें जुडी हुअी होती हैं, और हम चाहे तो मन्दिरोके द्वारा धर्मसेवाका बहुत बडा कार्य कर सकते हैं। अिस-लिअे अिन नये मन्दिरोके बारेमें खूब सार्वजनिक चर्चा होनी चाहिये।

अनेक मन्दिरो तथा अुनमें प्रचलित पद्धतियोका आस्तिक बुद्धिसे निरीक्षण करनेके बाद अिस विषयमे जो विचार मुझे सूझे है, अुन्हीको मै यहा प्रस्तुत करना चाहता हू।

२

पहले हम मन्दिरोकी रचनाका विचार करे। हमारे मन्दिरोके सामान्यत तीन विभाग होते है (१) जिस विभागमें मूर्ति होती है वह गर्भगृह, (२) जिसमें कथा-कीर्तन चलता है वह सभा-मडप और (३) अिन दोनोको जोडने-वाला बीचका भाग अतराल। मन्दिर यदि बडा हो तो अुसके आसपास बडा

आगन होता है । सामने दीपस्तभ होता है और आगनके चारो ओर ओसारे होते है। अिनके बाहर कुछ दुकाने तो होती ही है, परन्तु मन्दिरके 'सेवको' के मकान भी पास ही कही बने हुअे होते है।

हिन्दू मन्दिरोमे बडीसे बडी कठिनाअी यह होती है कि जितने लोग मन्दिरका लाभ अुठाते है अुनकी तुलनामे मन्दिर सदा ही छोटा होता है। मन्दिरका स्थापत्य मजबूत होता है, अुस पर अद्भुत कला अुडेली जाती है। खास तौर पर अिटलीसे लाये हुअे सगमरमरके पत्थर अुसमे जडे होते है, नये ढगके पाखानोमे जैसी चमकती चीनी मिट्टीकी तख्तिया (टाअिल्स) लगाअी जाती है वैसी ही तख्तियोसे मदिरकी फर्श और दीवाले सजाअी जाती है। परन्तु मन्दिर तो छोटा ही होता है। पुण्यके लोभी दानशूर लोग सारा पुण्य अपने ही नाम पर लिखे जानेकी आशासे अकेले अपने ही खर्चसे मन्दिर बनवाये तो यही होगा। मन्दिर बनवानेमे मुख्य विचार सुविधाका नही होता। अिसके पीछे प्रेरक वृत्तिया परलोकमे पुण्य और अिस लोकमे कीर्ति अर्जित करनेकी ही होती है। किसी अेक शहरमे दस या बीस मन्दिर होगे, लेकिन दीवाने-आम, सथागार या टाअुन-हॉलकी गरज पूरी करनेवाला अेक भी मन्दिर नही होगा। अब भविष्यमें हम जो मन्दिर बनवायेगे वे छोटे हो या बडे, परन्तु अुनके साथ अितना बडा आगन तो रहेगा ही कि जिसमे गावके सब लोग अेकत्र हो सके। मन्दिरका वैभव बढे और सार्वजनिक जीवन समृद्ध हो, तो बडी परिषदें बैठ सके अैसा खुला एम्फीथियेटर (रगशाला) खडा किया जा सकता है। अिससे भी अधिक जगहकी जरूरत हो तो रगशाला पर छज्जा भी बनवाया जा सकता है। लेकिन प्रत्येक मन्दिरके आसपास विस्तीर्ण और खुली जगह तो होनी ही चाहिये। रास्तेकी दुकानो जितने सकरे मन्दिर बाधनेसे कोअी लाभ नही होगा। अैसे मन्दिर बनवानेकी अिजाजत ही नही मिलनी चाहिये।

दूसरी बात। हमारे पुराने मन्दिरोके गर्भगृह अत्यन्त मजबूत किन्तु बिना प्रकाशवाले और सकरे होते हैं। मूर्तिकी रक्षाकी अपेक्षा मूर्तिके गहनोकी रक्षाके खयालसे ही शायद यह व्यवस्था की गअी होगी। गर्भगृहमे बैठकर मूर्ति पर अभिषेक करनेवाले स्वर्गके अुम्मीदवारको अिहलोकमें दूसरी बार गर्भवासका अनुभव करानेका अुद्देश्य भी अिसमे हो तो कह नही सकते! मूर्तिका अिस प्रकार दम घोटनेसे भाविक लोगोको दर्शनकी बडी असुविधा होती है। भविष्यके मन्दिरोमे मूर्तिका दूरसे दर्शन हो सके अिस खयालसे अेक अूचे चबूतरे पर अुसे खडा करना चाहिये। मूर्तिके आसपास दीवाल तो होनी ही नही चाहिये। मूर्तिके आसपास चार, आठ या अिससे अधिक स्तभो पर ही शिखर बनाया जाय, तो वह सुन्दर दिखाअी देगा और दर्शनके अभिलाषी भक्तोको भी अिससे बडी सुविधा होगी। मूर्ति पर अच्छी तरह प्रकाश पडेगा, फिर तो 'धर्मस्य तत्त्व

निहित गुहायाम्' कहनेका, समय नही आयेगा। अधिकसे अधिक किया तो मूर्तिके पीछे अुसे ढक सके अितनी बडी दीवाल बनाअी जा सकती है। भीडको रोकनेके लिअे चाहे तो मूर्तिके आसपास चार फूट अूचा कठघरा बना दिया जाय। परन्तु अुपयुक्त व्यवस्थामे भीडकी गुजाअिश ही नही रह जायगी। हर आदमीके आगे घुस कर अपने हाथसे मूर्तिकी पूजा करनेकी प्रथाका अत कर दिया जाय, तो भीड होनेका कोअी कारण ही न रह जाय।

मन्दिरके सामने यदि दीपस्तभ बनाना हो तो वह अितना अूचा होना चाहिये कि सारे गावके लिअे पहरेदारकी मीनारका काम दे सके। रातमे मार्ग भूले हुअे लोगोको दिशाका ज्ञान करानेके लिअे दीपस्तभके शिखर पर अेक बडा दीपक सारी रात जलाया जाय, तो कही कही तो यह व्यवस्था अत्यन्त लाभदायी सिद्ध होगी। मन्दिरके आगनमें अेक ओर अेक बडा कुआ अवश्य होना चाहिये। कुअेके आसपास अैसी व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे गावके अनेक लोग और राहगीर वहा स्नान कर सके और कपडे धो सके, और फिर भी वहा कीचड या गन्दगी न हो। जिस प्रकार भोजन करनेके लिअे अनेक लोग अेक स्थान पर जमा होते हैं, या शामको बहुतसे लोग अेकसाथ घूमनेके लिअे जाते हैं, अुसी प्रकार स्नानके लिअे अनेक लोगोके अेक स्थान पर जमा होनेका रिवाज भी डाला जा सकता है। नदी-तट पर अनेक लोग अिकट्ठे तो होते है, परन्तु वहा क्लब जैसा वातावरण नही जमता। मन्दिरको यदि हमे अपने सार्वजनिक जीवनका केन्द्र बनाना हो, तो नगरवासियो अथवा ग्रामवासियोके मन्दिरमे अनेक प्रकारसे और अनेक कारणोसे अेकत्र होनेका रिवाज डालना चाहिये।

१९३१

५५

मूर्तिपूजा

हरअेक समाजको अपनी सस्थाओ और सामाजिक प्रथाओंकी समय समय पर जाच करनी चाहिये और प्राचीनके साथ समभाव रख कर, वर्तमान गति-विधिको अच्छी तरह समझ कर तथा भविष्य पर दृष्टि रख कर अुनमें आवश्यक परिवर्तन कर लेने चाहिये। अव मूर्तिपूजाकी प्रथा अथवा सस्थाकी हर पहलूसे जाच करनेका समय आ गया है। यहा अेक अैसे सामान्य जनके मनमे पैदा होनेवाले कुछ विचार दिये जाते है, जो न तो मूर्तिपूजाका विरोव करता है और न मूर्तिपूजाके विपयमे आज अधिक अुत्साह रखता है।

मै मानता हू कि मूर्तिपूजा धर्म-साधनाका आवश्यक अग नही है। अिसके साथ मै यह भी मानता हू कि हमारे देशमे जिस प्रकारसे मूर्तिपूजा होती है अुसमें मूर्ति-विध्वसकोंके कथनानुसार अनैतिकता भी नही है। मूर्तिपूजाका आश्रय मनुष्यके चित्तके लिअे आवश्यक नही है, और फिर भी यदि वह मूर्तिपूजाका आश्रय ले, तो अुसमे शरमाने जैसी कोअी वात नही है। मूर्तिपूजाके द्वारा मोक्षके निकट आनेकी वातमे विश्वास नही होता, फिर भी अितना सच है कि मूर्ति-पूजाके द्वारा, और विशेषत मन्दिरोकी स्थापनाके द्वारा, हमने अपनी सस्कृतिको वहुत वडा वेग दिया है, अपने समाजका सगठन किया है, अपने धार्मिक साहित्य, सगीत, कला तथा अुत्सवोका विकास किया है और किसी हद तक सारी जनतामें सर्वोदयकी दिशामें ले जानेवाले सस्कार फैलानेकी सुविधा खडी की है। हमारी प्रजाकी रसिकता, सस्कारिता और धार्मिकताको प्रकट करनेके लिअे मन्दिरोका वहुत वडा अुपयोग हुआ है। अत हमारे मन्दिर जो हमारी भक्तिके भाजन वन गये है, वह सर्वथा अुचित ही है। किन्तु अिसका यह अर्थ नही कि मूर्तिपूजा और मन्दिरोकी सस्थामें कोअी मौलिक परिवर्तन किया ही नही जा सकता।

जीवित समाज चाहे तो आगे-पीछेका पूरा विचार करके अपने धर्ममे और धार्मिक सस्थाओमें — समाजमें और प्रचलित सामाजिक रूढियोंमें — आवश्यक परिवर्तन करनेका अुसे सदा ही अधिकार है। अैसा समझ कर ही यह लेख अनेक वर्ष पहले लिखा गया था। आज भी मेरे अिस मतमे कोअी परिवर्तन नही हुआ है। हमारे मन्दिरोके विषयमे अिससे पहले मैने अनेक लेख लिखे है। सौराष्ट्र-के वरतेज गावमें हरिजनोके लिअे मन्दिरकी स्थापना हुअी तव अुसमें मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा मेरे हाथो ही हुअी थी। अुस समय मैंने जो भाषण दिया था अुसमें मैंने मूर्तिपूजाकी सभी पहलुओसे मीमासा की थी। अिस विषयमें आदरके साथ

ठोस विचार करना जरूरी है। कोअी मनुष्य मूर्तिपूजाका समर्थन करता है या विरोध करता है, केवल अितना ही देखकर घबरा जाना या डर जाना आजके जमानेके लिअे और हमारे हितकी दृष्टिसे भी ठीक नही है।

सच पूछा जाय तो हिन्दू धर्ममे न तो मूर्तिपूजाका आग्रह है और न अुसका विरोध है। अिस प्रश्नका बहुत महत्त्व नही है कि महाप्रयत्न करने पर भी वेदोमें मूर्तिपूजाका अुल्लेख खोजा जा सकता है या नही। महाभारतमें मन्दिरका कही अुल्लेख नही है, यह सिद्ध करनेकी भी जरूरत नही है। हमारे आचार-धर्मका सारा आधार श्रौतसूत्रो तथा गृह्यसूत्रो पर है। अुन्हीसे स्मृतियोका विस्तार हुआ है। मनुष्य बिलकुल जड बन जाय अिस हद तक स्मृति-साहित्यमें आचार-धर्मका ब्योरेवार विस्तार किया गया है। लेकिन अुसमें मूर्तिपूजा, देव-मन्दिर आदिकी झझट बिलकुल नही है। अिसलिअे यद्यपि हिन्दू धर्म मूर्तिपूजा-का विरोधी नही है, फिर भी अिस विषयमे दो मत नही हो सकते कि 'हिन्दू धर्मके मूलमें मूर्तिपूजा नही है।' तब फिर मूल हिन्दू धर्मका प्रधान अग तो वह मानी ही कैसे जा सकती है? तो यह मूर्तिपूजा हिन्दू धर्ममे आअी कहासे?

मूर्तिपूजा और मूर्ति-निर्माणके बीच हमे भेद करना चाहिये। मूर्तिया तो हमारे देशमें परापूर्वसे अर्थात् प्रागैतिहासिक कालसे बनती रही होगी। मोहे-जो-दडोमें जो मिट्टीकी मूर्तिया मिली है अुनमे से अेकके बारेमें यह अनुमान किया गया है कि वह पुजारीकी होगी और दूसरी दो छोटी मूर्तियोके विचित्र शिरो-वेष्टनके आधार पर यह कल्पना की गअी है कि वे कृषि-देवताकी होगी। ये मूर्तिया भी मिट्टीकी ही है। पशु-पक्षियोकी मूर्तिया तो अनेक तरहकी वहा मिली है। परन्तु यह कहना मुश्किल है कि अिन सबका अुपयोग पूजाके साधनके रूपमे होता था या नही। जिन मूर्तियोको कृषि-देवताकी मूर्तिया माना गया है, वे शायद नौकरानियोकी मूर्तिया भी हो सकती है; क्योकि अुनका शिरोवेष्टन अैसा लगता है मानो अुनके सिर पर दोनो ओर दो टोकरे कावरकी तरह रखे गये हो।

प्रश्न यह नही है कि ये मूर्तिया कहासे पैदा हुअी है, परन्तु यह है कि पूजाके साधनके रूपमें मूर्तिया हमारे देशमे कहासे आअी अथवा अिस रूपमे अुनका अुपयोग कबसे होने लगा?

कुछ लोग तो मानते है कि बौद्धो और जैनोने अिस देशमे मूर्तिपूजाका आरभ किया। पहले प्राचीन बौद्ध मूर्तिकलामें स्वय बुद्धकी मूर्ति नहीं बनाअी जाती थी। अेक घोडा बनाया जाता था, जिस पर जीन तो कसी रहती थी लेकिन सवार नही होता था, और अुसके आसपास भक्तोका मेला दिखाया जाता थो। अिससे मान लिया जाता था कि घोडे पर बुद्ध भगवान विराजमान है। अुस समय बुद्ध भगवानको मूर्तिके द्वारा व्यक्त न करनेकी मर्यादाका पालन किया जाता होगा।

कुछ बौद्ध अैसा कहते है कि पहले हममे मूर्तिपूजा थी ही नही। यह तो तन्त्रमार्गकी छूत है। तान्त्रिकोके असरसे महायान पथका जन्म हुआ और अुसके बाद परलोकके सुख-दु खके चित्र और विमान लोगोको दिखाकर अुनकी श्रद्धा-को जाग्रत करने और दृढ बनानेके प्रयत्न होने लगे। मूर्तिपूजाका यह सम्प्रदाय अुसी समयसे दिखाअी देता है। अधिक सभावना अिस बातकी है कि मूर्तिपूजा हमारे यहा ग्रीससे आअी होगी। पत्थरकी खुदाअीकी कला यवन (आयोनिया—ग्रीस) देशसे बाल्हिक देशमे होती हुअी भारतमें पहुची है। कला-रसिक, सस्कारी तथा अुत्सव-प्रिय आर्योको — फिर वे वेदधर्मी हो, जैनधर्मी हो या बौद्धधर्मी हो — सुन्दर सुन्दर मूर्तिया, अुनकी पूजा, अुत्सव, रथयात्रा, अूचे मन्दिर और अुनमें चलनेवाले भोग ये सब पसद आ गये होगे। महाभारत-कालके अन्तमे यज्ञकी प्रथा निश्चित रूपमे शिथिल पड गअी थी। अुसके बदलेमे लोगोको कल्पनाके लिअे और अुत्साहके लिअे कोअी भोजन चाहिये था। अिसलिअे मूर्तिपूजा अुन्हे अनुकूल लगी होगी। किसी राज्यको दृढ और सुस्थिर बनानेके तीन मुख्य अुपाय होते हे (१) सैनिक बलसे लोगोको दबाना, (२) शिक्षा या प्रचार द्वारा लोगोके हृदयो अथवा भावनाओ पर अधिकार करना, और (३) जनताकी चित्तवृत्ति पर रग चढानेवाले अुत्सवो, 'समाजो', यात्राओ आदिका आयोजन करके लोगोकी खुशामद करना। मुसलमान भारतमें आये अुससे पहले जो अनेक जातिया बाहरसे आकर भारतमे बस गअी, अुन्होने यहाका धर्म स्वीकार किया, यहाके धार्मिकोको प्रोत्साहन दिया, यहाकी भाषा बोलना शुरू किया और सब तरहसे वे यहीके बन गये। अुसके बाद तो अिन बाहरसे आकर बसे हुअे लोगोकी भली-बुरी कल्पनाये, मान्यताये और रूढिया भी हमारे समाजमे प्रचलित हुअे बिना कैसे रह सकती थी? अिस प्रकार हिन्दू धर्म गगा नदीके प्रवाहके समान अत्यन्त विशाल हो गया। लेकिन अुसमे कूडा-करकट भी आ गया। यहा हमारा कहनेका मतलब यह नही कि मूल वैदिक धर्म अत्यन्त शुद्ध था, अुसमे किसी भी प्रकारका मैल या मिश्रण नही था। परन्तु मूल धर्म समाजकी ही तरह अेकरूप, सुसम्बद्ध और प्राणवान था, जब कि बादका मिला-जुला धर्म नि सदेह अव्यवस्थित, शिथिल और मेदस्वी बन गया था। 'नया मुल्ला पाच बार बाग देता है' — अिस कहावतके अनुसार ये बाहरसे आये हुअे राजा और जन-समुदाय देशी लोगोकी रूढियो तथा भावनाओका शायद अधिक कट्टरतासे पालन करते थे और विविध अुत्सवो तथा मन्दिरोको प्रचलित करके अपना परायापन मिटानेका प्रयत्न करते थे। जो भी हो, परन्तु अितना तो निर्विवाद है कि हिन्दू समाज और हिन्दू धर्ममें मूर्तिपूजाकी जडें खूब गहरी जम गअी है।

कहावत है कि आदमी जमीन-जागीरके लिअे सगे भाअीको भी मार डालता है और अपना धर्म भी छोड देता है। मूर्तिपूजा और मन्दिरोकी स्थापना

कुछ ब्राह्मणोके लिअे जागीर-सी बन गअी। सामान्य लोगोको भी त्याग, तपस्या और चित्तशुद्धिके कठिन धर्मकी अपेक्षा 'देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व' अिस न्यायसे देवोको खिलायें-पिलायेगे तो देव भी हमे खिलायें-पिलायेंगे, अिस प्रकार भोग और मोक्षका समिश्र प्रलोभन दिखानेवाला धर्म अधिक पसद आया, और मदिर तथा मूर्तिपूजा अतमे हिन्दू धर्मके लोकमान्य अग बन गये।

अेक कल्पना अैसी भी है कि आर्योंने मूर्तिपूजा भारतके अनार्यो अथवा जगली लोगोसे धीरे धीरे ग्रहण की होगी। नाथद्वाराके श्रीनाथजीकी डरावनी मूर्ति, पुरीके जगन्नाथजीकी विचित्र मूर्तिया तथा अैसी अन्य मूर्तिया देखकर लगता है कि मूर्तियोके ये प्रकार हमने सौन्दर्योपासक ग्रीस देशसे तो नही ही लिये होगे। हमारे देशके अेक विद्वान यह सिद्ध करनेका प्रयत्न कर रहे है कि मूर्ति-विध्वसक मुसलमान भारतमें आये अुससे पहले — बहुत समय पहले — लिंगपूजा जैसी पार्थिव-पूजा अरबस्तानसे ही भारतमें आअी होनी चाहिये। आजकी मूर्तिपूजा, सभव है, अूपर वर्णन किये गये सभी प्रवाहोमें से निकल कर स्थिर हुअी हो।

सगुण-निर्गुण अुपासना तथा व्यक्त-अव्यक्त गतिके प्रश्न तो बिलकुल अलग और बहुत पुराने है। मूर्तिपूजाकी स्थापनासे लोगोको लगा कि यही सगुण अुपासना है। और कर्मकाड, तत्रमार्ग, भक्ति आदि भावना-प्रधान तथा कला-प्रचुर मार्गोंको लगा कि मूर्तिपूजा अुन्नतिका अेक प्रभावशाली अुपाय जरूर है। अव्यक्त गतिकी अपेक्षा व्यक्त गति कम कष्टकारक हो सकती है। हम यह भी स्वीकार करे कि निर्गुण अुपासनाकी अपेक्षा सगुण अुपासना अधिक अर्थपूर्ण और सतोपकारक है। यह सच है कि प्राकृत, सामान्य जनोके लिअे व्यक्त और सगुण अुपासना ही ठीक है। किन्तु अिससे यह सिद्ध नही होता कि अज्ञानी, अबोध और अधविश्वासी लोगोके लिअे मूर्तिपूजामे खतरा नही है। सामान्य लोग यथासभव अुदार-चरित सतो और सत्पुरुषोकी सेवा-शुश्रूषा करे और अुनके सत्सग द्वारा धर्मबोध ग्रहण करे, यह सगुण अुपासनाका अेक अच्छा प्रकार है। अीश्वर परम पिता है, माता है, स्वामी है, पति है, प्रेमपात्र है, मित्र है, गुरु है, आचार्य है — अिस प्रकार किसी भी अेक या अनेक सम्बन्धोकी कल्पना करके और अीश्वरके न्यायी, दयामय, कल्याणकारी, ज्ञानदायी, क्षमावान आदि अनेक सद्गुणोका ध्यान धर कर अीश्वरकी भक्ति करना ही सच्ची व्यक्त-गति है, सगुण अुपासनाका मुख्य अर्थ भी यही है। मुसलमान, सिक्ख, प्रार्थना-समाजी, प्रोटेस्टेन्ट अीसाअी वगैरा सब मूर्तिका आलबन लिये बिना अिसी ढगसे सगुण अुपासना करते है। प्राकृत लोगोके लिअे यही अुचित है।

सच पूछा जाय तो मूर्तिपूजा जड और अधविश्वासी लोगोके लिअे नही, परन्तु विशिष्ट सस्कार पाये हुअे तथा तत्त्वज्ञानमे आगे बढे हुअे कला-रसिक, कर्मपरायण लोगोके लिअे ही अुपयोगी हो सकती है। अीश्वर सर्वत्र है, अिस तत्त्वका

सच्चा रहस्य जो लोग समझ सकते हैं, केवल अुन्हीके लिअे मूर्तिपूजा धार्मिकताका विकास करनेका अेक निर्दोष साधन हो सकती है। फिर भी मूर्तिपूजा अिसका सर्वश्रेष्ठ साधन तो मानी ही नही जा सकती। कहा जाता है कि मूर्तिपूजा जड बुद्धिके लोगोके लिअे ही है, परन्तु जड समाज मूर्तिपूजाके रहस्यको नही समझ सकता। जड मनुष्यकी दृष्टिमे तो मूर्ति अेक बडे भूतकी तरह हैं। मूर्तिके साथ अुसके मनमे केवल भय ही अुत्पन्न हो सकता है और अुसकी पूजा बलवानकी शरणमे जाकर बच जानेका अेक अुपाय ही होती है। अैसे लोगोके लिअे मूर्तिपूजा निर्भयता तथा स्वतत्रताकी विनाशक है। भीतरसे पोली लकडीकी बडी मूर्ति बनाकर अुसके हाथमें रखा हुआ भोग अुस हाथके पीछे गुप्त रूपसे बधी हुअी रस्सीको खीचकर मूर्तिके मुहमे गिरा दिया जाता है -- अिस बातको क्या हम नही जानते? भारतके बाहर मूर्तिपूजाने अवर्णनीय अत्याचारोको प्रोत्साहन दिया है और भारतमे मूर्तिपूजाने पिछडी हुअी जातियोके लिअे अगणित अधविश्वासोको जन्म दिया है। जिन लोगोको तत्त्वज्ञानकी शिक्षा प्राप्त हुअी है, अुन्होने बेशक मूर्तिपूजासे बहुत लाभ अुठाया है। परन्तु अैसे लोगोमे जो लोग शुद्ध आत्मार्थी अर्थात् मोक्षार्थी थे, वे तुरन्त मूर्तिपूजासे अूपर अुठ कर आगे बढ गये। मूर्तिपूजाका बचाव करते हुअे अेक बार स्वामी विवेकानन्दने कहा था 'मूर्तिपूजासे यदि रामकृष्ण परमहस प्राप्त होते हो, तो मूर्तिपूजा दीर्घायु हो!' पुजारी रामकृष्ण परमहसका मूल धन्धा ही मूर्तिपूजाका था, परन्तु अतमे वे भी अुससे बाहर निकल गये थे। फूल अपने झाड पर ही अीश्वरको अर्पित हैं, अुन्हे तोडकर मूर्तिके सिर पर क्यो चढाया जाय --- अैसा रामकृष्ण परमहस कहते थे और भावावेगमें आ जाने पर मूर्तिकी पूजा करनेके बदले वे अपनी ही पूजा करने लग जाते थे। अुन्होने मूर्तिपूजाको अत तक छोडा नही था, परन्तु आगे जाकर वे मूर्तिपूजाके सच्चे स्वरूपको समझ गये थे।

अत ध्यानपूर्वक जाच करनेसे मालूम होगा कि मूर्तिपूजा बिलकुल जड लोगोके लिअे हितकर नही है, और अत्यन्त सस्कारी तथा गभीर लोगोके लिअे वह आवश्यक नही है। जिन्हे मूर्तिपूजाकी आदत हो गअी है अुन्हें मूर्तिपूजाको छोडना हो, तो अिसके लिअे बीचकी सीढी है मानस-पूजा। हमारे साधु-सतोने मूर्तिपूजाका प्राय सीधा विरोध नही किया, परन्तु पूजाके बदले अुन्होने भजनको ही प्रधानता दी।

अीसाअी धर्मने अनेक देवोको आग्रहपूर्वक छोड़कर अेक देवकी स्थापना की, तब सामान्य लोगोने अनेक सतोकी पूजा शुरू कर दी, क्योकि अनेकता अुनके मनसे निकली नही थी। अिसी प्रकार अेकेश्वरी धर्मका आग्रह रखनेवाले अिस्लामी अरबस्तानमें और टर्कीमे भी पवित्र स्थान, पवित्र कबरे, कुरानके मत्रोका अुच्चारण और अुनसे होनेवाले चमत्कार आदि पूजाके अनेक प्रकार अुत्पन्न हो गये।

सच पूछा जाय तो धर्म असलमे शास्त्रोके और धर्मगुरुओके आदेशो पर आधार नही रखता। धर्म शुद्ध सात्त्विक भावनाओ पर, शुद्ध बुद्धि पर, भले-बुरेका विवेक करनेवाली विवेचक शक्ति पर तथा पवित्र पुरुषोके अनुभव पर आधार रखता है। धर्म अेक जीवन्त वस्तु है। शास्त्रो तथा ग्रन्थोके शब्दोको प्रमाण मान कर बैठ जाना ही जड पूजा या बुतपरस्ती है। हृदयके भीतरसे परमात्माको और अुसकी दी हुअी जीवित धर्मवृत्तिको हटा कर अुनके स्थान पर शास्त्रो, ग्रन्थो और पुराने रीति-रिवाजोको बैठाना धर्मकी घोर अवगणना करना है।

हमे यह ध्यानमें रखना चाहिये कि समाज जब अपने बल पर भीतरसे अर्थात् स्वेच्छासे, आतरिक प्रेरणासे प्रगति नही करता तब अुसे बाहरी दबावके कारण लाचार होकर परिवर्तन करने पडते हैं। अतमे जो होना है वह तो हो ही जाता है। लेकिन अनिच्छासे कोअी काम करनेसे जो विकृति अुत्पन्न होती है, अुसका असर लम्बे समय तक बना रहता है। अीश्वरकी मूर्ति बनानेसे और अुसकी षोडशोपचार पूजा करनेसे मानवकी प्रौढ बुद्धिका शायद अपमान होता होगा, परन्तु अिससे अीश्वरका अपमान होनेकी बात किसीके गले नही अुतरती। पहली बात तो यह है कि अीश्वरका मान-अपमान मनुष्यके हाथमें है ही नही। मनुष्यने अपने स्वभावके आधार पर ही अीश्वरको 'जेलस गॉड' अर्थात् 'अीर्ष्यालु देव' बना दिया है। अीर्ष्यालु पति, अीर्ष्यालु राजा, अीर्ष्यालु गुरु और अीर्ष्यालु देव — ये सब अेक ही वृत्तिके परिपाक हैं। अीश्वर अेक है, फिर भी अुसके अनेक गुणो और विभूतियोके सम्बन्धमें मानवने अनेक देवोकी कल्पना कर ली है। अिसलिअे अेक अीश्वरके सिवा बाकी सब देवी-देवता काल्पनिक है। अितने देवोको देखकर परमात्माको चिढ क्यो आने लगी? अीश्वर जानता है कि भूलसे ही क्यो न हो, लेकिन ये लोग पूजा तो अन्तमें मेरी ही करते हैं। क्या अीश्वर यह नही जानता कि मनुष्य-जाति कितनी अपूर्ण है, अुसकी जरूरतें क्या है और अुसे सतोष कैसे मिलता है? हृदयमें बसकर हृदयको प्रेरित करनेवाला अन्तर्यामी क्या मनुष्यके हृदयके भावोको नही जान सकता?

जिस प्रकार मूर्तिपूजाके लाभ हैं अुसी प्रकार अुसके कुछ नुकसान भी हो सकते है। अिन नुकसानोमें अेक बडा नुकसान है धर्म-रहस्यको समझनेमें मूर्तिपूजासे अुत्पन्न होनेवाली बाधा। जड पार्थिव पदार्थकी मूर्ति बनानेके बाद हम यह माननेकी गलती करते है कि अन्य पदार्थोकी अपेक्षा अुसमें अधिक शक्ति है, यह गलती हमेशा हमारे मार्गमे बाधक बनती है। मनुष्यकी भावना अेक जगह स्थिर होती है और दूसरी जगह स्थिर नही होती, यह स्वभावगत भेद है। परन्तु अिसे वस्तुगत भेद मानना अथवा अैसे भ्रमको प्रोत्साहन देना वाछनीय नही है।

मनुष्यमे भोग भोगनेकी, कलाका आनद लूटनेकी, अुत्सव मनानेकी औ
समूहमें अेकत्र होकर मौज मारनेकी वृत्ति होती है। यह वृत्ति अेकाअेक नष्ट
नही की जा सकती। किसी विशेष दृष्टिसे अिन सब वृत्तियोको मारनेकी अपेक्ष
जान-बूझ कर विशिष्ट समयमें अिन्हे सुधारने और व्यवस्थित बनानेमे ही अिनके
बुरे स्वरूपसे बचा जा सकता है। अिसीलिअे हिन्दू समाजके प्राचीन नेताओने
धर्मका और सार्वत्रिक वासनाओका सम्बन्ध जोड दिया था। अेक ओर अिससे
लाभ हुआ। भोग, कला, अुत्सव आदिमे भी धार्मिक वृत्तिका प्रवेश हो, यह
कोअी मामूली प्रगति नही है। लेकिन अिसी बातका दूसरा पहलू यह है कि
अिस प्रगतिके साथ धर्ममें — धर्म-सम्बन्धी विचारोमे, धार्मिक आदर्शोमें भोगादि
मलिन वस्तुअें घुस गअी। अिसे कौन हितकारी मान सकता है? शहदमे पानी
डालनेसे पानीका स्वाद तो सुधरता है, किन्तु अुतनी ही हद तक शहदका स्वाद
बिगड जाता है या अुतर जाता है। वैसी ही यह धर्म और भोगादिके सम्बन्धकी
बात है। धर्मका प्रचार बढानेके लिअे, धर्मको लोकप्रिय बनानेके लिअे, प्राचीन
लोगोने जो अुपाय अपनाये, अुन्हीके कारण अुन लोगोको किसी हद तक धर्मको
शिथिल भी बनाना पडा। बेशक, अिसका यह परिणाम हुआ कि बहुतसे अैसे
लोग, जो अन्य किसी प्रकारसे धर्मके प्रभावमे न आते, आसानीसे अुसके प्रभावमें
आ गये। परन्तु अिस बातसे अिनकार नही किया जा सकता कि अिसके फल
स्वरूप धर्मकी गति तथा धर्मका तेज कुछ मद पड़ गया। प्रत्येक धार्मिक वस्तुके
प्रति मनुष्यके हृदयमें श्रद्धा और भक्ति तो रहती ही है। अिसलिअे जो चीज
किसी भी कारणसे अेक बार धर्ममे घुस जाती है अुसकी जडें जीवनमें अितनी
गहरी पैठ जाती हैं कि अधर्मकी पोषक होनेका विश्वास हो जाने पर भी अुसे
हटाना कठिन हो जाता है। प्राणियोका बलिदान, देवदासियोकी प्रथा, पूजामें
ताबूल आदिका अुपयोग, अस्पृश्यता, प्रतिनिधिके द्वारा पाप-क्षालन और पुण्य-प्राप्ति
भूत-प्रेतोका पूजन, द्रव्योको जला कर किया जानेवाला यज्ञ आदि कितनी ही
घातक और भ्रमोत्पादक बातें धर्ममें घुस जानेके कारण ही आज तक टिकी हुअी
है और अभी भी हमारी प्रगतिमें बाधा पहुचाती रहती है। मूर्तिपूजाको भी
यह बात लागू होती है। रामकृष्ण परमहंस शराब नही पीते थे, परन्तु पूजामें
अुपयोग की गअी शराब यदि प्रसादके रूपमें अुन्हे दी जाती, तो वे अुस शराबमें
अेक अगुली डालकर अुसका छोटासा छीटा मुहमें अुडाते या शराबमे अगुली
डालकर माथे पर अुसका तिलक कर लेते थे। अुन्होने मास खाना छोड दिया
अुसके बाद कोअी अुन्हे प्रसादका मास देता, तो अुसे सिर पर चढाकर वे अेक
ओर रख देते थे।

कितनी ही हानिकारक बातें मूर्तिपूजाके द्वारा अपनी प्रतिष्ठा और आयु
बढाती चली जाती है। भोगमें धार्मिकताको स्थान देकर सयम अुत्पन्न करनेके

प्रयत्नसे भोग ही अधिक दृढ हुआ है। अेक ओर मूर्तिपूजा द्वारा यदि कल्पना-शक्ति — रसवृत्ति — को तालीम मिली, तो दूसरी ओर अिन्ही बातोकी प्रगति पर अकुश लग गया।

नदीके प्रवाहमें कोअी बास बाध रखनेसे जिस तरह कितना ही कूडा-कचरा और काअी अुसके आसपास लिपट कर पडी रहती है, अुसी तरह मूर्तिपूजाके आसपास कितने ही अधविश्वास और सामाजिक बुराइया टिकी हुअी हैं। हमारे मन्दिर सामाजिक तो हैं, परन्तु सार्वजनिक नही हैं। अिस कारणसे बहुतसी सामाजिक सम्पत्ति व्यक्तिगत बन जाती है। नतीजा यह है कि या तो अिस सम्पत्तिका दुरुपयोग होता है या अुसका कोअी अुपयोग ही नही होता। नामधारी राजाके मन्त्रियोमें जो दोष आ जाते हैं वे सब दोष देवस्थानोमें भी आ जाते हैं।

परन्तु यह तो मैंने केवल हानिका ही पहलू बताया। अिसके लाभ भी अनेक हैं। कुल मिलाकर लाभ अधिक है या हानि अधिक है, अिसकी जाच की जानी चाहिये।

१९३०

५६

नये मन्दिर

नये जमानेके हम लोग मन्दिरोका अुपयोग पहलेके लोगोके जितना नही करते। मन्दिरोमें जाना बहुतोको लगभग निकम्मा काम मालूम होता है। किसी विशेष अुत्सवके अवसर पर जाना पडे तो बात अलग है। वर्ना हमारी भावना यह हो गअी है कि मन्दिर केवल अशिक्षित रूढिवादियो, बूढियो, विधवाओ और दक्षिणाके लोभी पडे-पुजारियोके लिअे ही हैं। किसी मन्दिरकी मूर्ति विशेष सुन्दर हो अथवा विशिष्ट शृगार धारण करती हो, तो अुसकी मोहकताको देखनेके लिअे जरूर हमारा मन ललचा सकता है। किन्तु दर्शनके लिअे अिकट्ठे हुअे असस्कारी लोग अपने कोलाहलके कारण कही मोहकता और काव्यमयताको टिकने दें तब न! मदिरमें पुरोहित, पडे और भिखारी हमें अेक मिनटकी भी शाति नही लेने देते। मूर्तिका ध्यान धरनेके लिअे अेक क्षण हम खडे रहें अुतनेमें तो 'चरणामृत लो और दक्षिणा दो' का अुनका तकाजा शुरू हो जाता हैं।

कुछ मन्दिरोके देव जन्मसे श्रीमत राजाओंके समान होते हैं। राजाओके जितने भी भोग-विलास और व्यसन होते हैं, वे सब अिन देवोको मिलने चाहिये। अेक मन्दिरमें तो मैंने वेश्याओको मन्दिरकी सीढियोकी पावचप्पी करते देखा है। अिन देवोके अत पुरमें अनेक देविया भी होती हैं और राजाओकी तरह अिन

देवोके देवियोसे मिलनेके दिन भी निश्चित किये हुअे होते हैं। भक्त लोग जिस दिन अीश्वरके समान होंगे वह शुभ दिन होगा। परन्तु तब तक तो अीश्वरको अपने भक्तोंके समान ही बनना पड़ रहा है। अीर्ष्यालु प्रजाके देव भी अीर्ष्यालु ही होते हैं। राजाओकी निरकुशताकी आदी बनी हुअी प्रजाके देव भी पलमें कृपालु बन जाते है और पलमें क्रूर बन जाते है। हमारे कुछ देव शीघ्रकोपी है, तो कुछ रुधिर-प्रिय है। और अुनका यह स्वभाव अतमें हमारी पूजाविधियोंमे प्रकट होता है।

हमारे धनिक लोग जिस प्रकार अर्जित सपत्तिको पीढी-दर-पीढी बनाये रखनेके लिअे अुसका स्थावर जमीनमे रूपातर कर देते हैं, अुसी प्रकार जिसे भी पूजाकी कोअी नअी विधि सूझती है वह अुसे शास्त्रकी आज्ञाका रूप देकर चिरतन बना देता है। हर मन्दिरकी पूजाकी प्रणाली अलग होती है, परन्तु अेक बार वह चली कि फिर अुसमें कोअी परिवर्तन नही हो सकता। सरकारकी जबरदस्ती या शकराचार्यके समान महापुरुषोंकी जबरदस्तीके कारण कोअी परिवर्तन हो जाय तो भले हो जाय।

हमारे मन्दिरोकी सम्पत्ति और अुसका होनेवाला अुपयोग किसी भी सज्जनको बेचैन बना सकते हैं। फिर भी यह आशा लगभग व्यर्थ मालूम होती है कि अुस सपत्तिकी व्यवस्थाकी गहरी जाच करके अुसका कोअी सदुपयोग किया जा सकता है। सिक्ख लोगोने अपने मन्दिरोमें सुधार करनेका प्रयत्न किया तब बात खून-खच्चर तक पहुच गअी थी। दक्षिण भारतमें मन्दिरोकी आय पर समाज अथवा सरकारका अधिकार जमानेके लिअे कानून बनानेका आन्दोलन चल रहा है। विदेशी सरकारको महायुद्धके जैसे अवसर पर मन्दिरोकी सम्पत्ति-से वार-बॉन्डके लिअे पैसा मिलता है, अुस समय तक सरकार भी मन्दिरोकी व्यवस्थामे हस्तक्षेप क्यो करे?

'मन्दिरोकी सस्था जडतासे घिरी हुअी है। अुसमे कोअी सुधार नही हो सकता। किसी दिन जीर्ण होकर वह अपने आप नष्ट हो जाय तो बात अलग है।' अैसा माननेवाले अनेक लोग होंगे। लेकिन अभी अभी अमरेली और दाहोद जैसे स्थानो पर समाज-सेवकोने स्वय ही नये मन्दिरोकी स्थापना की है, यह जाननेके बाद तो हमे यही कहना पडता है कि मन्दिरोकी सस्था अभी भी पूरी निरर्थक अथवा कालग्रस्त नही हुअी है।

आज हम अपनी नअी भावनाओका, नअी आध्यात्मिक भूख और नये सामाजिक प्रश्नोका तथा आदर्शोंका विचार करके ही नये मन्दिर बनवायें और अुनके लिअे नये नियम रचें। आजके नये मन्दिर भले ही खिलौनो जैसे हो, अिन मन्दिरोकी स्थापनामे मदद करनेवाले मध्यमवर्गके लोगोमें मन्दिर-सम्बन्धी श्रद्धा और आस्था भले ही शिथिल हो। भले ही अिन मन्दिरोकी स्थापना

अज्ञानी लोगोको आश्वासन देनेके लिअे केवल 'लोक-सग्रह' की नीयतसे ही की जाती हो। लेकिन अगर अिन मन्दिरोके आसपास धार्मिक वुद्धिसे की जानेवाली समाज-सेवाका तप बढे, तो भविष्यमें ये जाग्रत स्थान माने जायगे और हजारो-लाखो लोग अिनसे लाभ अुठायेंगे। अत आजसे ही हमें अिन मन्दिरोकी स्थापना, अिनकी रचना और पूजा-अर्चाकी विधिके बारेमें, भविष्यकी दृष्टि रख-कर, निर्णय कर लेना चाहिये।

हमारे प्राचीन मन्दिर छोटे हो या बडे, मुख्य देवकी मूर्ति तो वहा अधेरेमें ही रहती है। क्या ऋषियोने ही यह गाया नही था कि पुराण-पुरुष 'गुहाया प्रविष्ट' है? अधेरेकी मददसे मूर्तिके बारेमें भय और गूढताका भाव अुत्पन्न होता है, और द्वार पर बैठे हुअे व्यवस्थापक अथवा पुजारी महाराजकी आय निश्चित हो जाती है। अितिहासकी दृष्टिवाला मनुष्य कहेगा कि मूर्तिको अधेरेमें अिसलिअे छिपाकर सुरक्षित रखा जाता है कि कोअी अुसे आसानीसे तोड न डाले, कोअी अुसे चुराकर न ले जाय। सस्कृतिकी स्वाभाविकताका विचार करनेवाले लोग यह भी कहते हैं कि प्रचड गर्मीवाले अिस देशमें मोटे-मोटे पत्थरोसे बने ठडे मन्दिरोके भीतर खूब गहराअीमें बनी आधे अधेरेवाली शीतल कोठरियोमें दोपहरका समय बिताना भगवानके लिअे और भक्तोके लिअे सुखद और शाति-प्रद होता है। अिस कारणसे पूजाके स्थान अैसे ही बनवाये जाते हैं।

जो भी हो, लेकिन अिस बातका ध्यान रखना जरूरी है कि भविष्यके मन्दिर देवोको अधेरेमें न बैठायें। निरकुश बादशाह (और गणजय डिक्टेटर) का दर्शन भले ही कठिन और दुष्प्राप्य हो, किन्तु प्रजा-नायकका तो सबके बीच होना ही शोभा देता है। भविष्यके हमारे मन्दिर चारो ओरसे खुले होने चाहिये। मजबूत स्तभो पर यदि मन्दिरका शिखर बनाया जाय, तो शोभामें और सुरक्षिततामें जरा भी कमी नही आयेगी। अैसे मन्दिरोमें मूर्तिको यदि अूचे चबूतरे पर स्थापित किया जाय और चबूतरेके आसपास काफी जगह छोडकर अेक कठघरा बना दिया जाय, तो मूर्ति भी सुरक्षित रहेगी और अुसका दर्शन भी सरल हो जायेगा। मन्दिरकी रचना अैसी होनी चाहिये कि हजारो लोग दूरसे भी अेकसाथ मूर्तिका दर्शन कर सके। दर्शनके लिअे आनेवाले लोगोकी सख्या अमर्यादित हो, तो कुछ जैन और बौद्ध मन्दिरोकी तरह मन्दिरके मध्यमें चार दिशाओमें देखनेवाली चार मूर्तिया बैठा देनी चाहिये। और मूर्ति यदि अेक ही मुखवाली हो, तो अुसकी रक्षाके लिअे पीछेकी ओर अेक छोटीसी शिला खडी कर देना काफी होगा।

मन्दिर भले ही छोटा हो, किन्तु अुसके आसपास पर्याप्त खुला स्थान तो होना ही चाहिये। हमने अपने कितने ही मन्दिरोको अुनके चारो ओर घनी बस्ती बसाकर बिगाड दिया है। सारी जनताको यदि मन्दिरके चारो ओर खुली

जगह रखना जरूरी लगे, तो वैसी जगह पाना कठिन नही है, कठिन वात तो यात्रियोकी सुविधाके लिअे मन्दिरके चारो ओर छोटे-वडे छप्पर खडे करने-का मोह छोडना है। पहले मन्दिरके आसपास मडप वाधे जाते हैं, फिर धर्म-शालायें वाधी जाती हैं और अुसके वाद किरायेके लोभसे वहा दुकाने खडी कर दी जाती हैं—जिससे मन्दिरका पवित्र वातावरण ही नष्ट हो जाता है। मन्दिरमे या मन्दिरके आसपास जो भी कोअी दीवाल वगैरा वनवाता है, वह अुस दिशामें दर्शनकी सुविधाको रोकनेका पाप करता है।

मन्दिरोके वारेमे वनाने जैसा मुख्य नियम तो नैवेद्य और भोगसे सम्वन्ध रखता है। हिन्दू धर्मको विदेशी लोग 'चूल्हा-धर्म' या 'रसोअी-धर्म' कहते हैं। जहा पकाये हुअे भोजनका सवाल आता है वहा जात-पातके और छुआछूतके सभी सवाल खड़े हो जाते है। अिसमे कोअी शका नही कि हमारे अृषि-मुनियो-ने कद-मूल और फलको ही पवित्र माननेमे वहुत वडी वुद्धिमानी वताअी थी। मन्दिरोमे सूखे या ताजे, कच्चे या पक्के फल ही भोगके रूपमें ले जाये जाय, अैसा नियम वनाना अत्यन्त आवश्यक है। अधिकसे अधिक शक्कर, दूध, मक्खन और दूधसे तैयार होनेवाली ताजी मिठाअिया—अितनी ही वस्तुअें नैवेद्यके लिअे अुचित मानी जाय। हमारा पेट और हमारा स्वाद कृत्रिम हो गया है, अिसलिअे हम अनाजको पका कर और तरह तरहके मसालोसे विगाड कर खाते है। नित्य-तृप्त अीश्वरको अैसा भोजन खिलानेकी क्या जरूरत? वाल्मीकिने कहा है: 'यदन्न पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवता'। मनुष्य जैसा अन्न खाता है वैसा ही अन्न वह अपने देवोको अर्पण करता है। अिस प्रकार अनार्य लोगोके देव और देविया भेड-वकरो और भैंसोका भोग मागने लगे। यदि हम परिशुद्ध हिन्दू धर्मके देवोकी अुपासना करना चाहते हो, तो हमें परम पावन अृषियो द्वारा हविष्य माने गये कद-मूल और फल तथा गरीका नैवेद्य ही देवोके सामने रखना चाहिये। अृषि-पचमीके दिन वैलकी सेवासे अुत्पन्न किया हुआ कुछ भी न खानेका नियम होता है। स्वार्थके कारण हम पशुओ पर जो अत्याचार करते हैं, अुसीका भान यह नियम हमे कराता है। मनुष्य-जाति सदाके लिअे यह निष्पाप आहार खानेवाली वन जाय, यह सत्य-युगके लिअे हमारा अेक स्वप्न है। हमारी पूजाविधि द्वारा अिस आशाको पोषण मिले, तो यह कोअी छोटा लाभ नही है।

अिस प्रकार पूजाविधिमें से 'चूल्हा-धर्म'को हटा देनेके वाद पुराणकारकी यह सलाह स्वीकार करनेमें हमारे लोगोको वहुत आपत्ति नही होगी

कृष्णालयसमीपस्थान् कृष्णसेवार्थमागतान्।
चाडालान्पतितान्म्रात्यान् स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत्॥

"भगवानकी सेवाके लिअे आये हुअे तथा मन्दिरके समीप अेकत्र हुअे चाडालो, पतितो या भ्रष्ट लोगोको हम छुअें, तो भी स्नान करनेकी जरूरत नही है।"

हमने अपनी पूजाविधिमें कर्मकाड और तत्रको आवश्यकतासे अधिक स्थान दे दिया है। पूजामें तो हृदय-धर्मकी अुत्कटता और सादगी होनी चाहिये। मनुष्यके जैसी सारी जरूरतें ओीश्वरकी भी होती है, यह कल्पना करके षोडश अुपचारोका आडबर बढानेकी अपेक्षा यदि हम ॠषियोका यह वचन याद रखे कि नित्य-तृप्त ओीश्वरको किसी वस्तुकी जरूरत नही है और अपनी भक्ति तथा पूजाको हम हृदयको सतोष देनेवाली बनायें, तो बहुतसी झझटोसे बच जायगे। ओीश्वरकी पूजा तो केवल भाव-प्रधान ही होनी चाहिये। रसायनशास्त्रके प्रयोगोकी तरह अथवा वैद्योकी दवा बनानेकी विधियोकी तरह ओीश्वर-पूजाको कर्मकाडी बनानेकी कोओी जरूरत नही। औषधकी भस्म तैयार करनेमें यदि कोओी गलती हो जाय, तो वह जहर बन जाती है, अुसी प्रकार पूजाकी विधिमे जरासी भी गलती होने पर महादेव या माता हमें भस्म कर देगी — अिस तरहका डर बढानेसे सकाम भक्तिमें अुत्कटता भले ही आये, लेकिन यह नही कहा जा सकता कि अुससे धार्मिकता निश्चित रूपसे दृढ होती है। पूजाकी विधि सरल और अुत्कट भक्तिवाली होनी चाहिये।

अैसी पूजा करनेके लिअे किसी विशेष पडे, पुजारी, ब्राह्मण या तपोधन, साधु या मुखियाको रखना जरूरी नही है। पेशेवर पुजारीको पूजाके लिअे रखते ही अुसके पीछे असख्य बुराअिया आयेंगी। यहा हम पुराने मन्दिरोकी बात नही करते। अुन्हे अुनके सारे अटपटे रिवाज जब तक चले तब तक मुबारक हो। किन्तु नये मन्दिरोमें तो हम पूर्णतया शुद्ध रहे! अैसे सभी लोग, जो मूर्ति-पूजाके विरोधी नही है, मन्दिरमें दर्शनके लिअे आ सकते है — फिर वे किसी भी धर्मके अनुयायी क्यो न हो। अुनके लिअे अितना नियम काफी होगा कि वे मन्दिरमे आकर मन्दिरकी मर्यादाका पालन करे। जहा तक पूजाका सवाल है, अुस मन्दिरमे विश्वास रखनेवाले हर हिन्दूको, मान्य की हुअी विधिके अनुसार, पूजा करनेकी छूट होनी चाहिये। पुरुष हो या स्त्री, दोनो स्नान करके और धुले हुअे स्वच्छ कपडे पहन कर (और भूखे पेट) मन्दिरमें पूजा करने जायें। अिसमे जात-पातका कोओी भेद नही होना चाहिये। स्त्री-पुरुषका भी कोओी भेद नही होना चाहिये। जिन लोगोने मिलकर मन्दिरको बनवानेका अुद्योग किया हो, वे सब पूजाकी अपनी बारी बाध ले। जबसे लोगोको पैसेके बल पर मन्दिर बनवाने और चलानेकी सुविधा सूझी तबसे हिन्दू समाजमें आवश्यकतासे अधिक मन्दिर बनने लगे है। और ये मन्दिर भक्तिका पोषण करनेके लिअे नही परन्तु अमुक लोगोकी अुमगको या प्रतिष्ठाकी लालसाको तृप्त करनेके लिअे ही बनवाये जाते

है। जो लोग मन्दिर वनवाये अुन्हे ही मन्दिरका नित्य-नैमित्तिक खर्च अुठाना चाहिये।

दर्शन करानेके लिअे भक्तोसे दक्षिणा लेनेका तो प्रश्न ही नही अुठना चाहिये। दर्शन कर लेनेके वाद किसीकी कुछ देनेकी अिच्छा हो, तो वह लिया जा सकता है, परन्तु इस तरह अिकट्ठा हुआ धन मन्दिरके मालिको, सचालको, पुजारियो (यदि दुर्भाग्यसे पुजारी हो तो) अथवा मन्दिरके देवी-देवताओका नही माना जा सकता। जिस समाजसे यह धन प्राप्त होता है अुसकी भावनाके अनुसार समाज-सेवाके किमी भी योग्य कार्यमें अिस धनका अुपयोग होना चाहिये। लेकिन यह अेक स्वतत्र विपय हुआ। अिसकी चर्चा अलगसे की जानी चाहिये।

हिन्दुओके मन्दिरोमे हजारो या लाखो लोग अेकत्र भले ही होते हो, परन्तु पूजा तो प्राय व्यक्तिगत ही होती है। सामुदायिक अुपासना शायद ही कही देखनेमे आती है। अिस कारणसे सगीतके वदले मन्दिरोमे कोलाहल सुनाअी देता है और कलाका विकास होनेके वजाय कलाकी विकृति ही दिखाअी पडती है। मन्दिर मुख्यत अेक सामाजिक सस्था है। अिन मन्दिरोमें धर्मके सामाजिक स्वरूपके विकासकी अुपेक्षा नही होनी चाहिये। शुद्ध, सात्त्विक, पवित्र और कला-रसिक अग्रणियोको मन्दिरकी सस्थाका सारा तत्र रचना चाहिये। पूजाकी विधि भी अिसका अनुसरण करनेवाली ही होनी चाहिये।

जिस तरह हमने मन्दिरोंमें अुपयोग किये जानेवाले या रखे जानेवाले आहार (नैवेद्य) के विपयमें अूपर स्पष्टता की, अुसी प्रकार पूजामे अथवा मन्दिरमें अुपयोग किये जानेवाले वस्त्रोके वारेमें भी कोअी निश्चित और स्पष्ट नियम होना चाहिये। परमात्मा 'दीनन दुखहरन' है, पतित-पावन है। अुसे राज-विलास या वैभवका शृगार शोभा नही देता। शुद्ध खादीके कपडे ही अुसे शोभा देगे। सिहासन पर वैठे हुअे रामकी अपेक्षा अहल्याका अुद्धार करनेवाले, गुहकको गले लगानेवाले तथा शवरीके वेर चखनेवाले तपस्वी या वनवासी रामकी मूर्ति ही मुझे पूजा अथवा भक्तिके लिअे अधिक अुपयुक्त लगती है।

अिस प्रकार समाजके भविष्य-हितका पोषण करे अैसी मन्दिरोकी रचनाका विचार करनेके वाद अुनका समाजके अैहिक और पारलौकिक कल्याणके लिअे कैसे लाभ अुठाया जाय, अिस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिये।

१५-४-'२८

५७

प्राण-प्रतिष्ठा*

श्री मूलचन्दभाओीका आमत्रण स्वीकार किये सिवा कोओी चारा नही था, अिसलिअे मै आपके बीच आ गया हू। किन्तु राम-मन्दिरमें मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा करनेके पवित्र कार्यमें भाग लेते समय मुझे अनेक प्रकारसे सकोच होता है, घबराहट मालूम होती है। पुण्य प्राप्त करनेके लिअे या भक्ति-अुपासनाका प्रचार करनेके लिअे मन्दिर बनवानेका अुत्साह रखनेवाली दुनियासे हम बहुत दूर हैं। हिन्दू सामाजिक जीवनमें अेक समय मन्दिरोका जो स्थान था वह आज नही रहा है। नये ढगसे शिक्षा पाये हुअे लोगोमे जो पक्के सनातनी है वे मन्दिरो, मूर्तिपूजा आदिका चाहे जितना सैद्धान्तिक बचाव करे, परन्तु अिनके विकासका प्रयत्न कोओी करता हो अैसा मालूम नही होता। समाजकी अग्रगण्य जातियोमें सामाजिक प्रयत्नसे मन्दिर बनवानेका विशेष प्रयास दिखाओी नही देता। मन्दिरोके द्वारा धार्मिक जीवन समृद्ध होता है या नही, अिस विषयमे लोगोकी शका दिनोदिन बढती जा रही है। कुछ मन्दिरोकी व्यवस्था अितनी बुरी है कि वे व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसे ही बन गये है। अितना ही नही, वे मुफ्तकी आयके साधन भी बन गये हैं। और आलोचक तो यहा तक कहते हैं कि कुछ मन्दिरोके अनीतिके धाम बन जानेकी आवाज भी सुनाओी देने लगी है। अैसे समय यह अेक बडा सवाल है कि जो जातिया अभी तक पिछडी हुअी है, जिनकी सरक्षकताका कार्य हमने अहकारसे या जिम्मेदारीके भानसे अपने हाथमें ले रखा है, अुन जातियोको हमें सदेहास्पद दिशामें ले जाना चाहिये या नही? जैसे जैसे मूर्तिपूजा और देव-मन्दिरोकी आलोचना होती है वैसे वैसे अिन दोनोके पीछे रहे भव्य आदर्शको चित्रित करके हम अिनका बचाव करते है। अिस अुच्च और भव्य चित्रको दृष्टिके समक्ष रखते हुअे भी हम दूसरी तरहसे परेशानी महसूस करते है। जिस अुच्च आदर्शके बल पर हम अिन दोनोका औचित्य सिद्ध करते है अुस आदर्शको हमने अपने जीवनमे कुछ अश तक भी सिद्ध किया है? अथवा, और कुछ नही तो क्या अुस आदर्शकी दिशा-मे प्रयाण करनेकी वृत्ति भी हमारे जीवनमें दिखाओी देती है? अिस तरहकी अन्तर्मुखी शका हमें जरूर व्याकुल बना देती है। व्यवहारमें भी हम देखते

---

* सौराष्ट्रके वरतेज नामक गावमें हरिजनोके लिअे बनाये हुअे राम-मन्दिरमें मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा करनेके अवसर पर ता० १०–८–'२९ को दिया गया प्रवचन।

हैं कि वीज वोनेका काम तो सरल है, परन्तु अुस वीजसे जो अकुर फूटता है अुसका पालन-पोषण करनेके लिअे, अुसकी रक्षा करनेके लिअे सारा जीवन निचोड कर रख देना पडता है। हमे मकान वनवानेमें और मन्दिर वनवानेमें भेद करना चाहिये। आज देशमे जव मन्दिरो और मन्दिरोकी व्यवस्थाके वारेमें अितनी आलोचना होती है अुस समय नये मन्दिर वनवानेसे पहले हमें अिस वातकी जाच अवश्य करनी चाहिये कि पुराने मन्दिरोके दोपोको दूर करनेकी कोअी व्यवस्था हमने यहा की है या नही। अैसा हम नही करेगे तो समाजके अुपालभ या अुलाहनेके पात्र वनेगे।

फिर, यह तो हमारे समाजके सवसे छोटे भाअियोके लिअे वनाया हुआ मन्दिर है। अिसके सम्वन्धमें तो हमारी जिम्मेदारी हजार गुनी वढ जाती है। जिस सस्थाको सस्कारी मानी जानेवाली जातिया भी शुद्ध नही रख सकी, अुसे चलानेकी जिम्मेदारी अपने छोटे भाअियोके सिर पर डालनेसे पहले हमें जरूर सोचना चाहिये। दो दिनके अुत्साहके वाद मन्दिरको चलानेके वारेमें लोग लापरवाह या निरुत्साही नही वन जायगे अिसका विश्वास यदि हमने कर लिया हो, समयके प्रभावसे चारो ओर फैल रही नास्तिकता तथा पूर-जीवनके विपयमें वढती जा रही अश्रद्धाके सामने यह मन्दिर टिकेगा अिसका विश्वास यदि हमने कर लिया हो, सामाजिक प्रतिष्ठाके अभावमें आसानीसे फैलनेवाले अनाचारसे यह मन्दिर भ्रष्ट नही होगा अैसा यदि हमारा विश्वास हो गया हो, मन्दिरकी पूजा-अर्चा, अुसकी मरम्मत और अुसके आसपासकी स्थूल तथा नैतिक स्वच्छताके प्रश्नका हल हमने सोच निकाला हो तथा कौमी अथवा राजनीतिक विप्लवसे अिस नये मन्दिरकी रक्षा करनेकी अपनी जिम्मेदारीका हमें पूरा भान हो चुका हो, तो ही हम मन्दिर जैसी धार्मिक सस्था खडी कर सकते हैं। अेक वार मन्दिर वनवानेके वाद वह अखड रूपमें चलता रहना चाहिये। समाजको अुससे लौकिक तथा धार्मिक लाभ मिलना चाहिये, क्योकि वह अेक स्थायी सनातन सस्था है।

अिन सव वातोका विचार करते हुअे अिस समारोहमें भाग लेते समय मनका अस्वस्थ होना स्वाभाविक ही है।

सवसे पहले हम मूर्तिपूजाका ही विचार करे। मूर्तिपूजा हमारे धर्मका आवश्यक अग नही है।

> अुत्तमा सहजावस्था, मध्यमा ध्यानधारणा।
> अधमा तीर्थयात्रा च, मूर्तिपूजाऽधमाधमा॥

मूर्तिपूजा सवसे निकृष्ट है, अैसा प्राचीन वचन भी हमारे यहा है! अिसे हम अेकागी, मताग्रही वचन कहकर अुडा सकते है और चाहे तो तर्क चलाकर यह सिद्ध कर सकते है कि 'न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यश।'

श्रुति-वचन भी मूर्तिपूजाका निषेध नही करता। किन्तु मैत्रेयी अुपनिषद् जैसे प्रधान अुपनिषद्में कहा गया है "पत्थर, लोहे, स्फटिक या मिट्टी जैसी पार्थिव वस्तुकी मूर्ति बनाकर पूजा करनेसे भोग-भोगनेके लिअे वार-वार जन्म लेना पडता है। अिसलिअे सयमी मुमुक्षु पुरुषको अपने हृदयके भीतर ही अतर्यामीकी अर्चना करनी चाहिये। जन्म-मरणके चक्रसे वचना हो तो बाहरी पूजा-अर्चाका त्याग करना ही चाहिये।"* बेशक, यह सीख मुख्यत मुमुक्षु सन्यासियोके लिअे है। परन्तु मोक्ष किसे नही चाहिये? हमारे देशमे अधिकारवाद पर खूब सोचा-विचारा गया है। ज्ञानी, सन्यासी या अैसे अन्य अधिकारी पुरुष भले ही मूर्ति-पूजाका त्याग करे, ध्यान-कुशल लोग भले मानस-पूजा द्वारा ही मूर्तिपूजा कर ले, परन्तु सामान्य लोगोके लिअे तो मूर्तिपूजा ही अेकमात्र आश्रय है। ध्यान, पूजा अथवा सेवाके लिअे कोअी न कोअी आलवन तो अुन्हे चाहिये ही। अिस प्रकारकी दलील हम हमेशा सुनते है।

लेकिन मेरे गले यह दलील कभी अुतरती नही। मै यह मानता हू कि हर कोअी आदमी मूर्तिपूजा नही कर सकता। मूर्तिपूजाके लिअे विशेष अधि-कार प्राप्त करना होता है। मनुष्यके धार्मिक विचार अेक खास अूचाअी तक पहुचे हो, तो ही अुसे मूर्तिपूजासे लाभ होता है। वर्ना मूर्तिपूजा अज्ञान, अधविश्वास तथा अनाचारकी जननी बन जाती है। बादमें धार्मिक पुरुषोको अिनका कडा विरोध करना पडता है। अरबस्तान, सीरिया, खाल्डिया, मिस्र आदि देशोमें अनधिकारी लोगोके बीच चलनेवाली मूर्तिपूजाने कहर ढा दिया था। अिससे अूब कर हजरत अिब्राहीम, मूसा, महम्मद वगैरा खुदापरस्त पैगबरोको अुसका कडा विरोध करना पडा। जो लोग यह नही जानते कि अीश्वर सर्व-व्यापी है, अतर्यामी है, वे मूर्तिपूजासे सच्चा लाभ नही अुठा सकते। अिसके विपरीत, भय अथवा लोभसे अन्यान्य पार्थिव वस्तुओका ध्यान करके वे अधिक भयभीत और लोभी बनेगे और अपने भीतर दासवृत्तिको बढाकर गुलाम बनेगे। जिस समाजमें अीश्वरका विभुत्व दृढतासे स्वीकार किया गया है, जिस समाजकी परम्परा अीश्वरको हृदयके भीतर ही खोजनेकी है, अुस समाजमें मूर्तिपूजाका स्वरूप बदल जाता है, मूर्ति केवल 'पूजा तक मर्यादित रहनेवाला प्रतीक' बन जाती है, अिन्द्रिय-द्वारा अमूर्त तत्त्वका ध्यान करनेका केवल अेक साधन बन जाती है।

हमारे सामनेका गढा हुआ पत्थर है तो पत्थर ही, परन्तु अीश्वरके प्रति अपनी भक्ति प्रकट करनेके लिअे हम अुसमें अीश्वरत्वका आरोपण करते है — अिस बातको समझनेके लिअे विशेष आध्यात्मिक तैयारी, दार्शनिक विकास

* पाषाण-लोह-मणि-मृण्मय-विग्रहेषु पूजा पुनर्जनन-भोगकरी मुमुक्षो।
तस्माद् यति स्वहृदयार्चनमेव कुर्याद्, बाह्यार्चनं परिहरेत् अपुनर्भवाय॥

आवश्यक होता है। अीश्वर जव सर्वत्र विद्यमान है, तो हम यह क्यो माने कि वह अिस पत्थरमें नही है? हमारा हृदय जहा माने वहा अीश्वर है ही, अिस प्रकारका विश्वास या सतोष मनुष्य दूसरी किसी तरह नही बढा सकता।

मेरी यह दृष्टि यदि गलत न हो तो अिससे यह शका जरूर अुठती है कि 'यदि अैसा ही हो तो अग्रगण्य जातिया भले मूर्तिपूजा करे, वेदात-शास्त्र जाननेवाले पडित भले ही पत्थरको स्नान कराये और भोजन खिलायें, परन्तु पिछडी हुअी जातियोको तो हमे अिस कैदमें डालना ही नही चाहिये।' मेरे विचारसे यह तर्क ठीक नही है। हमारे साधु-सतोने सैकडो वर्षो तक दया-वृद्धिसे जो कार्य किया है, अुसका प्रभाव सारे समाज पर पडा है। हमारे ये छोटे भाअी शास्त्रीय चर्चामें अथवा दुनियवी समझदारीमे भले ही हमसे पिछडे हुअे हो, परन्तु यह अनुभव कभी नही हुआ कि अीश्वर-निष्ठा, भक्ति और आत्म-समर्पणके वारेमे वे हमसे पिछडे हुअे हैं। जैसे प्रेमशक्तिको वाहरी शिक्षा-की जरूरत नही होती वैसे श्रद्धाको भी तार्किक कसरतकी जरूरत नही होती। अनुभवी सतोने श्रद्धा दी और हमारे देशकी मुग्ध-हृदय जनताने अुसे आत्म-वृद्धिसे ग्रहण किया।

ये भोलेभाले लोग सर्वोच्च आध्यात्मिक ज्ञानके अधिकारी हो सकते हैं या नही, अैसी शका सतोके मनमें कभी नही अुठी।

तव हमारे देशमें मूर्तिपूजाका क्या स्थान है?

हम यह न माने कि मूर्तिपूजा हर मनुष्यके लिअे जरूरी है। फिर भी सव मनुष्य जाने-अनजाने किसी न किसी ढगसे मूर्तिपूजा करते ही हैं। वहुतेरे लोग कला-रसिक तो होते ही हैं। अिन्द्रियो द्वारा अिन्द्रियातीत वस्तुका आस्वाद भोगना और अिस प्रकार अिन्द्रियोकी विषय-लोलुपताको कम करना अथवा अुच्च दिशामें मोडना — यह मार्ग अनेक लोगोके लिअे वडा अनुकूल होता है। काव्य अथवा सगीतके द्वारा मनुष्य दुनियवी दु खको जो भूल जाता है अुसका कारण यही है। यह कलावृत्ति अनेक लोगोमे अितनी प्रबल होती है कि मूर्तिपूजाके द्वारा वे अनायास अपने हृदयका विकास कर सकते हैं। चक्रको घुमानेके लिअे जैसे वीचमे अेक स्थिर धुरीका होना जरूरी है, राज्यतत्रको सुस्थिर रखनेके लिअे जैसे कुछ प्रजाओको नामके राजाकी जरूरत होती है, सेनाको जैसे अपनी प्रतिष्ठाके प्रतीकके रूपमें झडेकी जरूरत रहती है, वैसे ही मनुष्य-मात्रको अपना आध्यात्मिक प्रेम अुडेलनेके लिअे तथा ध्यानमें अेकाग्र होनेके लिअे मूर्तिकी जरूरत रहती है। कुछ लोग मूर्तिको छोडकर केवल मन्दिरको ही आवश्यक मानते हैं। परन्तु यह तो तफसीलकी वात हुअी। आदरका भाव किसी न किसी आलवनकी खोजमें रहता ही है, फिर वह मूर्ति हो या ग्रन्थ, तालाव हो या नदी, प्रकाश हो या अधकार, पूर्व दिशा हो या पश्चिम दिशा, पूर्वज हो या पूर्वग्रह।

यह आलबन विघ्नरूप न बने, बन्धनकारक न हो, कल्पना और विचारका अवरोधक न बने, शोधको गलत रास्ते न ले जाय और अनुभवको कलुषित न करे, अिसके लिअे समाजको पहलेसे ही हृदयकी शुद्ध शिक्षा-दीक्षा मिलनी चाहिये। यह शिक्षा-दीक्षा हर देशके सत और फकीर जनताको देते आये है और आज भी देते हैं। हृदय द्वारा धार्मिक शिक्षण देनेकी व्यवस्था यदि न हो और खाली मन्दिर ही हो, तो अिसमें कोअी शका नही कि वे शापरूप ही सिद्ध होगे। जिस प्रकार किसी सुयोग्य, अनुभवी और समर्थ मनुष्यके बिना कोअी सस्था नही खोली जा सकती, अुसी प्रकार शुद्ध हृदय और अीश्वर-निष्ठासे कैसी भी परिस्थितियोमें समाजका मार्गदर्शन करनेकी थोडी-बहुत शक्ति रखनेवाला समाज-सेवक न मिले तब तक मन्दिर बनवानेसे हमें क्या लाभ होगा?

मन्दिर सामाजिक शिक्षाका केन्द्र है, धार्मिक सगठनका अेक बडा साधन है तथा जनताके विविध आदर्शोंको जीवित रखनेका अेक माध्यम है। व्यक्तिगत जीवन तथा पारिवारिक जीवनसे परे जितना भी मानव-जीवन है, अुस सारे जीवनका हम चाहे तो अपने मन्दिरो द्वारा विकास कर सकते है।

तब प्रश्न अुठता है कि क्या अिन सारी बातोका विचार करनेके बाद हम मन्दिर बनवानेमें प्रवृत्त हुअे है? अैसा ही होता तो हमने सभी वर्णोंके लिअे समान मन्दिरोकी स्थापना की होती। जैसे अछूतोके लिअे अलग शालायें खोलना और अलग कुअें खुदवाना हमारी लाचारीको प्रकट करता है, अुसी प्रकार अुनके लिअे अलग मन्दिर बनवाना भी अच्छी स्थितिका द्योतक नही है। जिस प्रकार मैं चाहू तो रेलमें अछूतोके डिब्बेमें बैठ सकता हू, चाहू तो अछूतोकी शालामें अपने बालकोको पढने भेज सकता हू या अछूतोका कुआ साफ हो तो अुसका पानी पी सकता हू, अुसी प्रकार मन्दिरोमें श्रद्धा रखनेवाले सब लोगोको अछूतोके मन्दिरमे जानेकी स्वतत्रता है। और अिस स्वतत्रताका लाभ हम सबको लेना चाहिये। यदि हमारा रूढिवादी समाज समयको पहचान कर यह बात स्वीकार न करे, तो कुछ लोगोको यह नियम बनाना पडेगा कि हम पूजा करेंगे तो अछूतोके मन्दिरमें ही करेंगे, दान देंगे तो अछूतोके मन्दिरको ही देंगे और अुत्सव मनायेंगे तो अछूतोके मन्दिरके छत्रके नीचे ही मनायेंगे।

लेकिन मन्दिरोके बारेमें किसी भी तरहका अुत्साह अूची जातियोमें है? आज हम मन्दिरोके द्वारा अपने सामाजिक-धार्मिक जीवनकी शोध बहुत कम करते हैं। आधुनिक ढगसे सोचने-विचारनेवाले लोग अिसके लिअे दूसरे ही केन्द्र खोज रहे है। हम लोगोको अन्तर्मुख होकर अपनी वृत्तियोकी जाच करके देखना चाहिये कि लोक-सग्रहके नाम पर हम कही अिन बाल-जातियोमें अध-विश्वासोको तो नही बढा रहे है? वे लोग हमारा अनुसरण करे अिस खयालसे हम अैसी चीज तो गभीर भावसे अुन लोगोके हाथमे नही सौंप रहे हैं, जो

व्यय हमे खिलौने जैसी मालूम होती है? अथवा अिन लोगोंमें जड जमा कर बैठे हुअे अंधविश्वासोंका ही लाभ अुठाकर अुनकी सेवाके नाम पर हम अुनकी जेबोंसे पैसा अिकट्ठा करनेका साधन तो खडा नही कर रहे है? यह अंतिम अुद्देश्य अीमानदारीसे मनमें रखा जाय, तो भी अिसका परिणाम हितकर तो हो ही नही सकता। मन्दिरका मुख्य अुद्देश्य सामाजिक अुपासनाका, शुद्ध धार्मिकताका विकास करना ही होना चाहिये। यह अुद्देश्य हो तभी अिन जातियोंमें मन्दिरके लिअे कोअी स्थान हो सकता है। वर्ना लौकिक शिक्षणकी संस्था खोलकर धीरजके साथ प्रतीक्षा करना ही हमारे लिअे बेहतर होगा।

और, हम तो आज राम-मन्दिर खोलने जा रहे है। रामचन्द्रके चरित्रमें हिन्दू जीवनके सर्वोच्च आदर्शका कौनसा पहलू हमे नही मिलता? पुत्रकामेष्टि यज्ञकी दिव्य ज्वालासे जिन रामका जन्म हुआ, अुनका संपूर्ण जीवन यदि यज्ञकी आहुतिके समान सिद्ध हो तो अुसमें आश्चर्य कैसा? रामचन्द्र अर्थात् पवित्र आहुति। अिन रामचन्द्रने समस्त आर्य जातिके लिअे, और भविष्यका विचार करे तो सारी दुनियाके लिअे, जीवनका भव्य आदर्श अुपस्थित किया है। यह शबरीके जूठे बेर खानेवाले रामका मन्दिर है। अपनी मित्रतासे, अपने सखाभावसे गुहक जैसे भील राजाको कृतार्थ करनेवाले रामचन्द्रका यह मन्दिर है। जटायुके समान गृध्रराजका श्राद्ध करनेवाले रामचन्द्रका यह मन्दिर है। वानर-राज सुग्रीवके साथ सधि करनेवाले रामचन्द्रका यह मन्दिर है। वानर-यूथ-मुख्य हनुमानको अपना हृदय अर्पण करनेवाले रामचन्द्रका यह मन्दिर है। विजयसे प्राप्त हुअी सम्पत्ति भक्तराज राक्षस विभीषणको प्रसादके रूपमे दे देनेवाले रामचन्द्रका यह मन्दिर है। 'दीनन दुखहरन देव' रामका यह मन्दिर है। अिस मन्दिरमे अूच-नीचका भेद नही होना चाहिये, अशिक्षित और शिक्षितका भेद नही होना चाहिये, द्विज और अंत्यजका भेद तो होना ही नही चाहिये। यहा अमीर और गरीबका भेद नही होना चाहिये, यहा सभी रामभक्त समान भावसे अेकरूप हो जाने चाहिये। और अेक होकर वे अिस मन्दिरमे कैसी प्रेरणा प्राप्त करे? यह प्रजा-रजक राजाका, अेकपत्नी-व्रती पतिका तथा अेकवचनी मर्यादा-पुरुषोत्तमका मन्दिर है। अैसे रामचन्द्रके मन्दिरमें आकर हम अिन सभी अुदात्त गुणोका विकास अपने भीतर करनेके लिअे बंधे हुअे है।

अखड और जाग्रत प्रयत्नके बिना अिस आदर्शको हृदयगम नही किया जा सकता; अिसका विकास नही किया जा सकता। अैसे नये मन्दिरोके साथ हमें बिल्कुल नयी प्रणालिका जोडनी चाहिये। हमारे अंधविश्वास और हमारी पुरानी प्रथाये अिन नये मन्दिरोंमें किसी भी तरह हमारी प्रगतिमे बाधक नही बनने चाहिये। अिन नये मन्दिरोंकी पूजामे पान-सुपारी जैसे व्यसनोंके लिअे कोअी स्थान नही होना चाहिये। भूखा मरनेवाली क्षीणवीर्य प्रजाके राजा रामचन्द्रको

अब छप्पन भोगोको भूल जाना होगा। अेक भी शास्त्र अैसा नही कहता कि मनुष्य जितने मौज-शौक करे वे सब अपने अिष्टदेवसे भी अुसे करवाने चाहिये। हमें पूजा और भक्तिके द्वारा अपना और अपनी जनताका विकास साधना चाहिये। नीचे गिरानेवाले साधनोको धार्मिकताका रूप देनेकी गलती हम न करे।

जहा पूजा होगी वहा विधि तो रहेगी ही। किन्तु विधिके आडबरको बढा कर अुसके विशेषज्ञ 'सेवको' का अेक नया वर्ग हम क्यो खडा करे? अिन 'सेवको' के प्रभुत्व और स्वामित्वसे आज तक क्या हम कम त्रस्त हुअे है? क्या हम जानते नही कि काशी, रामेश्वर, जगन्नाथपुरी, नाथद्वारा, वैद्यनाथ धाम, ज्योतिर्मठ, बदरीनारायण, द्वारका और डाकोर जैसे स्थानोमें भक्तिभावमें डूबे हुअे यात्रियोकी कैसी दुर्दशा होती है? हमारे अिन मन्दिरोमें सबको पूजाका अेकसा अधिकार होना चाहिये। मूर्तिके चरण धोना, पत्र-पुष्प चढाना, खादीका वस्त्र अर्पण करना, धूप-दीप रखना और थोडा फलाहार चढाना — अितनेसे पूजाविधि पूरी हो जानी चाहिये। भक्तको जैसे सूझें वैसे स्तोत्र वह गा सकता है और भगवानकी प्रार्थना कर सकता है। नित्यकी पूजाके लिअे अैसे भक्तोको ही पूजाकी बारी बाधनी चाहिये, जो मन्दिरके आसपास रहते है और मन्दिरके द्वारा अपनी अुन्नति करते है। यदि हम जात-पातके अूच-नीच-भावके झगडोसे बचना चाहते है, तो हम मन्दिरमें पकाये हुअे भोजनका नैवेद्य कभी न रखे। मन्दिरमें हमें सर्वत्र पवित्रताका भाव भर देना चाहिये। परन्तु यदि हम मन्दिरमे छुआछूतकी झझटसे मुक्त नही होगे, तो वहा भ्रातृभावका सामाजिक जीवन खडा करना कठिन होगा। रेशमी कपडे, आभूषण, सोने-चादीके बरतन — छिछले जीवनका यह आडबर प्रभुके मन्दिरमें बिलकुल शोभा नही देता। वहा तो शुद्ध जीवनका सगीत प्रवाहित होना चाहिये। रामका मन्दिर वशिष्ठके आश्रम जैसा होना चाहिये, विश्वामित्रकी यज्ञभूमि जैसा होना चाहिये, शबरीके पवित्र धाम जैसा होना चाहिये। वहा अखड रूपमें विद्याध्ययन चलना चाहिये। वहा लोक-सेवाकी कोअी न कोअी योजना निरन्तर तैयार होनी चाहिये। रामका अिस प्रकारका प्रसाद सपूर्ण समाज-जीवनमे सभी लोगोको प्रतीत होना चाहिये।

आज हम यहा प्राण-प्रतिष्ठाकी विधि करनेके लिअे अेकत्र हुअे है। प्राण-प्रतिष्ठाका अर्थ क्या है? क्या हम पत्थरकी मूर्तिमें प्राण फूक सकते है? क्या हम अपनी ओरसे श्री रामचन्द्रजीको प्रतिष्ठा प्रदान करनेवाले है? प्राण-प्रतिष्ठा हमारे धार्मिक जीवनकी अेक रूढ बनी हुअी विधि है। परमात्मा तो सदा ही सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु पूजाके लिअे हम जिस प्रतिमाको पसद करते है अुसे पूजाके योग्य बनानेके लिअे हम अपने हृदयमें बसे हुअे ओीश्वरका अुसमें आरो-पण करते है। अिसीको कहा जाता है प्राण-प्रतिष्ठा। ओीश्वर यदि कही अधिकसे अधिक प्रत्यक्ष हो तो हमारे लिअे वह अपने शुद्ध हृदयमें ही है। अिस हृदयस्थ

नारायणको, अिस आत्मारामको मूर्तिमे सचरित हुआ मान कर हम मूर्तिमें अुसकी पूजा करे और पूजा समाप्त होनेके पश्चात् वहासे अुसका विसर्जन करके पुन अपने हृदयमे अुसका दर्शन करे, यह हमारे पूर्वजोकी पद्धति है। मन्दिरोमें तो सामाजिक प्राणकी और हमारे सर्वोच्च आध्यात्मिक जीवनकी प्रतिष्ठा करनी होती है। अुस जीवनकी यत्किचित् झाकी तो हमारे पास प्रत्यक्ष होनी ही चाहिये। विधि तो अेक वाह्य चिह्न है। प्राचीन ऋषियो द्वारा वताअी हुअी पद्धतिसे हम यह विधि पूरी कर सकते हैं। अैसी विधि यदि हमे न मिले तो जो भी विधि सूझे अुसीसे हम अपना काम चला सकते हैं। परन्तु सच्ची प्राण-प्रतिष्ठा तो तभी होगी जब समाजका आध्यात्मिक आदर्श निश्चित करके मन्दिरके द्वारा हम अुस आदर्श तक पहुचनेका सकल्प करेगे। हमारे भीतर सच्ची जीवन-व्यापी धर्मनिष्ठा हो, अनन्य भक्ति और अीश्वर-शरणकी भावना हो, 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य' की साधना हो और शुद्ध धार्मिक वृत्तिसे समाज-सेवा करनेकी वात हमें सूझे, तभी अैसी प्राण-प्रतिष्ठा सपन्न हो सकती है।

अिस प्राण-प्रतिष्ठाका अर्थ यह होता है कि हम समाजके प्राणकी स्थापना यहा मदिरमें और मूर्तिमें करते हैं। प्रत्येक व्यक्तिको यह प्रण करना चाहिये कि प्राण भले ही चले जाय परन्तु हमारा मन्दिर अप्रतिष्ठित नही होगा। सोमनाथके मन्दिरके खडहर जिस भूमि पर विखरे हुअे पडे हैं अुस भूमि पर नया मन्दिर वनवानेका प्रारभ करनेसे पहले हमें गभीरतासे सोचना चाहिये कि क्या हमारा सकल्प धार्मिक वैर-द्वेषको शात करनेका है? वाहुवलसे धर्मस्थानोकी रक्षा करनी पडे तो अवश्य की जा सकती है, परन्तु अैसी रक्षासे धर्म तो अपमानित होता ही है। धर्म-विजयको वाहु-विजयकी आशा नही रखनी चाहिये। जव तक हमारा प्रेमभाव मनुष्य-मात्रके हृदय पर विजय प्राप्त नही करता तव तक धर्मकी विजय हुअी अैसा नही कहा जा सकता।

परन्तु यदि हम अैसा मानें कि द्वेष, क्रोध आदि शत्रु हमारे समाजसे वाहर है, तो वह हमारी बहुत वडी भूल होगी। दूसरे धर्मोने हमारे जितने मन्दिरोको तोडा या भ्रष्ट किया, अुनसे अधिक मन्दिरोको हमारे समाजके लोभ, अनास्था, अीर्ष्या, अनाचार आदि महादोषोने जर्जरित किया है। अिस भीतरी आक्रमणसे समाजको वचानेकी हमारी प्रतिज्ञा हो, तो ही हम सच्ची प्राण-प्रतिष्ठा कर सकेगे।

जिस पुण्य-पुरुषके हाथो अिस मन्दिरकी शिलारोपण-विधि सपन्न हुअी है, अुसका अत्यज-सेवाका अुत्साह, धर्मके लिअे मर-मिटनेकी अुसकी तैयारी, प्राणी-मात्रके प्रति अुसके हृदयमें रही दया और मानव-मात्रके प्रति अुसके चित्तमें वसी हुअी अवैर-वुद्धि यदि हमें आदर्श मालूम होती हो, तो ही हम यह प्राण-प्रतिष्ठा करे।

यह मन्दिर मुख्यत अत्यजोके लिअे है। अत्यज ही अिसे चलायेंगे और निभायेंगे। अुन्हीकी अिच्छाको तृप्त करनेके लिअे हमने यह मन्दिर बनवाया है। परन्तु अैसा नया मन्दिर खोल कर हमने अपनी सामाजिक जिम्मेदारीको बढाया है, अितना याद रखनेकी नैतिक जिम्मेदारी तो हम सवर्णोंकी है ही। यही कारण है कि अत्यजोको लक्ष्य करके न बोलते हुअे मै अत्यजोका हाथ पकडनेके लिअे तैयार हुअे लोगोको लक्ष्य करके आज यहा बोला हू। अत्यज तो लम्बे समयके अन्याय-अत्याचारसे अकुलाये हुअे बालक है। अुनके सारे दोषोके लिअे हम लोग ही जिम्मेदार है। हम लोग ही अुनके लिअे अीश्वरके दरबारमें अुत्तर-दायी है। आज तक हमने अुनके स्वाभाविक जीवन-विकासको रोका है, अिसीमें से यह जिम्मेदारी पैदा हुअी है। अिस जिम्मेदारीका स्मरण करके हम प्रभु रामचन्द्रसे प्रार्थना करे 'हे अनाथोके नाथ, हम सभी तेरे सामने बालक है। हम प्रमादी हैं। तुझे पहचाननेके अपने अेकमात्र कर्तव्यको भूलकर हम क्षुद्र वासनाओके पीछे दौडते है और आपसमे लडते-झगडते है। दीन, हीन, पतित होकर भी हम अेक-दूसरेके प्रति अूच-नीचकी भावना रखकर हसीके पात्र बनते है। अेक-दूसरेसे द्वेष करके हम नष्ट-भ्रष्ट हो रहे है। तू हम सबको अेक कर दे। हमारे बीच अेकताकी स्थापना कर। हमें प्रेमका दान दे। हमारे हृदयमें, हमारे समाजमें, हमारी अिस दुनियामें तेरा जय-जयकार हो! भारतमे स्वराज्यकी—धर्मराज्यकी स्थापना हो!'

५८

मूर्तिका जन्म

अेक मूर्तिकार था। वह अपने ध्यानकी मस्तीमें घूमता था। अुसने जगलमें अेक पत्थर देखा। वह था तो दूसरे पत्थरोके जैसा ही; परन्तु जैसे हमें अगूरके भीतरके बीज अुसे प्रकाशके सामने रखते ही दिखाअी देते है अथवा जैसे अेक्स-रे द्वारा हमें अपने शरीरके भीतरकी हड्डिया साफ दिखाअी देती है, वैसे ही अुस मूर्तिकारको पत्थरके भीतर अेक मूर्ति दिखाअी दी। फर्क अितना ही है कि सुन्दर और आकर्षक अगूरके भीतर हमे खुरदरे बीज जैसे-तैसे दिखाअी देते हैं तथा लावण्य और प्रसन्नतासे खिले हुअे मानव-शरीरके भीतर अेक्स-रेकी सहायतासे आखोको डरावना लगनेवाला अस्थि-पजर दिखाअी देता है, क्योकि दोनो जगह हमारी पार्थिव दृष्टि काम करती है, जब कि मूर्तिकारकी पार्थिव आखें तो ब्रह्मदेवके बनाये हुअे पत्थरको ही देखती थी, परन्तु रसेश्वर द्वारा प्रदान की हुअी कल्पनाकी गुप्त दृष्टिसे अुसने अुस खुरदरे पत्थरके भीतर अेक सुन्दर सुडौल

और जीती-जागती मूर्तिको देखा — बस अुसी प्रकार जैसे भगवान रामचन्द्रके चरणोंने शिलामे अहल्याको देखा था। फिर तो पूछना ही क्या? सोनेकी खदान-में, दुर्घटनाके कारण, जब अेकाध मनुष्य दब जाता है तब अुसे बाहर निकालनेके लिअे — अुसका दम घुटनेके पहले ही अुसे जीवित बाहर निकालनेके लिअे — जिस प्रकार बाहरके लोग प्रयत्न और अुतावलीकी पराकाष्ठा कर देते हैं, अुसी प्रकार वह मूर्तिकार मनुष्यो और बैलगाडीकी मददसे तुरन्त अुस पत्थरको अपने घर ले गया। फिर अुसने हाथमे हथौडी और छैनी लेकर अुस मूर्ति पर चढी हुअी पत्थरकी परतोको तोड कर हटानेका प्रयत्न आरभ किया। हथौडीका अेक अेक प्रहार वह जल्दी जल्दी लेकिन दृढता और निश्चित शक्तिसे पत्थर पर करने लगा। कैसा अुसका बल था! और फिर भी कैसी अुसकी कुशलता और कोमलता थी! भीतरकी मूर्तिको जरासी भी चोट कही लगती, तो मूर्तिकारके प्राण सूख जाते थे। वह काम करता गया। पसीनेसे अुसका शरीर तरबतर होता गया। पत्थरकी परतें अेकके बाद अेक टूट कर गिरती गअी — पहले मोटी मोटी परतें, फिर पतली और बारीक। धीरे धीरे मूर्तिका स्वरूप प्रकट होने लगा। डूबते मनुष्यको पानीसे बाहर निकालनेके बाद या सोते मनुष्यको नीदसे जगानेके बाद पहले-पहले जैसे अुसके अग-प्रत्यग आलस्यसे भरे दिखाअी देते हैं और चेहरा व आखें अूघते आदमीके-से लगते हैं अुसी प्रकार मूर्तिका दर्शन होने लगा। कोअी सर्जन जिस प्रकार अपने प्राणोको और अपनी विद्याको, अपनी निष्ठा और अपने ध्यानको, अपनी अगुलियोमे अेकाग्र करके योगयुक्त स्थितिमें रोगीका ऑपरेशन करता है, अुसी प्रकार हमारा वह मूर्तिकार स्वय बनाये हुअे सूक्ष्म औजारोसे मूर्तिको जगाने लगा। मूर्तिकारके अिस कोमल और गुप्त स्पर्शका अनुभव होते ही मूर्ति पहले हसी, फिर अुसने धीरे धीरे अपनी आखें खोली। मूर्तिकारको देखकर अुसने पूर्ण परिचयका द्योतक मद-सा स्मित किया। फिर अपने वस्त्रोको ठीक करके वह बोली "क्यो मूर्तिकार बन्धु, मुझे तुमने किसलिअे बुलाया है? युगोकी मेरी नीदसे तुमने मुझे क्यो जगाया है? तुम मुझसे कैसे कार्यकी आशा रखते हो?"

अपनी ही बनाअी हुअी मूर्तिके समक्ष मूर्तिकार हाथ जोडकर खडा हो गया। अुसने अपना सिर झुकाया और अत्यन्त नम्रतासे भक्तिपूर्ण स्वरमें बोला "क्षमा करना, देवी। यह दुनिया अब अधिक दुःख नही सहन कर सकती। दुःखकी दीक्षासे दिव्य बननेके बजाय यह दुनिया दुःखसे घायल होकर नास्तिक बन रही है। मनुष्यके प्रति मनुष्यका व्यवहार विपरीत हो गया है। मनुष्यको अब प्रसन्नता, बधुता, प्रेम और अुन्नत बननेकी दीक्षा देनी है। परन्तु मुझसे यह कार्य नही हो सकता। अिससे मेरा दम घुटता था, मैं भीतरी ही भीतर कुढता था। परन्तु जगलमें अुस पत्थरके भीतर मुझे तेरा दर्शन हुआ और मुझे

मार्ग मिल गया। मुझे लगा कि यही दीन जनोके अुद्धारका मुहूर्त है, अिसलिअे मैंने तुझे बुलाया है। मैं यहा तेरी स्थापना करूगा। यहा मैं तेरे योग्य अेक मन्दिर बनाअूगा। सारी दुनियाके लोगोको आमत्रण दूगा। वे आकर तेरा दर्शन करेंगे, जिससे अुनके हृदयमें भक्तिका आस्तिक भाव अुदय होगा, अुनके सामने जीवनका रहस्य प्रकट होगा, और अुसके बाद वे मनुष्यको मनुष्यके रूपमे, भाअीके रूपमें, तेरे भक्तके रूपमें, पहचानना सीखेंगे। मेरी प्रार्थना है कि अिस कार्यको अखड रूपमे करनेके लिअे, हे भुवनेश्वरी, तू यही सदा विराजमान रह।"

देवीने प्रसन्न होकर कहा "तथास्तु। परन्तु तुझे अपने लिअे कोअी वरदान मुझसे नही चाहिये?"

"क्यो नही, माता? मुझे अेक वरदान अवश्य चाहिये। तेरा दर्शन करनेके लिअे यहा आनेवाले लोग, तेरा आविष्कार करनेवाले मुझ मूर्तिकारको भूल जाय, मेरा नाम खोजने न बैठे। मैं यही वरदान मागता हू कि मेरे कारण तेरे दर्शनमें, तेरे साक्षात्कारमें कोअी विक्षेप न पडे।"

देवी परेशानीमें पड गअी। अुसके होठ बद हो गये। मानो 'वर ब्रूहि' कहनेका अुसे पश्चात्ताप हो रहा हो। परन्तु तुरन्त पुनः प्रसन्न होकर अुसने कहा "तथास्तु।" अितना कहनेके बाद देवीने मूर्तिकारको अुठाकर अपने हृदयमें समा लिया। वह बोली "अब तू मुझसे भिन्न रह ही नही सकता। मेरे साथका यह अभेद ही तुझे मेरा वरदान है। मैं अिस पत्थरमें आवृत्त थी, लुप्त थी, सुप्त थी। तूने मेरा आविष्कार किया। अब मैं तुझे अपने हृदयके साथ अेकरूपता प्रदान करती हू। तूने मुझे देह दी, मैं तुझे विदेह बनाती हू। लोग मेरे द्वारा तुझे ही देखेंगे। अब मुझमें और तुझमें कोअी भेद रहा ही नही है।"

मूर्तिकारका शरीर वही लुढक गया!

३०–९–'३९

५९

प्रेमके अधिकारी

हम लोग छह भाअी थे। मैं सबसे छोटा था। मेरा जन्म अंतमें हुआ था, अिसलिअे मैं 'अंत्यज' था। अिस कारणसे बचपनमें सभी भाअी मुझ पर प्रेम बरसाते थे। कोअी खानेकी चीज अुनके हाथमें आती, तो सबसे पहले वे मुझे खिलाते थे। चित्रोंकी पुस्तक पर मेरा ही अधिकार होता था। मैं कितना ही गंदा क्यों न होअूं, मेरे माता-पिता और बड़े भाअी मुझे गोदमें लेनेमें हिचकिचाते नहीं थे। मुझे नहलानेका काम कभी नौकरोंको नहीं सौंपा जाता था; यह काम पिताजी स्वयं करते थे। प्रेमके असे मीठे वातावरणमें पल-पुस कर मैं बड़ा हुआ। मुझे स्मरण नहीं है कि बचपनमें मेरी गंदगी और मेरा अज्ञान घरमें किसीके लिअे हानिकारक सिद्ध हुआ हो।

जो स्थिति बचपनमें मेरी थी वही हर बालककी होती है। जो पवित्र नियम परिवारको लागू होता है वही नियम कम या अधिक मात्रामें समाजको भी लागू होना चाहिये। चारों वर्णोंकी चिन्ता रखनेवाले हमारे पूर्वजोंने ढेढ़, भंगी, चमार, महार आदि जातियोंको जो 'अंत्यज' नाम दिया था वह तिरस्कारकी भावनासे तो नहीं ही दिया होगा। 'अंत्यज' प्रेमका शब्द है (जिस प्रकार 'अग्रज' — ब्राह्मण — शब्द आदरका सूचक है)।

हमें सोचना चाहिये कि आज हम अन्त्यजोंके साथ समाजमें कैसा व्यवहार करते हैं। परिवारमें जैसे अच्छीसे अच्छी वस्तु हम अपने छोटे भाअीको देते हैं, अुसी प्रकार क्या हम अन्त्यजोंको सामाजिक लाभ देते हैं? राजा-महाराजाओंके दरबारमें असे असे सुन्दर चित्र सजाये हुअे रहते हैं, जो गरीबोंको देखनेके लिअे भी नहीं मिलते। राजा-महाराजा मिष्टान्न खाते हैं, गरीबोंको मिष्टान्न कहां मिलते हैं? अमीर लोग हमेशा गवैयोंका गान सुनकर अपना चित्त प्रसन्न कर सकते हैं, परन्तु गरीब लोग अुससे सदा ही वंचित रहते हैं। राजाओंके दीवानखानोंमें गुलदस्तोंमें रमणीय पुष्प-रचना की जाती है, लेकिन गरीबोंको अुसकी कल्पना भी नहीं आती। अिस तरह अमीरी हमेशा बहिष्कार-प्रेमी, स्वार्थी होती है, अिसीलिअे अुसे धर्मद्रोही माना गया है। धर्म सबके लिअे होता है। 'विवृतास्त्र वेदा' — वेद सबके लिअे खुले हैं। वेदोंके द्वार किसीके लिअे बन्द नहीं है। जो धर्म सामाजिक संस्कृतिके, समाज-जीवनके सारे लाभ समाजके सभी अंगोंको न दे सके वह धर्म कैसा? अिसीलिअे तो धर्म-मन्दिरोंमें — देव-मन्दिरोंमें अमीर-गरीबका भेद किये बिना सभीको धर्मका प्रसाद दिया जाता

है। चित्रकार लाख रुपये लेकर भी जैसा चित्र राजाके लिअे नही बना देता वैसा चित्र वह भक्तिभावसे देव-मन्दिरको और देवभक्तोको, बिना कुछ लिये ही, अर्पण कर देता है। पडित विष्णु दिगम्बर, जो अुत्तम कोटिके गायक थे, हजार रुपये लिये बिना राज-दरबारमे गाते नही थे, परन्तु वे ही जब हरद्वार जाते थे तो गगाके तट पर बैठकर अपना अुत्तम सगीत गगा मैयाको सुनाते थे और देश-देशातरके असख्य भक्त अुसे मुफ्तमें सुन सकते थे।

दुनियाका सर्वोत्तम कला-कौशल भारतमे तो अुसके मन्दिरोमें ही देखनेमे आता है। धर्मका अुपदेश करनेके लिअे हजारो रुपयेका वेतन लेनेवाला आर्च-बिशप रखनेकी प्रथा हमारे देशमे नही है। धर्मका अुपदेश, पुराणोका श्रवण और नाम-सकीर्तन सभी लोगोके लिअे है। जात-पातके झगडे समाजमें चल सकते है, परन्तु अीश्वरके घर तो सभी मनुष्य समान है। पढरपुरके विट्ठल-मन्दिरमें सब जातियोके लोग जा सकते है। जगन्नाथपुरीमे जातिभेद रखना महा-पाप माना जाता है। बदरीनारायणके प्रसादका भात कोअी अत्यज लेकर आये तो भी ब्राह्मण अुस पर टूट पडता है। यही बताता है कि धर्मगृहमे किसीका निषेध नही है; किसीका बहिष्कार नही है। काशी-विश्वनाथके मन्दिरके द्वार भी सदा सब लोगोके लिअे खुले रहते है।

तब हमारे असख्य मन्दिरोमें अत्यजोके लिअे मनाही क्यो होती है? मन्दिर बनवानेमें जितना पुण्य है अुतना ही पाप अत्यजोको मन्दिरसे बाहर रखनेमे है। दक्षिणमे अेक पुरानी कथा है कि अेक अत्यज भक्त कनकदासको अुडपी क्षेत्रके अेक प्रसिद्ध मन्दिरमे प्रवेश करनेसे रोक दिया गया। अुस सच्चे भक्तने पुजारीसे नम्र प्रार्थना की कि मुझे चाहे जितनी दूर खडा रखिये, लेकिन देवताके दर्शन करने दीजिये। मन्दिरके पुजारी सदा अीश्वरके पुजारी नही होते। अुसने अत्यज भक्तको धिक्कार कर वहासे निकाल दिया। अिस पर वह बेचारा मन्दिरके पीछे जाकर रोने लगा। कहा जाता है कि अुसकी आर्तवाणी सुनकर मन्दिरकी मूर्ति घूम गअी और जिस ओर कनकदास खडा था अुस ओर अुसका मुह हो गया। यह देखकर सब लोग चकित हो गये।

अुस अवसर पर अत्यज भक्तने ब्राह्मण पुजारीसे गिडगिडा कर जो प्रार्थना की, और बादमें मन्दिरकी खिडकीसे भगवानका दर्शन होने पर अुसने जो धन्यता अनुभव की, अुसका भक्तने अेक कन्नड कवितामें बडा सुन्दर चित्रण किया है। मै अुसका अर्थ तो नही समझ पाया, परन्तु अुस कविताका करुण स्वर और भक्तिकी अुत्कटता आज भी मेरे हृदयमे ताजी है।

मअी, १९३९

वार अेक युद्धमे अुन्हे विरक्ति हो गअी। अन्तर्नादने अुनसे कहा "वीरनायक, तू दुनियाकी सारी मायाका त्याग कर दे और अेकतारा तथा भिक्षापात्र हाथमें लेकर दास बन जा!" आत्मवीरोका लक्षण ही यह है कि जीवनमे परिवर्तन करते समय अुन्हे मनके साथ बहुत सघर्ष नही करना पडता। और यदि सघर्ष करना भी पडे तो वे अिस सघर्षमे हारते नही। वीरनायकने घर-बार त्याग दिया और वे यात्राके लिअे निकल पडे। तिरुपति, काची, कलहट्टी आदि स्थानोमें घूमकर वे विजयनगर पहुंचे। अुस समय वहा महान कृष्णदेवराय राज्य करते थे। वहा वीरनायकको अपने गुरु मिल गये। अुन्होने अुनसे मध्व-सप्रदायकी दीक्षा ली और फिर यात्रा आरभ कर दी।

चिदबरम्, श्रीरगम्, मदुरा, रामेश्वर, अनतशयन, कन्याकुमारी, गोकर्ण आदि स्थानोकी यात्रा करते हुअे अनेक प्रकारके कष्ट भोगते भोगते कनकदास अुडपी आ पहुचे। अुडपी कट्टर सनातनी ब्राह्मणोका केन्द्र था। कनकदास जैसे अत्यजको वहा खडा भी कौन रहने देता? अैसी दशामे अुन्हे भिक्षा देनेका तो प्रश्न ही नही अुठता था। अनेक सकट अुठानेके बाद वादिराज स्वामीका ध्यान कनकदासकी ओर गया। अुडपीके मन्दिरकी व्यवस्था अलग अलग आठ मठोके स्वामियोके हाथमें थी। अिनमें से सोडे मठके मुखिया थे वादिराज स्वामी। वे असाधारण विद्वान तथा धर्मशील व्यक्तिके नाते प्रसिद्ध थे। अुन्होने समझ लिया कि कनकदास अुनसे भी बडा भक्त है। मन्दिरकी पूजाके बाद वादिराज स्वामी प्रथाके अनुसार सबको हस्तोदक देते थे और अुसके बाद ही सब ब्राह्मण भोजन करने बैठते थे। यह हस्तोदक प्रतिष्ठाके क्रममे ही सबको मिलता था। कनकदासकी योग्यता जान लेनेके बाद वादिराज स्वामी मन्दिरसे निकल कर सबसे पहले कनकदासके पास जाते थे और अुन्हे हस्तोदक देनेके बाद ही अन्य ब्राह्मणोको देते थे। अिससे ब्राह्मण बहुत चिढ गये। वादिराजने अुनसे कहा "भाअियो, कनकदास मुझसे भी बडा भक्त है। अिसे चरणामृत सबसे पहले न दू तो अधर्म हो।" ब्राह्मणोने अिसका प्रमाण मागा। वादिराज मन्दिरमें गये। वहासे दाहिने हाथकी मुट्ठीको बद करके वे बाहर आये और ब्राह्मणोसे प्रश्न किया: "ब्राह्मणो, मेरे हाथमें क्या है? बताओ।" हर ब्राह्मणने अलग अलग अुत्तर दिया। अतमे कनकदासकी बारी आअी। वे तो भक्तिमे मग्न हो गये। अुनके कठसे गीत फूटा "ये तो वासुदेव परमात्मा हैं।" जैसे जैसे गीत आगे बढता गया वैसे वैसे वादिराजके हाथका बोझ भी बढता गया। वे अुस बोझको सहन नही कर सके। अतमें अुन्होने मुट्ठी खोल दी। अुसमे क्या था? अेक शालिग्राम और तुलसी-पत्र!

वादिराज स्वामीने अेक दिन ब्राह्मणोको अेक अेक केला दिया और कहा "आज अेकादशी है। यह केला तुम अैसे स्थान पर जाकर खाना जहा तुम्हे

कोअी न देख सके।" कनकदासको भी अेक केला दिया गया था। शामको सब लोग अिकट्ठे हुअे। वादिराजने यह जाननेके लिअे सबसे पूछा कि अुनकी आज्ञाका पालन किसने कैसे किया। (हर ब्राह्मणने कहा कहा अेकान्त खोजा, यह हम जानते तो बडा मजा आता)। अकेले कनकदासके हाथमे ही केला जैसेका तैसा था। अुन्होने कहा. "जहा जाअू वही वासुदेव है। अेकात कहा मिल सकता है? अिसलिअे मै केलेको हाथमें रखकर ही बैठा हू।"

अेक दिन कनकदासकी अिच्छा हुअी कि मन्दिरके तालावमे स्नान करके भगवानके दर्शन किये जाय। वादिराज अुस दिन अुडपीमें नही थे। कनकदासकी अिच्छा पूरी करे अैसा दूसरा कोअी व्यक्ति अुडपीमे नही था। जितनी बार वे दर्शन करने गये अुतनी ही बार ब्राह्मणोने अुन्हे बाहर निकाल दिया। अतमें निराश होकर कनकदास मन्दिरके पीछे गये और वहा गीत गाने लगे। अुन्होने हृदयका सारा दुख अपने अिस गीतमें अुडेल दिया। परमात्मासे भक्तका यह दुख सहा नही गया। मूर्तिने अेकाअेक अुन कर्मकाडी ब्राह्मणोसे विमुख होकर अपना मुख पीछेकी ओर घुमा लिया!

यह क्या हो गया? अब क्या किया जाय? किसीको कुछ सूझता ही नही था। वादिराज आये। अुन्होने अिस घटनाके बारेमें जानते ही ब्राह्मणोसे कहा "अरे, तुमने कनकदासका कोअी अपराध किया है, अिसीलिअे भगवान वासुदेवने हमारे आचार-धर्मकी ओर पीठ फेर ली है।" अतमें अुन्होने पीछेकी दीवालमे पत्थरकी अेक जाली बनवाअी और कनकदासके लिअे वासुदेवके दर्शनकी सुविधा कर दी। आज भी वह खिडकी 'कनकदासकी खिडकी' कही जाती है। अुस खिडकीके पास ही कनकदासकी कुटिया है। आज वहा सस्कृतका अेक वर्ग चलता है।

अेक बार रथयात्राके अवसर पर जाने क्यो भगवानका रथ आगे बढता ही नही था। अतमे वादिराजने कहा "मालूम होता है कि कनकके स्पर्शके विना रथ चलने देनेकी भगवानकी अिच्छा नही है।"

धन्य हैं वादिराज स्वामी, जिन्होने अिस बातको समझ लिया कि अत्यजोके स्पर्शके बिना हिन्दू समाजकी गाडी चल नही सकती। आज कर्नाटकमें कट्टरसे कट्टर पुष्टिमार्गी वैष्णव ब्राह्मण भी कनकदासके रचे हुअे भजन गाकर अपना भक्तिरस बढाते हैं और अुन्हे सतके रूपमें स्वीकार करके अुनका चरितामृत गाकर अपनेको पावन हुआ मानते हैं। परन्तु कनकदासके जातिवन्धुओको तो वे तिरस्कार और धिक्कारके पात्र ही मानते है!! हिन्दू धर्मकी रक्षा करनेवाले वादिराज स्वामी प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें यदि अवतरित नही होगे, तो हिन्दू धर्मका रथ चलेगा नही। और परमात्मा हिन्दू समाजसे विमुख ही रहेंगे।

२७-९-'२५

वार अेक युद्धमे अुन्हे विरक्ति हो गअी। अन्तर्नादने अुनसे कहा "वीरनायक, तू दुनियाकी सारी मायाका त्याग कर दे और अेकतारा तथा भिक्षापात्र हाथमें लेकर दास बन जा!" आत्मवीरोका लक्षण ही यह है कि जीवनमें परिवर्तन करते समय अुन्हे मनके साथ वहुत सघर्ष नही करना पडता। और यदि सघर्ष करना भी पडे तो वे अिस सघर्षमें हारते नही। वीरनायकने घर-वार त्याग दिया और वे यात्राके लिअे निकल पडे। तिरुपति, काची, कलहट्टी आदि स्थानोमें घूमकर वे विजयनगर पहुचे। अुस समय वहा महान कृष्णदेवराय राज्य करते थे। वहा वीरनायकको अपने गुरु मिल गये। अुन्होने अुनसे मध्व-सप्रदायकी दीक्षा ली और फिर यात्रा आरभ कर दी।

चिदबरम्, श्रीरगम्, मदुरा, रामेश्वर, अनतशयन, कन्याकुमारी, गोकर्ण आदि स्थानोकी यात्रा करते हुअे अनेक प्रकारके कष्ट भोगते भोगते कनकदास अुडपी आ पहुचे। अुडपी कट्टर सनातनी ब्राह्मणोका केन्द्र था। कनकदास जैसे अत्यजको वहा खडा भी कौन रहने देता? अैसी दशामे अुन्हे भिक्षा देनेका तो प्रश्न ही नही अुठता था। अनेक सकट अुठानेके वाद वादिराज स्वामीका ध्यान कनकदासकी ओर गया। अुडपीके मन्दिरकी व्यवस्था अलग अलग आठ मठोके स्वामियोके हाथमे थी। अिनमें से सोडे मठके मुखिया थे वादिराज स्वामी। वे असाधारण विद्वान तथा धर्मशील व्यक्तिके नाते प्रसिद्ध थे। अुन्होने समझ लिया कि कनकदास अुनसे भी वडा भक्त है। मन्दिरकी पूजाके वाद वादिराज स्वामी प्रथाके अनुसार सबको हस्तोदक देते थे और अुसके वाद ही सव ब्राह्मण भोजन करने वैठते थे। यह हस्तोदक प्रतिष्ठाके क्रममे ही सवको मिलता था। कनकदासकी योग्यता जान लेनेके बाद वादिराज स्वामी मन्दिरसे निकल कर सबसे पहले कनकदासके पास जाते थे और अुन्हे हस्तोदक देनेके बाद ही अन्य ब्राह्मणोको देते थे। अिससे ब्राह्मण बहुत चिढ गये। वादिराजने अुनसे कहा "भाअियो, कनकदास मुझसे भी वडा भक्त है। अिसे चरणामृत सबसे पहले न दू तो अधर्म हो।" ब्राह्मणोने अिसका प्रमाण मागा। वादिराज मन्दिरमें गये। वहासे दाहिने हाथकी मुट्ठीको बद करके वे वाहर आये और ब्राह्मणोसे प्रश्न किया "ब्राह्मणो, मेरे हाथमें क्या है? बताओ।" हर ब्राह्मणने अलग अलग अुत्तर दिया। अतमे कनकदासकी वारी आअी। वे तो भक्तिमें मग्न हो गये। अुनके कठसे गीत फूटा "ये तो वासुदेव परमात्मा हैं।" जैसे जैसे गीत आगे बढता गया वैसे वैसे वादिराजके हाथका बोझ भी बढता गया। वे अुस वोझको सहन नही कर सके। अतमें अुन्होने मुट्ठी खोल दी। अुसमें क्या था? अेक शालिग्राम और तुलसी-पत्र!

वादिराज स्वामीने अेक दिन ब्राह्मणोको अेक अेक केला दिया और कहा 'आज अेकादशी है [illegible]। तुम अैसे स्थान पर जाकर खाना जहा तुम्हे

कोअी न देख सके।" कनकदासको भी अेक केला दिया गया था। शामको सब लोग अिकट्ठे हुअे। वादिराजने यह जाननेके लिअे सबसे पूछा कि अुनकी आज्ञाका पालन किसने कैसे किया। (हर ब्राह्मणने कहा कहा अेकान्त खोजा, यह हम जानते तो बडा मजा आता)। अकेले कनकदासके हाथमे ही केला जैसेका तैसा था। अुन्होने कहा. "जहा जाअू वही वासुदेव है। अेकात कहा मिल सकता है? अिसलिअे मै केलेको हाथमें रखकर ही बैठा हू।"

अेक दिन कनकदासकी अिच्छा हुअी कि मन्दिरके तालावमे स्नान करके भगवानके दर्शन किये जाय। वादिराज अुस दिन अुडपीमें नही थे। कनकदासकी अिच्छा पूरी करे अैसा दूसरा कोअी व्यक्ति अुडपीमें नही था। जितनी बार वे दर्शन करने गये अुतनी ही बार ब्राह्मणोने अुन्हे वाहर निकाल दिया। अतमें निराश होकर कनकदास मन्दिरके पीछे गये और वहा गीत गाने लगे। अुन्होने हृदयका सारा दु ख अपने अिस गीतमे अुडेल दिया। परमात्मासे भक्तका यह दु ख सहा नही गया। मूर्तिने अेकाअेक अुन कर्मकाडी ब्राह्मणोसे विमुख होकर अपना मुख पीछेकी ओर घुमा लिया।

यह क्या हो गया? अव क्या किया जाय? किसीको कुछ सूझता ही नही था। वादिराज आये। अुन्होने अिस घटनाके बारेमें जानते ही ब्राह्मणोसे कहा "अरे, तुमने कनकदासका कोअी अपराध किया है, अिसीलिअे भगवान वासुदेवने हमारे आचार-धर्मकी ओर पीठ फेर ली है।" अतमे अुन्होने पीछेकी दीवालमे पत्थरकी अेक जाली बनवाअी और कनकदासके लिअे वासुदेवके दर्शनकी सुविधा कर दी। आज भी वह खिडकी 'कनकदासकी खिडकी' कही जाती है। अुस खिडकीके पास ही कनकदासकी कुटिया है। आज वहा सस्कृतका अेक वर्ग चलता है।

अेक बार रथयात्राके अवसर पर जाने क्यो भगवानका रथ आगे वढता ही नही था। अतमें वादिराजने कहा "मालूम होता है कि कनकके स्पर्शके विना रथ चलने देनेकी भगवानकी अिच्छा नही है।"

धन्य हैं वादिराज स्वामी, जिन्होने अिस बातको समझ लिया कि अत्यजोके स्पर्शके बिना हिन्दू समाजकी गाडी चल नही सकती। आज कर्नाटकमें कट्टरसे कट्टर पुष्टिमार्गी वैष्णव ब्राह्मण भी कनकदासके रचे हुअे भजन गाकर अपना भक्तिरस वढाते हैं और अुन्हे सतके रूपमें स्वीकार करके अुनका चरितामृत गाकर अपनेको पावन हुआ मानते हैं। परन्तु कनकदासके जातिवन्धुओको तो वे तिरस्कार और धिक्कारके पात्र ही मानते हैं।! हिन्दू धर्मकी रक्षा करनेवाले वादिराज स्वामी प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें यदि अवतरित नही होगे, तो हिन्दू धर्मका रथ चलेगा नही। और परमात्मा हिन्दू समाजसे विमुख ही रहेंगे।

२७-९-'२५

६०

कनकदास

१

कुदरतमें नैतिक नियमोके तथा भौतिक नियमोके बीच सम्बन्ध होना ही चाहिये, अैसी श्रद्धा मनुष्यके हृदयमे है। यह श्रद्धा सब देशोमे होती है और सब कालोमें होती है। प्रज्ञाके अभावमें मनुष्य अिन दोनोका सम्बन्ध विचित्र ढगसे जोडना चाहता है और अुससे अनेक तरहके अधविश्वास पैदा होते है। मनुष्य यदि झूठ बोले और कुछ ही देरमें अुसे ठोकर लगे, तो तुरन्त अुसका यह कहनेका मन हो जाता है "देखा, पापका परिणाम! अभी दुनियामे सत्य जीवित है।" पजाबका लेफ्टिनेन्ट गवर्नर यदि लाला लाजपतरायको देश-निकालेकी सजा देकर ब्रह्मदेशमें भेज दे और यदि थोडे ही दिनो बाद वह गवर्नर मर जाय, तो लोग जरूर कहेगे "जायगा कहा? साधु आदमीको परेशान करना कोअी आसान बात है क्या?" पुराणोमें भी कितने ही पात्र हाथमे जल लेकर कहते है कि "यदि आज तक मै कभी असत्य न बोला होअू, अथवा आज तक मैं पूर्ण ब्रह्मचारी रहा होअू, तो आकाशमें सूर्य रुक जाय अथवा मृत ब्राह्मण जीवित हो जाय।"

हम अितना ही कहेगे कि अिसके पीछेकी श्रद्धा तो सच्ची है, परन्तु प्रज्ञाके साथ अुसका योग नही है।

पश्चिम समुद्रके किनारे मालपे नामक बदरगाहके पास अुडपी नामका अेक वैष्णव-क्षेत्र है। भक्ति-योग-धुरधर श्री मध्वाचार्यके कारण यह स्थान विशेष प्रसिद्ध हो गया है। कोअी व्यापारी द्वारकासे नौकामे कीमती माल भरकर दक्षिणकी ओर जा रहा था। मालपे बन्दरगाहके पास अुसकी नौका आयी और सागरने रौद्र रूप धारण किया। मल्लाहोने जी-तोड प्रयत्न किया, लेकिन बचनेका कोअी रास्ता मिल नही रहा था। समुद्रकी अेक अेक अुत्ताल तरग मानो मौतकी भूखी जीभ बन रही थी। किनारे पर खडे अेक महापुरुषने यह भयकर दृश्य देखा। अुनके हृदयसे कारुण्यकी सरिता बह निकली। अुन्होने अीश्वरसे प्रार्थना की· "प्रभो, अिन अनाथोकी सहायता कर। अिन्हे बचा ले।" अेक क्षणमे समुद्र शात हो गया, मानो किसी वीतराग योगीकी ही मुखमुद्रा अुसने धारण कर ली हो। नौका सही-सलामत किनारे पर आ गयी। लोगोको यह समझनेमें देर नही लगी कि यह अिन महापुरुषकी ही कृपाका फल है। नौकापतिने महापुरुषके चरणोमे प्रणाम करके कहा "महाराज, अिस नौकामे मेरा जो कुछ भी है वह सब आपका ही है। आपके आशीर्वादसे मै फिर व्यापार करूगा और चाहे जितना

धन कमा लूगा। लेकिन अिस बार आपने मुझे जीवन-दान दिया है, अिसलिअे मेरा यह धन स्वीकार करके आप मुझ पर अनुग्रह करे।" नित्य-तृप्त सन्यासीको धनका लोभ कैसे हो सकता है? परन्तु बेचारे सेठको सतुष्ट करना आवश्यक था। अिसलिअे महापुरुषने कहा "तुम्हारी नौकामे यह जो अितना गोपीचन्दन पडा है वह हमे दे दो, तो हमें सतोष होगा। बाकीका तुम्हारा धन तुम्ही ले जाओ। हम तुम्हारा धन लेकर क्या करे?"

अुस गोपीचन्दनकी पीली मिट्टीके ढेरमे दैवयोगसे दो मूर्तिया निकली। स्वामीने अेक मूर्तिकी तो मालपेके किनारे ही स्थापना कर दी और दूसरीकी स्थापना वहासे दो तीन मील दूर अुडपी नामक स्थानमें की। अुडपीके श्रीकृष्णकी यही मूर्ति देखने हम लोग गये थे। मन्दिर वैसे तो काफी छोटा है, परन्तु प्रमाण-बद्ध और सुन्दर है। वहा हमने अेक विचित्र बात देखी। मन्दिरका महाद्वार हमेशा बद रहता है, क्योकि महाद्वारकी ओर भीतरकी मूर्तिकी पीठ है। पीछेकी ओर दीवालमें पत्थरकी अेक जाली लगी हुअी है, अुस जालीमें से ही मूर्तिके दर्शन होते हैं। मन्दिरके भीतर जाना हो तो अुसकी बायी ओर जो दरवाजा है, अुसीसे जाया जा सकता है। हर कोअी मन्दिरके भीतर नही जा सकता। हम लोग भीतर गये थे। लेकिन वहा अैसा घोर अधेरा था और वहाकी हवा अितनी रुधी हुअी थी कि हम पसीनेसे तरवतर हो गये और हमारा दम घुटने लगा, मानो गर्भवासका दूसरा अनुभव कर रहे हो! घबराते ही घबराते हमने प्रार्थना की "हे वैकुठ-नायक, हमें दूसरी बार गर्भवासका अनुभव न हो।" हमारी समझमें यह बात नही आअी कि मूर्तिकी नाक पर सोनेका टुकडा क्यो जडा गया है। काठियावाडकी यह मूर्ति यहा दक्षिणमे कैसे आ गअी, यह प्रश्न हमारे मनमें अुठा। परन्तु मुख्य कुतूहल तो यह था कि मूर्ति महाद्वारसे विमुख क्यो है। जाच करने पर अत्यज साधु कनकदासकी कहानी सुननेमें आअी।

२

सत कवि कनकदास असलमे धारवाड प्रदेशके बाड गावके निवासी थे। अुनका मूल नाम था वीरनायक। वे शिकारीका धन्धा करते थे। अचूक बाण मारकर लक्ष्यको वीधनेमें अुनकी बराबरी कर सकनेवाला कोअी दूसरा आदमी अुनके समयमें नही था। (अुस समय किसने सोचा होगा कि अस्पृश्योका यह सरदार अुपनिषद्में बताअी हुअी

प्रणवो धनु, शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्य; शरवत् तन्मयो भवेत्॥

जैसी दैवी बाणविद्यामे भी प्रवीण हो जायगा?)

वीरनायक चित्रकलदुर्ग (आजका चितलद्रुग) के राजाकी सेनामें सेनापतिके पद पर पहुचे थे। वे सपत्ति और प्रतिष्ठाके स्वामी बन गये थे। किन्तु अेक

वार अेक युद्धमें अुन्हे विरक्ति हो गअी। अन्तर्नादने अुनसे कहा "वीरनायक, तू दुनियाकी सारी मायाका त्याग कर दे और अेकतारा तथा भिक्षापात्र हाथमें लेकर दास वन जा!" आत्मवीरोका लक्षण ही यह है कि जीवनमें परिवर्तन करते समय अुन्हे मनके साथ वहुत सघर्ष नही करना पडता। और यदि सघर्ष करना भी पडे तो वे अिस सघर्षमे हारते नही। वीरनायकने घर-वार त्याग दिया और वे यात्राके लिअे निकल पडे। तिरुपति, काची, कलहट्टी आदि स्थानोंमें घूमकर वे विजयनगर पहुचे। अुस समय वहा महान कृष्णदेवराय राज्य करते थे। वहा वीरनायकको अपने गुरु मिल गये। अुन्होने अुनसे मध्व-सप्रदायकी दीक्षा ली और फिर यात्रा आरभ कर दी।

चिदवरम्, श्रीरगम्, मदुरा, रामेश्वर, अनतशयन, कन्याकुमारी, गोकर्ण आदि स्थानोकी यात्रा करते हुअे अनेक प्रकारके कष्ट भोगते भोगते कनकदास अुडपी आ पहुचे। अुडपी कट्टर सनातनी ब्राह्मणोका केन्द्र था। कनकदास जैसे अत्यजको वहा खडा भी कौन रहने देता? अैसी दशामे अुन्हे भिक्षा देनेका तो प्रश्न ही नही अुठता था। अनेक सकट अुठानेके वाद वादिराज स्वामीका ध्यान कनकदासकी ओर गया। अुडपीके मन्दिरकी व्यवस्था अलग अलग आठ मठोके स्वामियोके हाथमें थी। अिनमे से सोडे मठके मुखिया थे वादिराज स्वामी। वे असाधारण विद्वान तथा धर्मशील व्यक्तिके नाते प्रसिद्ध थे। अुन्होंने समझ लिया कि कनकदास अुनसे भी वडा भक्त है। मन्दिरकी पूजाके वाद वादिराज स्वामी प्रथाके अनुसार सवको हस्तोदक देते थे और अुसके वाद ही सव ब्राह्मण भोजन करने वैठते थे। यह हस्तोदक प्रतिष्ठाके क्रममें ही सवको मिलता था। कनकदासकी योग्यता जान लेनेके वाद वादिराज स्वामी मन्दिरमे निकल कर सवसे पहले कनकदासके पास जाते थे और अुन्हे हस्तोदक देनेके वाद ही अन्य ब्राह्मणोको देते थे। अिससे ब्राह्मण वहुत चिढ गये। वादिराजने अुनसे कहा "भाअियो, कनकदास मुझसे भी वडा भक्त है। अिसे चरणामृत सवसे पहले न दू तो अधर्म हो।" ब्राह्मणोने अिसका प्रमाण मागा। वादिराज मन्दिरमें गये। वहासे दाहिने हाथकी मुट्ठीको वद करके वे वाहर आये और ब्राह्मणोंसे प्रश्न किया. "ब्राह्मणो, मेरे हाथमें क्या है? वताओ।" हर ब्राह्मणने अलग अलग अुत्तर दिया। अतमे कनकदासकी वारी आअी। वे तो भक्तिमें मग्न हो गये। अुनके कठसे गीत फूटा "ये तो वासुदेव परमात्मा हैं।" जैसे जैसे गीत आगे वढता गया वैसे वैसे वादिराजके हाथका वोझ भी वढता गया। वे अुस वोझको सहन नही कर सके। अतमें अुन्होने मुट्ठी खोल दी। अुसमे क्या था? अेक शालिग्राम और तुलसी-पत्र!

वादिराज स्वामीने अेक दिन ब्राह्मणोको अेक अेक केला दिया और कहा "आज अेकादशी है। यह केला तुम अैसे स्थान पर जाकर खाना जहा तुम्हे

कोअी न देख सके।" कनकदासको भी अेक केला दिया गया था। शामको सब लोग अिकट्ठे हुअे। वादिराजने यह जाननेके लिअे सबसे पूछा कि अुनकी आज्ञाका पालन किसने कैसे किया। (हर ब्राह्मणने कहा कहा अेकान्त खोजा, यह हम जानते तो बडा मजा आता)। अकेले कनकदासके हाथमे ही केला जैसेका तैसा था। अुन्होने कहा "जहा जाअू वही वासुदेव है। अेकात कहा मिल सकता है? अिसलिअे मै केलेको हाथमें रखकर ही बैठा हू।"

अेक दिन कनकदासकी अिच्छा हुअी कि मन्दिरके तालाबमें स्नान करके भगवानके दर्शन किये जाय। वादिराज अुस दिन अुडपीमें नही थे। कनकदासकी अिच्छा पूरी करे अैसा दूसरा कोअी व्यक्ति अुडपीमे नही था। जितनी बार वे दर्शन करने गये अुतनी ही बार ब्राह्मणोने अुन्हे बाहर निकाल दिया। अतमें निराश होकर कनकदास मन्दिरके पीछे गये और वहा गीत गाने लगे। अुन्होने हृदयका सारा दुख अपने अिस गीतमें अुडेल दिया। परमात्मासे भक्तका यह दुख सहा नही गया। मूर्तिने अेकाअेक अुन कर्मकाडी ब्राह्मणोसे विमुख होकर अपना मुख पीछेकी ओर घुमा लिया!

यह क्या हो गया? अब क्या किया जाय? किसीको कुछ सूझता ही नही था। वादिराज आये। अुन्होने अिस घटनाके बारेमे जानते ही ब्राह्मणोसे कहा "अरे, तुमने कनकदासका कोअी अपराध किया है, अिसीलिअे भगवान वासुदेवने हमारे आचार-धर्मकी ओर पीठ फेर ली है।" अतमे अुन्होने पीछेकी दीवालमें पत्थरकी अेक जाली बनवाअी और कनकदासके लिअे वासुदेवके दर्शनकी सुविधा कर दी। आज भी वह खिडकी 'कनकदासकी खिडकी' कही जाती है। अुस खिडकीके पास ही कनकदासकी कुटिया है। आज वहा सस्कृतका अेक वर्ग चलता है।

अेक बार रथयात्राके अवसर पर जाने क्यो भगवानका रथ आगे बढता ही नही था। अतमें वादिराजने कहा "मालूम होता है कि कनकके स्पर्शके बिना रथ चलने देनेकी भगवानकी अिच्छा नही है।"

धन्य हैं वादिराज स्वामी, जिन्होने अिस बातको समझ लिया कि अत्यजोके स्पर्शके बिना हिन्दू समाजकी गाडी चल नही सकती। आज कर्नाटकमें कट्टरसे कट्टर पुष्टिमार्गी वैष्णव ब्राह्मण भी कनकदासके रचे हुअे भजन गाकर अपना भक्तिरस बढाते हैं और अुन्हे सतके रूपमें स्वीकार करके अुनका चरितामृत गाकर अपनेको पावन हुआ मानते है। परन्तु कनकदासके जातिबन्धुओको तो वे तिरस्कार और धिक्कारके पात्र ही मानते है!! हिन्दू धर्मकी रक्षा करनेवाले वादिराज स्वामी प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें यदि अवतरित नही होगे, तो हिन्दू धर्मका रथ चलेगा नही। और परमात्मा हिन्दू समाजसे विमुख ही रहेंगे।

२७-९-'२५

६१

भारत-शक्ति

कहा जाता है कि महाभारतके युद्धके आरभमे धर्मराज युधिष्ठिरने प्रतिज्ञा की थी कि "यदि मेरे चार भाअियोमे से अेक भी मारा जायगा, तो अुसी क्षण मै भी अपने प्राण छोड दूगा।" अैसे दृढ प्रेमके कारण ही युद्धमें पाडवोकी रक्षा और विजय हुअी थी।

हिन्दू समाजने अैसी प्रतिज्ञा तो नही की है, फिर भी अुसकी भवितव्यता ही कुछ अिस प्रकारकी है कि अनेक जातियोमे बटे हुअे अुसके चार वर्णोमे से किसी अेक वर्ण अथवा जातिकी अवनति होने पर समस्त हिन्दू जातिका अध-पतन हुअे विना नही रहता। न जाने कितने वर्षोसे हम अपने छोटे भाअियोकी —हरिजनोकी— अवहेलना करते आये है। मानो हमारा प्रेमका झरना ही सूख गया है! वैसे देखे तो भारत कोअी निर्वल राष्ट्र नही है। परन्तु वह अिस वातको भूल गया है कि अुसकी शक्तिका सचय कहा है। जिन्हे भारत पतित कहता है, अुन्ही लोगोके हाथो अुसका अुद्धार होनेवाला है। जिन जातियोको हम जगली कहते है, वे ही जातिया हमारे राष्ट्रका रक्षण करनेवाली है। जिन स्त्रियोको हम अबला कहकर अज्ञान और असहाय दशामें रखते हैं, अुनकी जागृतिसे ही भारतमें जागृतिका सचार होगा। अव भारतको अपनी आखें खोलनी चाहिये और अपनी अकर्मण्यताको त्याग कर अविलम्ब राष्ट्रीय हितके कार्यमे अुत्साहपूर्वक जुट जाना चाहिये।

१९३१

६२

धर्म-विकास

हिन्दू समाजमें सामाजिक दोष दूर करनेकी जिम्मेदारी अृषि-मुनियोंकी और साधु-सतोकी रही है। धर्मनिष्ठ धर्म-सुधारकों द्वारा ही यह कार्य होता आया है; अिसलिअे हिन्दू समाज गलत रास्ते नही गया और जडतासे वह सडा भी नही। जब जब सुधारका यह कार्य शिथिल पडा है तब तब समाज क्षीणप्राण बना है, और बादमें धर्म-सुधारकोंको कठोर तपस्या करके समाजको जाग्रत करना पडा है।

विवाहके नियम जैसे आज है वैसे पहले नही थे। महाभारतमे लिखा है कि अेक समय अैसा था जब समाजमे विवाह-सम्बन्ध बहुत शिथिल थे। अिसके दुष्परिणामोंको देखकर अेक अृषिने आदेश निकाला कि आज तक जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब आगेसे यह शिथिलता बद होती है। वेदकालमे विधवायें नियोग-विधिसे अमुक समयके लिअे अपने देवरसे सम्बन्ध करती थी। वैदिक कालसे चली आयी अिस प्रथाकी सीधे शब्दोमे निन्दा करनेकी हिम्मत तो बादके लोगोंने नही की, परन्तु कलियुगमे यह प्रथा बद होनी ही चाहिये अैसा आग्रह-पूर्वक कहकर अुन लोगोंने अिस प्रथाको बन्द कर दिया। प्राचीन लोग स्वतत्रता-से मदिरा पीते थे। लौकिक रूढिके अनुसार धार्मिक विधियोंमें भी मदिराका अुपयोग किया जाता था। परन्तु मदिराके दुष्परिणामोंको देखनेके बाद अृषि-मुनियोंने मदिराका सपूर्ण निषेध करनेमें सकोच नही किया। अुन्होंने सुरापान-की गिनती पच-महापातकोंमें करके सुरापान बद करा दिया और समाजको सर्वनाशसे बचा लिया। सन्यास-धर्मका दुरुपयोग होते देखकर अेक समयके धार्मिक नेताओंने यह आदेश निकाला था कि कलियुगमे कोअी सन्यास न ले। परन्तु बादमें आद्य शकराचार्यने देखा कि धर्म पर ही अचल रहनेवाले तथा धर्मकी ही सेवा करनेवाले त्यागी वैरागियोंकी परम्परा टूटनेमें समाजका बडा नुकसान है। अत कलिवर्ज्यके प्राचीन आदेशको अेक ओर रखकर शकराचार्यने सन्यास-धर्मकी सस्थाको फिरसे जाग्रत किया और अुसके दस विभाग करके अुसमें आवश्यक विविधता अुत्पन्न की।

जात-पातके कडे नियम हमारे कार्यमें विघ्नरूप हैं, यह देखकर सौम्य प्रकृतिवाले सतोंने चौदहवी सदीसे यह छूट दे दी कि भक्तिमार्गमे जात-पातका कोअी स्थान नही है।

वर्ण-व्यवस्था जन्मके अनुसार मानी जाय अथवा केवल सस्कारो, आजीविका आदि गुणोके आधार पर मानी जाय, अिस बारेमे पहलेसे ही मतभेद चला आया है। जाति जन्मके अनुसार और वर्ण गुण-कर्मके अनुसार — अैसा मत रूढ बना हुआ मालूम होता है। हम यह भी देखते है कि जब धर्मके सस्कार प्रबल होते है तब जातिका प्रामाण्य अुतना महत्त्व नही रखता।

चार आश्रमोमे सबसे अूचा आश्रम कौनसा है, अिसका झगडा भी लम्बे समय तक चला। अतमे धर्मबुद्धिने यह निर्णय दिया कि प्रत्येक आश्रम अपने अपने स्थान पर योग्य और श्रेष्ठ है। आहारके विषयमें भी लम्बे समय तक मतभेद बना रहा। महाभारतमें कदम कदम पर अिसकी चर्चा सामने आती है। यज्ञमे पशुहिंसा की जाय या नही की जाय, अिसका झगडा अितना अधिक चला कि महाभारत-कालीन अेक ॠषिने तो वेदोको धिक्कारनेकी हद तक अपना क्रोध व्यक्त किया है।

अिसी प्रकार स्मृतियोमें भी समय समय पर परिवर्तन होता आया है। लोगोके रीति-रिवाज तय करनेका काम पडितोका और शास्त्रियोका नही रहा, क्योकि वे तो केवल धर्मग्रन्थोका अध्ययन ही करते है, बुद्धिकी कसरत करके अनुमान ही निकालते है। परन्तु जिन्हे धर्मका अनुभव है, धर्मको हृदयसे समझ कर अुसके पालनमे ही जिन्होने जीवनकी सफलता मानी है, अुन सदाचारी, धर्म-परायण, सर्वभूत-हितकारी महात्माओके वचनानुसार स्मृतिया निश्चित की जाय, अैसी प्राचीन परम्परा है। हमारे पास जितनी भी स्मृतिया है अुनके आरभमे ही स्मृतिकारके गुणोका वर्णन किया गया है। वैसे गुणोका अपने भीतर विकास करनेके बाद ही ॠषिगण जमानेको पहचान कर और धर्मके रहस्यको जीवनमें अनुभव करके धर्मकी व्यवस्था करते थे और अुसे बदलते भी थे।

अछूतोकी अस्पृश्यता सामाजिक झगडोका परिणाम है। अुसकी जडको मजबूत बनानेके लिअे किसी दुर्भाग्यपूर्ण क्षणमे लोगोने अुसे धार्मिक अस्पृश्यताके साथ जोड दिया। अुसी दिनसे हम नीचे गिरने लगे। जब समाजका अध पतन बढ जाता है तब धर्मात्मा लोगोका पुण्य-प्रकोप प्रज्वलित हो अुठता है। गत १०० वर्षोमें अनेक धर्म-चिन्तको तथा समाज-सेवकोने अस्पृश्यताकी निन्दा की, परन्तु समाजने अपनी जडताके कारण अुसकी ओर ध्यान नही दिया। हिन्दू धर्ममे कहा गया है कि कोअी भी कार्य कठिन मालूम हो तो तुरन्त तपस्या आरभ करो। मनु भगवानने कहा है

> यद्दुस्तर यद्दुराप यद्दुर्ग यच्च दुष्करम्।
> तत्सर्व तपसा साध्य तपो हि दुरतिक्रमम्॥

आज अुसी परम्पराका अनुसरण करके धर्मप्राण, धर्म-सेवक और धर्मनिष्ठ महात्मा गाधीने अुग्र तप आरभ किया है। अिस तपके फलस्वरूप अस्पृश्यताका

जब कि गाधीजी अिसी वातको व्यवहारकी भाषामे रखकर अिस प्रकार कहते है 'अस्पृश्यताको दफना दो। अूच-नीचकी भावनाको नष्ट कर दो। पाखण्डको अपने पास खडे होनेकी भी जगह न दो।' नौजवान जब 'डाअुन विथ रिलीजन' कहते है तब यह आदेश वे हवामे छोडते है, वे देखते भी नही कि अिस आदेशको पालनेवाला कोअी है या नही। गाधीजी कहते है 'पाखण्डका नाश करनेकी वात हम दूसरोसे कहे अिसके पहले हम स्वय ही अुसका नाश करे। हमारे भीतर जो पाखण्ड हो अुसीको हम पहले दूर करे, क्योकि वह हमारी गोलीकी पहुचके भीतर होगा। अुसके वाद आसपासके पाखण्डका नाश करना भी हमारा ही काम होगा।'

केवल शब्दोके जालमे फसकर नौजवान लोग यदि अैसा मान ले कि गाधीजी और अुनके वीच गहरा समुद्र फैला हुआ है, तो यह दुर्भाग्यकी वात होगी। हम जिसे समाज-हित कहते है अुसीको गाधीजी धर्म कहते है। हम जिसे चरित्रका तेज कहते है अुसीको गाधीजी आत्मवल कहते है। फर्क अितना ही है कि हम लोग जिस वातकी केवल चर्चा करते है अुसे गाधीजी आचरणमें अुतार कर दिखा देते है और स्वय आचरणमें अुतारनेके वाद हमे भी अुस पर आचरण करनेका निमत्रण देते है।

गाधीजीने अपने जमानेके खिलाफ अेक महान सघर्ष छेड दिया है। आजका जमाना युक्ति-प्रयुक्तिसे काम निकलवाना चाहता है। आजके दाव-पेच जाननेवाले चतुर लोग दुनियाको हमेशा यह आशा दिलाते है कि हम कोअी अैसी हिकमत खोज निकालेगे, जिससे हमारा अपना स्वार्थ भी वढती हुअी मात्रामे सिद्ध होता जाय और जन-समाजका भी दिनोदिन अधिक भला होता जाय। अिसीसे धीरे-धीरे समाजमे वेहद सडाव वढती जाती है। निजी जीवनमे क्या और सार्वजनिक जीवनमे क्या, जीवनका आदर्श ही नीचे गिरता जाता है। अैसी स्थितिमे दभी लोग और अुनके गुप्त पाप वढे, तो आश्चर्यकी कोअी वात नही। गाधीजी अिस स्थितिमे लोहा लेकर वीरयुगकी स्थापनाका प्रयास कर रहे है। वे लोगोके मन पर यह वात जमाना चाहते है कि किसी न किसीको तो वलिदान देना ही पडेगा, अिसके विना लोग अूचे नही अुठ सकेंगे, अुनका चारित्र्य टिक नही सकेगा। आज भले ही गाधीजीने हरिजनोके लिअे अुपवास आरभ किया हो, परन्तु हरिजनोका प्रश्न तो अुपवासका केवल अेक मुख्य कारण है। सारी दुनियाके राजनीतिज्ञोने धर्म पर जमी हुअी मनुष्य-जातिकी श्रद्धाको तोडनेका जो धधा शुरू किया है, अुसके खिलाफ गाधीजीने अेक प्रचण्ड विद्रोह कर दिया है। यह विद्रोह किसी देशके या किसी राज्यके खिलाफ नही है, परन्तु मनुष्य-जातिके हृदयमें जो शैतान वैठा हुआ है और धर्मके नाम पर सर्वत्र अधर्म फैला रहा है अुसके खिलाफ है। भारतकी या किसी भी देशकी राजनीतिसे अिसका

कोअी सम्वन्ध नही है। यह तो शुद्ध हृदय-नीति है, समाज-नीति है, धर्मनीति है। अिस वातको यदि हम समय रहते समझ लेंगे, तो बहुतसा कार्य आसानीसे और तुरन्त कर सकेंगे।

यह बात हमे याद रखनी चाहिये कि गाधीजीके साथ रहकर प्रयत्न करेंगे, तो कम मेहनतसे और वगैर परेशानीके हम सकटको पार कर लेगे। लेकिन यदि आज हम गाधीजीका साथ नही देगे, तो हमें हाथ मलने पडेगे और अनेक पीढियो तक वलिदान पर वलिदान देनेके बाद ही हम किनारे पर पहुच सकेगे। भारतवर्षमे रहनेवाले हर आदमीसे गाधीजी यह कहते है कि वह शुद्धिके अिस यज्ञमें अपना हिस्सा दे, जो जहा वैठा हो वही खडा होकर सफाअी और शुद्धि करने लगे, अपने हृदयमे धूप जलाये और सर्वोदयकी तैयारी करे।

७–५–'३३

६४

भावनाका खतरा

गाधीजीके अुपवासके दैनिक समाचार जाननेके लिअे लोग अितने अुत्सुक है कि जिस दुःखके कारण गाधीजीने अुपवास किया है, अुसे तो मानो लोग भूल ही गये है। सितबर माहके अुपवासके समय लोगोने जो अुत्सुकता और अुत्साह वताया था, वह आज नही दिखाअी देता। यह सच है कि अुस समय गाधीजीके अुपवासको छोटा वनाना अधिकतर लोगोके हाथमे था और अिसलिअे हर भारतवासीमे यह परिणाम लानेके लिअे यथाशक्ति सव-कुछ कर गुजरनेका अुत्साह था। अिस वार केवल आध्यात्मिक वृत्तिसे गाधीजीके अुपवासका आरभ हुआ है। नतीजा यह है कि लोग गाधीजीकी तबीयतके समाचारोमे ही डूबे रहते हैं।

आध्यात्मिक वातावरणमे लोगोका अधिक मात्रामें अतर्मुख होना स्वाभाविक है, वल्कि अुचित भी है। अतर्मुख वृत्तिमें वाहरी दौडधूप वहुत नही हो सकती और अुसकी आवश्यकता भी नही है। परन्तु सच्चा अध्यात्म, सच्ची धार्मिक वृत्ति ठोस सेवाके रूपमें प्रकट हुअे बिना रह ही नही सकती। जो वेदात मनुष्यकी क्रियाशक्तिको नष्ट करे, वह सच्चा वेदात नही है। अतर्मुख होकर अपने दोष दूर [illegible]

कोअी सम्बन्ध नही है। यह तो शुद्ध हृदय-नीति है, समाज-नीति है, धर्मनीति है। अिस बातको यदि हम समय रहते समझ लेगे, तो बहुतसा कार्य आसानीसे और तुरन्त कर सकेंगे।

यह बात हमें याद रखनी चाहिये कि गाधीजीके साथ रहकर प्रयत्न करेंगे, तो कम मेहनतसे और बगैर परेशानीके हम सकटको पार कर लेगे। लेकिन यदि आज हम गाधीजीका साथ नही देगे, तो हमें हाथ मलने पडेगे और अनेक पीढियो तक बलिदान पर बलिदान देनेके बाद ही हम किनारे पर पहुच सकेंगे। भारतवर्षमें रहनेवाले हर आदमीसे गाधीजी यह कहते है कि वह शुद्धिके अिस यज्ञमें अपना हिस्सा दे, जो जहा बैठा हो वही खडा होकर सफाअी और शुद्धि करने लगे, अपने हृदयमें धूप जलाये और सर्वोदयकी तैयारी करे।

७–५–'३३

६४

भावनाका खतरा

गाधीजीके अुपवासके दैनिक समाचार जाननेके लिअे लोग अितने अुत्सुक हैं कि जिस दु खके कारण गाधीजीने अुपवास किया है, अुसे तो मानो लोग भूल ही गये हैं। सितबर माहके अुपवासके समय लोगोने जो अुत्सुकता और अुत्साह बताया था, वह आज नही दिखाअी देता। यह सच है कि अुस समय गाधीजीके अुपवासको छोटा बनाना अधिकतर लोगोके हाथमे था और अिसलिअे हर भारतवासीमें यह परिणाम लानेके लिअे यथाशक्ति सब-कुछ कर गुजरनेका अुत्साह था। अिस बार केवल आध्यात्मिक वृत्तिसे गाधीजीके अुपवासका आरभ हुआ है। नतीजा यह है कि लोग गाधीजीकी तबीयतके समाचारोमे ही डूबे रहते हैं।

आध्यात्मिक वातावरणमें लोगोका अधिक मात्रामे अतर्मुख होना स्वाभाविक है, बल्कि अुचित भी है। अतर्मुख वृत्तिमे बाहरी दौडधूप बहुत नही हो सकती और अुसकी आवश्यकता भी नही है। परन्तु सच्चा अध्यात्म, सच्ची धार्मिक वृत्ति ठोस सेवाके रूपमें प्रकट हुअे बिना रह ही नही सकती। जो वेदात मनुष्यकी क्रियाशक्तिको नष्ट करे, वह सच्चा वेदात नही है। अतर्मुख होकर अपने दोष दूर करनेके समय दूसरोके काजी बननेकी वृत्तिको छोडकर अेक-दूसरेके भाअी बननेकी वृत्ति बढानी चाहिये। २१ दिनके अुपवासके बाद जब गाधीजी देशकी स्थितिका निरीक्षण करें, तो अुस समय अुन्हे यह दिखाअी पडना चाहिये कि वैर-द्वेषका वातावरण शात हो गया है, जो लोग पापके मोहमें फसे हुअे थे

अुनमें न केवल पापके प्रति अरुचि बढी है, किन्तु पापका विरोध करनेकी शक्ति भी आ गअी है, जो लोग केवल जिद पर चढकर अेक-दूसरेके विरुद्ध बातें करते थे अुनकी वह अुत्तेजना अब शात हो गअी है, जो लोग हरिजनोकी बुनी हुअी खादीके प्रति अुदासीन थे वे लोग अब खादी खरीद कर हरिजनोके लिअे स्थायी जीविकाका प्रबन्ध कर रहे हैं, और सक्षेपमे कहा जाय तो हरिजन लोगोको हिन्दू समाज-रूपी घरमे स्वतन्त्रतासे चलते-फिरते देखकर किसीको आश्चर्य अथवा द्वेष नही हो रहा है।

भावनाओके अुद्रेकके समय अेक-दो बातें विशेष रूपसे समझ लेना आवश्यक है। आज देशमें चारो तरफ लोगोकी भावनाये अुत्तेजित हो अुठी हैं। अैसी भावनाओके फलस्वरूप यदि कार्य तुरन्त न हो, तो ये भावनायें मादक सिद्ध होती है, और फिर तो मनुष्य अपनी भावनाओका ही प्रशसक बन जाता है। भावनाओका अुत्तेजित होना ही मानो कोअी बहुत बडा काम हो, यह मानकर भावनाओकी कोमलताका आनद लूटनेमे ही मनुष्य लीन रहता है। यह काम विषय-भोग करने जैसा ही विषम हो जाता है। अिसके परिणाम-स्वरूप मनुष्यकी सकल्प-शक्ति क्षीण होती हे, कार्यशक्ति नष्ट होती है और हर प्रकारके नशेके नियमके अनुसार मनुष्यका मन भावनाके अधिकाधिक नशेकी माग करता है। अखबार और लेखक भी अिस भोजनको बढाते ही जाते हैं, मानो वे यह भोजन मुहैया करनेके लिअे वचन-बद्ध हो। अिसके फलस्वरूप वातावरण बिजलीसे भरा हुआ, अुत्तेजनापूर्ण और अलौकिक मालूम होते हुअे भी जितना काम या सेवा होनी चाहिये अुतनी होती नही। और अिसके बाद समाज स्तब्ध भले न हो, परन्तु निराश और निरुत्साह तो हो ही जाता है।

बडे बड़े जन-नायक और समाज-नेता अिस स्थितिको जानते हैं। अिसीलिअे व अैसी भावनाओको छेडते अथवा जगाते नही, जिनसे हितकर कार्यको जन्म न दिया जा सके, लोगोको काममे न लगाया जा सके और लोक-जीवनमे परिवर्तन न किया जा सके। भावनाओको जगाना बहुत आसान है, परन्तु प्रत्येक भावना लोककथाके भूतके समान है। यदि हम अुससे काम न ले, तो वह हमें निश्चित ही खा जाती है।

अिसलिअे मनुष्य भावनाके वश भले ही हो, परन्तु अुसीके अुन्मादमे न फसे। भावनाके प्रभावके नीचे अकर्मण्य बनकर मनुष्य लम्बे समय तक पडा न रहे। भावनाका रूपातर कार्यमे, सेवामें, सकल्प-सिद्धिमें होना ही चाहिये।

२१-५-'३३

६५
भक्तिका प्रसाद

नम्रता धार्मिकताका लक्षण है। हममें सच्ची नम्रता हो तो हमें दूसरोसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है, हम बोध ग्रहण कर सकते है और अपने जीवनमे सुधार भी कर सकते हैं। जिस मनुष्यसे हम धर्मज्ञान प्राप्त करना चाहते है, अुसके प्रति हमारे मनमें विश्वास, निष्ठा और श्रद्धा होनी ही चाहिये, क्योकि धर्म केवल बुद्धिका विषय नही है, परन्तु निष्ठाका विषय है।

अिस नम्रताको व्यक्त करनेके लिअे ही जिज्ञासुसे शुश्रूषाकी अर्थात् 'कही हुअी बातको सुनने और माननेकी' तैयारीकी अपेक्षा रखी गअी है। 'मै आपका कहा मानूगा। जीवनमें आवश्यक परिवर्तन करनेके लिअे मै तैयार हू। आपके सहवासमें रहकर, आपके जीवनमें ओतप्रोत होकर ही जीवन-रहस्य समझा जा सकता है, अत मैं आपके कार्योमें भी भाग लूगा'—ये सब सकल्प प्रकट करनेके लिअे अुपनिषद्-कालके जिज्ञासु प्रतीक-रूप हवनकी सामग्री और समिधा लेकर गुरुके पास जाते थे।

अुसके बाद भक्तोने अिस नम्रतामे और वृद्धि की। ज्ञानी मनुष्यके चरण जहा हैं वहा हमारा सिर पहुचे तो भी हम अुन्नत ही होगे—अैसी भावना व्यक्त करनेके लिअे पैर पडनेका, पैरो पर सिर रखनेका रिवाज शुरू हुआ। अुसके बाद तो नम्रताकी स्पर्धा होने लगी। 'मै आपके दासके दासका दास हू, आपके गुलामका गुलाम हू, आप गुरुके गुरु है,' आदि शिष्टाचार बढने लगा। अिसके बाद चरणोको छोडकर लोग चरणोकी रजसे चिपट गये। ओीश्वर-में और ओीश्वरके नाममें जो चमत्कारी शक्ति है वैसी शक्तिका आरोपण ज्ञानियो, भक्तो और पडितोके चरण-स्पर्शके बारेमे भी होने लगा। अेक शिष्यने तो अपने माने हुअे गुरुके पावो पर लगी धूल रोज-रोज अिकट्ठी करके अेक थैली भर ली और अुस पर रेशमी तथा जरीके कपडे सीकर रोज अुस थैलीको अपने सिर पर चढाने लगा। लेकिन अितनेसे अुसे सतोष नही हुआ। घरमें पूजाके लिअे रखी हुअी भगवानकी मूर्तिया भी अुसे गुरुकी चरण-रजकी थैलीके सामने तुच्छ मालूम होने लगी। अिसलिअे अुसने वे मूर्तिया थोडी दक्षिणाके साथ अपने पुरोहितको सौप दी और फिर वह केवल अुस थैलीकी ही पूजा करने लगा।

भक्ति अच्छी चीज है, परन्तु मनुष्यका जीवन यदि प्राकृत हो तो भक्ति-मे निरी विह्वलता आ जाती है। चरण-स्पर्शकी योजना पहले-पहल नम्रता

प्रकट करनेके लिअे की गअी थी। अुसके बदले आगे चलकर यह अधविश्वास पैदा हुआ कि चरण-स्पर्शमे कोअी चमत्कारी प्रभाव है, अुससे धार्मिकताकी विजली बिना मेहनतके हमारे शरीरमे प्रवेश कर सकती है। और फिर तो मनुष्यकी लोभी वृत्ति अैसा मुफ्तका लाभ पानेके लिअे जहा तहा दौडने लगी। अेक ओर भक्तजन दिनोदिन चरण-स्पर्शका महत्त्व बढाने लगे। दूसरी ओर अिस सरल और सस्ती धार्मिकताके लिअे लोगोका लोभ बढने लगा। और जिसके प्रति मनमे पूज्य भाव हो अुसे परेशान करके भी लोग अैसा चरण-स्पर्श पानेकी स्पर्धा करने लगे।

पत्थर या धातुकी मूर्तिको हम पूजाके लिअे कितनी ही वार क्यो न स्नान कराये, कितनी ही वार क्यो न भोजन कराये और कितने ही पूजाद्रव्य अुस पर क्यो न लादे, फिर भी अुस मूर्तिको जुकाम, अपच या घबराहट नही होगी। अिसलिअे भक्तिकी प्रीति मूर्ति पर अुडेलनेमे कोअी कठिनाअी नही होती। मदिरके मुखिया जैसी चाहे वैसी पूजा मूर्तियोकी हो सकती है। अितना ही ध्यान रखना होता है कि मदिरमे भक्त अेक-दूसरेको परेशान न करे। परन्तु किसी देहधारीको हम अीश्वरका अवतार मानने लगें और अपने पागलपनमे अुसके सुख-दु खका या अुसकी भावनाओका विचार न करे, तो यह अविवेककी पराकाष्ठा कही जायगी। स्पर्शमे और स्पर्शकी बिजलीमे मानवका जो विश्वास है, वह धार्मिक रिवाजोमे घुसा हुआ अेक जडवाद है। जब बहुत लोग अेक जगह अिकट्ठे होते हैं तो अेक-दूसरेकी देखादेखी अुनका पागलपन बढ भी जाता है। फिर तो पामर मनुष्य सत्पुरुषके अुन्नत जीवनका विचार करनेके वदले अुसके प्रति रही अपनी भक्तिकी ही कदर करने लगता है, और अतमे अीश्वरके नाम पर वह अपनी निर्बल किन्तु अुत्तेजित बनी हुअी भावनाकी ही अुपासना करने लगता है।

गाधीजीकी हरिजन-यात्रामे अिस बातका अनुभव — अत्यन्त कडवा अनुभव — कदम कदम पर होता है। लोग आधी रातमे भी स्टेशन पर गाधीजीको देखने आते हैं। वे रातके दो-तीन बजे भी अुन्हे नही छोडते। यदि कहा जाय कि गाधीजी सोये हैं, तो अुन्हे जगानेके लिअे वे अितनी अूची आवाजमे 'गाधीजीकी जय' बोलते है कि सुननेवालोके कान फट जायें। गाधीजीकी तबीयत नाजुक है अैसा कहा जाय, तो दर्शनके लिअे कितनी दूरसे स्वय आये हैं अिसकी कदर कराना चाहते हैं। यदि यह कहे कि 'अिस तरह गाधीजीको दिन-रात परेशान करोगे तो तुम अुन्हे खो वैठोगे,' तव तो आवाज कम करनेके और गाधीजीको आराम करने देनेके वदले यह वृत्ति बतानेवाले लोग भी हमारे देशमे मौजूद हैं कि 'अैसा हो तो हमे अिसी समय गाधीजीके दुर्लभ दर्शन कर लेने दीजिये।' अैसे धार्मिक लोभमे धार्मिकताका नाम भी नही है, यह बात ये

लोग कब समझेगे? सभाकी भीडमें से निकलते समय कितने ही लोग गाधीजीके चरणोका स्पर्श करनेके लिअे दौड पडते हैं। गाधीजी ठोकर खा कर गिर पडेंगे, अिस तरह सोचने जितनी भक्ति-शून्यता अुनमे नही होती। अुनके भीतर केवल यही वृत्ति सर्वोपरि होती है कि पुण्य प्राप्त करनेका जो मौका मिला है अुसे हाथसे जाने देंगे तो हम बेवकूफ कहे जायगे।

हजार वार चरण-स्पर्श करने पर भी मनका मैल नही मिटा, हृदय अुन्नत नही बना, अैसा अनुभव होनेके बाद भी मनुष्य अितना स्पष्ट नही समझता कि जब तक हृदयका परिवर्तन नही होगा तब तक स्पर्शकी यह बिजली अुसे शायद ही कोअी लाभ पहुचा सकेगी।

भक्तोके सामने कोअी मनुष्य अैसी बात करे, तो अुसे नास्तिक कह देनेमें अुन्हे जरा भी देर नही लगती। कविगण अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन लिखते हैं। सिद्धान्तवादी लोग ठेठ अतिम छोर पर पहुच कर अिन वचनोका बचाव करते हैं। और सामान्य लोग अिन सब वचनोके अक्षरार्थसे चिपटे रहनेमे ही धार्मिकता समझते हैं। लोग अपने सत-महतो और धार्मिक सेवकोसे भी कुछ न कुछ लाभ अुठा लेना चाहते हैं। अिस वृत्तिमें सच्ची धार्मिकता नही है, परन्तु हीनता अथवा जडता है। अिससे धर्मकी विजय नही होगी।

कुछ ही समय पहले सिन्धमे चरण-स्पर्श करनेके प्रयत्नमें लोगोने गाधीजीके पैरोमें खरोचे पैदा कर दी थी। अुनका अिलाज अभी भी चल रहा है। (सच बात तो यह लगती है कि भक्तिसे पागल बने हुअे लोगोके हाथोको हटानेके लिअे दौडनेवाले किन्तु अुनके जितने ही भक्ति-दीवाने स्वयसेवको द्वारा ये खरोचे पैदा हुअी थी। लेकिन अिस सुधारसे भी मूल बात बदलती तो नही।) लोगोकी अैसी दीवानी भक्तिका प्रसाद गाधीजीको अनेक बार चखना पडता है। जहा मिट्टीके रास्तो पर खुले पैर चलनेका रिवाज है वहा तो पैरोकी खरोचे अकसर गभीर रूप ले लेती हैं। मिट्टीका जहर आदमीके खूनमें प्रवेश कर जाता है। अिससे भारी बीमारी भी हो जाती है, जिसके मिटनेमें बडी देर लगती है।

अेक बार आधी रातमे गाधीजीको न सतानेकी बात समझानेका प्रयत्न करने पर कुछ लोगोने कहा 'गाधीजी तो अीश्वरके अवतार हैं। अुनको थकान कैसी?' मैंने कहा 'वे स्वय ही कहते हैं कि मैं थक गया हू। यदि वे सच नही कहते, तो वे महात्मा नही हैं। और यदि अुनका कहना सच है अैसा आप लोग स्वीकार करे, तो अिस तरहकी थकानसे आप अुन्हे जरूर बचाये।' मैंने मान लिया था कि अिस दलीलसे वे लोग समझ जायेंगे, और यदि समझे नही तो निरुत्तर जरूर हो जायगे। परन्तु पुराणकारो और भाष्यकारोकी तालीम पाये हुअे हमारे अिन लोगोके पास अिसका जवाब भी तैयार था। वे बोले.

'गांधीजी तो ढोंग करते हैं। वे अवतारी पुरुष हैं यह बात अुन्हें छिपानी है, अिसीलिअे वे अकलकी बात कहते हैं। श्री रामचन्द्रजी सीताजीके विरहमें अिधर-अुधर भटकते थे तब क्या वे जानते नहीं थे कि सीता तो अुनकी चित्-शक्ति है और गुप्त रूपसे अुनके पास ही है?'

असी दलीलका भला क्या जवाब दिया जाता? भगवानने स्वयं बुद्धका रूप धारण करके जगतको धोखा दिया, अिस प्रकार कहकर नये अवतारका रहस्य समझानेवाले धर्म-आचार्योंके सामने बुद्धिके लिअे कोअी स्थान ही नहीं रह जाता। जहां किसीको यह लगता ही नहीं कि बुद्धिकी रक्षा करके धर्मका रहस्य समझा जा सकता है, वहां बेचारी दलील क्या करे?

दर्शनकी अभिलाषा होना स्वाभाविक है। जुलूसों, यात्राओं, सभाओं और सम्मेलनोंमें केवल विचारोंका आदान-प्रदान ही नहीं होता, ये सब विचारोंके प्रचारके अुत्तम प्रतिबिम्ब भी हैं। ये सब लोगोंकी भावनाओंको विकसित करने तथा लोक-मानसका निरीक्षण करनेके शक्तिशाली साधन हैं। हजारोंकी संख्यामें लोग अिकट्ठे हों, यह बुरा नहीं है। असे जन-समुदायोंमें ही विराट् जनताकी जागृतिका दर्शन होता है। बड़े समुदायोंमें सारे सात्त्विक अुदात्त भाव फूटने लगें, तो यह जितना स्वाभाविक है अुतना ही वांछनीय भी है। लेकिन अिसके साथ ही लोगोंमें कुछ अनुशासन अवश्य आना चाहिये। दूसरोंके सुख-दुःखके बारेमें, दूसरोंकी भावनाओंके बारेमें असे समय अधिक कोमलता प्रकट होनी चाहिये। और सामाजिक जीवनका शिष्टाचार तो असे अवसर पर सबका प्रधान कर्तव्य होना चाहिये।

हम पागल बन कर भक्तिका प्रसाद महात्माको चखायें, यह तो अत्याचार ही कहा जायगा।

२२-७-'३८

जीवन-व्यवस्था

पांचवां खण्ड

हृदय-धर्म

६६

संस्कृतियोंका जीवन-क्रम

मस्कृति कोअी तालाब नही है, जिसका पानी चारो तरफसे बन्द हो। सस्कृति तो अेक बडी नदी है, जिसे दोनो ओरके किनारे अेक सीमित पाटमे ही बाध रखते हैं और जिसमें अूपरसे चाहे जितना नया पानी आ सकता है तथा जिसका पानी आगे स्वेच्छापूर्वक अनुकूल और आवश्यक दिशामें जा भी सकता है। जैसे जैसे नदिया आगे बढती है, अुनमें छोटे-मोटे अनेक स्रोत आकर गिरते हैं और कभी कभी अेक ही नदी अनेक स्रोतोमें विभक्त होकर महासागरमे जा मिलती है। कअी नदिया अैसी भी होती हैं, जिनके अेक स्रोतके दो-तीन या अधिक स्रोत बन जाते हैं और आगे जाकर वे फिरसे अेक हो जाते हैं।

नदियोका यह प्रवाह-क्रम या जीवन-क्रम पूरी तरह मानवके हाथमें नही होता। प्रकृतिकी अगम्य लीलासे ही यह जीवन-क्रम निश्चित होता है। मनुष्य अपने दृढ सकल्प और तपस्याके बलसे अिसमें थोडा-सा परिवर्तन कर सकता है। जैसा और जो कुछ थोडा-बहुत परिवर्तन वह कर सकता है, अुससे काफी लाभ भी अुठाता है।

हिन्दुस्तानमें दुनियाकी सभी मानवीय सस्कृतियोका महासम्मेलन हुआ है। अिसमें कुछ भाग हमारे साधु-सतो, साहित्यकारो, नेताओ और तत्त्वज्ञोका है और अिससे अधिक भाग अितिहास-विधाताकी लीलाका फल है।

मस्कृतिकी रक्षा करनेके लिअे हम अैसी कोशिश न करे, जिससे नदीका तालाब बन जाय। जिस जलकी हमें ज्यादा जरूरत हो, अुसके स्रोतका वेग बढा-कर ही हमें सतोष करना चाहिये।

दिसम्बर, १९४०

६७

प्राणदायी हवा

अेक गावके लोग बहुत ही भोले और भले थे। वे अपने बडोंके वचनका आदर करते थे और बडे कहे वैसा ही चलते थे।

अुस गावमें पुराने जमानेका अेक बूढा रहता था। वह हमेशा कहा करता था "हेमंत ऋतुकी हवा बडी स्वास्थ्यवर्धक होती है। वह जितनी शरीरमें जाती है अुतना ही मनुष्य अधिक स्वस्थ और बलवान बनता है। हेमंतकी हवा क्या है, शुद्ध प्राण है प्राण!"

कुछ समय बाद अुस बूढेका स्वर्गवास हो गया। अब लोग अुसको ज्यादा याद करने और आदर देने लगे। अुसके श्राद्धके दिन सब लोग अेकत्र होते तब अुन्हें अुसके वचन याद आते थे।

अेक बार अेक आदमी बोला "भाअियो, हमारे वृद्ध पुरुष जो कहते थे अुसके अनुसार हम चलेंगे तभी सुखी होंगे। हम अैसा करें कि हेमंत ऋतु पूरी होनेसे पहले अुसकी हवाको घरमें भर लें और घरके खिडकी-दरवाजे बन्द करके अुस प्राणदायी हवाको बाहर न जाने दें। दूसरी हेमंत ऋतुके आने तक वह हवा हमारे काममें आयेगी। घरसे बाहर हम यथासंभव कम जायं, जायं भी तो अेक छोटासा छेद करके अुसीसे बाहर जायं। मौका आने पर अुसे जरा खोलें और फिर तुरन्त बंद कर दें।"

यह सलाह सबके गले अुतर गअी और सब लोग अैसा ही करने लगे। अिस प्रकार रुकी हुअी हवामें रहनेका परिणाम लोगोंके लिअे क्या आया, यह कहना जरूरी नहीं।

रूढियोंका अुपासक पुराण-प्रिय कट्टर सनातनी हिन्दू समाज अिस परिणाम-का अनुभव हमेशा ही करता रहता है।

१९२७

६८
धर्म बनाम धार्मिकता

अेक जमाना था जब बडे बडे सम्राट् भी अपने राज-मुकुट हाथमें लेकर धर्माचार्योंकी अदालतमें खडे रहते थे। साहित्य, कला, विज्ञान — सबको धर्मकी अदालतमे अपनी निर्दोषता और निष्ठा सिद्ध करनी पडती थी।

अव वे दिन चले गये है, क्योंकि धर्मोंसे मानो धार्मिकता ही रूठ गअी है। अव तो आर्य धर्म, ओसाअी धर्म, अिस्लाम, वौद्ध धर्म, यहूदी धर्म अित्यादि सवके सव धर्म मानवताकी अदालतमें अभियुक्त बनकर खडे हैं। धर्मके नाम पर अितनी संकीर्णता फैलाअी जा रही है, अितना मनुष्य-द्रोह किया जा रहा है कि अव सवके सव धर्म न्यायाधीश न रहकर अभियुक्त बन गये है।

सवसे पहले सत्त्व जाता है, वादमे प्रतिष्ठा जाती है। फिर स्थानभ्रष्ट होते क्या देर लगती है? धर्मोंने धार्मिकता छोड दी और अपना नाश किया। अव धार्मिकताको ही धर्मोंके शिकजेसे वचानेके दिन आ गये है।

अप्रैल, १९४०

६९
हृदयकी शक्ति

प्रश्न — मन, बुद्धि, चित्त, मस्तिष्क और हृदय — ये सब क्या है और अिनके धर्म (functions) क्या है?

अुत्तर — मस्तिष्क तो सिरकी खोपडीमें रहनेवाली मेधाशक्तिको कहते है। अुसकी सहायतासे ही सुप्त अथवा व्यक्त सवेदनायें अपना व्यापार करती है। अुसमें जो विचार-शक्ति है अुसे चित्त कहते है। अुसीकी विशिष्ट तरगको मन कहते है। तरगके सभी गुण-धर्म मनमे दिखाअी देते है। अिन तरगोके हेतुको स्थिर वनानेवाला जो निश्चयात्मक व्यापार है वही बुद्धि है। ये सव स्थूल व्याख्यायें जैसी सूझी वैसी मैंने यहा लिख दी है।

हृदयकी व्याख्या करना वहुत कठिन है। लोग मानते है कि हृदयका अर्थ है भावनायें। यह माना जाता है कि अिन भावनाओका सम्वन्ध आतोके साथ है अथवा रक्तके भडार-रूप कलेजेके साथ है। लेकिन यह वात सिद्ध नही हुअी है। भावनायें भी शरीर-व्यापी होती है, और वे चित्तका अेक व्यापार

है। कहा जाता है कि शुभ-अशुभ रुचि-अरुचि, प्रेम, द्वेष अथवा अुपेक्षा — यह भेद हृदयका ही व्यापार है।

मैं तो मानता हू कि प्रत्येक मानवमें आत्मौपम्य अथवा आत्मैक्यका अनुभव करनेकी जो भूख होती है वही हृदय है। भूख होनेके कारण वह क्रियारूपिणी है, प्रवाह-रूप है। अेक आत्माका दूसरी आत्माके प्रति जो आकर्षण या प्रवहण (attraction, response and flow) होता है वही हृदय है। यह व्याख्या विलकुल नअी है, अिसलिअे शायद आप अिसे स्वीकार नही कर सकेगे। लेकिन मुझे अिसीमे सतोष है। अुपनिषत्कारोने हृदयकी निरुक्ति अिस प्रकार दी है 'हृदि अयम्।' वे यह भी कहते है कि सत्यको जाननेका साधन बुद्धि नही, किन्तु हृदय है। वे लोग यहा तक भी कहते है कि हृदय ही आत्मा है।

जिस चीजको हम बुद्धिसे जान लेते है अुसीको जब हम हृदयसे स्वीकार करते है, तब अुस ज्ञानानुभवको साक्षात्कार कहते है। अग्रेजी भाषामे साक्षात्कारको 'realisation' कहा जाता है। यह अेक सुन्दर शब्द है। जो कुछ बुद्धिको सत्य लगता है अुसे हृदयके द्वारा जीवनमे सत्य (real) बनानेकी क्रियाको 'realise कहते है। यह शक्ति हृदयकी ही है।

१९३१

७०

हृदय-धर्मकी दीक्षा

सब धर्मोमें श्रेष्ठ धर्म है — हृदय-धर्म। ससारमे जितने धर्म, मजहब, पथ, फिरके और सम्प्रदाय है, वे आज चाहे जितनी तगदिली पैदा करते हो, किन्तु असलमे वे किसी न किसी मानव-प्रेमी सस्कृति-परायण हृदय-धर्मसे ही निकले हुअे है। 'धर्मशास्त्र महर्षीणा अन्त करण-सभृतम्।' जिस अुदार हृदयकी प्रेरणासे वे निकले है अुस हृदयका जो व्यापक प्रेमधर्म है वही हृदय-धर्म है। हिन्दुस्तानमें दुनिया भरके करीब सभी धर्म अिकट्ठे हुअे है, क्योकि अुनको पता चल गया है कि यहा हृदय-धर्मका साम्राज्य है। यहा जितने धर्म आये वे सब अपना अपना अभिमान लेकर आये। अुन्होने, जितना भी अुनसे हो सका, भला और बुरा किया। लेकिन धीरे धीरे वे हृदय-धर्मकी प्रेम-रुडीमे बध गये। सबको प्रेमधर्मका भान हुआ। पर किसीको अुसकी दीक्षा नही मिली। अिसीलिअे वे आपसमे खीच-तान करते है और अिस देवभूमिको भूतलका स्वर्ग बनानेके बजाय नरक बना रहे है। जिसके हृदयमें जितनी ही सकीर्णता और क्षुद्रता होगी अुतना ही वह दु ख

अुठायेगा और दूसरोको भी अधिकाधिक दु ख देगा। किन्तु अतमें (या अनन्तमे) विजय हृदय-धर्मकी ही होगी।

हे हृदयान्तर्यामिन्! हमें-अुस हृदय-धर्मकी दीक्षा दो और हमारी श्रद्धाको अनन्त बनाओ, जिससे हम भारतके हृदय-धर्मकी सच्ची सेवा करे और अपने जीवन द्वारा और मरण द्वारा अुसीका साम्राज्य स्थापित हुआ देखे।

दिसम्बर, १९३९

७१

हृदय-शुद्धिकी याचना

अपना हित-अनहित तो पशु भी सोचते है। वे अितना तो जानते ही है कि 'सकटके समय हमें आपसमें मिलकर और सगठित होकर, अपनी सामूहिक सघशक्तिसे आनेवाले सकटका सामना करना चाहिये। यही मुक्तिका रास्ता है।' किन्तु जिस जातिमें लोग मुक्तिको ही सकट मानते है, अुसकी नीति कुछ और ही होती है! हमारे लिअे जब अेक होनेकी ज्यादासे ज्यादा जरूरत है अुस समय हमारा देश अनेक मतो, अनेक मार्गो और अनेक दुर्गुणोसे पीडित है।

तो क्या यह विनाशकी निशानी है या सूर्योदयके पहले, अुष कालके पहले और ब्राह्म-मुहूर्तके भी पहले जो घोर अधकार होता है वही यह है? जब मनुष्य बडीसे बडी भूल कर बैठता है तभी वह चौक कर जाग पडता है और अपना व्यवहार सुधारता है।

भगवन्! हमने बहुत सहन किया है, और भी सहन करेगे। किन्तु अब हमें 'बुद्धिभ्रश' की सजा या पीड़ा और ज्यादा सहन न करनी पडे, यही अेक-मात्र हमारी प्रार्थना है। अगर हमारी बुद्धि शुद्ध रहे, हृदय अुदार रहे, दृष्टि निर्मल और दूरदर्शी रहे, तो हमें और कुछ नही चाहिये। बाकीके सब साधन हम अपने ही पुरुषार्थसे अिकट्ठे कर लेगे। जहा हमारी नही चलती वही हम तुमसे प्रार्थना करते है। हे हृदयस्थ परमात्मन्! हमारे हृदयको शुद्ध करो, अुदार बनाओ, तेजस्वी और क्षमाशील बनाओ, जिससे हमारा अुद्धार हो जाय!

जनवरी, १९४०

७२

पवित्र संकल्प

पुरानी बाअिबलमें अेबल और केन नामके दो भाअियोंकी अेक कथा है। भाअी होते हुअे भी केनमें दुश्मनी जागी और अुसने अेबलका खून कर दिया। दुनियाकी यह पहली बंधुहत्या थी। अिन दो भाअियोंका अुदाहरण सामने रखकर दूसरे दुर्जन भी अपने भाअियोंकी हत्या करने लगे। अिस्लाममें कहा गया है कि 'केन' ही बंधुहत्याका आदि प्रचारक था, अिसलिअे जब कोअी मनुष्य अपने भाअीकी हत्या करता है तब अुसके पापका थोडा भाग 'रॉयल्टी' के रूपमें केनके नाम पर जमा होता है।

अिसी प्रकार जब कोअी मनुष्य किसी भी तरहकी भलाअी करता है और अुसके अिस सत्कृत्यका अनुकरण होने लगता है, तब अिस प्रकार बढनेवाली अुस भलाअीकी कुछ न कुछ 'रॉयल्टी' सदाचारके अुस प्रवर्तकको अवश्य मिलती है।

अितना जाननेके बाद भारतवर्ष निर्वैर बंधुताका पुण्य अेकत्र करनेका संकल्प क्यों न करे?

सितम्बर, १९४१

७३

कौनसा मार्ग स्वीकार करेंगे?

संस्कृतमें शत्रुको 'सपत्न' कहा जाता है। अेक ही पिताके पुत्र माताके अलग होनेसे अेक-दूसरेके साथ लडते-झगडते हैं और अेक-दूसरेके शत्रु बन जाते हैं। अुनकी अिस मूर्खताको प्रकट करनेके लिअे हमारी संस्कारी भाषाने शत्रुके लिअे 'सपत्न' शब्द रख दिया। अिसका अर्थ है 'सौतेला भाअी।'

परन्तु अेक ही माताके पुत्र भी शत्रु बनकर आपसमें लड सकते हैं। अेक ही नदीका पानी पीनेवाले लोग आमने-सामनेके किनारों पर रहने लगते हैं, तब अपने अपने खेतोंमें नदीका पानी सींचनेके लिअे आपसमें लडते-झगडते हैं। नदीके तीरको, किनारेको, 'कूल' कहा जाता है। जो लोग सामनेके किनारे पर रहते हैं वे हमारे 'प्रति-कूल' हैं और जो लोग हमारी ओर रहते हैं वे 'अनु-कूल' हैं। 'अनुकूल' लोग अेकसाथ मिलकर 'प्रतिकूलों' से हमेशा लडा करते हैं।

(नदीके पानीके लिअे) जिस प्रतिस्पर्धीके साथ झगडा होता है, अुसे अग्रेजीमें 'राअिवल' कहा जाता है। 'राअिवल' का सम्बन्ध 'रिवर' यानी नदीके साथ है।

बुद्ध भगवानके समयमे अेक बार अनुकूल और प्रतिकूल नदी-पुत्र आपसमें लडने लगे। दोनोमें घोर युद्ध होनेवाला था, अितनेमे बुद्ध भगवानको पता चला तो वे युद्धस्थल पर पहुच गये। दोनो पक्षोके नेताओको बुलाकर अुन्होने अेक सीधा-सादा प्रश्न अुनसे पूछा "पानीकी कीमत ज्यादा है या मनुष्यके खूनकी ?" दोनोके मुहसे अेक ही अुत्तर निकला "वेशक, मनुष्यके खूनकी कीमत पानीकी कीमतसे कही ज्यादा है।"

"तो फिर पानीके लिअे मनुष्यका खून बहानेमें कोअी बुद्धिमानी है ?"

बुद्ध भगवानके अिस प्रश्नसे दोनोकी आखे खुल-गअी और लडाअी टल गअी।

कितने भोले थे भगवान बुद्ध और कितने भोले थे अुस जमानेके लोग ? सीधी वातको वे तुरन्त समझ गये और अुसे अुन्होने मान भी लिया। आज राजनीतिशास्त्र वहुत आगे वढ गया है। आज यूरोप और अमेरिकाके लोगोसे कोअी महात्मा पूछे कि "पेट्रोलकी कीमत ज्यादा है या मनुष्यके खूनकी ?", तो वे लोग कहेगे कि "थोडा सोचना पडेगा।" आजकल मनुष्यका खून वहुत ही सस्ता हो गया है। वे लोग जनसख्याका शास्त्र खोज निकालेगे और तर्क करेगे कि युद्धके सिवा मानवका विकास ही नही हो सकता। अिस प्रकार वे अधर्मको धर्मका रूप देंगे और जोरोसे वधुहत्या करते रहेगे।

आज राजनीतिका दिवाला निकल चुका है। वडे वडे धर्म अधार्मिक लोगोके हाथोमें पडकर निस्तेज वन गये हैं। केवल अेक हृदय-धर्म ही आज वचा है, जो हमें माताकी गोदमें मिलता है। वैसे सपत्तिशास्त्र आज अर्थशास्त्रका नाम धारण करके अनर्थ कर रहा है। अव तो जगतका अुद्धार तभी होगा जव हम हृदय-धर्मको दृढतासे पकडे रहेगे और अपनी बुद्धिको विचलित नही होने देंगे।

अप्रैल, १९४१

७४

'समाना हृदयानि वः'

परमात्माका यह आदेश ऋग्वेदके अंतिम मंडलके अंतमें आया है। सब तरहका आध्यात्मिक ज्ञान देनेके बाद वेद भगवानने संगठनका मंत्र बताया है। जो लोग धर्मको नहीं जानते, असंस्कारी हैं, असंयत हैं, स्वार्थी है, द्रोही है, अुनका संगठन जगतके लिअे विनाशक ही होता है। अिसलिअे धर्म-रहस्यका पूरा ज्ञान देनेके बाद ही भगवानने संगठनका अुपदेश किया है।

यह वैदिक अुपदेश मनुष्य-जातिके लिअे अत्यन्त हितकारी है।

"हे धार्मिको, अीश्वर पर श्रद्धा रखकर तुम सब अेक ही दिशामें प्रगति करो। तुम्हारी वाणीमें परस्पर सामंजस्य हो। तुम अपने मनको अेक ही आदर्शके लिअे संस्कारी बनाओ, और देवोंमें जैसा अपने-अपने कर्तव्योंका पालन करनेका आग्रह रहता है, अुसी तरह तुम भी अपने अपने हिस्सेमें आये हुअे कर्तव्योंका पालन करो।

"तुम लोगोंकी कार्यनीति (मंत्र) अेक ही प्रकारकी हो। अपना हित सोचनेवाली तुम्हारी सभा भी अेक ही हो। तुम्हारे मन और चित्त कभी भी परस्पर विरोधी न हों। अिस संगठनको अगर दृढ करना है, तो तुम्हें अेक ही विचारसे चलना होगा, और सब प्रकारके अुपभोगोंमें भी तुम्हारे बीच असमानता नहीं होनी चाहिये। अुपभोगोंमें असमानता आनेसे वैमनस्य पैदा होता है और अेक आदर्श भी नहीं बना रह सकता। अिससे संगठन टूट जाता है। अिसलिअे मेरा आदेश है कि अपना ध्येय तुम अेक रखो और रहन-सहनका दर्जा भी अेकसा रखो।

"तुम लोगोंका हेतु और ध्येय, सब अेकसा ही रहना चाहिये। तुम्हारे हृदय भी अेक हो जायें। तुम्हारे मन भी अेकसे हो जायं। अिसी मार्ग पर चलनेसे तुम्हारा संगठन अच्छी तरह टिक सकेगा और तुम्हारा कल्याण होगा।"

वेदके अिस अंतिम अुपदेशका हार्द क्या है? जीवन अेकसा हो, अुपदेश अेक हो, मंत्र अेक हो, प्रगतिकी दिशा अेक हो। यह सब तभी सिद्ध हो सकता है जब सबके हृदय अेकरूप होंगे जब सब लोग अेक-दूसरेको मित्रकी नजरसे, भाअी-भाअीकी नजरसे देखने लगेंगे। विचारोंमें चाहे जितनी भिन्नता हो, लेकिन यदि हृदय अेक हैं तो अेक-दूसरेकी बात समझनेमें कोअी कष्ट नहीं होगा।

सबसे बड़ी शक्ति तो सत्यकी ही है। यह सत्य हृदयसे ही जाना जाता है। याज्ञवल्क्य कहते हैं

'हृदयेन हि सत्यं जानाति। हृदयं हि अेव आत्मा।'

अिसलिअे यदि हृदय शुद्ध हो और हृदयोका परस्पर मेल हो, तो बाकी सब कुछ आप ही आप सिद्ध हो जायगा। भगवानके आदेशका हार्द यह है कि तुम्हारे हृदय अैसे शुद्ध हो, अैसे अुदार हो, कि अुनमें आपसी मेल आप ही आप स्थापित हो जाय। तुम्हारे हृदय अेकरूप होकर मिल जाय, तो वही सगठन है, वही सामर्थ्य है, वही सिद्धि है।

जुलाअी, १९४१

७५

तत्त्व और व्यवहार

"आप तो आदर्श-लोकके वासी है। व्यवहारमें अैसे आदर्श नही चल सकते। मनुष्य परिस्थितियोको स्वीकार करे और व्यवहारकी रक्षा करे, तो ही अिस दुनियामें वह टिक सकता है।" अिस तरह कहनेवाले लोग कदम कदम पर मिलते हैं। यह 'व्यवहार', ये 'परिस्थितिया' क्या चीज है, अिसे हमे जरा देखना चाहिये।

व्यवहार अेक सत्य वस्तु है, किन्तु वह हमेशा अच्छी वस्तु ही नही होता। बीमारीमे नुकसान करनेवाली चीज भी खानेका मन होता है। यह वासना सत्य तो है, परन्तु अिसके वश होनेमे न तो मनुष्यका श्रेय है और न पुरुषार्थ है।

बहुत बार तत्त्व अूपर अुठानेवाला होता है, जब कि व्यवहार नीचे गिरानेवाला सिद्ध होता है। अिन दोनोके बीच सनातन सग्राम चलता आया है। अिन दोके बीच समाधान या समझौता करनेके अनेक प्रयत्न दुनियामें होते आये हैं। परन्तु व्यवहार अत्यन्त दुराग्रही है। तत्त्व-पक्ष समझौतेकी शर्तोको स्वीकार करता है, लेकिन व्यवहार-पक्ष जैसे जैसे सुविधायें मिलती जाती है वैसे वैसे अधिक सुविधायें मागता ही जाता है और अतमें तत्त्वकी हत्या करके ही शात होता है। अत तत्त्व-पक्षको हमेशा सतर्क और जाग्रत रहना चाहिये और व्यवहारके साथ कभी स्थायी समझौता नही करना चाहिये।

तत्त्व और व्यवहारके बीच चलनेवाले अिस सनातन युद्धमे हमें कौनसा पक्ष स्वीकार करना चाहिये? किस पक्षके प्रति हमें सहानुभूति रखनी चाहिये? किस झडेके नीचे हमे भरती होना चाहिये? — यह जीवनका बडेसे बडा सवाल है। जीवनमें व्यवहार-पक्षका अस्तित्व तो स्वीकार करना ही पडता है। किन्तु व्यवहार-पक्षके अस्तित्वको स्वीकार करना अेक बात है, और अुसके हिमायती बनना दूसरी बात है। व्यवहार-पक्ष आरभमें सदा सौम्य, समझदार और सुन्दर स्वभाववाला दिखाअी देता है और यही कारण है कि हम अुसके वशमे हो

जाते हैं। परन्तु अेक बार व्यवहार-पक्षकी ओर हमने अपना मत दिया, हाथ अूचा किया, कि अुसका साम्राज्य हमारे सिर पर लदा ही समझिये। और अेक बार अुसका साम्राज्य स्थापित हुआ, फिर तो व्यवहारका अत्याचार हम पर जोरोसे बढता ही जायगा।

व्यवहार अितना चतुर है कि तत्त्वकी हत्या करनेके बाद भी वह अुसके शवको सुरक्षित रखता है, ताकि तत्त्व-पक्षके लोग अिस भ्रममे पडे रहे कि तत्त्व अभी भी जीवित है। व्यवहार हमेशा कहता है "नामका राजा कोअी भी हो, मुझे अिसकी परवाह नही। सत्ता मेरी अपनी चले तो मुझे सतोष है।"

आज हमारे समाजमें तत्त्ववादी कितने है और व्यवहारवादी कितने हैं? तत्त्वनिष्ठ लोगोकी सख्या राष्ट्रमें बढती है तब देश अूपर अुठता है। व्यवहारवादियोसे कभी किसी समाज या राष्ट्रका अुद्धार नही हुआ है।

३-९-'२२

७६
यथार्थवाद बनाम ध्येयवाद

यथार्थवाद और ध्येयवादका झगडा केवल साहित्यमें ही नही, परन्तु राजनीतिक क्षेत्रमें भी बढ गया है। जहा दो भिन्न वस्तुअे अिकट्ठी होती हैं वहा दोनोमे परस्पर विरोध होना ही चाहिये, यह मान लेना अेक भारी भ्रम है। परिवारमे सत्ता किसकी चले पिताकी या माताकी? अिस तरहका प्रश्न अुठाकर परिवारका नाश करना असभव नही है।

यथार्थवाद और ध्येयवादके बीच विरोध कहा है? जिन लोगोको कोअी पुरुषार्थ या प्रयत्न ही नही करना है, वे यथार्थवादके आधार पर ध्येयवादका विरोध करते रहते हैं। त्याग, बलिदान, आत्म-सयम, निर्भयता आदि चारित्र्यके अुज्ज्वल पहलुओको नष्ट करनेके लिअे ध्येयवादका विरोध करना आसान है।

जिन लोगोको केवल-कलाके नाम पर केवल विलास ही करना है और अपने जीवनमे जरा भी परिवर्तन किये बिना आदर्शकी बडी बडी बातें करनी हैं, अुनका ध्येयवाद नामका ही होता है। परन्तु जिन लोगोने न्यायदानमे भाग लिया है, शिक्षणके क्षेत्रमे वर्षो तक अपने जीवनका अुत्तम समय बिताया है, जो लोग व्यापार-अुद्योगमे सफल रहे हैं और जिन लोगोने राजनीति द्वारा देशको जाग्रत करके स्वतत्रताका मार्ग दिखाया है, अुन लोगोका ध्येयवाद आपके यथार्थवादको नही पहचान सकता यह आप कैसे कह सकते हैं?

सच बात तो यह है कि यथार्थवादके कीचडसे ही जीवनका कमल अुत्पन्न होता है। किन्तु ध्येयरूपी सूर्य-प्रकाशकी मददसे ही, अुसके आकर्षणसे ही, वह

कमल जीवनकी सतहसे अूपर अुठकर अपनी कल्याणमय प्रसन्नताको विकसित कर सकता है। यदि गदे लेकिन पोषण देनेवाले कीचड़से कमलको अलग कर दिया जाय, तो पानीमे तैरते हुअे भी वह सड जायगा। परन्तु यदि सूर्य-प्रकाशसे अुसे हर तरह वचित रखा जाय, तो कमलका अस्तित्व ही असभव हो जायगा। फिर तो अुसके रग, रूप, सुगध, ताजगी और कोमल प्रसन्नताका प्रश्न ही खडा नही होगा। यथार्थवादकी स्वीकृति आवश्यक है, परन्तु अुसके साथ ध्येयवादकी प्रेरणा भी प्राणरूप है। जिन्हे कीडे बन कर कीचडमें ही रहना हो वे भले वहा रहे। परन्तु वहा पडे पडे ध्येयवादकी निन्दा करके वे देशकी स्वतत्रता तथा भाषाके चैतन्यका द्रोह कभी न करे।

मार्च, १९३९

७७

बुद्धि और अुसका विकास

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न — बुद्धि क्या है? वह मनुष्यमें जन्मसे ही कम-ज्यादा होती है या प्रयत्नसे बढाअी जा सकती है? यदि प्रयत्नसे बढ़ाअी जा सकती हो, तो बुद्धिको बढानेके लिअे क्या क्या अुपाय करने चाहिये?

अुत्तर — बुद्धि क्या है, अिसका अुत्तर देना कठिन है। परन्तु बुद्धिका अनुभव और परिचय तो सबको होता ही है।

सभव है, बुद्धि असलमें विश्व-व्यवस्थाकी, मनुष्यके अतरमें अुठनेवाली, प्रतिध्वनि हो। अीश्वरका स्वभाव और सृष्टिकी रचना, दोनोके साथ मनुष्यका सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध शायद बुद्धिके द्वारा व्यक्त होता होगा।

मनुष्यका जन्म अुसकी जीवन-परपराका आरभ नही है। वह तो जीवन-परम्पराकी अेक बीचकी अवधि या दशा है, दो मुकामोके बीचकी अेक मजिल है। जब मनुष्य अपने पूर्वकर्मोंके अनुसार नया जन्म लेता है, तब वह अपने पूर्व-जन्मानुभवका सार-सर्वस्व, अुत्तम अश, अपने साथ लाता है। अिसलिअे जन्मके समय ही बुद्धिधर्ममे भेद होता है। दो मनुष्योमें बुद्धिधर्मका जो भेद मालूम होता है, अुसमें केवल मात्रा अथवा परिमाणका ही भेद नही होता, परन्तु प्रकारका भेद भी होता है। केवल 'degree' (मात्रा) का ही नही, परन्तु 'kind' (प्रकार) का भी भेद दिखाअी देता है। शरीर, आहार, स्वभाव, वासना, सगति वगैरा असख्य बातोका बुद्धि पर असर होता है।

गीताने बुद्धिके सात्त्विक, राजसिक और तामसी तीन प्रकारके भेद तो बताये ही है।

शरीरको नीरोग और शुद्ध रखनेसे, अपच और कब्जियतको टालनेसे, आलस्यके बिना बुद्धिका अुपयोग करनेसे तथा आत्म-परीक्षण द्वारा बुद्धिको शुद्ध और तेज बनानेसे अवश्य ही बुद्धिशक्तिका विकास होता है।

बुद्धिका जितना विकास ज्ञानेन्द्रियोसे होता है, अुसकी अपेक्षा कर्मेन्द्रियोसे अधिक होता है, अितना ही नही, कर्मेन्द्रियोकी तालीमसे बुद्धिका अनिश्चय दूर होता है और वह निश्चयात्मिका बनती है। 'बुद्धि कर्मानुसारिणी।'

शुद्ध हेतुसे, नि स्पृह और निर्विकारी जीवन जीनेसे बुद्धि तेज और दृढ होती है। हृदय-शुद्धि होनेसे बुद्धिमे अेकाग्रता भी आती है और अुसकी विकिरण-शक्ति, radiating शक्ति, भी विकसित होती है।

अिसके सिवा, अीश्वर-कृपासे भी बुद्धि बढ सकती है। गीतामे भक्तकी जो व्याख्या है वही स्थितप्रज्ञकी भी है। भगवान कहते है 'सच्चे भक्तोको मैं बुद्धियोग देता हू, जिससे वे परम रहस्यको भी पा सकते है।'

यहा मुझे अितना स्पष्ट कर देना चाहिये कि मैं केवल तर्क-चातुर्यको बुद्धि मानता ही नही। कभी कभी तो वह बुद्धिका अेक विकार ही होता है।

अक्तूबर, १९३९

७८

मित्रता क्या है?

[प्रश्नचर्चा]

अेक बडे आदमीके नौकरने अपने मालिकसे अेक दिनकी छुट्टी मागी। अुसने मालिकसे कहा "मेरा अेक मित्र मुझसे मिलनेके लिअे आनेवाला है। अिसलिअे मेरा घरमें रहना जरूरी है।" मालिकने पूछा "क्या तेरा मित्र सच्चा मित्र है?" नौकरने अुत्साहसे कहा "जी हा, वह मेरा बिलकुल सच्चा मित्र है।" यह सुनकर मालिकने तुरन्त अपने कपडे पहन लिये। फिर वह बोला "चल, मैं भी तेरे साथ आता हू। अपनी जिन्दगीमें मुझे पहली ही बार सच्चा मित्र देखनेका सौभाग्य मिलेगा।"

बहुतेरे लोग यह मानते है कि सच्ची मित्रता जैसी कोअी चीज दुनियामें है ही नही। अग्रेजीके अेक कविने मित्रताके बारेमें बहुत ही कडवी पक्तिया लिखी हैं

"And what is friendship but a name;
A charm that lulls to sleep,
A shade that follows wealth and fame
And leaves the wretch to weep"

"मित्रता केवल अेक शब्द ही है। मित्रता अेक समोहन मत्र है, जो भोले-भाले लोगोको भुलावेमे डालकर सुला देता है। सच पूछा जाय तो मैत्री धनवान और कीर्तिवान लोगोकी खुशामद करती है और दीन-दुखियोको अेक कोनेमें बैठकर रोनेको छोड़ देती है।"

जो लोग स्वार्थी हैं और स्वार्थी न भी हो तो जो अहप्रेमी है, स्वार्थत्याग करते समय भी अपनी अिच्छाका खयाल रखते है, वे तो यही मानते है कि मित्रतामे कोअी सार नही है।

परन्तु महात्मा गाधी जैसे लोग, जिन्होने सच्ची मित्रताका अनुभव किया है, जिन्होने स्वय अपनेको सच्चा मित्र सिद्ध कर दिखाया है, कहते है "जो लोग मोक्षकी अिच्छा रखते है, जो लोग केवल अीश्वर-प्राप्तिके लिअे अपने जीवनका बलिदान देना चाहते है, अुनका कोअी मित्र नही होता। दूसरे प्रकारसे कहा जाय तो वे सारी दुनियाको अपना मित्र मानते हैं। अुनका कोअी खास मित्र नही हो सकता।"

मद्रासमें मुझे अेक अग्रेज भक्त मिले थे। अुनसे मेरा अच्छा परिचय हो गया था। अुनके पास शरीर पर पहने हुअे कपडोके सिवा अेक कमीज और अेक पायजामा ही था। (नही, अेक शाल भी थी)। अेक हाथ-थैलीमें अिन चीजोको रखकर वे कही भी चल देते थे। रातको समुद्र-तट पर रेतमे ही सो जाते थे। अुनसे बाते करते करते मैने मित्रताकी बात छेडी। अुन्होने आवेशमे आकर मुझे मैकटेगार्टका यह वचन कह सुनाया Friends ! there are no friends; there are only accomplices"

"आप मित्रकी बात करते है? अिस दुनियामें कोअी किसीका मित्र नही है। जो होते है वे सिर्फ अपराधमें अेक-दूसरेकी मदद करनेवाले साथी, शागिर्द या यार होते है।

सस्कृत साहित्यमें मित्रका स्थान धोखेबाजोमें नही आता। हमारे सुभाषितोमें मित्रकी परिभाषा अिस प्रकार दी गअी है 'अच्छी या बुरी दशामें जो मनुष्य समान भावसे हमारे साथ रहता है वही मित्र है।'

मित्रताका स्थान माता-पिता, भाअी-बहन, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी आदिके पवित्र और अुत्कट सम्बन्धकी पक्तिमें माना जाता है। गुरु-शिष्यका तथा मित्र-मित्रका सम्बन्ध स्वेच्छासे बधता है। बाकी सब सम्बन्धोमें नसीबका हाथ होता है। अिसलिअे अिन दो सम्बन्धोकी कोअी निराली विशेषता मानी जाती है। यही कारण है कि मित्रके सम्बन्धको बनाये रखनेके लिअे बडी सावधानीसे काम लेना पडता है।

अूपरकी भूमिकाको ध्यानमें रखकर हम नीचेके प्रश्नोकी चर्चा करेगे:

"मित्र द्वारा हमारा अपमान हो तो अैसी स्थितिमें हम क्या करे?"

अिस प्रश्नका अर्थ यह होता है कि अपमान होने पर भी प्रश्न पूछनेवाले भाअी अपने मित्रको मित्र ही मानते हैं। अैसी स्थितिमे मित्रका व्यवहार अपमानजनक लगना ही नही चाहिये अथवा अुसे चुपचाप सहकर मनको बडा रखना चाहिये । जिस प्रकार बेचारी पत्नी पतिके हाथो होनेवाले अपमानको चुपचाप बरदाश्त कर लेती है, अुसी प्रकार मित्रके हाथो होनेवाले अपमानको भी चुपचाप बरदाश्त कर लेना चाहिये। मैत्री दोनो पक्षोसे भक्तिकी अपेक्षा रखती है। प्रत्येक मित्र अपने मित्रका भक्त होना चाहिये। जब अेक ॠषिने स्वय ब्राह्मण होनेके कारण भगवान श्रीकृष्णकी छातीमें लात मारी तब श्रीकृष्णने अुस लातको बहुमूल्य अलकार मानकर बडे गर्वसे अुसका आदर किया और कहा 'हम भक्तनके भक्त हमारे!' अुमी समयसे भगवानका नाम श्रीवत्सलाछन पड गया। जिन मित्रोमे परस्पर आदरका भाव नही होता, अुनकी मित्रता लम्बे समय तक टिकती नही । और जहा दोनोके बीच आदरका भाव होता है वहा अपमान होना सर्वथा असभव है।

*

अेक यह प्रश्न पूछा गया है "कोअी व्यक्ति अेकसे अधिक व्यक्तियोके साथ मित्रताका सम्बन्ध बाधे, तो अुन सब मित्रोके साथ समानता कैसे रखी जाय?"

जो लोग मित्रोके सम्बन्धको आशिक और माशूकका सम्बन्ध मानते है, अुन्हीको अिस कठिनाअीका सामना करना पडता है। सच बात तो यह है कि किन्ही भी दो मनुष्योके बीचका सम्बन्ध किन्ही दूसरे दो मनुष्योके बीचके सम्बन्ध जैसा होता ही नही। प्रत्येक सम्बन्ध अद्वितीय अथवा अनन्य (unique) होता है। बात अितनी ही है कि अैसे अनेक सम्बन्धोको मित्रता या दोस्ती जैसा सर्व-सामान्य नाम दिया जाता है।

*

"मित्रता समान कक्षाके लोगोमे ही सभव है, अिस कथनका क्या रहस्य है?"

दुनियाका यह सामान्य अनुभव है कि दो मित्रोके बीच आयुकी, सामाजिक प्रतिष्ठाकी तथा बौद्धिक विकासकी स्थूल समानताये भी न हो, तो अैसी मित्रता घनिष्ठ नही हो सकती। लेकिन अगर किसीका जीवन धन-दौलत, सामाजिक प्रतिष्ठा, आयु आदिकी बातोसे अलिप्त रह सके, तो अिन बातोमे अधिकसे अधिक असमानता होने पर भी मित्रतामे बाधा नही आती। परन्तु अिस स्थितिमे भी दोनो ही मित्रोके मनमें अलिप्तता होनी चाहिये। वर्ना अेकका मन अधिकसे अधिक शुद्ध या अुदार होने पर भी दूसरेके दोषके कारण मित्रता टूटनेकी सभावना रहती है।

मानव-जीवन दो प्रकारका होता है: आतरिक और बाह्य। जो लोग बाह्य जीवनका विचार छोड देते है, वे बाह्य असमानताके होते हुअे भी मित्रके रूपमे रह सकते है। किन्तु यदि आतरिक जीवनमे सपूर्ण मेल न हो, तो दोनोकी मित्रता टिक नही सकती।

कवियोने श्रीकृष्ण और सुदामाकी मित्रताका वर्णन चाहे जितने स्वाभाविक और रोचक ढगसे किया हो, परन्तु मेरी दृष्टिसे वह आदर्श मित्रताका वर्णन नही है।

*

अेक और प्रश्न अिस प्रकार है "मनुष्य अपने सम्बन्धोके बारेमें जब निराश हो जाय तब वह आश्वासन कैसे प्राप्त करे?"

जीवनका और जीवन-व्यवहारका स्वरूप ही अैसा है कि अुसमें अनेक लोगोके साथ अनेक प्रकारके सम्बन्ध स्थापित होते रहते है। हर व्यक्तिके साथ हमारा सम्बन्ध अलग प्रकारका होता है। अैसे सम्बन्धोके कारण मनुष्यमे ,जो विश्वास अुत्पन्न होता है, जो प्रेम बढता है और जो आधार अुसे मिलता है, अुनकी मधुरता अुसके लिअे अुच्च प्रकारका भोजन सिद्ध होती है।

प्रत्येक सम्बन्धके साथ कोअी न कोअी आशा, अपेक्षा और अधिकार जुडा होता है। जब यह अपेक्षा टूट जाती है, आशा निराशामें बदल जाती है और अधिकार मजूर करनेसे अिनकार किया जाता है, तब मनुष्य अस्वस्थ और अशात हो जाता है। अुसे प्राणातक दु ख होता है और चारो ओर अधेरा ही अधेरा दिखाअी देता है। अैसी स्थितिमें अुसे आश्वासन या समाधान कैसे मिल सकता है? मनुष्य अपनी सदाकी स्वाभाविक स्थितिको पुन कैसे प्राप्त कर सकता है? वह कैसे स्वस्थ और शात रह सकता है? यही हमारा प्रश्न है।

अितनी बात हमें स्वीकार करनी चाहिये कि मित्रताके सम्बन्ध बढने पर हमारे कार्यका विस्तार बढता है, हमारी शक्ति भी बढती है और कभी कभी तो हमारा कर्तव्य भी अधिक कठिन हो जाता है। अिसके साथ यदि हमारा परावलबन भी बढे, तब तो भारी खतरा पैदा हो जाता है। हमारा आतरिक जीवन सदा स्वावलबी, स्वयपूर्ण और स्वतत्र होना चाहिये। प्रेमकी वजहसे हमारे हृदयमे असहायता, परावलबन और अपूर्णताकी भावना नही बढनी चाहिये। जो प्रेम दूसरेसे बदलेकी आशा रखता है, वह शुद्ध प्रेम नही होता। प्रेममें प्रतिफलकी यानी प्रत्युपकारकी भावना नही होनी चाहिये। जहा आशा ही नही रखी जाती वहा निराशा कैसे पैदा हो सकती है? जहा देनेके साथ मनमे लेनेकी बात ही नही अुठती वहा कृतज्ञताकी आशा कभी पैदा ही नही होती, तब फिर किसीकी कृतघ्नतासे वेदना तो हो ही कैसे सकती है?

अप्रैल, १९३७

७९

आत्माकी कल्पना

आत्माकी कल्पना करनेका काम बडा कठिन है। कहा गया है कि योग-युक्त परिव्राजक सन्यासी और रणमें विरोधीके शस्त्रसे घायल हुआ निर्भय वीर — दोनो सूर्य-मडलको भेद कर जाते हैं। तो वे कहा जाते होगे? अुन्हे तो आत्माका ही दर्शन होता होगा? प्रत्येक वीरकर्म आत्माका कुछ दर्शन — थोडी झाकी — मिलनेसे ही सभव होता है, क्योकि वह आत्माकी ही शक्ति है। प्रियसे प्रिय जीवनको स्वेच्छासे खोनेकी शक्ति आत्मासे ही अुत्पन्न हो सकती है। केवल निराशाके कारण ही सर्वस्वका त्याग हो ही नहीं सकता। अथवा यदि भले निराशासे, किन्तु परिपूर्ण त्याग हुआ हो और फिर भी वह सच्चा त्याग हो, तो वह कभी विफल नहीं जायेगा, निराशाका रूपातर करके वह शुद्ध आस्तिकताको ही जन्म देगा। जैसे हरअेक वाक्यके बाद पूर्ण-विराम आता है वैसे प्रत्येक सत्कार्यके फलस्वरूप आत्माका कमोवेश दर्शन होता ही है। भोजनके बादकी तृप्ति यदि आनददायक हो, तो सत्कार्यके बादकी शाति आत्म-दर्शन करानेवाली होनी ही चाहिये।

अेक बार मुझे लगा कि सद्भाव ही आत्मा है, तटस्थता ही आत्मा है, परम श्रद्धा ही आत्मा है। परन्तु प्रत्येक मानवमें सद्भाव नही होता, यद्यपि आत्मा तो सर्वव्यापी है, सर्वान्तिर्यामी है। सद्भावको ही आत्मा कैसे कहा जाय? आत्मा सर्वव्यापी है, परन्तु वह सर्वत्र समान रूपमें प्रकट नही हुअी है। अिसमें कोअी शका नही कि वह सब जगह मौजूद है। जिसे हम सद्भाव-शून्य मानते है, जो दुर्जनतामें ही आनद मानता है, वह मनुष्य भी दुर्जनताका पूजक नही होता। वह दुर्जनताका दास होता है, मित्र होता है। हम सहानुभूतिसे जाच करे तो मालूम होगा कि दुर्जन मनुष्यमें भी दुर्जनताकी मर्यादा होती है। 'अिससे आगे नही ही जाना चाहिये,' अैसा कोअी पैमाना अुसके पास जरूर होता है। 'मैं जितना (दुर्जन) हू अुससे अधिक दुर्जन नही हू,' अिसका आनद या सतोष हरअेक मनुष्यके हृदयमे रहता है। यदि वस्तुस्थितिके क्षेत्रसे सभावनाका क्षेत्र अमर्यादित रूपमें बडा हो, तो प्रत्येक मनुष्य आत्म-कल्याण चाहनेवाला ही माना जायगा। और तब तो यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि सद्भाव ही आत्मा है।

शर्त अितनी ही है कि हमें सद्भावका व्यापक स्वरूप जानना चाहिये।

१९३१